डॉ० बी० आर० अम्बेडकर

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० डी० आर० जाटव

एम० ए० (दर्शन, राजनीति), एल-एल० बी०;

पी-एच० डी०; डी० लिट्०

अध्यक्ष : दर्शनशास्त्र विभाग

राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राज०)

समता साहित्य सदन

40, मीना कॉलोनी, इमली वाला फाटक,

जयपुर—302005 (राज०)

प्रथम संस्करण : 1984

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वारा : डॉ० डी० आर० जाटव

मूल्य : पेपर बैक 30/-
सजिल्द 35/-

प्रकाशक :
शकुन्तला जातक
समता साहित्य सदन
40, मीना कॉलोनी, इमली वाला फाटक,
जयपुर — 302005 (राज०)

मुद्रक :
अर्चना प्रकाशन,
सुभाष उद्यान मार्ग, अजमेर

अम्बेडकर विचार-सूत्र

- धर्म सदाचार है जिसका अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव-मानव के बीच शुभ सम्बन्ध।

- प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन उसके गुण, न कि जन्म, के आधार पर होना चाहिए।

- यदि आप पूछते हैं तो मेरा आदर्श समाज वह होगा जो स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृभाव पर आधारित हो।

- हमारा महान् कर्त्तव्य है कि हम प्रजातन्त्र को जीवन-सम्बन्धों के मुख्य सिद्धान्त के रूप में समाप्त होता हुआ न देखें। हम प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं तो हमें इसके प्रति सच्चा एवं वफादार होना चाहिए।

- प्रजातन्त्र केवल सरकार का रूप नहीं है। यह मुख्यतः एक सङ्गठित रूप से रहन-सहन का ढङ्ग है। यह अनिवार्यतः अपने साथ रहने वाले मनुष्यों के प्रति मान सम्मान करने का एक ढङ्ग है।

- यदि हम लोग अपनी एक सामान्य संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हम सब लोगों का कर्त्तव्य है कि हिन्दी को अपने राष्ट्र की एक राज्य-भाषा मानें।

- प्रत्येक नागरिक अपने आपको सबसे पहले, और अन्त में भी, भारतीय समझे ताकि राष्ट्रीय एकता कायम रहे।

- अपनी दासता स्वयं मिटानी है। शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष इसके लिए, मूल-मन्त्र हैं।

- स्वतन्त्रता एवं मानवाधिकार किसी को उपहार के रूप में नहीं मिलते; उसके लिए संघर्ष किया जाता है।

- मुझे साहित्यकारों से अपनी सारी शक्ति लगा कर कहना है कि····अपनी लेखनी का प्रकाश अपने आंगन में ही न रोक लें, उसका तेज गांव-गांव के महन अन्धकार को दूर करने के लिए फैलने दें।

आमुख

हिन्दी जगत् में विभिन्न महापुरुषों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं दर्शन के विषय में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी दिशा में किया गया मेरा एक विनम्र प्रयास है। भारतीय संविधान के जनक तथा दलितों के महान् नेता, डॉ० भीमराव रामजी अम्बेड-कर की जीवनी के सन्दर्भ में जिस विचार-तंत्र अथवा जीवन-दर्शन को पाठक खोजता है, वह सरल एवं स्पष्ट भाषा में नहीं मिल पाता। डॉ० अम्बेडकर के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों की अभि-व्यक्ति तो हिन्दी भाषा में मुश्किल से मिलेगी। उन्हें एक साहित्यकार के रूप में अभी तक विवेचित नहीं किया गया है। उनके सम्पूर्ण जीवन-चरित्र को अभिव्यक्त करने वाले हिन्दी ग्रन्थ का अभाव एक खटकने वाली बात थी। इस अभाव की सम्पूर्ति संभवतः प्रस्तुत ग्रन्थ से हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अतः इसका अपना एक विशेष एवं व्यापक महत्त्व है।

मैंने डॉ० अम्बेडकर के 'समाज-दर्शन' (सोशल फिलॉस्फी) पर शोध-कार्य किया; जिस पर मुझे सन् 1963 में पी-एच. डी की उपाधि प्रदान की गई जो समस्त शिक्षा-जगत् में प्रथम घटना थी। तभी से मैं डॉ० अम्बेडकर के विषय में शोध-परक अध्ययन करता आ रहा हूं जिसके फलस्वरूप मेरी कुछ रचनाएं तथा बहुत से लेख उनकी विचारधारा पर प्रकाशित हुए हैं जिनको पाठकों ने सहर्ष-स-हृदय पसन्द किया है। वैसे मेरा डा० बाबा साहब अम्बेडकर से कोई निजी सम्पर्क नहीं हुआ, पर उनके विषय में शोध-कार्य करने में मुझे उनके साथ आत्मीयता स्थापित करने का शुभावसर सुलभ हुआ है। इस आत्मीयता की अनुभूति ने लेखक को डॉ० अम्बेडकर के ज्ञान-भण्डार में प्रविष्ट होने की प्रेरणा दी और यही कारण है कि उसने उन्हें गहराई एवं गम्भीरता से परखने का प्रयास किया। उनके जीवन-दर्शन के विषय में जो मेरे द्वारा समुचित व्याख्या एवं विवेचना की गई उसे विद्वान् पाठकों ने स्वीकार किया है। अतः मेरा पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनको स्वीकार्य तथा पसन्द होगा। इसमें कुछ नई बातों एवं घटनाओं को चित्रित किया गया है जो मेरे अन्य ग्रन्थों में नहीं मिल पायेंगी।

इस ग्रन्थ में, एक ऐसे महान् व्यक्ति के जीवन-संघर्ष का वृत्तान्त है जिसने समस्त दलित जाति के हितों की सुरक्षा के लिए, अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा कृतित्व को अर्पित किया। इसमें डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर के ही शब्दों एवं कृत्यों से उनके ही अभिप्रायों

को अभिव्यक्त किया गया है जो सामान्य पाठक की दृष्टि से प्रायः अभी तक ओझल रहे हैं। वे जैसे थे, वैसे ही उनको यहाँ निष्ठापूर्वक चित्रित किया गया है। उनके जीवन, चरित्र एवं मिशन को ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत करने का मुख्य लक्ष्य रहा है ताकि उनके विचार-तंत्र को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। यह जीवनी विचार उत्तेजक तो है ही, पर उन सबके लिए भी प्रेरणादायक सिद्ध होगी जो समाज में पाये जाने वाले मानवी सम्बन्धों में समता एवं सम्मान स्थापित करना चाहते हैं। डॉ० अम्बेडकर का जीवन इस बात की भी प्रेरणा देता है कि कोई निष्ठावान्, दृढ़-संकल्प व्यक्ति, आत्म-त्याग एवं आत्म-संयम के सहारे, विपरीत परिस्थितियों में प्रगति के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है। उनके व्यक्तित्व से यह शिक्षा भी मिलती है कि आदमी को, अन्यों पर आश्रित होने की अपेक्षा, अपने ही प्रयासों में विश्वास रखना चाहिए। आत्म-सहायता जीवन का उत्तम मार्ग है।

पुस्तक में, प्रस्तावना एवं उपसंहार के अतिरिक्त, कुल पांच अध्याय हैं। प्रस्तावना में, डॉ० अम्बेडकर के जन्म के पूर्व की सामाजिक स्थिति का विवरण है। प्रथम अध्याय में, उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और उनके जन्म, बचपन, शिक्षा, विवाह, विदेशों में ज्ञान-साधना तथा वकालत का वृत्तान्त प्रस्तुत है। द्वितीय अध्याय में, उनके व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं का विवरण है जैसे उनका बाह्य-स्वरूप, रहन-सहन, आचार-विचार, दिनचर्या, भोजन, वेशभूषा तथा रुचि; और यह भी बतलाया गया है कि उन्होंने किस प्रकार असह्य शारीरिक रोग का सामना किया, उनका पारिवारिक जीवन कैसे गुजरा तथा जीवन के अन्तिम दिनों में क्या हुआ? तृतीय अध्याय में डॉ० अम्बेडकर के महत्त्वपूर्ण कृत्यों एवं निर्णयों को चित्रित किया है जिनके कारण, उन्हें दलितों का हृदय-सम्राट् एवं युग-निर्माता कहा जाता है। एक अछूत के रूप में, उन्होंने, अपना जीवन प्रारम्भ किया और भारतीय संविधान के जनक की सर्वोत्कृष्ट स्थिति में पहुँच गये। चतुर्थ अध्याय में, डॉ० अम्बेडकर की जीवन-दृष्टि और उनकी विचारधारा का सम्यक् विवेचन किया गया है। उनकी जीवन-दृष्टि मानववादी है जो बुद्ध-दर्शन से अनुप्राणित है। समतावादी समाज में उनकी अटूट आस्था थी। पांचवे अध्याय में, डॉ० अम्बेडकर को साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत कर, उनकी साहित्यिक सृष्टि का विवेचन किया गया है। उनके साहित्य-सृजन का लक्ष्य, लेखन-प्रक्रिया, शैली, रचनाओं के प्रेरणा

स्रोत आदि का समुचित विश्लेषण दिया है। इसी अध्याय में, डॉ० अम्बेडकर की कुछ प्रमुख मूल रचनाओं की विषय-सामग्री का संक्षिप्त विवरण दिया गया है ताकि सामान्य पाठकों को यह ज्ञात हो जाए कि उनके साहित्य के निर्माणात्मक तत्त्व क्या हैं ? अत: उनके सम्पूर्ण साहित्य से पाठकों का परिचय होना स्वाभाविक है जो अन्यथा बड़ा ही मुश्किल है। उपसंहार में, जो पुस्तक का अन्तिम किन्तु बड़ा ही लघु अंश है, डॉ० अम्बेडकर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व की देन को मूल्यांकित किया है। आधुनिक भारत के इतिहास में, उनका स्थान क्या है, उन्हें आज किस रूप में सम्मानित किया जाता है, और दार्शनिक क्षेत्र में उनकी कितनी महत्ता है, यह सब कुछ विश्लेषित है। आशा है, हिन्दीभाषी पाठकों के लिए डॉ० अम्बेडकर का यह 'जीवन-चरित्र' निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगा।

मैं अपने मित्र, डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली, वरिष्ठ व्याख्याता हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर के प्रति बड़ा कृतज्ञ हूं जिनका सहयोग एवं स्नेह इस कृति का सम्बल रहा है। अपने अन्य साथी श्री रामस्वरूप बौद्ध, अध्यक्ष, भारतीय बौद्ध महासभा (राजस्थान प्रदेश), अजमेर, और श्री रामसुख बारेसा, एम. ए., मारवाड़-जंक्शन, भी मेरी ओर से हार्दिक प्रशंसा एवं धन्यवाद क पात्र हैं जिन्होंने प्रकाशन के मार्ग में आने वाली आर्थिक कठिनाइयों के निवारण हेतु मुझे साहस एवं सहयोग प्रदान किया। श्री देवदत्त, अजमेर, को हार्दिक धन्यवाद, जिनका कलात्मक योगदान सराहनीय रहा। साथ ही, महेन्द्रसिंह, एम.ए., एल-एल.बी. तथा चन्द्रकान्ता, एम.ए., बी.एड., का सक्रिय सहयोग और अशोक, हेमन्त, अनीता और अजय द्वारा सौहार्दपूर्ण पारिवारिक वातावरण बनाये रखना, इस ग्रन्थ की निर्माण-प्रक्रिया में अत्यन्त स्फूर्तिदायक सिद्ध हुआ। अत: उनको भी धन्यवाद सहित, जीवन को सार्थक एवं श्रेष्ठ बनाने के लिए, हार्दिक शुभकामनाएं। अन्त में, प्रकाशक तथा मुद्रक दोनों को हार्दिक धन्यवाद, जिनकी तत्परता एवं तीव्रता के कारण, यह ग्रन्थ 14 अप्रेल के शुभावसर पर प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आ सका है।

अम्बेडकर जयन्ती

14 अप्रेल, 1964

अजमेर

—डी० आर० जाटव

विषय-सूची

	आमुख	3—5
	विषय-सूची	6—7
	प्रस्तावना	9—13
1	**जीवन :**	14—52
	जन्म एवं बचपन	14
	शिक्षा और विवाह	22
	अमेरिका में शिक्षा	28
	बड़ौदा के कटु अनुभव	32
	प्रोफेसर के रूप में	36
	लन्दन में ज्ञान-साधना	41
	वकालत एवं समाज-सुधार	45
2	**व्यक्तित्व :**	53—92
	बाह्य स्वरूप	53
	रहन-सहन का स्तर	55
	आचार विचार	58
	दिनचर्या एवं भोजन	61
	वेशभूषा एवं रुचि	65
	प्रभावशाली वक्ता	70
	प्रिन्सिपल के रूप में	73
	शारीरिक रोग का सामना	75
	पारिवारिक जीवन	78
	अन्तिम यात्रा	85
3	**कृतित्व :**	93—179
	अछूतोद्धार आन्दोलन	93
	मानव अधिकारों की माग	105
	महाड का जल सत्याग्रह	111
	नासिक का धर्म सत्याग्रह	117
	गोलमेज परिषद् में	123
	गांधी के साथ संघर्ष	129

पूना-पैक्ट की राजनीति 138
मन्दिर-प्रवेश का निषेध 144
स्मृति-धर्म पर प्रहार 150
श्रमिक नेता एवं सदस्य 156
संविधान के जनक 163
मन्त्रि-मण्डल से त्याग-पत्र 173

4 दर्शन : 180—216
वर्णवाद के प्रति विद्रोह 180
ब्राह्मणवाद का विरोध 186
गांधीवाद की समीक्षा 190
मार्क्सवाद का खण्डन 196
धर्मान्तरण का लक्ष्य 201
धर्म का नया रूप 205
सार्वभौम नैतिक आदर्श 208
नवीन समाज व्यवस्था 212

5 साहित्य : 217—262
साहित्यकार के रूप में 217
पत्रिकाओं में रुचि 219
साहित्य सृजन का लक्ष्य 223
लेखन-प्रक्रिया एवं शैली 227
रचनाओं का प्रेरणा-स्रोत 232
मूल ग्रन्थों के विषय 235
महान् ग्रन्थ की रचना 254
दलित साहित्य के प्रणेता 256
युग-प्रवर्त्तक : बोधिसत्त्व 259
उपसंहार 263
ग्रन्थावली 271—272

प्रस्तावना

डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उस समय ही ठीक तरह से समझा जा सकता है जब उनका अध्ययन उनकी आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में किया जाए, जिसमें उनका जन्म हुआ और तत्पश्चात् संघर्ष में जुटे रहे। उनका समस्त जीवन भारत की सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों को अभिव्यक्त करता है।

भारत में रहने वाले अनेक समुदायों में कई अछूत समुदाय भी थे। डॉ० अम्बेडकर का अछूत समुदाय के एक निर्धन परिवार में जन्म हुआ। हिन्दू समाज में अछूतों को सबसे निम्न स्तर पर रखा जाता था और आज भी प्रायः वही स्थिति है। वर्तमान संविधान के पूर्व, उन्हें तीन श्रेणियों में बांटा जाता था—अछूत, जिसे छूआ न जाए; अगम्य, जिसे समीप न रखा जाए और अदृष्ट, जिसे देखा न जाए। इन्हीं अछूतों को आज परिगणित जातियां कहते हैं, जिनके सदस्यों की संख्या लगभग बीस करोड़ है। भारत के विभिन्न भागों में, उन्हें अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है जैसे पेरिया, पञ्चमा, अतिशूद्र, अवर्ण, अन्त्यज, चमार और नामशूद्र।

इन अछूतों के समक्ष अनेक प्रकार की सामाजिक एवं धार्मिक अयोग्यताएं थीं। आज भी न्यूनाधिक मात्रा में हैं। उनका स्पर्श, देखना और यहां तक कि उनकी आवाज भी सवर्ण हिन्दुओं को अशुद्ध बना देती थी। उनका सवर्ण हिन्दुओं के मार्ग में आना अशुभ माना जाता था। ये अछूत घरेल पशु नहीं रख सकते थे; केवल लोहे तथा तांबे के आभूषण पहन सकते थे; विशेष प्रकार के वस्त्र ही वे धारण कर सकते थे; घटिया तथा अशुद्ध खाना उन्हें मिलता था; गांवों के बाहर अस्वस्थ एवं गन्दे स्थानों पर उन्हें रखा जाता था और दिन भर बेगार, कड़ी मेहनत के पश्चात् उन्हें जो कुछ मिलता था, उसी से वे अपना जीवन-यापन करते थे। निश्चय ही असहनीय स्थितियों में रहना, 'अछूतों के भाग्य में लिखा' समझा जाता था। सार्वजनिक कुओं से पानी लेना उनके लिए निषिद्ध था। अतएव गन्दा पानी ही उन्हें मिल पाता था। शिक्षा से उन्हें मीलों दूर रखा जाता था। उनके बच्चों का किसी भी स्कूल तथा पाठशाला में दाखिला असम्भव था। वैसे अछूत स्त्री-पुरुष हिन्दुओं के देवी-देवताओं को पूजते थे, उनके त्योहारों को मनाते थे; लेकिन हिन्दू मन्दिरों में उन्हें झांकने नहीं दिया जाता था। सवर्ण हिन्दुओं में चींटियों, बिल्लियों एवं कुत्तों के प्रति दया तथा सहानुभूति तो थी, पर अछूतों के प्रति कतई नहीं। उनके साथ पशुओं की भांति व्यवहार किया जाता था। नाई उनकी हजामत नहीं बनाते और धोबी उनके कपड़े नहीं धोते थे। शहरों में, ये कठिनाइयां कुछ कम हुई हैं; लेकिन गांवों में उनकी स्थिति अब भी दयनीय है। प्रायः सर्वत्र जातिगत भेदभाव एवं व्यवहार का बोलबाला है।

हालांकि स्वतन्त्र भारत में परिवर्तन एवं विकास से लाभ अवश्य हुआ है; पर उनके दुःखों का अन्त यहीं पर नहीं हुआ। चूंकि वे अशिक्षित तथा सदियों से अछूत थे, समस्त सरकारी नौकरियों के द्वार उनके लिए बन्द थे। पुलिस तथा

सेना में उनकी भर्ती पर प्रतिबन्ध था। अत: उन्हें पैतृक पेशों को ही करना पड़ता था जैसे सफाई करना, मृत पशुओं को उठाना; चमड़ा पकाना और जूते बनाना। समाज में, जिन्हें निकृष्ट पेशों का नाम दिया है, उन्हें ही वे कर सकते थे। थोड़े से ही अछूतों के हाथों में कृषि का काम था। वह भी भूमिहीन मजदूरों के रूप में। बड़े-बड़े भूमिधरों के यहाँ ये लोग मय स्त्री बच्चों के बेगार करते थे। थोड़ा बहुत खाना, फटे-पुराने वस्त्र ही मिल पाते थे। इस प्रकार उन्हें प्रगतिशील स्थितियों से वञ्चित रखा गया। उन्हें जीवन को विकसित करने एवं सुन्दर बनाने का अवसर ही नहीं दिया गया। अछूत ऋण में पैदा होते थे और ऋण में ही मरते थे। अछूत के रूप में जन्मे, ये लोग अछूत ही रहते और अछूत के रूप में ही मृत्यु को प्राप्त होते थे। यही उनका भाग्य माना जाता था।

छुआछूत की उत्पत्ति कैसे हुई यह एक बड़ी ही विवादास्पद समस्या है; लेकिन सामान्यत: यह माना जाता है कि यह वर्ण व्यवस्था का ही एक विकृत रूप है। वर्ण व्यवस्था ही छुआछूत एवं जातिवाद की जननी है। उसका प्रारम्भिक रूप कुछ और था। कहा जाता है कि वैदिक समाज चार भागों में विभाजित था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। समाज का चार वर्णों में यह विभाजन, भारतीय समाज-व्यवस्था का विशेष रूप था। प्रारम्भिक वर्ण केवल विशेषीकरण एवं श्रम विभाजन के द्योतक थे। ब्राह्मण का काम था शिक्षा अथवा वेदाध्ययन करना; क्षत्रिय का काम देश की रक्षा करना; वैश्य का काम कृषि एवं व्यापार; और शूद्र का काम इन तीनों वर्णों के लोगों की सेवा करना था। वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, लेकिन कालान्तर में, वह पतनावस्था में पहुँच गई। फलत: एक मूर्ख ब्राह्मण को ईश्वर के समान ही स्वीकार किया गया, जबकि शूद्र कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, उसे घृणा का पात्र ही बनाए रखा। यद्यपि उच्च तीनों वर्ण अपने-अपने निर्धारित कर्तव्यों को करने में असफल रहे, परन्तु शूद्रों को दयनीय स्थिति में ही रखा गया। आगे चलकर यही चार वर्ण चार जातियों में परिणत हो गए। साथ ही साथ हजारों उप-जातियां भी पैदा हो गईं। इन जातियों में ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि की निकृष्ट भावनाएँ जाग्रत हो गईं। उनके बीच अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध विकसित हो गए। पेशा, शादी-विवाह, खान-पान आदि से सम्बन्धित विभिन्न पारस्परिक कटुताएँ एवं दूरियां पैदा हो गईं। फलत: आज भारतीय समाज में लगभग तीन हजार उप-जातियां हैं जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध असमानता तथा अमानुषिकता के द्योतक हैं।

इन परिवर्तनों के बीच सबसे अधिक मुसीबतों का सामना शूद्रों अथवा अछूतों को ही करना पड़ा। उन्हें समाज के निम्नतम स्थान पर रखकर ढेर सारी अयोग्यताओं से दबा दिया गया। उनके समस्त जीवन पर प्रतिबन्धों का ऐसा जाल बिछा दिया गया कि वे सदियों तक पतनावस्था तथा अन्धकारमय जीवन में ही फंसे रहें। दूसरी ओर ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों को तमाम सुविधाओं का लाभ उठाने की स्वतंत्रता थी। वे सभी भौतिक सम्पदा तथा हर किस्म के ऐश-आराम का सुख भोगते थे। सदियों तक शूद्र के श्रम का उन्होंने शोषण किया। शूद्र वेद या धार्मिक ग्रन्थ का अध्ययन कतई नहीं कर सकता था। शूद्रों को धर्म,

अस्त्र, सम्पत्ति, शिक्षा आदि की सीमाओं से बाहर रखा गया। शूद्रों के लिए व्यापक रूप से कर्तव्य निर्धारित थे। अधिकारों से तो उन्हें बिल्कुल वंचित रखा गया, जबकि उच्च तीनों वर्णों के अधिकार बहुत और कर्तव्य कम थे। शूद्र आश्रम व्यवस्था-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास की परिधि से बाहर थे। आश्रम व्यवस्था उन पर लागू नहीं थी। उनका स्वधर्म बस दिन-रात अपने स्वामी की सेवा करना था। इस प्रकार की समाज व्यवस्था में उनका दम घुटता रहा।

ऐसा नहीं है कि इस समाज व्यवस्था को चुनौती नहीं दी गई हो। सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध ने इस समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया और अपने धर्म में, शूद्रों एवं पतितों को शामिल किया। तथागत बुद्ध तथा उनके शिष्यों ने जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था की नींव को हिला दिया। उन्होंने समानता एवं स्वतन्त्रता का सन्देश प्रसारित किया। वे ही प्रथम पुरुष थे जिन्होंने समतावादी समाज की प्रतिष्ठापना का पूरा-पूरा प्रयास किया। ग्यारहवीं शताब्दी में रामानुज, बाद में, अन्य सन्तों जैसे बसव, चक्रधर, रामानन्द, कबीर, चैतन्य, एकनाथ, तुकाराम, रविदास, चोखामेला, नानक ने जाति-व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने शूद्रों एवं अछूतों के साथ अच्छे व्यवहार की मांग की और उन्हें भक्तों की श्रेणी में रखने का प्रयास किया। उन्होंने सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन का सूत्रपात किया जो आधुनिक भारत में निरन्तर बना रहा, हालांकि समाज के जातिगत ढांचे और छुआछूत के व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं आया।

भारत में इस्लाम एवं ईसाई मज़हबों के पदार्पण से सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जातिवाद की कठोरता में कुछ ढिलाई आई। उन्होंने समानता के सिद्धान्त का समर्थन किया। फलतः बहुत से शूद्र और अछूत मुस्लिम तथा ईसाई हो गए। इस्लाम तथा ईसाई मत अपनाने वालों ने अपना धर्म तो बदल लिया; पर उनके लिए अपने रीति-रिवाजों और परम्पराओं को बदलना आसान नहीं था। यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात थी कि वे समाज में अपनी आर्थिक स्थिति को भी नहीं बदल पाए। इन नए धर्मों को स्वीकार कर लेने के बाद भी, नीच जाति के लोगों को दूर-दूर ही रखा जाता था। उधर दोनों ही मज़हब अपने को भारतीय समाज में समायोजित करने के प्रयास में हिन्दू-धर्म के व्यापक लक्षणों को आत्मसात् करने लगे थे। फलतः जातिवाद एवं छुआछूत समाप्त नहीं हो पाए और शूद्र-अछूत अपनी दयनीय स्थितियों में ही पड़े रहे।

सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों की दिशा में प्रयासों का क्रम फिर भी जारी रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, राजाराममोहन राय, रानाडे आदि ने समाज सुधार आन्दोलन को सुदृढ़ बनाया। अछूतोद्धार के लिए, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य महात्मा ज्योतिबा फूले ने किया। सन् 1852 में, फूले ने पूना में अछूतों की शिक्षा के लिए प्रथम स्कूल स्थापित किया। यद्यपि धर्मान्ध हिन्दुओं ने उनकी मजाक उड़ाई; लेकिन फूले तथा उनकी धर्मपत्नी ने अछूतों की स्थिति सुधारने में अद्वितीय काम किया। बंगाल के शशिधर बन्द्योपाध्याय ने भी अछूतोद्धार का काम किया। उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानन्द ने अछूतोद्धार आन्दोलन का

संचालन किया। बड़ौदा के समाजीराव गायकवाड़ ने सन् 1883 में अछूतों के लिए महाराष्ट्र में स्कूल खुलवाए; परन्तु इन स्कूलों में सवर्ण जाति तथा मुस्लिम अध्यापक आना पसन्द नहीं करते थे। उन दिनों अछूतों को पढ़ाना-लिखाना महा पाप समझा जाता था।

समय परिवर्तन के कारण, महाराष्ट्र के अछूतों में जागृति के अंकुर उगने लगे। उनके नेता गोपाल बाबा वालंगकर ने उन्हें संगठित करने का प्रयास किया ताकि वे स्वयं बुराइयों के प्रति विद्रोह कर सकें। स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद आदि ने छुआछूत के व्यवहार की निन्दा की। दूर दक्षिण में, कर्नल आलकॉट ने अछूतों के लिए एक स्कूल प्रारम्भ किया। ब्रिटिश शासकों ने भी अछूतों की मुसीबतों तथा अयोग्यताओं को मिटाने का प्रयास किया; लेकिन वे बड़े ही चतुर प्रशासक थे। वे चाहते थे कि जाति एवं छुआछूत के बन्धन तो टूटें; पर सवर्ण हिन्दुओं को नाराज करके नहीं। फलत: अछूतों की कठिनाइयां अधिकांशत: ज्यों की त्यों बनी रहीं। उनकी यातनाएं कम न हुईं। ब्रिटिश काल में भी अछूतों को देखना, छूना, उनका साया, सभी सवर्ण हिन्दुओं को अपवित्र बना देते थे। अछूत आम सड़कों पर चल नहीं सकता था। उन्हें थूकने के लिए अपने गले में हांडी लटकानी पड़ती थी। ब्राह्मण के आने पर छिपना पड़ता था। अपने पैरों के चिह्नों को मिटाने के लिए, कमर में झाड़ू बांधकर चलना पड़ता था। अछूत बच्चों को आम स्कूलों में प्रवेश नहीं मिलता था। जिस पर सरकार ने सन् 1858 में यह घोषणा की कि वे स्कूल जो निम्न जाति के बच्चों को प्रवेश नहीं देंगे उनकी अनुदान तथा आर्थिक सहायता बन्द की जा सकती है।

समूचे भारत में, सामाजिक वातावरण अछूतों के लिए भयावह था। समाज उनके लिए नरक बन चुका था। उसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। मन्दिर-मस्जिदों में तो उनका प्रवेश असंभव था। सार्वजनिक स्थानों, स्कूलों तथा संस्थाओं में जाना उनके लिए निषिद्ध था। समाज सुधारकों का धर्मान्धों द्वारा प्रतिरोध किया जाता था। उनके प्रयासों को विफल बनाया जाता था। यहां तक कि सरकार की उन हिदायतों का उल्लंघन भी किया जाता था जिनमें अछूतों को सुविधाएं देने की बात होती थी। सुविधाओं का प्राय: सर्वत्र अभाव तो था ही जो अछूतों की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा थी।

महाराष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में भी 'समस्याएं' विकट थीं। अछूतों की स्थितियां गम्भीर एवं अमानुषिक थीं, हालांकि उन्नीसवीं शताब्दी में वहां पर विभिन्न प्रकार के सुधारों का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। समाज सुधार तथा राजनीतिक आन्दोलन का वातावरण था। राजनीतिक पिछड़ापन, जातिवाद, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, स्त्री-उत्थान आदि महाराष्ट्र की प्रमुख समस्याएं थीं। इसी समय सुधारकों एवं राजनीतिज्ञों के बीच कलह उत्पन्न हो गया कि पहले समाज सुधार किया जाए अथवा राजनीतिक उत्थान। ब्रिटिश राजनेताओं तथा सम्पादकों ने भारतीय नेताओं को यह सुझाव दिया कि प्रथम वे अपनी समाज व्यवस्था की बुराइयों का अन्त करें, हालांकि ऐसा कहने

में उनका एकमात्र मन्तव्य यह था कि भारतीय नेता राजनीतिक आन्दोलन से दूर रहें। लेकिन नेताओं ने स्थिति को अपने ही ढंग से देखा और राजनीतिक आन्दोलन की ओर उनका ध्यानाकर्षण हुआ। रानाडे, आगरकर, भण्डारकर आदि बुद्धिजीवियों ने सर्वप्रथम समाज व्यवस्था को उदार तथा जनतांत्रिक बनाने पर बल दिया। लेकिन तिलक जैसे नेताओं ने राजनीतिक उत्थान का बीड़ा उठाया और सोचा कि भारत में राजनीतिक उत्थान के पश्चात्, समाजसुधार स्वत: हो जायेगा। समाजसुधारकों का तर्क यह था कि सामाजिक ढांचे तथा मूल्यों को बदले बिना, राजनीतिक उत्थान ठोस नहीं बन पायेगा। इस प्रकार इन नेताओं एवं बुद्धिजीवियों में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को लेकर एक ऐसा विवाद उठ खड़ा हुआ जिसने देश की भावी विचारधाराओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया। फलत: सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में, विचार भिन्नताएँ, पारस्परिक कटुताएँ और धार्मिक कट्टरताएँ निरन्तर बनी रहीं। सामाजिक जड़ता बनी रही और राजनीतिक दूरियां पनपने लगी। भारतीय भूमण्डल में घोर निराशाजनक स्थिति ने पड़ाव डाल लिया।

भीमराव रामजी अम्बेडकर के जन्म के पूर्व, इस प्रकार का बौद्धिक, सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण न केवल महाराष्ट्र, बल्कि सम्पूर्ण भारत में विद्यमान था; जिसे स्मरण करने मात्र से मानवीय हृदय द्रवित हो उठता है। दूर ग्रामीण अञ्चलों में आज भी शूद्र, अछूत, दीनहीनों के लिए कठोर भयावह वातावरण बना हुआ है। व्यापक शोषण की स्थिति में इनके प्रति वही अत्याचार, वही यातनाएँ विद्यमान है, उन पर जघन्य अपराधों तथा हत्याओं का क्रम बना हुआ है। इस प्रकार की सभी स्थितियों का प्रतिरोध हमें भीमराव अम्बेडकर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व में मिलता है जो दलितों के मसीहा के रूप में भारतीय क्षितिज पर अवतरित हुए। उनका व्यक्तित्व नि:सन्देह विद्रोही एवं क्रान्तिकारी था, पर उनका कृतित्व विध्वंसक नहीं था। संक्षेप में उनके व्यक्तित्व में अथाह प्रेरणा और कृतित्व में अटूट निष्ठा अन्तर्निहित थी। □

अध्याय—१

जीवन

जन्म एवं बचपन :

डॉ० अम्बेडकर को अपना जीवन-निर्माण करने में अनेक प्रकार की मुसीबतों एवं कष्टों का सामना करना पड़ा। उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि निर्धनता की एक कहानी है। उनको पैतृक रूप में कोई धन-सम्पत्ति प्राप्त नहीं हुई, क्यों कि अछूतों के पास धन-सम्पत्ति इकट्ठी हो, ऐसा सामाजिक वातावरण नहीं था; लेकिन उनके पिता धनी वर्ग के न होते हुए भी समाज के प्रतिष्ठित, सम्मानित तथा ईमानदार व्यक्तियों में से थे। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण घर के खर्च का निर्वाह सुचारु रूप से नहीं हो पाता था। ऐसी आर्थिक विपन्नता की हालत में वह अपने बच्चों को भली-भांति सुशिक्षित बनाने में सफल हुए। इसका एक मुख्य कारण यह था कि वह आत्म-सम्मान को अपने जीवन का अङ्ग मानते थे जिसे डॉ० अम्बेडकर ने धरोहर के रूप में सहर्ष स्वीकार किया था।

महाराष्ट्र के अछूत समूहों में महार जाति प्रमुख है। इसी जाति में डॉ० अम्बेडकर पैदा हुए थे। महार जाति की बस्ती गांवों के बाहर होती है जिसे 'महारवाडा' कहा जाता है। यह शब्द निन्दात्मक भावार्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'महारवाडा' गन्दे लोगों की गन्दी बस्ती का प्रतीक माना जाता है। सभी अछूत जातियों में महार लोग ही बड़े हृष्ट-पुष्ट, समायोजनशील, बहादुर, लड़ाकू और बुद्धिमान होते हैं। कहा जाता है कि ये महार लोग ही महाराष्ट्र के मूल-निवासी थे। महाराष्ट्र को ये लोग 'महार-राष्ट्र' मानते हैं। 'महार' शब्द की उत्पत्ति 'महा-अरि' से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'महान शत्रु'। अछूत जातियों में महार लोग ही प्रथम थे जो भारत में आने वाले यूरोपियन लोगों के सम्पर्क में आये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बॉम्बे आर्मी में उन्हें भर्ती किया गया।

डॉ० अम्बेडकर के दादाजी मालोजी सकपाल अवकाश प्राप्त सैनिक व्यक्ति थे। एक अच्छे महार परिवार से उनका सम्बन्ध था। उनकी दो सन्तानें जीवित रहीं। एक पुत्र रामजी सकपाल जो आगे चल कर अम्बेडकर के पिता कहलाए और दूसरी पुत्री मीरां। अम्बेडकर के पूर्वजों का पुराना गांव 'अम्बावाडे' रत्नागिरि जिले के एक छोटे से शहर मण्डनगढ़ से पांच मील दूर था। उनके पूर्वज अपने गांव में धार्मिक त्योहारों के समय देवी-देवताओं की पालकियां उठाने का काम किया करते थे जो उनके पारिवारिक सम्मान का द्योतक था। उनके परिवार के सभी सदस्य सन्त कबीर के भक्त थे। अतएव छुआछूत में उनका कतई विश्वास नहीं था। वे यह मानते थे कि 'जाति पांति पूछे ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'

कहा जाता है कि रामजी सकपाल के एक चाचा संन्यासी हो गये थे। जब रामजी सकपाल अपने परिवार सहित महू (इन्दौर) कैण्ट में रहते थे, तब वह चाचा अन्य संन्यासियों के साथ विचरण करते हुए गांव की ओर आए। उस समय परिवार की एक स्त्री ने जो पास की नदी में कपड़े धोने जा रही थी, उन्हें देखकर पहचान लिया और शीघ्र लौटकर घरवालों को सूचना दी। परिवार के सभी सदस्य वहाँ गये। उनका आदर-सत्कार किया और उनसे प्रार्थना की वह गांव चलकर घर को पवित्र करें। वह संन्यासी घर तो नहीं आए, पर उन्होंने आशीर्वाद दिया कि—'तुम्हारे यहां एक ऐसा पुत्र पैदा होगा जो तुम्हारे परिवार को ही नहीं, तुम्हारी समस्त जाति और देश को भी पवित्र कर देगा।' उधर रामजी सकपाल तथा उनकी धर्मपत्नी भीमाबाई ने धार्मिक क्रियाओं को और व्यापक तथा गम्भीर बना लिया। तदनुसार 14 अप्रेल, 1891 को उनके यहाँ महू छावनी में एक पुत्र का जन्म हुआ। पिता का नाम रामजी सकपाल और माता का नाम भीमाबाई था। बालक का नाम भीमराव रामजी रखा गया। इस दम्पती के चौदह सन्तानें हुईं। भीम अपने माँ-बाप की चौदहवीं सन्तान था। इस प्रकार भीम को अपने माँ-बाप का चौदहवाँ रत्न कहा जाता था। वह सुन्दर बालक सभी के लिए प्रिय था।

भीम की मां, भीमाबाई का एक अछूत परिवार के मुरबाडकर वंश से सम्बन्ध था। ये लोग बॉम्बे राज्य के थाना जिले के 'मुरबाड' गांव में रहते थे। उनका परिवार धनी तथा धार्मिक था। अतः भीमाबाई सुख की गोद में और धार्मिक वातावरण में पली थीं। पूजा-पाठ में उनकी बड़ी रुचि थी। वह अपनी ननद पंगु मीरांबाई की सेवा का विशेष ख्याल रखती थीं। भीमाबाई तथा मीरांबाई भीम को प्यार से 'भिवा' कहकर पुकारती थी। भीमाबाई के पिता और उनके छह चाचा सभी सेना में सूबेदार मेजर थे और सभी कबीर पंथ के अनुयायी थे। इस प्रकार भीमाबाई का एक ऐसे परिवार से सम्बन्ध था जो सभी तरह से साधन-सम्पन्न था। वह शान्त एवं गम्भीर स्वभाव की समझदार स्त्री थी। परिवार में छोटे-बड़े सभी उनका सम्मान करते थे। सुन्दर व्यक्तित्व और मिलनसार, उनकी प्रवृत्ति थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महारों को भी सेना में भर्ती किया था। कम्पनी का एक अच्छा नियम यह था कि सरकारी सेना में जो लोग काम करते, चाहे वे कर्मचारी हों अथवा अफसर, उनके बच्चों को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक सैनिक टुकड़ी के लिए स्वतन्त्र स्कूल थे। इन स्कूलों के लिए योग्य शिक्षक तैयार करने हेतु पूना में एक नार्मल स्कूल था। रामजी सकपाल के पिता चूँकि सेना में थे, इसलिए उन्हें शिक्षा प्राप्ति के साधन सुलभ थे। रामजी सकपाल ने इसी नार्मल स्कूल से मास्टर का डिप्लोमा प्राप्त किया था। एक सैनिक स्कूल में वह चौदह वर्ष हैडमास्टर रहे और सूबेदार-मेजर की पदवी प्राप्त की। सेना में अनिवार्य शिक्षा के नियम से बहुत से महार परिवारों को पढ़ने-लिखने के अवसर प्राप्त हुए अन्यथा सेना के बाहर सभी स्कूलों के द्वार महार बच्चों के लिए उस समय बन्द थे क्योंकि घोर छुआछूत का सामाजिक वातावरण विद्यमान था।

रामजी सकपाल बहुत ही परिश्रमी एवं धार्मिक वृत्ति के आदमी थे। वे उदार, प्रभावशाली एवं सहृदय व्यक्ति थे। सुबह-शाम ईश्वर की आराधना किया करते थे। भक्ति-गीतों में उनकी बड़ी रुचि थी। आध्यात्मिक भजनों में, वह अपने सभी बच्चों को साथ ले लिया करते थे। जो बच्चा ऐसा नहीं करता था, वह अच्छा नहीं माना जाता था। सुबह यह कार्यक्रम नियमित रूप से चलता था। रामजी अपने सभी बच्चों के समक्ष रामायण एवं महाभारत का पाठ किया करते करते थे। वे मराठी सन्तों जैसे मोरोपन्त, मुक्तेश्वर और तुकाराम के भजनों को भी गाकर सुनाया करते थे। सभी बच्चे इन बातों से प्रोत्साहित होते थे। स्वयं शिक्षक होने के नाते, रामजी ने अपने बच्चों को भाषा का उच्चारण भली-भांति सिखाया। महू छावनी में, उनका समस्त परिवार सैनिक क्वार्टर में रहता था। नियमानुसार उन्हें निश्चित समय पर रोशनी बुझानी पड़ती थी; पर वह रात की अन्धेरी में धीमे-धीमे स्वर में भजन गाते रहते थे। निश्चय ही जब वह भक्तिभाव से सन्तों के भजन और कबीर के दोहे कहना प्रारम्भ करते, उस समय घर में बहुत गम्भीर और पवित्र वातावरण पैदा हो जाता था।

रामजी सकपाल अपने बच्चों को केवल आध्यात्मिक विकास तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। वे उनका सांसारिक उत्थान भी चाहते थे। मराठी भाषा पर उनका अधिकार था और अंग्रेजी भाषा भी जानते थे। गणित में वह प्रवीण थे। अतः उन्होंने सभी बच्चों में शिक्षा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न किया जिसका स्थाई प्रभाव भीम के जीवन पर पड़ा। रामजी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे मांस-मदिरा से बहुत दूर थे। क्रिकेट एवं फुटबॉल के खेलों में उनकी बड़ी दिलचस्पी थी। सदैव हँसमुख, उत्साही, धार्मिक चर्चाओं में वे भाग लिया करते थे। वे महात्मा फुले की बड़ी प्रशंसा किया करते थे क्योंकि महात्मा जी ने अछूतोद्धार का अच्छा काम किया था। रामजी सकपाल अपने समाज के कल्याण में भी रुचि रखते थे। एक बार सन् 1892 में, भारत सरकार ने सेना में महार लोगों की भर्ती पर प्रतिबंध लगा दिया, तब वे सदैव सहायता करने वाले रानाडे के पास भागे-भागे गए और एक पिटशीन लिखवाया कि सरकार इस प्रकार की अन्यायपूर्ण आज्ञा को रद्द करे। उन्होंने एक बार बॉम्बे के गवर्नर से भी मुलाकात की और यह प्रार्थना की कि सरकार विकास योजना के अन्तर्गत जिन भवनों का निर्माण करे उनके द्वार अछूतों के लिए भी खुले रहने चाहिए।

सूबेदार रामजी पच्चीस वर्ष नौकरी करने के पश्चात् सन् 1894 में सेना से निवृत्त हुए। उस समय भीम मुश्किल से दो साल का हुआ होगा। वे परिवार के सदस्यों को लेकर अम्बवाड़े गांव के पास डापोली आए। वहां भीम ने अपनी प्राइमरी शिक्षा प्रारम्भ की। वह अपने बड़े भाई के साथ पढ़ने जाया करता था। रामजी डापोली में अधिक दिनों तक नहीं ठहर पाए। वहां का वातावरण भीमाबाई को पसन्द नहीं आया। उधर उन्हें पचास रुपए मासिक पेन्शन मिलती थी जो पारिवारिक खर्च के लिए पर्याप्त नहीं थी। अतः सन् 1896 में वे डापोली से सतारा आए जहां उन्हें पी० डब्ल्यू० डी० के दफ्तर में स्टोरकीपर का काम मिल गया; लेकिन सतारा आते ही परिवार में एक बड़ी दुःखद घटना घटी। एक

और रामजी सूबेदार की सतारा से गोरेगांव बदली हो गई और वे अकेले वहां चले गए दूसरी ओर भीमाबाई बीमार पड़ गईं। उनकी हालत बहुत ही खराब हो गई। रामजी को वहां शीघ्र बुलाया गया जिन्होंने अच्छी दवा-दारू का प्रबन्ध किया; परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ और दो-चार दिन पश्चात्, भीमाबाई का देहान्त हो गया। उनकी कब्र सतारा में आज भी है। उनकी मृत्यु से सारा परिवार अनाथ सा हो गया। भीमाबाई के इन्तकाल के समय, भीम लगभग छह वर्ष का था। उनकी चौदह सन्तानों में से केवल पांच जीवित थीं—तीन पुत्र और दो पुत्रियां। बालाराम बड़े भाई थे। आनन्दराव उनसे छोटे, मंजुला और तुलसी दो बहनें थीं। भीम सबसे छोटा बालक था। बालाराम विवाहित थे और नौकरी के कारण पिता से दूर रहते थे। मंजुला और तुलसी के विवाह भी हो चुके थे; परन्तु परिवार में आकर एक-एक करके वे अपने भाइयों की देखभाल किया करती थीं। उनके अतिरिक्त, रामजी की बहिन मीरांबाई भी परिवार की देखभाल करती थी। सबसे छोटा होने के कारण, भीम परिवार में बहुत प्रिय था।

भीम का शैशव-काल डापोली में व्यतीत हुआ। वहां रामजी सूबेदार के मकान के पड़ोस में दस-पन्द्रह महार पेन्शनरों के भी मकान थे। उनके बच्चे भीम के साथ खेलते थे। भीम प्रारम्भ से ही बड़ा चञ्चल एवं बलिष्ठ था। वह उन बालकों पर रोब मारता था और उन्हें पीटता भी था। उनके माता-पिता शिकायत लेकर रामजी के पास आते। प्राय: प्रत्येक दिन भीम के बारे में कोई न कोई शिकायत मां-बाप के पास आ पहुँचती। रामजी सकपाल तङ्ग आ गए। कभी-कभी भीम इस चक्कर में पिट भी जाता था। बाहर तथा घर दोनों जगह रामजी सूबेदार भीम को धमकाते अवश्य थे, परंन्तु उसको मारते नहीं थे। संभवत: इसलिए कि उनको भीम के उज्ज्वल भविष्य का कुछ आभास-सा हो गया था। लेकिन भीमाबाई कभी-कभी भीम को अच्छी तरह पीटती थीं क्यों कि वह अधिकतर झगड़े-फसाद में ही फंसा रहता था।

रामजी सकपाल भीम को खूब पढ़ाना-लिखाना चाहते थे, पर भीम के लिए शिक्षा के द्वार बन्द थे। उनके घर के पास के सभी सवर्ण हिन्दुओं के बच्चे स्कूल जाया करते थे। उन्हें देखकर भीम कुढ़ा करता था। उसने कई बार पिता से हठ की कि वह भी किसी स्कूल में दाखिल होना चाहता है, पर यह काम कठिन था। वह उसे घर ही पढ़ाया करते थे। जब वह डापोली से सतारा आए तो उन्होंने भीम को किसी स्कूल में दाखिल करना चाहा। लेकिन अछूत होने के कारण, दाखिला आसान नहीं था। मजबूर होकर रामजी एक सैनिक अधिकारी के पास गए और यह प्रार्थना की कि उन्होंने जीवनभर सरकार की सेवा की है, उनके बच्चों को कहीं दाखिला नहीं मिले तो बड़ा अन्याय होगा। अन्त में; भीम को कैम्प स्कूल में प्रवेश मिल गया। स्कूल में, भीम के साथ आनन्दराव भी पढ़ने जाने लगे। दोनों भाई स्कूल साथ साथ जाते थे।

भीमाबाई की मृत्यु के पश्चात्, परिवार निश्चय ही अनाथ सा तो हो ही गया था। परिवार को अच्छी तरह सम्भालने के लिए, कोई स्त्री नहीं रही। रामजी

की बहिन मीराबाई पंगु थी। वह सारे काम-काज की देखभाल नहीं कर पाती थीं। आखिर रामजी सूबेदार ने जिजाबाई नाम की एक विधवा स्त्री से पुनर्विवाह कर लिया। जिजाबाई ने भीमाबाई के गहने पहनने प्रारम्भ किए। भीम इस बात को सहन नहीं कर पाता था। वह अपनी सौतेली मां को मां के रूप में स्वीकार नहीं कर पाया। उसका मन उसे सदैव कचोटता रहा। कभी-कभी वह सौतेली माँ से झगड़ पड़ता था और फिर भीमाबाई की याद करके रोने लगता था। वैसे भीम चतुर था, पर घर की स्थिति के कारण, उसकी पढ़ने-लिखने में अधिक रुचि नहीं थी। स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता था, वह उसे ही पढ़ता था। बाकी सारा समय खेल-कूद में बिताया करता था। स्कूल से आते ही वह अपना बस्ता घर में फेंक देता और पड़ोस के बच्चों में खेलने चला जाता। झगड़ा तथा मारपीट का सिलसिला तो निरन्तर चलता ही रहता था। इस प्रकार भीम अपनी पढ़ाई-लिखाई का कार्यक्रम चलाता रहा। लगता था भीम शिक्षा के क्षत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं कर पायेगा, हालांकि यह धारणा आगे चलकर गलत सिद्ध हो गई।

सतारा में भीम को छुआछूत से सम्बन्धित कुछ ऐसे कटु अनुभव हुए जिन्हें वह जीवनभर न भुला पाया। बालक भीम स्कूल में सवर्ण हिंदू लड़कों के साथ बेंच पर नहीं बैठाया जाता था। वह उनके साथ भूमि पर एक ही कतार में भी नहीं बैठ सकता था। भीम को अपने भाई आनन्दराव के साथ जमीन पर ही बैठकर पढ़ना पड़ता था। वे अपने साथ रोजाना एक टाट का टुकड़ा ले जाया करते थे ताकि उसी पर बैठें। सभी अछूत बालक अपने टाट के टुकड़े रखते थे ताकि अन्य सवर्ण बच्चे उन्हें पहचान लें कि वे अछूत हैं और साथ ही, वे उनसे अलग अपने टाटों पर बैठ सकें। इस टाटों को स्कूल में बिल्कुल नहीं रखने दिया जाता क्योंकि उनके स्पर्श से अन्य चीजों के अपवित्र हो जाने का भय था। भीम तथा अन्य अछूत बालकों को कमरे के बाहर ही बैठना पड़ता था। वह नल की टोंटी से स्वयं पानी नहीं पी सकता था। नल की टोंटी को चपरासी या किसी अन्य बालक द्वारा खोले जाने पर भीम तथा अन्य अछूत बालक पानी पी सकते थे अन्यथा उन्हें कभी-कभी प्यासा ही घर आना पड़ता था। घर आकर ही वे अपनी प्यास बुझाया करते थे। इन्टरवल में जब सब लड़के खाना खाते तो भीम भी अपना रूखा-सूखा खाना खाता, पर पानी उसे तभी मिल पाता था जब अन्य सभी सवर्ण बच्चे नल से पानी पी लिया करते थे। कभी-कभी ऐसा भी हुआ करता था कि सभी बच्चे पानी पीने के पश्चात् नल की टोंटी बन्द कर जाते थे। उस दिन भीम नल से पानी नहीं पी पाता था। एक ओर पानी की परेशानी तो दूसरी ओर जीवन की आवश्यक वस्तुएं भी सुलभ नहीं थीं। स्कूल और घर का फासला अधिक दूर था। भीम उस समय जांघिया एवं कमीज पहने नंगे पैर अपनी पुस्तक, स्लेट और टाट बगल में दबाए अपने भाई आनन्दराव के साथ स्कूल जाया करता था। उसी प्रकार घर लौटता था। स्कूल में, जब तक मास्टर कमरे में अन्दर नहीं चला जाता तब तक भीम तथा अन्य अछूत लड़कों को दरवाजे से दूर खड़ा रहना पड़ता था। बोर्ड पर लिखे अक्षरों को सभी अन्दर बैठे विद्यार्थी अच्छी तरह पढ़ते और भीम बाहर खड़े-खड़े तरसता रहता था। भीम को खेलने का शौक था। लेकिन वह अपने घर महार

बालकों के साथ ही खेल पाता था। स्कूल में सवर्ण बच्चों के साथ साथ खेलना सम्भव नहीं था क्योंकि वहाँ घोर छुआछूत का वातावरण बना रहता था।

स्कूल के अतिरिक्त, समाज में भी छुआछूत का अभिशाप विद्यमान था। वस्तुत: समाज ने ही यह विष शिक्षण एवं अन्य सस्थाओं में घोल रखा था। एक और रोचक किन्तु हृदय विदारक घटना का जिक्र यहां आवश्यक है। नौकरी के कारण रामजी सूबेदार सतारा से कुछ दूर गोरेगांव चले गए थे। एक दिन भीम, भाई आनन्दराव और बहिन का एक छोटा बच्चा, गोरेगांव उनसे मिलने जा रहे थे। भीम ने वैसे पत्र लिख दिया था कि वे अमुक गाड़ी से पहुँच रहे हैं; पर नौकर की लापरवाही से वह पत्र रामजी को समय से नहीं मिल पाया। वे पाडाली रेलवे स्टेशन से रेलगाड़ी में सवार हुए और मसूर स्टेशन पर उतर गए। सभी बच्चे खुश थे कि स्टेशन पर पिताजी अथवा नौकर आकर उन्हें ले जाएंगे; लेकिन उन्हें वहां कोई न मिल पाया। वे सोच में पड़ गए। गोरेगांव तो जाना ही था; परन्तु महार बच्चों को कोई भी आदमी अपनी बैलगाड़ी में बिठाने के लिए तैयार नहीं था। कई घण्टे गुजर गये। सभी गाड़ी वालों को पता नहीं लगा था कि ये बच्चे अछूत जाति के हैं। स्टेशन मास्टर की सहायता से उन्हें एक बैलगाड़ी मिली और वे सवार होकर चल पड़े। गाड़ी मुश्किल से ही दो-चार गज चली होगी कि गाड़ीवान को पता लग गया कि वे महार बच्चे हैं। गाड़ीवान ईश्वर के प्रकोप से भयभीत हो गया। उसको लगा, उसकी गाड़ी अपवित्र हो गई, क्योंकि अछूतों ने उसकी गाड़ी को छू लिया। आक्रोश में आकर उसने सभी बालकों को गाड़ी से बाहर धकेल दिया जैसे कि गाड़ी से बाहर कूड़ा-करकट फेंक दिया करते हैं; लेकिन लड़कों ने गाड़ीवान को शान्त किया और उसे डबल किराया देकर राजी कर लिया। शर्त यह थी कि वह गाड़ी नहीं चलाएगा। भीम के भाई आनन्दराव ने गाड़ी को चलाया और गाड़ीवान पैदल ही चलता रहा। शाम से लेकर बालक आधी रात तक चलकर घर पहुँचे। मार्ग में उन्हें कहीं भी पीने का पानी नहीं मिल पाया। उनके मुंह सूख गये। जहां कहीं भी उन्होंने लोगों से पानी मांगा, उन्हें गन्दे पानी की ओर इशारा किया गया या फिर आगे बढ़ जाने की निगाहें मिलीं। भीम के जीवन में यह एक ऐसा गम्भीर झटका था जिसने उसके मन को झकझोर दिया। इस घटना से भीम के हृदय में प्रतिशोध एवं विद्रोह के बीज पड़े।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् एक और घटना घटी। भीम स्कूल जाते समय किसी सार्वजनिक कुए से पानी खींचकर पी लिया करते थे। सवर्ण हिन्दुओं को इसका पता लग गया। फिर क्या था? एक दिन भीम को वहीं कुए पर पकड़ लिया। उसकी अच्छी तरह पिटाई की और ताड़ना दी कि वह कभी भी उस कुए से पानी पीने की हिम्मत न करे। भीम इस घटना से बड़ा दु:खी हुआ, हालांकि वे स्थितियां ही उसके जीवन की वास्तविक शिक्षक बनीं। इन घटनाओं के प्रभाव में, सम्भवत: वह सामाजिक, क्रान्तिकारी और उद्धारक नहीं बन पाता।

भीम सतारा में छुआछूत के अभिशाप से भलीभांति परिचित हो गया। वहां एक और घटना ने उसे विचलित कर दिया। एक दिन भीम अपने बाल

कटवाने एक नाई के पास जाकर बोला—'बाल कटाने हैं।' नाई उसे जानता था कि वह महार बालक है। वह नाई नफरत से बोला—'अरे! तू अछूत है, तेरे बाल कैसे काट सकता हूं? जा, भाग जा। फिर कभी मत आना।' भीम बचपन से ही स्वाभिमानी था। उसके स्वाभिमान को बड़ी ठेस पहुँची। उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं। उन्हें पोंछता हुआ वह घर पहुँचा। बड़ी बहिन तुलसी ने देखा तो पूछा—'अरे! भिवा क्यों रोता है?' उसने अपने अपमान की कहानी सुनाई। तुलसी ने प्यार से भीम को शान्त किया और कहा—'भाई! इसमें रोने की क्या बात है? मैं तेरे बाल बना देती हूं।' तब तुलसी ने उसके बालों को बनाया। विचित्र बात थी कि वह उस्तरा जो पशुओं के बाल काटने से अशुद्ध नहीं होता था, मानव प्राणियों के बाल काटने से अपवित्र हो जाता था। क्या वह लोहे का उस्तरा सहधर्मी देशवासियों से भी मूल्यवान था?

इस प्रकार के कटु अनुभवों के पश्चात् भीम में साहस और जिद्दीपन आ गया था। वह अपनी बात पर डटा रहता था और उसे पूरी करता। एक दिन जब स्कूल जाने का समय आया तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। भीम ने मन में ठान लिया कि वह स्कूल जाएगा। उसने अपने बड़े भाई आनन्दराव से कहा कि उसका बस्ता और टोपी अपनी छतरी में छिपाकर ले चले। आनन्दराव बड़ा चकित हुआ कि वह ऐसी तेज बरसात में स्कूल जाएगा; लेकिन भीम बड़े दृढ़ स्वर में बोला—'मैं बारिश में भीगता हुआ जाऊँगा।' आनन्दराव ने उसे बड़ा समझाया कि स्कूल जाने में कठिनाई होगी; लेकिन भीम अपनी बात पर अड़ा ही रहा। आनन्दराव भीम का बस्ता और टोपी लेकर स्कूल चला गया और उधर भीम पीछे से बारिश में नहाता हुआ स्कूल पहुँच गया। वह पानी से खूब भीग गया। उसी स्कूल में पेंडसे नाम का एक ब्राह्मण अध्यापक था। उसने जब भीम को देखा तो उसका हृदय हिल गया कि इस बच्चे के पास छतरी, कपड़ा आदि कुछ भी नहीं है। सहृदय अध्यापक ने अपने पुत्र से कहा—'शीघ्र ही भीम को अपने घर ले जाओ। उसे स्नान करने को गरम पानी और पहनने को एक लंगोटी दे देना।' पेंडसे का घर पास में ही था। उसका पुत्र भीम को घर ले गया। उसे गरम पानी से स्नान करवाया और पहिनने को एक लंगोटी भी दी। भीम बडा खुश था कि उस दिन उसका पढ़ाई से पिण्ड छूटा। वह लंगोटी पहिने नंग-धड़ंग अवस्था में बाहर मस्ती से घूमता रहा। उसके अपने कपड़े छतरी में भी भीग गये थे जिन्हें सूखने डाल रखा था। अध्यापक पेंडसे ने भीम को स्कूल में बुलवाया। भीम नंग-धड़ंग अवस्था में स्कूल में बैठने से बहुत ही शरमाया। यहां तक कि वह रो पड़ा। इन्हीं विचित्र घटनाओं और धनाभाव की स्थितियों पर भीम के भावी व्यक्तित्व की आधारशिला निर्मित हुई।

भीम के पितामह मालोजी 'आम्बावडे' नाम के गाँव के निवासी थे। इसी कारण सभी लोग उनके परिवार को 'आंबावडेकर' उपनाम से पुकारा करते थे। अतएव भीम का उपनाम आंबावडेकर था, अम्बेडकर नहीं था। भीम का उपनाम आंबावडेकर से अम्बेडकर कैसे पड़ा? यह एक रोचक कहानी है जिसे स्वयं भीम ने बाद में अपने ही शब्दों में वर्णित किया—'अम्बेडकर उपनाम के एक ब्राह्मण

अध्यापक हमें पढ़ाते थे। वह हमें अधिक कुछ नहीं पढ़ाते थे। वह अजीब ढंग से अपना समय बिताया करते थे। साथ ही तम्बाकू की दूकान पर मुनीम का काम भी किया करते थे। वे मुस्लिम विद्यार्थी की देखरेख में सारी क्लास को छोड़ दिया करते थे; लेकिन बाद में वह सारा काम-काज करवा दिया करते थे। उस अध्यापक का मुझ से बहुत प्रेम था। बीच की छुट्टी में खाना खाने के लिए मुझे स्कूल से काफी दूर घर जाना पड़ता था। अम्बेडकर अध्यापक को यह पसन्द नहीं था; लेकिन उतने ही समय में बाहर घूमने के लिए मुझे आज़ादी मिलती थी, इसलिए खाना खाने के लिए घर जाने में मुझे बहुत खुशी महसूस होती थी; परन्तु हमारे अध्यापक ने एक तरीका ढूंढ़ निकाला। वे अपने साथ साग-रोटी बांधकर लाया करते थे और हरेक दिन बीच के अवकाश में नियमपूर्वक मुझे बुला कर अपने भोजन में से साग-रोटी मुझे खाने के लिए देते थे; किन्तु छुआछूत के कारण वे अपनी साग-रोटी दूर से ही मेरे हाथों में डाल दिया करते थे। मुझे यह कहने में अभिमान महसूस होता है कि उस प्रेम की साग-रोटी का मिठास ही कुछ और था। उस बात का स्मरण होते ही मेरा हृदय भर आता है। सच्चे रूप में उनका मेरे प्रति बड़ा प्रेम था। एक दिन उन्होंने ही मुझ से कहा कि यह तेरा आंबावडेकर उपनाम बोलने में ठीक नहीं लगता। उससे मेरा 'अम्बेडकर' उपनाम अच्छा है। अब आगे तू भी अम्बेडकर उपनाम लगाया कर और उस अध्यापक ने रजिस्टर में मेरा उपनाम वैसा ही दर्ज करवा दिया।' भीम के उपनाम परिवर्तन की यह कहानी थी। बाद में जब डॉ० अम्बेडकर गोलमेज सभा में भाग लेने लन्दन गए तब उस अध्यापक ने एक पत्र द्वारा उन्हें बधाइयां दीं जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

अभी तक भीम में पढ़ाई-लिखाई के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। वह सभी प्रकार के कार्य, लड़ाई-झगड़े, खेल-कूद आदि के लिए स्वतन्त्र था। उसे बागवानी का बड़ा शौक था। वह अपनी एक-एक पाई पेड़-पौधों की खरीद में उठाया करता था। इससे ऊबकर भीम ने पालतू पशुओं की ओर ध्यान दिया और बकरे-बकरी के पालने का काम भी किया। वह मुश्किल से ही घर पर मिलता था। स्वावलम्बन की भावना से प्रेरित होकर भीम ने सतारा स्टेशन पर कुली का काम भी किया। यह उसकी आण्टी को बड़ा बुरा लगा। परन्तु उसने उसे कोई दण्ड नहीं दिया क्यों कि वह उसे बहुत प्यार करती थी। भीम में अब कुछ समझ आ गई थी। वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता था ताकि परिवार की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हो। भीम ने अपनी बहिनों से सुन रखा था कि सतारा से जाने वाले लड़कों को बॉम्बे के मिलों में काम मिल जाता है। अतः उसने निश्चय किया कि वह बॉम्बे जाकर किसी मिल में काम करेगा; लेकिन बॉम्बे जाने के लिए उसके पास किराया नहीं था। उसने एक योजना तैयार की कि वह अपनी आण्टी के बटुए को चुरा कर किराये के लिए पैसे प्राप्त करे। भीम जमीन पर अपनी आण्टी के साथ ही सोया करता था। उन ही के शब्दों में—"लगातार तीन रातों तक मैंने उस बटुए को चुराने का प्रयास किया जो आण्टी की कमर से बंधा हुआ था; लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। कहीं

चौथी रात को जाकर मैं उसे चुरा पाया पर बड़ी निराशा हुई। क्यों कि उसमें केवल आधा आना ही था जिससे मैं बॉम्बे नहीं जा सकता था। चारों रातों का यह अनुभव वास्तव में नाड़ियों को हिला देने वाला था। पैसा इकट्ठा करने के ऐसे शर्मनाक ढंग के विचार को मैंने त्याग दिया। मैंने एक नई योजना बनाई जिसने मेरे सम्पूर्ण जीवन को ही बदल दिया। मैंने निश्चय किया कि मुझे सब प्रकार की कामचोर आदतों का परित्याग कर देना चाहिए अपने अध्ययन में दत्तचित्त होना चाहिए। अपनी परीक्षाओं में अच्छी सफलता प्राप्त करके मैं अपनी जीविका स्वयं कमाऊँ और पिताजी से स्वतन्त्र होकर काम करूँ।" उसी दिन से सब कामचोर एवं अनियमित बातों का त्याग कर दिया और अपनी पढ़ाई-लिखाई मे इतना ध्यान देने लगा कि उसके अध्यापकों ने, जो पहिले उससे असन्तुष्ट थे, उसके पिता को सलाह दी कि वह भीम को जहाँ तक सम्भव हो पढ़ाये और पिता ने धनाभाव की स्थिति में भी वैसा ही किया।

शिक्षा और विवाह :

राम जी सूबेदार की नौकरी जो वह गोरेगांव स्टोरकीपर के रूप में कर रहे थे, समाप्त हो गई। वे सतारा चले आए। नौकरी की तलाश और बच्चों की शिक्षा के ख्याल से वह सपरिवार सतारा से बॉम्बे जा पहुँचे। बॉम्बे में, वह लोअर परल की डबल चाल में रहने लगे जहाँ अधिकांशत: श्रमिक लोग रहते थे। राम जी की दोनों पुत्रियां विवाहित थीं। वे भी बॉम्बे में रहा करतीं थीं। सर्व प्रथम राम जी ने अपने पुत्रों को मराठा हाई स्कूल में दाखिला दिलवा दिया। भीम अपने अध्ययन में अच्छी मेहनत करने लगा। अपने पिता की देखरेख में भीम ने हॉवर्ड की इंगलिश रीडर तथा तरखाडकर द्वारा प्रसिद्ध तीन पुस्तकों के अनुवाद का अध्ययन समाप्त कर लिया।

तिलक और सावरकर के समान, भीम ने अपने यौवन काल ही में सामान्य अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित करली थी। अत: वह पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य बहुत सी पुस्तकें पढ़ा करता था। इस प्रवृत्ति से भीम में पुस्तकें संग्रह करने का शौक पैदा हो गया। वह चाहता था कि सभी पुस्तकें निजी रूप में हों। भीम का यह शौक राम जी सूबेदार को मंहगा पड़ रहा था। आर्थिक स्थिति पहिले से ही बहुत शोचनीय थी। पचास रुपया मात्र पेन्शन, बॉम्बे जैसे शहर में घर और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का काम चलाना बड़ा मुश्किल था। उधर भीम नई-नई पुस्तकों के लिए ज़िद करता था। लेकिन राम जी साधनहीन होते हुए, उसकी इच्छा पूरी करते थे। राम जी अपनी दो विवाहित पुत्रियों से रुपया उधार लाते अथवा उनके बचे खुचे गहनों को बेचकर ऐसा करते जो उन्होंने उन्हें विवाह के समय दिए थे। उनकी पुत्रियों ने उन्हें जेवर देने से कभी इन्कार नहीं किया। राम जी चाहते थे कि भीम एक बड़ा आदमी बने और उनकी वह इच्छा भविष्य में पूरी हुई। बचपन से ही भीम के पुस्तक-प्रेम ने उसके विशाल ग्रन्थ-संग्रहालय का निर्माण संभव बनाया।

कुछ माह पश्चात् भीम को बॉम्बे के प्रसिद्ध एल्फिन्स्टन हाई स्कूल में भेजा गया। भीम ने अब कड़ी मेहनत करना प्रारम्भ किया। वह परिवार के अन्य सदस्यों के साथ लोअर परल के एक ही कमरे में रहता था। अलग से अध्ययन करने का कोई अवसर नहीं मिलता था। टचूटर रखने का स्वप्न तो कभी संभव नहीं था। वह छोटा सा कमरा घर के बर्तनों और अन्य सामानों से भरा पड़ा रहता था। उसी कमरे में खाना पकाया जाता। कमरे में धुआँ का वातावरण बना रहता और परिवार के सदस्यों की भीड़ सी लगी रहती थी। एक कोने में ईंधन का ढेर दूसरे में चूल्हा, और भीम का अन्यों में बैठना उठना, समय काटना ही था। कमरा एक जो रसोई-घर, स्नानघर, विश्राम-गृह, अध्ययन-कक्ष सभी का काम करता था। रामजी सूबेदार ने भीम के अध्ययन की समस्या अपने ही ढंग से सुलझाई। भीम को शीघ्र सोने को कहा जाता था ताकि वह सुबह उठकर अच्छी पढ़ाई करले। भीम जमीन पर एक रजाई के ऊपर सोया करता था। उसके सिर के पास अनाज पीसने की चक्की अड़ी रहती और पैरों के सामने एक बकरी बन्धी रहती। रामजी सूबेदार भीम को रात के दो बजे जगा देते और फिर स्वयं सो जाते थे। वह स्वयं दो बजे तक जागते रहते थे। भीम सुबह तक एक मिट्टी के लेम्प की टिमटिमाती रोशनी में पढ़ता रहता था। लेम्प के ऊपर कांच की चिमनी भी नहीं थी। फिर सुबह थोड़ी सी नींद ले, नहा-धोकर वह स्कूल चला जाता था। इस प्रकार अर्थाभाव की स्थिति ने भीम को संयत तथा नियमित बना रखा था जिसका उसके जीवन में गहरा प्रभाव पड़ा।

एल्फिन्स्टन हाई स्कूल एक सरकारी संस्था थी और यह सोचना स्वाभाविक था कि वहाँ भीम किसी अपमान के बिना अध्ययन करता रहेगा। लेकिन स्कूल का वातावरण जातिवाद और छुआछूत की दुर्भावनाओं से उसी तरह विषाक्त था जिस तरह अन्य प्राईवेट स्कूल थे। स्कूल में वही पक्षपात, घृणा और छुआछूत जो समाज में विद्यमान थीं। अपमान करने वाले विशाल हिंदू समाज का ही वह स्कूल एक अभिव्यक्त रूप था। एक दिन एक अध्यापक ने भीम से ब्लेक बोर्ड पर गणित का प्रश्न हल करने को कहा। भीम ज्यों ही बोर्ड की ओर आया त्यों ही कुछ सवर्ण हिन्दू लड़के एकदम एक जुट आवाज में चिल्ला उठे, 'सर, भीम एक अछूत है, उसे रोकिए!' बात यह थी कि बोर्ड के पास उन विद्यार्थियों के जलपान के डिब्बे लटके हुए थे जो भीम के सामीप्य से अशुद्ध हो जाते। भीम के बोर्ड के पास जाने के पूर्व ही, सभी लड़कों ने अपने-अपने डिब्बे फौरन उठा लिए। इन डिब्बों की खटर खटर आवाज भीम के हृदय को चीरती चली गई, हालाँकि उसने उस प्रश्न को हल करने में जो तत्परता दिखाई उससे सभी विद्यार्थी चकित रह गए। भीम ने अपमान का साक्ष्य तो किया पर वह भयभीत नहीं हुआ। अपनी बुद्धि और साहस से उसने सबको परास्त किया।

उसी स्कूल में एक ब्राह्मण अध्यापक था जो भीम को बात-बात में उसकी जाति का नाम लेकर अपमानित करता था। एक दिन वह अध्यापक भीम से कहने लगा; "अरे तू महार का छोकरा है। पढ़-लिखकर क्या करेगा ? 'इस प्रकार अपमानित होने से भीम चिढ़ गया और वह आक्रोश में बोला; 'सर पढ़-लिखकर मैं क्या

क्या करूँगा ? ऐसा प्रश्न पूछना आपका काम नहीं है। अगर फिर कभी आपने मेरी जाति का नाम लेकर मुझे छेड़ने का प्रयास किया तो मैं कह देता हूँ इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।' भीम बचपन से ही स्वाभिमानी था। वह एक निर्भय विद्यार्थी था। फिर क्यों किसी से डरता ? लेकिन उसे अपमानित करने के और भी ढंग सवर्ण हिन्दुओं के मन एवं व्यवहार में विद्यमान थे। भीम और आनन्दराव दोनों संस्कृत पढ़ना चाहते थे; परन्तु संस्कृत के ब्राह्मण अध्यापक ने साफ कह दिया कि वह अछूत लड़कों को संस्कृत नहीं सिखायेगा। फिर मजबूरन दोनों को फारसी भाषा लेनी पड़ी जो उनकी इच्छा के विरुद्ध था। अम्बेड़कर ने कहा; 'मुझे संस्कृत भाषा पर अत्यंत अभिमान है और मैं चाहता था कि संस्कृत का अच्छा विद्वान बनूँ, पर ब्राह्मण अध्यापक के संकुचित दृष्टिकोण से मुझे संस्कृत भाषा से वंचित रहना पड़ा।' आगे चलकर भीम ने अपने प्रयासों से संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उस भाषा के पंडित बने।

इन अपमानों के बावजूद भी, भीम अपने अध्ययन में रत रहता था। उधर रामजी सूबेदार की आर्थिक स्थिति और चिंतनीय होती गई। उन्होंने आनन्दराव को पढ़ाई से बिठा लिया और किसी काम में लगा दिया। अब दोनों ने भीम की पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान केन्द्रित किया। फलतः सन् 1907 में भीम ने मेट्रिक की परीक्षा पास करली। उसे 750 अङ्कों में से 282 अङ्क प्राप्त हुए। फारसी भाषा में उसने सबसे अधिक अङ्क प्राप्त किए। निश्चय ही एक अछूत व्यक्ति के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी। समस्त महार समाज ने इस बात पर हर्ष मनाया और उन्होंने भीम का अभिनन्दन करने के लिए एक सभा का आयोजन किया। एक प्रसिद्ध समाज-सुधारक श्री एस० के० बोले को सभा का अध्यक्ष बनाया गया। उस सभा में एक और प्रसिद्ध समाज-सुधारक तथा मराठी लेखक श्री कृष्णाजी केलुस्कर भी उपस्थित थे। वे उस समय सिटी हाई स्कूल में सहायक अध्यापक थे तथा बाद में हेडमास्टर भी बने। भीम और केलुस्कर दोनों स्कूलों से छुट्टी होते ही नियमपूर्वक पुस्तक पढ़ने के लिए चर्नी रोड़ गार्डन में निश्चित् स्थानों पर जाकर बैठते थे। भीम को नियमपूर्वक पढ़ते देख, श्री केलुस्कर बड़े प्रसन्न हुए। एक दिन पास जाकर उसका परिचय पूछा। भीम ने सब कुछ साफ-साफ कह दिया। भीम एक अछूत लड़का है, यह सुनकर वे आश्चर्यचकित हुए। तदुपरान्त श्री केलुस्कर ने भीम को अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए, देना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपनी नयी पुस्तक, 'लाइफ ऑफ गौतम बुद्ध,' की एक कापी भीम को भेंट की। श्री केलुस्कर ने भी सभा में भीमराव की प्रशंसा की। सभा की समाप्ति पर, श्री केलुस्कर ने रामजी सूबेदार से पूछा कि वह भीम को आगे पढ़ायेंगे अथवा नहीं ? रामजी ने कहा कि वैसे उनकी आर्थिक स्थिति बड़ी खराब है, पर वे भीम को उच्च शिक्षा अवश्य दिलायेंगे। उधर श्री केलुस्कर ने भी आश्वासन दिया कि वह भीम की आर्थिक सहायता करेंगे। कैसे करेंगे ? यह एक रहस्य था।

भीम ने अपनी पढ़ाई के लिए कड़ा परिश्रम किया। वह अपना खाना स्कूल में ही खाया करता था। खाने में कुछ रोटी तथा साग हुआ करता था जिसे एक श्रमिक भाई किला क्षेत्र में काम करने के लिए जाते समय छोड़ जाया करता

था। भीम का परिवार ठेठ श्रमिक बस्ती में ही रहता था। इसलिए, वह मज़दूरों की शोचनीय आर्थिक हालतों से भलीभांति परिचित हुआ। भीम अपने सगे-सम्बन्धियों के टिफिन्स एक मिल में ले जाया करता था जो वहाँ मज़दूरी किया करते थे। इस प्रकार वह 'टिफिन-कैरियर बॉय' अपनी और अपने समाज की बिगड़ती स्थिति को भलीभांति समझने लगा था।

अब ऐसी स्थिति आ चुकी थी जब रामजी भीम की पढ़ाई चलाने में असमर्थ महसूस कर रहे थे। 50 रुपए की मासिक पेन्शन बहुत कम थी। उन्हें स्वयं नौकरी नहीं मिल पाई। आखिर आनन्दराव की पढ़ाई बन्द करनी पड़ी और उसको जी० आई० पी० के वर्कशाप में नौकरी से लगवा दिया। इससे आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ। थोड़े दिनों में आनन्दराव का विवाह कर दिया गया। अब उन्हें भीम के विवाह की चिन्ता हुई। वे भीम के लिए योग्य लड़की ढूंढ़ने लगे। सूबेदार जी ने लड़की पसन्द की और सब बातचीत पक्की हो गई, पर उसी बीच राम जी ने एक और लड़की को देखा जो पहली लड़की से कहीं अधिक सुन्दर थी। फलत: पहली लड़की के पिता को जवाब दे दिया; परन्तु लड़की के पिता ने जाति-पंचायत में सवाल उठाया। रामजी सूबेदार ने अपना अपराध स्वीकार किया। पंचायत ने पांच रुपया जुर्माना किया जो सूबेदार जी को देना पड़ा। फिर उन्होंने डापोली के स्वर्गीय भिकु वलांगकर की मातृ-पितृ-हीन कन्या रामी बाई को पसन्द किया। उस समय रामीबाई नौ साल की थी, भीमराव सोलह साल का। रामीबाई सुन्दर और शान्त स्वभाव की लड़की थी। रामीबाई की दो बहिनें और थीं। एक छोटा शंकर नाम का भाई था। ये सभी बच्चे बॉम्बे में अपने मामा तथा चाचा के यहाँ रहते थे।

आखिर एक दिन भीमराव तथा रामीबाई का विवाह हो गया। रामीबाई का नाम रामाबाई रख दिया गया। शादी का स्थान बड़ा विचित्र था। जब दिन का मार्किट समाप्त हुआ तब रात को बॉम्बे के बायकुला बाजार के खुले शैड में विवाह की रीति-रिवाजें प्रारम्भ हुई। दुल्हा-दुलहिन और उनके सगे-सम्बन्धी सभी उपस्थित थे। उनके नीचे गन्दे पानी की नालियां बह रहीं थीं। मार्किट के पत्थरों के प्लेटफार्मों से बेंचों का काम लिया गया। इस प्रकार बाजार एक विवाह हॉल के रूप में काम आया। विवाह की रस्में सुबह के उस समय तक चलती रहीं जब तक कि मछिहारी स्त्रियाँ वहाँ अपनी-अपनी मछलियां बेचने के लिए न आ पहुँची। दुल्हन के स्वागत के लिए केवल एक ही कमरा था जिसमें परिवार के सभी सदस्य भरे पड़े थे। इस विचित्र पर सौहार्दपूर्ण वातावरण में, भीम और रामी का विवाह-बन्धन सम्पन्न हुआ।

अपने पिता की प्रेरणा एवं उत्साह से, भीमराव ने एल्फिन्स्टन कॉलेज में प्रवेश ले लिया। किसी अछूत विद्यार्थी के लिए, महाविद्यालय में पढ़ना एक नयी दुनिया का अनुभव था। उच्च शिक्षा प्राप्ति का यह अद्वितीय अवसर था। उसने अपनी पढ़ाई-लिखाई को अच्छी तरह संभाला, पर अस्वस्थ होने के कारण, एक साल खोना पड़ा। इधर भीमराव ने इण्टर की परीक्षा पास

की, उधर राम जी सूबेदार आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल पंगु हो गए, हालांकि अपने पुत्र की सफलता पर वह अत्यधिक प्रसन्न थे। ऐसी स्थिति में श्री केलुस्कर ने सहायता की। वह भीमराव को लेकर बड़ौदा के शिक्षा-प्रेमी महाराजा समाजीराव गायकवाड की सेवा में उपस्थित हुए। महाराजा उस समय बॉम्बे आए हुए थे। उन्होंने एक सभा में यह घोषणा की थी कि वह किसी होनहार परिश्रमी अछूत विद्यार्थी की आर्थिक सहायता करने को तैयार हैं। श्री केलुस्कर ने महाराजा को उस घोषणा की याद दिलाई। उपस्थित भीमराव का वहां परिचय दिया गया। महाराजा ने भीमराव से कुछ सवाल किए जिनका उत्तर उसने बड़े सुन्दर ढंग से दिया। महाराजा बड़े प्रसन्न हुए और भीमराव की बुद्धि एवं व्यक्तित्व को परख कर 25 रुपए मासिक छात्रवृति देना स्वीकार किया। इस प्रकार श्री केलुस्कर भीमराव के वास्तविक कलयाण-मित्र सिद्ध हुए।

इसी बीच रामजी सूबेदार ने डबल चाल का कमरा छोड़ दिया। बॉम्बे के परल क्षेत्र में इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट चाल नम्बर 1 की मंजिल पर उन्होंने दो कमरे किराये पर लिए। कमरा नम्बर 50 और 51 एक दूसरे के आमने-सामने थे। एक कमरा अध्ययन कक्ष तथा सोने के लिए बनाया गया और दूसरा पारिवारिक सामान रखने के लिए। भीमराव अध्ययन कक्ष में अच्छी तरह पढ़ने लगे। रामजी चाहते थे कि भीम किसी तरह बी० ए० पास कर ले। वह भीम को नौ बजे ही सुला देते थे और वह स्वयं उसके कमरे के सामने बैठे रहते। दो बजे भीम को जगा देते ताकि वह पढ़ने का अभ्यास करता रहे। फिर वे सो जाते। भीम को दो बजे से पढ़ना मुश्किल सा लगता था; किन्तु सूबेदार जी के सामने उनकी एक भी नहीं चलती थी। वह लेटे-लेटे ही टिमटिमाते दीए की धुंधली रोशनी में कुछ पढ़ते रहने का बहाना करता। पांच बजे घर के सभी सदस्यों को उठना पड़ता क्योंकि यह रामजी द्वारा निर्धारित नियम था। निस्सन्देह रामजी सैनिक अनुशासन से प्रभावित थे। वे घर में भी वैसा ही कडा अनुशासन रखना चाहते थे। कड़ी मेहनत के पश्चात्, भीमराव ने सन् 1912 में बी० ए० की परीक्षा पास कर ली। रामजी सूबेदार बड़े ही आनन्दित हुए। सारे आस-पड़ोस में खुशी का वातावरण छा गया। रामजी सूबेदार ने पांच रुपए की मिठाई मंगवाकर बांटी। भीमराव के कड़े परिश्रम का ही यह परिणाम था कि उस ने बी० ए० की परीक्षा पास की। किसी अछूत परिवार के लिए यह एक अद्वितीय उपलब्धि थी जो दलित समाज के सम्मान की द्योतक बनी।

भीम को एलिफन्स्टन कॉलेज में भी अस्पृश्यता का शिकार होना पड़ा। कॉलेज का होटलवाला, जो एक ब्राह्मण था, जो उसे चाय या पानी कतई नहीं देता था। स्कूल में पीने का पानी उसे नसीब नही होता था। एलिफन्स्टन कॉलेज में भी ऐसा ही वातावरण था। सवर्ण हिन्दू प्रोफेसर एवं विद्यार्थी भीमराव से कतराते थे। उसके प्रति कोई सहानुभूति व प्रेम नहीं था। फिर भी अंग्रेजी के प्रोफेसर म्युल्लर और पर्शियन के प्रोफेसर के० बी० इराणी का भीवराव पर सहज स्नेह था। प्रोफेसर म्युल्लर भीमराव को पहनने के लिए कपड़े देते थे और पढ़ने

के लिए पुस्तकें। प्रोफेसर इराणी ने भीमराव को अपना कमरा पढ़ने के लिए दे दिया था। दोनों ही प्रोफेसर भीम की कर्त्तव्यनिष्ठा एवं अनुशासन से बड़े प्रसन्न थे।

बी० ए० पास करने के पश्चात्, भीम के सामने नौकरी का सवाल पैदा हुआ। रामजी चाहते थे कि वह बॉम्बे में ही कोई काम ढूँढे। अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध, भीम ने बड़ौदा महाराजा को एक पत्र नौकरी के लिए लिखा। भीमराव में कृतज्ञता की भावना अत्यधिक थी। वह महाराजा से छात्रवृत्ति पाने के कारण, बड़ौदा सरकार के ऋण से मुक्त होने के लिए, बड़ौदा में ही नौकरी करना चाहता था। रामजी जानते थे कि रियासती वातावरण में छुआछूत का बोलबाला है जहां भीमराव को अपमानित होना पड़ेगा। भीमराव अपनी बात पर अड़े रहे और अन्त में वे बड़ौदा चले गए जहां उन्हें राज्य की फौज में लेफ्टीनेण्ट के पद पर नियुक्त किया गया। वास्तव में, बड़ौदा में भीमराव के निवास तथा भोजन की कोई व्यवस्था नहीं की गई। भीमराव को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा।

जनवरी 1913 में, भीमराव ने मुश्किल से ही पन्द्रह दिन काम किया होगा कि उसे बॉम्बे से एक तार मिला कि उनके पिता की हालत चिन्ताजनक है। वे बड़े चिन्तित हुए तथा बॉम्बे चल दिए। नौकरी की आठ दिन की तनख्वाह ही उन्हें मिल पाई। मार्ग में, सूरत रेलवे स्टेशन पर अपने पिता के लिए बर्फी खरीदने के लिए नीचे उतरे; पर उस चक्कर में गाड़ी चल दी। वे दूसरे दिन बॉम्बे पहुँचे। घर पहुँचने पर उन्होंने पिता की बिगड़ती हुई स्थिति को देखा तो उनके हृदय पर जबर्दस्त आघात पहुँचा। रामजी मरणोन्मुख अवस्था में चारपाई पर पड़े हुए थे। परिवार के सभी सदस्य उन्हें घेरे हुए बैठे थे। सभी की आंखों से लगातार आंसुओं की झड़ी लगी हुई थी। सूबेदार जी की आंखें अपने प्रिय पुत्र की ओर मुड़ीं, अपना ममतामय हाथ उसकी पीठ पर फेरा; कुछ देर तक भीम की ओर एकटक देखते रहे, और फिर वे सदैव के लिए चिरनिद्रा में सो गए। भीमराव के दुःख का ठिकाना न रहा। वह फूट-फूटकर रोने लगा। सूरत स्टेशन पर उतरने का उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। किसी के शब्द उसे सान्त्वना न दे पाए। लगता है भीम को अन्तिम आशीर्वाद देने के लिए ही उनके प्राण रुके हुए थे। 2 फरवरी 1913 भीमराव अम्बेड्कर के जीवन का सबसे बुरा दिन था जिसे वे कभी भुला नहीं पाए।

सूबेदार रामजी मालोजी जीवनपर्यन्त परिश्रमी, मितव्ययी, अनुशासित, भक्त और प्रेरक बने रहे। वे आयु में वृद्ध, धन से ऋणी; किन्तु अपने समाज, राष्ट्र और मानवता के लिए अनुकरणीय चरित्र छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए। रामजी ने अपने होनहार पुत्र में असीम साहस एवं धैर्य का सञ्चार किया। सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहने तथा आध्यात्मिकता में डूबने की शक्ति प्रदान की। उन्होंने अपने पीछे एक ऐसे पुत्ररत्न को छोड़ा जो जीवन भर कड़ा संघर्ष करता रहा और जिसने समाज को अपने विचारानुसार मोड़कर, पद-दलित मानवता का

उद्धार किया। भारत और समस्त मानवी दुनिया के लिए, रामजी सूबेदार की यही सर्वोत्कृष्ट देन थी। उनका त्यागी, कर्मठ व्यक्तित्व सबके लिए अनुकरणीय है। उनका कर्मयोग मानवता के हित में फलीभूत हुआ जिस पर समस्त भारतीय समाज आज गौरवान्वित महसूस करता है।

अमेरिका में शिक्षा:

रामजी की मृत्यु के बाद, भीमराव को अब अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा। साथ ही, भीमराव के हृदय में ज्ञान तथा विद्या के प्रति प्रेम और बढ़ गया। उसने फिर से बड़ौदा की उसी नौकरी पर जाने का इरादा बनाया जिसके लिए, सूबेदारजी सहमत नहीं थे। वास्तव में, वहाँ उसे सभी प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ा था। भाग्यवश उसी समय एक और सुनहरा अवसर आया। महाराजा बड़ौदा ने कुछ विद्यार्थियों को कोलम्बिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) भेजने का निश्चय किया। महाराजा उस समय बॉम्बे में ही थे। भीम उनसे मिले और सारी गाथा उन्हें कह सुनाई। महाराजा भीम की अंग्रेजी से बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि वह एक होनहार युवक है। भीम को सलाह मिली कि वह छात्रवृत्ति के लिए आवेदन पत्र भर कर दे। उसने ऐसा ही किया। अन्य तीन विद्यार्थियों के साथ उसे भी अमेरिका जाने के लिए छात्रवृत्ति स्वीकृत हुई। भीम बड़ा खुश हुआ। उसको बड़ौदा बुलाया गया। छात्रवृत्ति की अवधि 15 जून, 1913 से लेकर 14 जून 1916 तक निश्चित हुई। इस प्रकार उन्हें तीन वर्ष विदेश में रहने का अवसर मिला। साथ-साथ ही, बड़ौदा के उप-शिक्षा मन्त्री के समक्ष भीम को एक इकरारनामे पर हस्ताक्षर करने पड़े कि "मैं अमेरिका में अपना समय विद्याध्ययन में ही व्यतीत करूँगा और अध्ययन समाप्त होने पर बड़ौदा रियासत में दस वर्ष तक नौकरी करूँगा।" तत्पश्चात् भीम ने महाराजा के प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट की तथा हृदय से धन्यवाद दिया।

अमेरिका जाने का प्रबन्ध तो हो गया, पर भीमराव को परिवार के खर्च की बड़ी चिन्ता हुई। केवल आनन्दराव ही एकमात्र कमाने वाला व्यक्ति था जब कि दस-बारह खाने वाले पारिवारिक सदस्य थे। भीम ने बड़ौदा के शिक्षा विभाग से कुछ रुपये पेशगी के रूप में लिए। उनमें से कुछ आनन्दराव को घर-खर्च के लिए दिए। 21 जुलाई 1913 को न्यूयार्क पहुँचकर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। एक सप्ताह तक विश्वविद्यालय के हार्टले हॉल में ठहरा। होस्टल का खाना उसे पसन्द नहीं आया। खाना अध-पका होता और साथ में, गाय का मांस भी परोसा जाता था। इसलिए वह कॉस्मापालिटन क्लब में जाकर रहने लगा जहाँ कुछ भारतीय विद्यार्थी भी रहते थे। वहाँ भीमराव लिविंगस्टोन हॉल में एक फारसी विद्यार्थी नवल भथेना के साथ रहते थे। भथेना भीम का जीवन पर्यन्त मित्र बना रहा। अर्थशास्त्र प्रमुख विषय और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मानवशास्त्र, नैतिक-दर्शन सहायक विषय लेकर भीमराव ने एम० ए० का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

अमेरिका में जीवन विचित्र एवं गतिशील था। न्यूयार्क में अम्बेडकर को

नए अनुभव हुए। वहाँ वह विद्यार्थियों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक घूम सकता था। वह समानता के स्तर पर सबके साथ पढ़-लिख, नहा-धो और चल-फिर सकता था। सबके साथ नियमित रूप से भोजन एक ही टेबुल पर मिलता था। कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में भीमराव के लिए जीवन एक नई अद्भुत अभिव्यक्ति थी। उसे पाश्चात्य समाज का ऐसा जीवन मिला जिसने उसके मानसिक क्षितिज को विस्तृत बना दिया। वहाँ मानवीय आयामों का अस्तित्व था। उस जीवन में नए मूल्य निहित थे। भारतीय समाज की घुटन एवं पीड़ा वहाँ नहीं थी। ऐसे स्वतंत्र वातावरण में कुछ दिन रहने के पश्चात्, भीमराव ने अपने पिता के एक मित्र को पत्र लिखा जिसमें उसने दलित समाज के उत्थान पर बल दिया और कहा, 'हमें अब इस विचार को पूर्णत: त्याग देना चाहिए कि माता-पिता बच्चे को जन्म देते हैं और कर्म नहीं। वे बच्चे के भाग्य को बदल सकते हैं। शिक्षा समस्त उत्थान का मूलमंत्र है। इसीलिए आपका मिशन यह होना चाहिए कि आप शिक्षा के विचार का अपने सगे-सम्बन्धियों के बीच अधिकाधिक प्रचार करें।'

न्यूयार्क शहर के जीवन से भीम प्रभावित अवश्य था, पर वह उसकी चमक-दमक और चहल-पहल में फंसा नहीं। उसका लक्ष्य कुछ और था। उसका ध्यान विद्याध्ययन पर केन्द्रित था। वह 20 घण्टे पढ़ा करता था और शेष समय में भोजन, निद्रा आदि सब कुछ करता था। भीमराव को अच्छी भूख लगती थी। वह उसे काफी के एक कप, दो चपाती और एक मीट के टुकड़े या मछली से ही शान्त कर लेता था। अपनी छात्रवृत्ति का कुछ अंश उसे अपने घर भी भेजना पड़ता था। इसीलिए अपने व्यक्तिगत खर्चे पर उसे अधिक प्रतिबन्ध रखना पड़ता था। वह अपना सारा समय न्यूयार्क के पुस्तकालयों में व्यतीत करता था। उसे निजी पुस्तकें खरीदने का बड़ा शौक था, पर करते क्या? पैसा था नहीं। वह केवल पुरानी सस्ती पुस्तकों को खरीदकर अपना शौक पूरा करता था। प्रत्येक विषय की तह में जाना भीम की आदत थी। वह विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सबसे पहले पहुँचता और सबके बाद वहाँ से निकलता था। वह मात्र पढ़ता ही नहीं था, बल्कि प्रत्येक विषय पर लम्बी टिप्पणियाँ भी लिया करता था ताकि उन्हें बाद में कहीं प्रयोग किया जा सके।

प्रोफेसर एडविन आर० ए० सेलिग्मन कोलम्बिया यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी के अध्यक्ष थे। भीम को वे पुस्तकालय में नियत समय पर देखा करते थे। अत: उन्होंने भीमराव की कर्तव्यनिष्ठा, परिश्रम तथा प्रतिभा की प्रशंसा की। प्रोफेसर सेलिग्मन बड़े ही योग्य अध्यापक थे। जिनकी क्लासों में भीमराव नियमपूर्वक जाता था। प्रोफेसर सेलिग्मन अपने विद्यार्थियों को मेहनत से पढ़ाते, पुस्तकों से उद्धरण देकर अच्छी तरह समझाते और अपने सभी विद्यार्थियों को प्रेम करते थे। भीमराव के विद्यार्थी-जीवन पर उनका गहरा एवं गम्भीर प्रभाव पड़ा। जब अम्बेडकर ने उन्हें रिसर्च-मेथड के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा कि उसे गहन अध्ययन करना चाहिए ताकि वह स्वयं अपनी पद्धति का विकास करले। प्रोफेसर सेलिग्मन लाला लाजपतराय के मित्र थे। उन्होंने लालाजी से भीमराव का परिचय कराते हुए कहा; 'भीमराव अम्बेडकर भारतीय विद्यार्थियों में ही नहीं, बल्कि अमेरिकन विद्यार्थियों

में भी श्रेष्ठ है।' लालाजी बड़े प्रसन्न हुए। सन् 1914 में लालाजी भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रचार करने के लिए न्यूयार्क गए हुए थे। उन्होंने वहाँ 'इण्डियन होम रूल लीग ऑफ अमेरिका' की स्थापना भी की थी। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि भीम राव उनकी संस्था की ओर से अमेरिका में कुछ काम करे। उन्होंने अम्बेडकर को बहुत समझाया, लेकिन भीमराव ने स्पष्ट कह दिया कि वह न्यूयार्क में विद्याध्ययन के सिवाय और कोई कार्य नहीं करेगा। प्रथम विद्यार्जन और राजनीति तथा आन्दोलन बाद में, यह उसका आदर्श था, हालाँकि वह अपने देश की विकट स्थितियों से अनभिज्ञ नहीं था।

अम्बेडकर ज्ञान-साधना में जुटे रहे। दो सालों की अवधि के पश्चात्, सफलता ने उनका आलिंगन किया। सन् 1915 में उन्हें अपने "एन्सेण्ट इण्डियन कामर्स" नामक प्रबन्ध पर कोलम्बिया यूनिवर्सिटी से एम० ए० की डिग्री प्राप्त हुई। भीमराव ने मई 1916 में डॉ० गोल्डिनवीजर की आंथ्रोपॉलोजी सेमिनार के समक्ष अपना शोधपूर्ण लेख "कास्ट्स इन इण्डिया—देअर मेकेनिज्म, जेनेसिस एण्ड डिव्लपमेण्ट" पढ़ा। साथ ही साथ, उन्होंने "नेशनल डिविडेण्ड ऑफ इण्डिया-ए हिस्टोरिक एण्ड एनेलिटिकल स्टडी" पर एक और प्रबन्ध लिखा जिस पर कोलम्बिया यूनिवर्सिटी ने उसे जून 1916 में पी० एच० डी० की डिग्री के लिए स्वीकृत किया। विधिवत डिग्री प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि उस थीसिस की कुछ निश्चित प्रतियां यूनिवर्सिटी को भेंट की जातीं। अम्बेडकर के पास इतना धन नहीं था कि वह उसकी कई प्रतियां टाइप या प्रकाशित करवा कर प्रस्तुत करते। आठ साल बाद उनके इस प्रबन्ध को मेसर्स पी० एस० किंग एण्ड सन (लन्दन) ने नए शीर्षक "द इवॉल्यूशन ऑफ प्रॉविन्सिपल फायनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया" के अन्तर्गत प्रकाशित किया। इस प्रकाशित ग्रन्थ की कुछ प्रतियाँ अम्बेडकर ने यूनिवर्सिटी को भेंट कीं और तब उन्हें सन् 1924 में विधिवत, पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

शैक्षणिक जगत् में अम्बेडकर की यह अद्वितीय उपलब्धि थी। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों एवं प्रोफेसरों में इस प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा हुई। कला संकाय के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने इस सफलता के उपलक्ष में अम्बेडकर को एक भोज देकर सम्मानित किया। वक्ताओं ने नवोदित पी-एच० डी० प्राप्त अम्बेडकर की भूरि-2 प्रशंसा की। उसकी लिंकन के संकल्प एवं मिशन और नीग्रो जाति के उद्धारक बुकर-टी-वाशिंगटन के साथ तुलना की। डॉ० अम्बेडकर ने अपने प्रकाशित ग्रन्थ को श्री समाजीराव गायकवाड़ के प्रति समर्पित किया। उसकी भूमिका लिखी प्रोफेसर एडविन आर० ए० सेलिग्मन ने, जिन्होंने अंबेडकर को पब्लिक फाइनेन्स का प्रथम पाठ पढाया। प्रोफेसर ने अपनी भूमिका में ग्रन्थ की बड़ी सराहना की और कहा कि प्रस्तुत ग्रन्थ अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अनुपम कृति है जिसमें मूल समस्याओं को उठाया गया है।

डॉ० अम्बेडकर अमेरिका में कम से कम दो बातों से बड़े प्रभावित हुए। प्रथम वहाँ के संविधान से, विशेषकर उसमें १४वें संशोधन से जो नीग्रो जाति के लोगों

की स्वतन्त्रता की घोषणा करता है। द्वितीय बुकर-टी-वाशिंगटन के जीवन से जिनका देहान्त सन् 1915 में हुआ। वाशिंगटन नीग्रो जाति का सुधारक एवं शिक्षक था जिसने टस्केगी इन्स्टीटयूट की स्थापना की। इस संस्था ने नीग्रो लोगों में शिक्षा का बड़ा भारी प्रचार किया जिसका परिणाम यह हुआ कि सदियों से उनके पैरों में पड़ी बेड़ियां टूट गईं। डॉ० अंबेडकर भी भारत की अछूत जातियों के लिए वैसा ही काम करना चाहते थे जो सदियों से दासता की दुःखद स्थिति में पड़े हुए थे।

कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में सफलता प्राप्त करने के पश्चात्, डॉ० अंबेडकर का ध्यान लन्दन की ओर मुड़ा क्यों कि उनके ज्ञान की पिपासा शान्त नहीं हुई थी। वह चाहते थे कि लन्दन जैसे अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र से ज्ञान प्राप्त किया जाए और बैरिस्टर भी बना जाए। परन्तु धन की भारी कमी थी। छात्रवृत्ति की अवधि की समाप्ति का समय भी समीप आ गया था। अंबेडकर ने प्रोफेसर सेलिग्मन की जोरदार सिफारिश के साथ एक प्रार्थना-पत्र महाराजा बड़ौदा को भेजा कि उनकी छात्रवृत्ति की अवधि दो वर्ष के लिए और बढ़ा दी जाए। महाराजा ने छात्रवृत्ति की अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी। यह खुशखबरी सुनने से पहिले ही, वह न्यूयार्क से जून 1916 में लन्दन को रवाना हो चुके थे। शीघ्र ही डॉ० अंबेडकर ने अक्टूबर 1916 में बैरिस्टरी के लिए ग्रेज-इन और अर्थशास्त्र की पढ़ाई के लिए, लन्दन स्कूल ऑफ इकनामिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स में प्रवेश ले लिया। भीमराव ने महाराजा बड़ौदा को लन्दन में पढ़ने के लिए राजी कर ही लिया। उधर उनका अर्थशास्त्र का अध्ययन काफी आगे बढ़ चुका था। इस लिए लन्दन के प्रोफेसरों ने अंबेडकर को डी० एस० सी० की डिग्री की तैयारी के लिए स्वीकृति दे दी। अंबेडकर ने रात दिन काम करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही, चूंकि वह एम० ए०, पी० एच० डी० थे, इसलिए उन्हें एम० एस० सी (अर्थशास्त्र) करने की आज्ञा भी मिल गई थी।

डॉ० अंबेडकर ज्ञान-साधना में जुट गए। उन्होंने इण्डिया ऑफिस, लन्दन स्कूल, और ब्रिटिश म्यूजियम के विशाल पुस्तकालयों में गहन अध्ययन प्रारभ कर दिया। वह पढ़ने के साथ साथ लंबी लंबी टिप्पणियां भी लिखते थे। उन्होंने अमेरिका की भांति लन्दन में अपने को अध्ययन में ही व्यस्त रखा। वहां की चहल-पहल से वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। दुर्भाग्यवश इसी बीच उनकी छात्रवृत्ति की अवधि समाप्त हो गई और उन्हें बड़ौदा के दीवान ने भारत वापिस बुला भेजा। उन्होंने महाराजा को फिर प्रार्थना-पत्र भेजा कि उनकी छात्रवृति की अवधि बढ़ाई जाए, परन्तु इस बार यह संभव नहीं हुआ। अंबेडकर मन ही मन कुढ़ कर रह गए। उन्होंने निश्चय किया कि वह भारत लौटकर पैसा कमायेंगे और फिर लन्दन आकर एम० एस० सी०, डी० एस० सी० तथा बार-एट-लॉ की डिग्रियां प्राप्त करेंगे। प्रोफेसर एडविन कैनान की दयालु सिफारिश पर, उन्हें लन्दन यूनिवर्सिटी ने यह आज्ञा दे दी कि वह अक्टूबर, 1917 से लेकर चार वर्ष की अवधि तक अपना विद्याध्ययन पुनः प्रारंभ कर सकते हैं।

लन्दन छोड़ने में डॉ० अंबेडकर को कोई खुशी नहीं थी। कोई डिग्री प्राप्त किए बिना ही वहां से वापिस आना दुःख की बात थी। उन्होंने अपने सारे सामान

को, जिसमें बहुमूल्य पुस्तकें भी सम्मिलित थीं, मेसर्स टॉमस कुक एण्ड सन को सुरक्षित पहुँचाने के लिए, सौंप दिया। उधर वह एक ट्रेन द्वारा बूलेन से मार्सलीज़ पहुँचे और वहां से कैसर-इ-हिन्द पर बॉम्बे के लिए रवाना हो गए। डॉ० अम्बेडकर ने परिवार वालों को पहिले ही आने की सूचना भेज दी थी। उन दिनों महायुद्ध चल रहा था। टार्पेडो से जहाजों को जल-मग्न किया जा रहा था। उन दिनों समुद्री यात्रा करना बड़ा ही ख़तरनाक था। एक दिन परिवार वालों ने अखबार में पढ़ा कि लन्दन से हिन्दुस्तान आने वाला जहाज समुद्र में डूब गया। सभवत: डॉ० अम्बेडकर भी उसी में होंगे। सारे घर में शोक का वातावरण छा गया। तारों का आदान-प्रदान हुआ तो ज्ञात हुआ कि डॉ० अम्बेडकर कैसर-इ-हिन्द से आ रहे हैं, जो सुरक्षित है। बाद मे मालूम हुआ कि जिस जहाज में उनका सामान आ रहा था, वह डूब गया था। डॉ० अम्बेडकर को बड़ा दुःख हुआ क्योंकि उसमें उनके द्वारा इकट्ठी की गई सभी बहुमूल्य पुस्तकें थीं जिन्हें वह जान से प्यारी मानते थे।

21 अगस्त, 1917 को डॉ० अम्बेडकर वाया कोलम्बो बॉम्बे पहुँचे। परिवार के सभी सदस्य बड़े आनन्दित हुए। श्री साम्भा जी वाघमारे ने शीघ्र ही एक सभा का आयोजन किया ताकि डॉ० अम्बेडकर का शैक्षणिक जगत् की उपलब्धियों पर अभिनन्दन किया जा सके। बॉम्बे के चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट राव बहादुर चुन्नीलाल सीतलवाड़ ने सभा की अध्यक्षता की। डॉ० अम्बेडकर ने सभा में अपनी उपस्थिति को ठीक नहीं समझा क्योंकि वह अपनी प्रशंसा अपने सामने सुनना नहीं चाहते थे। अत: सभा की समाप्ति पर, अध्यक्ष और वक्तागण डॉ० अम्बेडकर के घर गये और वहां जाकर सहृदय बधाइयां दीं। तत्पश्चात् डॉ० साहब ने उन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर उन्हें यह आश्वासन दिया कि वह अपनी वैयक्तिक उपलब्धियों को दलित समाज की सेवा में ही लगायेंगे और अपने लोगों की उन्नतिशील जागृति के लिए, व्यापक आन्दोलन का संचालन भी करेंगे।

बड़ौदा के कटु अनुभव :

कुछ दिन बॉम्बे में रहने के पश्चात्, डॉ० अम्बेडकर ने उस इकरारनामे की ओर ध्यान दिया जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे कि अमेरिका से आने के बाद वह बड़ौदा राज्य में दस साल तक नौकरी करेंगे। तदनुसार, डॉ० साहब ने बड़ौदा जाने का निश्चय किया; परन्तु वहां जाने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। सौभाग्यवश उन्हें मेसर्स थॉमस कुक एण्ड सन से 600/- रुपए उस सामान के हरजाने के रूप में प्राप्त हुए जो उन्होंने उस कम्पनी के मार्फत भारत भेजा था। सभी मूल्यवान वस्तुएं एवं पुस्तकें जहाज के समुद्र में डूब जाने से नष्ट हो गई थीं; पर समय पर पैसा मिलने से, वह दुःख कम हो गया। डॉ० साहब ने उसमें से कुछ पैसा अपनी पत्नी को घर खर्च के लिए दे दिए और बाकी से टिकट खरीद कर बड़ौदा के लिए 20 सितम्बर, 1917 को रवाना हो गये।

डॉ० अम्बेडकर बड़ौदा रेलवे स्टेशन पर पहुँच गए। सूचनानुसार, महाराजा ने अपने कर्मचारियों को आज्ञा दी थी कि वे डॉ० अम्बेडकर का स्वागत करने

पहुँचें। आश्चर्य की बात, एक महार के स्वागत के लिए कौन आता ? वहां उन्हें गाइड करने वाला कोई नहीं था। उधर बड़ौदा शहर में पहले से ही यह खबर चारों ओर फैल चुकी थी कि एक महार नवयुवक यहां नौकरी पर आ रहा है। डॉ० अम्बेडकर के साथ उनके बड़े भाई आनन्दराव भी थे। उन्होंने ठहरने की जगह तलाश करनी चाही; पर उनको किसी हिन्दू अथवा मुस्लिम होस्टल या होटल में जगह न मिल सकी। सब होटलों और भोजनालयों के दरवाजे उनके लिए बन्द हो गए मानो कि वे किसी को डस जाते। किराये पर भी उन्हें मकान नहीं मिल पाया क्योंकि वे महार जाति के थे। राज्य की ओर से भी उनके लिए कोई रहने का प्रबन्ध नहीं किया था। हिन्दू समाज से अपमानित होने के बाद, डॉ० अम्बेडकर ने किसी पारसी सराय में एक बनावटी पारसी के तौर पर रहने का निश्चय किया। उन्होंने अपना नाम एदलजी सोहराबजी रखा और वहां रहने लगे। बड़ौदा की विकट स्थितियों के कारण, डॉ०साहब को अपने व्यक्तित्व में यह बनावटी परिवर्तन करना पड़ा जो उन्हें कतई पसन्द नहीं था।

महाराजा की इच्छा थी कि डॉ० अम्बेडकर को उसकी योग्यता तथा अनुभव के अनुसार, अर्थमन्त्री बनाया जाए; परन्तु अर्थमन्त्री के काम से परिचित हो जाने तक उनको मिलिट्री सेक्रेट्री के पद पर नियुक्त कर दिया। वे अर्थ-विभाग में उसकी कार्य-प्रक्रिया और अन्य विभागों में जाकर उनकी आर्थिक स्थिति से परिचित होने का उपक्रम करने लगे। अछूत के रूप में उनका जन्म वहां एक अभिशाप बन गया। सारे विभागों में हिन्दुओं के बीच कानाफूसी होने लगी कि एक अछूत को सवर्ण हिन्दुओं के सिर पर लाकर बिठा दिया है। सभी सवर्ण हिन्दुओं को यह बात अपमानजनक लगी। इस प्रतिक्रिया का परिणाम बड़ा भयङ्कर हुआ। सेक्रेटरिएट के सभी छोटे-बड़े पदाधिकारी डॉ० अम्बेडकर को उपेक्षा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे। वें कहीं किसी से छू न जाए, इसलिए सभी लोग कतराते थे। अपने आपको बचाने का प्रयास करते थे। सभी अधिकारी अम्बेडकर को एक घृमिल कोड़ी की तरह देखते थे। निर्धन अशिक्षित चपरासी भी डॉ० अम्बेडकर को अपने हाथों से सीधे कागज तथा फाइलें देने में पाप समझते थे। इसलिए वे उनकी टेबिल पर सभी कागजों तथा फाइलों को दूर से फेंककर चले जाया करते थे। जब डॉ० अम्बेडकर अपने ऑफिस से बाहर आते थे तब चपरासी नीचे बिछी हुई दरियों को समेट दिया करते थे ताकि वे उनके अपवित्र पैरों से अशुद्ध न हो जाएँ। दफ्तर में, डॉ० अम्बेडकर को पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं होता था। लगता है उनके द्वारा किसी महान् कार्य करने की दिशा में, ये बातें परीक्षाएँ मात्र थीं।

ऑफिस में, सभी अधिकारियों का व्यवहार डॉ० अम्बेडकर के प्रति बड़ा ही भेदभावपूर्ण था। उनका अपना एक क्लब था जिसमें सब अधिकारी लोग अपना खेलने-खाने का शौक पूरा किया करते थे। डॉ० अम्बेडकर भी क्लब जाने लगे; किन्तु इन सवर्ण हिन्दू अधिकारियों ने उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि वे यहां के किसी भी खेल में भाग न लिया करें, बल्कि किसी कोने में बैठकर अपना समय काटा

करें। इस प्रकार अपमानित होकर डॉ० अम्बेडकर ने क्लब जाना छोड़ दिया। क्लब में छुआछूत का होना स्वाभाविक था क्योंकि वहां सभी अधिकारी सवर्ण हिन्दू थे। यह था हमारे हिन्दू समाज का दुर्भाग्य। दुःख की एक और बात यह थी कि क्लब के पारसी तथा मुसलमान अधिकारी भी छुआछूत करते थे। हिन्दू लोग इनसे मिलने-जुलने में कोई आपत्ति महसूस नहीं करते थे। इतना बड़ा शिक्षित आदमी, वह भी हिन्दू उनके लिए एक अछूत था। ऐसी स्थिति में, वे बड़ौदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में पुस्तकें पढ़ते रहते और वहाँ से अच्छी-अच्छी पुस्तकें लेकर अपने निवास-स्थान पर अध्ययन करते रहते थे। उन्होंने महाराजा से मुलाकात की। सारी हालातों से, उन्हें अवगत कराया। महाराजा तथा मुख्यमन्त्री दोनों ने उनके निवास-स्थान की व्यवस्था का आश्वासन दिया। यह काम आसान नही था। महाराजा को भी, इन सवर्ण हिंदू अधिकारियों ने अपने कुचक्र में फँसा रखा था। फलतः सरकारी निवास का कोई भी प्रबन्ध नहीं हुआ।

फिर एक दिन क्या हुआ! यह विचित्र दृश्य था। सारे बड़ौदा में यह बात अच्छी तरह फैल चुकी थी कि महाराजा गायकवाड़ एक शिक्षित महार लड़के को बड़ौदा ले आए हैं। उसको एक बड़े पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। वातावरण कुछ ऐसा बन गया कि डॉ० अम्बेडकर बनावटी पारसी के रूप में अधिक दिनों तक रहने में समर्थ नहीं हुए। सराय के पारसियों को सब कुछ मालूम हो गया। यह बड़ी हृदय विदारक घटना थी जिसे स्वयं डॉ० साहब ने अपने शब्दों में बतलाया; "मैं भोजन आदि से निवृत्त होकर दफ्तर जाने के लिए सराय से बाहर निकला ही था कि हाथों में लट्ठ लिये पन्द्रह-बीस फारसी लोग मुझे मारने-पीटने के लिए, वहाँ आ धमके। उन्होंने पहले मुझसे पूछा, 'तुम कौन हो?' मैंने उत्तर दिया, 'मैं हिन्दू हूँ।' परन्तु इस उत्तर से उनका गुस्सा ठण्डा नहीं हुआ। उन्होंने कहा, 'तुम कुख्यात धोखेबाज! हम जानते हैं तुम एक घृणित अछूत हो। तुम सराय से फौरन निकल जाओ।' उस समय मेरे मनोधैर्य ने मेरा पूरा साथ दिया। मैंने उनसे निर्भयतापूर्वक आठ घंटे की मोहलत मांगी और वह उन्होंने दी। मैं दिन भर निवास के लिए प्रयास करता रहा; परन्तु मुझे कहीं भी किराये पर जगह नहीं मिली। मैं कई मित्रों से मिला, पर उन्होंने बहाने बनाकर मुझे टाल दिया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ? थका, भूखा तथा परेशान मैं वहाँ से सामान लेकर चल दिया। आखिर मैं एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया और मेरी आँखों से झर-झर आंसू बहने लगे।" ऐसा हुआ उनके साथ बड़ौदा में।

अन्त में, असहाय मुद्रा, गम्भीर विचार में, पूर्णतः हताश होकर, ऐसे अपमानजनक वातावरण से मुक्त होने के लिए, डॉ० अम्बेडकर नवम्बर 1917 के मध्य, रात की गाड़ी से बॉम्बे लौट आए। वह श्रीकृष्णाजी केलुस्कर से मिले जिन्होंने उसे महाराजा से आर्थिक सहायता दिलवाई थी। अपनी करुण कहानी उन्हें खुलकर सुनाई। श्री केलुस्कर के माध्यम से महाराजा को उन सभी घटनाओं से अवगत कराया गया जो अम्बेडकर के साथ घटित हुई, पर कोई समाधान नहीं हुआ। बड़ौदा के प्रोफेसर जोशी श्री केलुस्कर के बड़े अच्छे मित्र थे। प्रोफेसर जोशी अपने प्रगतिशील विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। श्री केलुस्कर के कहने पर वह राजी

हो गए कि डॉ० अम्वेडकर उनके घर वड़ौदा में ठहर सकते हैं। इस प्रकार समस्या का निदान हुआ। उधर डॉ० अम्वेडकर श्री केलुस्कर का पत्र लेकर फिर बड़ौदा रवाना हो गए।

डॉ० अम्वेडकर अच्छी तरह जानते थे कि वड़ौदा का सारा वातावरण उनके विरुद्ध है। अपमानित होने पर भी वे वहाँ गए। क्यों? इसलिए कि डॉ० अम्वेडकर में कर्तव्यनिष्ठा एवं कृतज्ञता की प्रवल भावना थी। वे चाहते थे कि महाराजा ने जो छात्रवृत्ति के रूप में उन्हें ऋण दिया था, उसे चुकाएँ। वे ईमानदार व्यक्ति थे और मान-सम्मान की चिंता न करते हुए भी, अपना कर्तव्य पूरा करने में लगे रहे। यदि वड़ौदा महाराजा का यह ऋण रूपी अहसान नहीं होता तो शायद वे वहाँ क्यों जाते? वे आत्माभिमानी युवक थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार या कांग्रेसी सरकार में नौकरी की कोई परवाह न की। महाराजा ने उनका साथ पढ़ाई-लिखाई में अवश्य दिया, पर उनके लिए एक छोटे से निवास-स्थान का प्रवन्ध नहीं कर पाए। यह हिन्दू समाज के कुचक्र का ही फल था।

कर्त्तव्यपरायणता की भावना से प्रेरित होकर, डॉ० अम्वेडकर वड़ौदा स्टेशन पर पहुँचे। उधर श्री केलुस्कर ने प्रोफेसर जोशी को पत्र द्वारा सूचना दे दी थी कि डॉ० अम्वेडकर अमुक गाड़ी से वड़ौदा पहुँच रहे हैं। जोशीजी का नौकर स्टेशन पर तो आया; परन्तु उसने भीमराव के सामान को उठाने के वजाय, हाथ में एक कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया जिसमें प्रोफेसर साहव ने लिखा था; 'आप मेरे घर न आएँ। मैं तो छुआछूत नहीं मानता, पर मेरी पत्नी पुराने विचारों की है। वह आपके यहाँ रहने को कतई पसन्द नहीं करेगी।' डॉ० अम्वेडकर परेशानी में पड़ गए और विवश होकर, वे स्टेशन से ही लौटती गाड़ी से वॉम्वे वापिस लौट आए। इस प्रकार अपने दयालु; किन्तु असहाय महाराजा के राज्य की राजधानी से उन्होंने सदैव के लिए विदाई ली।

समाज का प्रकोप तो डॉ० अम्वेडकर पर निरन्तर बना ही हुआ था। उधर पारिवारिक मुश्किलें भी द्वार पर आए खड़ी थीं। जैसे ही वे वॉम्वे आए, उनकी सौतेली माँ सख्त वीमार पड़ी हुई मिलीं। कुछ दिनों के पश्चात् उनका देहान्त हो गया। डॉ० अम्वेडकर ने सारे क्रिया-कर्म किए, हालाँकि सौतेली माँ के खुर्राट स्वभाव से परिवार अशान्ति में ही बना रहता था। फिर भी परिवार के मुखिया के देहावसान पर बड़ा दु:ख हुआ।

नि:सन्देह महाराजा के हृदय में कोई छुआछूत नहीं थी। वे प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। समाज-सुधार में भी उनकी बड़ी रुचि थी। ब्रिटिश भारत में बड़ौदा राज्य ही समाज-सुधारों में अन्य राज्यों से आगे था और इसका श्रेय महाराजा सयाजीराव गायकवाड को ही था। राजा प्रगतिशील और प्रजा प्रति-क्रियावादी हो तो उस राज्य की क्या स्थिति होगी, यह अनुमान लगाना आसान है। डॉ० अम्वेडकर के विरुद्ध वड़ौदा में, विशेषकर सचिवालय में, जो विषाक्त वातावरण वन गया था, महाराजा उससे भलीभाँति परिचित थे; परन्तु वे उसे विलकुल ही नियंत्रित नहीं कर पाए। रियासत के कट्टर तथा प्रतिक्रियावादी

अधिकारियों के समक्ष, महाराजा ने अपनी हार स्वीकार कर ली और भीमराव के निवास-स्थान के प्रश्न को लेकर मौन रहे। यह कहना ठीक ही होगा कि बड़ौदा में डॉ० भीमराव के साथ जो अमानवीय व्यवहार हुआ, जो उनका अपमान किया गया, वह न केवल समस्त बड़ौदा राज्य वरन् समस्त हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्म के लिए बड़ी लज्जा की कहानी थी, हालांकि इन्हीं बातों ने डॉ० अम्बेडकर को दलित-समाज के प्रति अपना जीवन अर्पित करने के लिए, दृढ़-संकल्प वाला बना दिया था।

निश्चय ही बड़ौदा के कटु अनुभवों से, डॉ० अम्बेडकर को बड़ा दुःख हुआ, पर वे करते भी क्या ? इन वैयक्तिक अनुभवों, कष्टों एवं दुःखों ने उन्हें सदैव प्रेरित किया। अपमान की प्रत्येक घटना ने उनमें नई प्रेरणा तथा उत्साह का संचार किया। वे इन बातों से अपने निर्धारित मार्ग से विचलित नहीं हुए। बड़ौदा के अमानवीय व्यवहारों से उन्हें सबक मिला और उन्होंने अपने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित किया। उन्होंने निश्चय ही यह दृढ़ सङ्कल्प संजोया कि वे हिन्दू-समाज में फैले अत्याचार एवं अन्याय का प्रतिरोध करके छुआछूत समाप्त करने का आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे। उनके मन में यह विचार आया कि यदि उन जैसे शिक्षित एव संस्कृत व्यक्ति के साथ, एक अछूत होने के कारण, ऐसा अमानुषिक व्यवहार होता है तो उन अछूत भाइयों का क्या हाल होगा जो अकिंचन एवं अनपढ़ हैं। यदि वे इस कलंक को नष्ट नहीं कर पाए तो उनकी ज्ञान-साधना का आम लोगों के लिए क्या लाभ होगा ? डॉ० अम्बेडकर ने यह सोचा और उसी दिशा में विभिन्न उपक्रम करने लगे जिनका वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक जन-जागृति पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

प्रोफेसर के रूप में :

बड़ौदा से आने के पश्चात्, डॉ० अम्बेडकर ने देखा कि बॉम्बे में राजनीतिक वातावरण गति धारण कर रहा था। उधर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पद-दलितों के अस्तित्व को पहिचानने लगी थी, हालांकि अभी तक उसने इन लोगों को हालातों को सुधारने के काम को अपने कार्य-क्षेत्र से पृथक् रख छोड़ा था। कांग्रेस द्वारा दलित वर्गों के प्रति अचानक प्रेम दूरस्थ उद्देश्य से प्रभावित था। वह कांग्रेस-लीग स्कीम के लिए उनका समर्थन चाहती थी। इस बात पर विचार करने के लिए, दलित वर्गों ने नवम्बर 1917 में बॉम्बे में दो सम्मेलन किए। कई प्रस्ताव पास हुए जिनमें दो मुख्य थे। प्रथम, दलितों ने मांग की कि अछूतों के हितों की रक्षा सरकार द्वारा होनी चाहिए और द्वितीय, कांग्रेस-लीग स्कीम को अपना समर्थन प्रदान किया जाए। सभाओं में इस बात पर बल दिया गया कि अछूओं पर लादी गई अयोग्यताओं को समाप्त किया जाए। सवर्ण हिन्दुओं के हाथों में राजनीतिक सत्ता हस्तान्तरित न की जाए और अछूतों को अधिकार दिया जाए कि वे अपना प्रतिनिधि स्वयं चुनें। प्रथम सम्मेलन के समय डॉ० अम्बेडकर सौतेली माँ की मृत्यु के शोक में थे। वह उसमें इसलिए भी भाग नहीं लेना चाहते थे कि उस सभा का आयोजन कांग्रेस द्वारा करवाया गया था। यद्यपि द्वितीय

सभा उनके विचारों के अनुकूल थी, पर वे उसमें भाग लेने के पक्ष में नहीं थे।

डॉ० अम्बेडकर शान्त एवं शंकालु प्रवृत्ति के थे। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा चलाए गए अछूतोद्धार अभियान के वे मूलतः विरुद्ध थे। यही कारण है कि उन्होंने उपर्युक्त सभाओं में भाग नहीं लिया। वे समय की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि सही रूप से अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकें। वे अभी से राजनीति में उलझना नहीं चाहते थे, स्वतंत्र रूप से कुछ कमाना चाहते थे ताकि जीविका का साधन निश्चित हो जाए। वकालात करने का विचार उनके मन में था। वकालात से वह पैसा कमाते और अपने लोगों से मिल भी सकते थे; लन्दन के ग्रेज-इन में कानून की अधूरी शिक्षा को पूर्ण करने की उत्कण्ठा उनके मन में थी। उसे पूरा करने के लिए, वह दृढ़-प्रतिज्ञ थे। एक पारसी सज्जन की सहायता से उनको दो विद्यार्थियों के ट्यूशन प्राप्त हुए। साथ-साथ ही, उन्होंने स्टॉक्स और शेयर्स के व्यापारियों को सलाह देने का ऑफिस भी कायम कर लिया। उससे एक अच्छी आय की सम्भावना थी। शीघ्र ही सभी व्यापारियों को पता लग गया कि भीमराव अछूत हैं। उन्होंने आना-जाना बन्द कर दिया। फलतः उनको वह ऑफिस बन्द करना पड़ा। कुछ समय तक एक पारसी सज्जन के यहां पत्र-व्यवहार एवं हिसाब-किताब रखने का कार्य करते रहे। इस प्रकार वह जीविका कमाने में संलग्न रहे। सम्यक् आजीविका तथा समाज-सेवा के प्रति उनकी अटूट आस्था बनती गई।

साल-दो साल तक भीमराव यों ही कष्टों और परेशानियों में जीवन व्यतीत कर तेरहे। पारिवारिक खर्च किसी न किसी तरह चलता रहा। उन्हें दुःख इस बात का था कि लन्दन जाकर अध्ययन करने का समय धनाभाव में व्यर्थ ही नष्ट हो रहा था। पैसा कमाना चाहते थे; पर कोई जुगाड़ नहीं बैठ रहा था। उसी समय उन्होंने ब्रिटेन के प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रण्ड रसैल की पुस्तक 'रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ सोसाइटी' का रिव्यू इण्डियन इक्नॉमिक सोसाइटी की पत्रिका में दिया। भीमराव ने इस बात की प्रशंसा की कि समाज का पुनरुत्थान वास्तव में समाज में रहने वाले व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों को सही-सही समझने पर ही सम्भव हो सकता है। इन्हीं दिनों उन्होंने अमेरिका में लिखा अपना प्रबन्ध 'कास्ट्स इन इण्डिया' प्रकाशित करवाया। एक और नया ग्रन्थ 'स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देअर रिमेडीज़' भी लिखकर प्रकाशित कराया। ये पुस्तकें उनको इतना धन नहीं दे पाईं जिससे वह लन्दन जाकर अपना अधूरा अध्ययन समाप्त करते।

इन तमाम बौद्धिक क्रियाओं के मध्य, उनका जीवन रूपी जहाज अच्छी तरह नहीं चल रहा था। अधिकतर वह अपना समय यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में जाकर व्यतीत करते रहते थे। उनके मन में मुख्य प्रश्न लन्दन जाकर विद्याध्ययन करने का घूम रहा था। एक दिन उन्होंने सुना कि बॉम्बे के सरकारी सिडेनहॅम कॉलेज ऑफ कामर्स एण्ड इक्नोमिक्स में एक प्रोफेसर की जगह खाली है। उन्होंने उस स्थान के लिए आवेदन-पत्र दिया। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस कॉलेज की स्थापना बॉम्बे के भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड सिडेनहॅम के नाम पर हुई थी। भीमराव

का परिचय उनसे लन्दन में पहले ही हो चुका था। उन्होंने उन्हें एक पत्र लिखकर यह प्रार्थना की कि वह उनकी नियुक्ति की सिफारिश कर दें। लॉर्ड सिडेनहॅम ने ऐसा ही किया। उधर उनका इण्टरव्यू भी अच्छा हो गया। फलत: 11 नवम्बर 1918 में 450/- रुपए मासिक वेतन पर सिडेनहॅम कॉलेज में वे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। परिवार के सभी सदस्य तथा मित्र लोग बड़े प्रसन्न हुए। उनको भी बड़ी खुशी हुई क्योंकि वे अब लन्दन जाने का प्रश्न आसानी से हल कर सकते थे।

उसी समय, डॉ० साहब के बड़े भाई आनन्दराव कई दिनों से बीमार पड़े हुए थे। प्रोफेसर होने के पश्चात्, उन्होंने आनन्दराव को हवा-पानी बदलने और अच्छी दवादारू करने के लिहाज से उनकी ससुराल में भेजा; परन्तु समय पक्ष में न था। आनन्दराव का वहीं पर देहावसान हो गया। आनन्दराव के कारण, डॉ० अम्बेडकर घर-परिवार की चिन्ता से मुक्त थे। सारी देखभाल वही किया करते थे। उनकी मृत्यु से परिवार सहित, डॉ अम्बेडकर को बड़ा दुःख हुआ। फिर भी वे अपनी नई नियुक्ति को सफल बनाने में जुट गये। दु:ख-सुख का यह संगम, उनके जीवन की अनेक घटनाओं में से, एक था जिसका उन्होंने शान्त-चित्त रहकर सामना किया।

प्रारम्भ में भीमराव को विद्यार्थियों ने गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। सवर्ण हिन्दू छात्रों एवं उन विद्यार्थियों को जो उच्च समाज से आए थे कोई अछूत प्रोफेसर क्या पढ़ा सकता था? अधिकांशत: छात्र उनकी कक्षाओं से कतराते थे; किन्तु उनके आकर्षक व्यक्तित्व, गहन अध्ययन और रोचक विवेचना-शक्ति से विद्यार्थी धीरे-धीरे प्रभावित होने लगे। वे कुछ ही दिनों में बड़े लोकप्रिय प्रोफेसर बन गए। अब स्थिति यह हो गई कि अन्य कॉलेजों के बहुत से विद्यार्थी आज्ञा लेकर उनकी कक्षाओं में आने लगे। उनके द्वारा तैयार किए गए नोट्स इतने पर्याप्त होते थे कि अर्थशास्त्र की अन्य पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी; लेकिन भीमराव की अपनी विद्वता हिन्दू भेदभाव से उन्हें मुक्त करने में समर्थ न हो पाई। सिडेनहॅम विद्या-मन्दिर में भी छुआछूत का विषाक्त वातावरण बना हुआ था। कुछ गुजराती हिन्दू प्रोफेसरों ने अम्बेडकर द्वारा स्टाफ के लिए रखे गए बर्तन में से पानी पीने पर ऐतराज किया। भीमराव को बड़ा दु:ख हुआ कि इतने पढ़े-लिखे व्यक्तियों में भी ऐसा अमानुषिक भेदभाव विद्यमान है।

अध्यापन-कार्य उनके लिए साधन मात्र था, साध्य नहीं। वे छुआछूत, जाति एवं धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों तथा अपमानों का मूल कारण ढूँढना चाहते थे। अछूत होने की अनुभूति एवं पीड़ा से वे भलीभांति परिचित हो गये थे। वे अपने लोगों से सम्पर्क बढ़ाने में व्यस्त भी रहने लगे। इसी दृष्टिकोण से, उन्होंने श्री पी० बालू द्वारा क्रिकेट खेल में ख्याति प्राप्त करने पर उनका अभिनन्दन करने के लिए एक सभा का आयोजन किया। भीमराव ने इस सभा की सफलता के लिए काफी भाग-दौड़ की। तत्पश्चात् उन्होंने श्री बालू के लिए बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन की सदस्यता का प्रयास किया और अछूतों

की संख्या के अनुसार, एक स्थान प्राप्त कराने में सफल हुए।

इसी बीच महाराष्ट्र में कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज अपनी रियासत में अछूतोद्धार आन्दोलन चला रहे थे। वे दलित वर्गों में शिक्षा प्रसार, उनकी सामाजिक अयोग्यताओं को मिटाने तथा उन पर हो रहे अत्याचारों को कम करने में बड़ी दिलचस्पी लिया करते थे। वे जाति व्यवस्था तथा पण्डा-पुजारियों और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से उन्हें मुक्त करना चाहते थे। महाराजा ने बहुत से अछूतों को अपने प्रशासन में रखा। उन्हें वकालात करने की सनदें दीं और जनता में उनके साथ भोजन भी किया करते थे। महाराजा ने अछूत छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, रहने का स्थान तथा भोजन दिया। उनके हाथी का चालक एक अछूत ही था। सन् 1919 में भीमराव ऐसे दयालु महाराज के सम्पर्क में आए। श्री दत्तोवा पवांर ने उनका उनसे परिचय करवाया। महाराजा इस उत्साही होनहार से मिल कर बड़े प्रसन्न हुए। उधर डॉ० अम्बेडकर ने साहू महाराज की सहायता से अछूतों का दृष्टिकोण प्रकट करने के लिए 31 जनवरी 1920 को 'मूकनायक' नामक मराठी पाक्षिक पत्र प्रारम्भ किया। यद्यपि वे उस पत्र के अधिकृत सम्पादक नहीं थे; पर पत्रिका का सारा कामकाज वे ही करते थे। किस प्रकार हिन्दू वातावरण उनके विरुद्ध था; यह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि 'मूकनायक' के प्रकाशन का विज्ञापन लोकमान्य तिलक के पत्र 'केसरी' ने प्रकाशित नहीं किया। उस समय तिलक जीवित थे जो राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे।

'मूकनायक' के सम्पादक महार जाति के श्री पांडुरंग नन्दराम भटकर थे। पत्रिका के प्रथम तेरह अङ्कों में भीमराव ने ही अग्रलेख लिखे थे। उन्होंने पत्रिका का उद्देश्य बतलाते हुए, उसके माध्यम से हिन्दू समाज की बुराइयों पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने लिखा कि हिन्दू समाज एक ऐसी मीनार के समान है जिसमें अनेक मंजिलें हैं; पर उनमें प्रवेश के लिए कोई द्वार नहीं है। व्यक्ति उसी मंजिल में दम तोड़ेगा जिसमें वह पैदा हुआ। हिन्दू समाज ब्राह्मणों, अ-ब्राह्मणों और अछूतों में विभक्त है और उन विद्वानों पर उन्हें दया आई जिन्होंने लिखा कि ईश्वर सभी प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है; पर व्यवहार में सभी एक दूसरे को नीच-ऊँच अथवा छूत-अछूत मानते हैं। डॉ० अम्बेडकर ने दुःख प्रकट किया कि शिक्षा को केवल उच्च वर्गों, विशेषकर ब्राह्मणों की ही बपोती बना दिया गया है। अतः दलितों के हितों की सुरक्षा के लिए, ऐसे व्यापक प्रयत्न किए जाएँ कि उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना उत्पन्न हो और वे अपने मानवीय अस्तित्व को पहिचानें। उन्होंने इन लोगों की सामाजिक स्वतन्त्रता तथा समानता के लिए जोरदार वकालत की जिसका व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा।

डॉ० अम्बेडकर अभी ऐसी स्थिति में नहीं थे कि हिन्दू समाज की बुराइयों पर पूर्णतः प्रहार करते। वे प्रोफेसर का काम कर रहे थे। उनके शस्त्रागार में सबल हथियारों की कमी भी थी। वे अपने को समाज में स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। 21 मार्च 1920 को कोल्हापुर रियासत के माणगांव में उनकी अध्यक्षता में दलितों की एक सभा हुई जिसमें छत्रपति साहू महाराज ने

भी भाग लिया और अपनी देववाणी में कहा—'भाइयो! आज आपको डॉ० अम्बेडकर के रूप में अपना रक्षक नेता मिला है। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी छुआछूत की बेड़ियों को अवश्य तोड़ेगा। केवल इतना ही नहीं, जैसा कि मेरी अन्तरात्मा कहती है, एक समय आएगा जब डॉ० अम्बेडकर अखिल भारत के नेता बनेंगे जिसकी वाणी में प्रभाव एवं प्रसिद्धि होगी।' निश्चय ही साहू महाराज का कथन सत्य सिद्ध हुआ। सभा के बाद सहभोज हुआ जिसमें साहू महाराज, सरकारी कर्मचारी, डॉ० अम्बेडकर और अन्य अछूत भाइयों ने भाग लिया। उस समय, इन अवसरों का अत्यधिक महत्त्व हुआ करता था।

मई 1920 में एक और परिषद् नागपुर में बुलाई गई जिसके पीछे डा० अम्बेडकर की प्रेरणा तथा उत्साह था। साहू महाराज ने उस अखिल भारतीय बहिष्कृत (अछूत) परिषद् की अध्यक्षता की। परिषद् की एक कमिटी मे डा० अम्बेडकर ने कहा—"दलित समाज की प्रगति में बाधक कोई भी संस्था या व्यक्ति हो, वह चाहे दलित समाज का हो या सवर्ण हिन्दू समाज का, उसका तीव्र निषेध करना चाहिए।" तत्पश्चात् डॉ० साहब ने कर्मवीर शिन्दे की निरर्थक योजना पढ़कर सुनाई जिसमें शिन्दे साहब ने यह प्रस्ताव रखा था कि अछूत प्रतिनिधियों को न तो सरकार नियुक्त करे और न ही अछूत मतदाता उनको निर्वाचित करें, बल्कि अछूत प्रतिनिधियों का चुनाव विधान परिषद् के निर्वाचित सदस्य करें। मांटेग-चेम्सफर्ड सुधारयोजना के अन्तर्गत लॉर्ड साउथबरो की अध्यक्षता में मतदान कमिटी के समक्ष शिन्दे साहब ने यह विचार रखा था। बॉम्बे सरकार ने साउथबरो कमिटी के सामने अछूतों का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए शिन्दे और भीमराव को नियुक्त किया था। भीमराव ने शिन्दे के विचार का कड़ा विरोध किया और उसे समस्त अछूत समाज का अपमान बतलाया। परिषद् में बोलते हुए, भीमराव ने कहा कि अब अछूतों को अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयास करना चाहिए। उन्होंने दलितों के मन में अथाह उत्साह का संचार किया जिसे दलितो ने पहले कभी महसूस नहीं किया था।

नागपुर में हुई यह परिषद् दलित आन्दोलन में एक नया मोड़ था क्यों कि उसमें सभी वक्ताओं ने अछूतों के स्वावलम्बन तथा आत्म-सम्मान की आवश्यकता का अनुभव किया। भीमराव का दृष्टिकोण यह था कि सवर्ण हिन्दू अछूतोद्धार के लिए कितना ही कड़ा परिश्रम करें, वे अछूतों के मन एवं व्यथा को नहीं जान सकते। इसी कारण, वे उन संस्थाओं के विरुद्ध थे जिन्हें सवर्ण हिन्दुओं ने दलितों के कल्याण हेतु प्रारम्भ किया था। नागपुर सभा ने भीमराव को एक ऐसा मञ्च प्रदान किया जहाँ से उन्होंने अछूतों की दृष्टि को, पहले से चल रहे डिप्रेस्ड क्लासिज मिशन से हटाकर अपनी ओर मोड़ लिया। उन्होंने दलित जातियों के लोगों से अनुरोध किया कि वे सङ्गठित हो जायें ताकि अन्याय एवं अत्याचार का सामना अच्छी तरह किया जा सके। भीमराव की रुचि पूर्णतः अछूतोद्धार में विकसित हो गई, पर उन्होंने अभी तक विधिवत कार्य प्रारम्भ नहीं किया था। वे अपने अधूरे अध्ययन को पूरा करने के लिए लन्दन जाने की टोह में थे।

भीमराव 11 नवम्बर 1918 को सिडेनहॅम कॉलेज में अस्थाई अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। उनके साथ उसी कॉलेज में श्री एम० सी० छागला भी अस्थाई प्रोफेसर थे। श्री छागला की राजनीति में बड़ी रुचि थी अत: वे राजनीति एवं सरकारी कॉलेज दोनों में साथ-साथ काम नहीं कर सकते थे। श्री छागला को, राजनीति में भाग लेने कारण, पुन: नियुक्त नहीं किया गया। श्री छागला ने अपनी पुन: नियुक्ति का प्रयास करते हुए उनका उदाहरण प्रस्तुत किया कि वे भी तो राजनीति में भाग लेते हैं। श्री छागला की तो पुन: नियुक्ति नहीं हुई, पर डॉ० अम्बेडकर को भी उन्हीं के कारण नियुक्ति नहीं मिल पाई। हालांकि डॉ० साहब के लिए यह अच्छा ही हुआ अन्यथा न जाने कब तक उस नौकरी में फंसे रहते और संभवत: लन्दन यूनिवर्सिटी में पुन: विद्याध्ययन की अवधि समाप्त हो जाती। इस प्रकार वे 5 जुलाई 1920 को अपनी नौकरी से निवृत्त हुए और लन्दन जाने की व्यवस्था में जुट गए।

लन्दन में ज्ञान-साधना :

एक प्रोफेसर के रूप में, डॉ० अम्बेडकर को अच्छा वेतन मिलता था। फिर भी वे बहुत ही किफायत से रहते थे। वे, अपने परिवार सहित, उसी श्रमिक क्षेत्र में, दो कमरों में रहते थे जो इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट चाल (परल) में था और जहाँ उनके माँ-बाप तथा भाई आनन्दराव भी रहते थे। अपने वेतन में से डॉ० अम्बेडकर एक निश्चित रकम रामाबाई को दिया करते थे ताकि परिवार का खर्च चलता रहे। अधिकांशत: पैसे वह बचाने का प्रयास करते थे जिससे लन्दन जाने की समस्या हल हो जाये।

अन्त में, डॉ० अम्बेडकर ने, अपना कुछ पैसा बचाया, कोल्हापुर के साहू महाराज से कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त की, और अपने मित्र मि० नवल भथेना से 5,000/- रुपए का ऋण लेकर, लन्दन प्रस्थान किया। जुलाई 1920 में, वे कानून तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन पूरा करने के लिए लन्दन रवाना हो गए। सितम्बर 1920 से, उन्होंने लन्दन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स एण्ड पॉलिटीकल-साइन्स में अर्थशास्त्र का अध्ययन पुन: आरम्भ कर दिया और साथ-साथ, ग्रेज-इन में बॉर-एट-लॉ की पढाई भी सम्भाल ली। इस प्रकार वे पुन: ज्ञान-साधना में जुट गए जिसके लिए कई वर्षों से चिन्तित थे।

इसी बीच बड़ौदा के अधिकारी रियासत की आर्थिक स्थिति नियंत्रित करने और महाराजा के हितों की रक्षा का बहाना लेकर डॉ० अम्बेडकर के पीछे पड़ गए। चूंकि डॉ० साहब ने इकरारनामा के अनुसार, बड़ौदा राज्य में दस साल तक सेवा नहीं की, इसलिए उन्हें छात्रवृत्ति की रकम वापिस करनी चाहिए, यह किस्सा उन्होंने गढ़ लिया। इन अधिकारियों ने सिडेनहॅम कॉलेज के प्रिन्सिपल, बॉम्बे के शिक्षा विभाग तथा बॉम्बे के एक प्रसिद्ध मजदूर नेता को लिखा कि वे डॉ० अम्बेडकर से रकम वापिस करवाने में मदद करें। इस रकम को उन्होंने ऋण की संज्ञा दी। वे यह भी सोच रहे थे कि डॉ० अम्बेडकर पर कानूनी कार्यवाही की जाए। लगता है, बड़ौदा महाराजा को इन सब बातों से कतई अवगत

नहीं कराया गया होगा। इधर डॉ० अम्बेडकर के लिए यह सिर-दर्द का विषय बना हुआ था। लेकिन जब महाराजा को इन सब हरकतों का पता लगा तो उन्होंने अधिकारियों को लताड़ा और निर्देश दिया कि आइन्दा डॉ० अम्बेडकर से इस सम्बन्ध में कोई पत्र-व्यवहार न किया जाए।

अब निश्चिन्त होकर, डॉ० अम्बेडकर ने अपना सारा ध्यान पढ़ाई-लिखाई में लगा दिया। वे अधिकतर अपना समय लन्दन म्यूजियम में बिताया करते थे जहाँ संसार के विख्यात विद्वानों की कृतियाँ रखी हुई थीं और जहाँ कार्ल-मार्क्स, मज्जिनी, लेनिन तथा सावरकर जैसे महान् लोगों ने ज्ञान-साधना की थी। लन्दन म्यूजियम में, वे पुस्तकों में डूब जाया करते थे। वे सुबह के आठ बजे से लेकर शाम के पांच बजे तक वहाँ डटे रहते थे। वे समय का मूल्य पहिचानते थे। समय और धन बचाने के लिए, वह दोपहर का भोजन भी नहीं करते थे। एक महिला द्वारा संचालित निवास-स्थान में वह रहा करते थे। वह महिला बड़ी ही कठोर एवं भयानक लगती थी। नाश्ते में, वह अपने किरायेदारों को मछली का एक टुकड़ा, एक कप चाय, तथा डबल रोटी के टुकड़ों पर लगा हुआ कुछ मुरब्बा दिया करती थी। भीमराव इतना नाश्ता खाकर सुबह ही सुबह लन्दन म्यूजियम की ओर दौड़ते। प्रायः वही प्रथम पहुँचने वाले होते थे। तब वह घण्टों तक वहाँ पुस्तकों में डूबे रहते थे, बीच में कोई चाय-पानी नहीं होता था क्योंकि धनाभाव था। वह शाम तक वहीं जमे रहते और अन्त में, लाइब्रेरी का वाचमेन उन्हें जाने के लिए आग्रह करता था। भीमराव ही अन्तिम व्यक्ति के रूप में बाहर आते। उनकी जेबें लिखे गए नोट्स से भरी पड़ी रहती थीं। बाहर निकलते-निकलते वह एकदम थक जाते, चेहरा पीला पड़ जाता और सारा शरीर कमजोर हो जाता था। शरीर से अधिकाधिक काम लिया जाए, यह उनका सिद्धान्त बन गया था।

उनकी ज्ञान-साधना केवल लन्दन म्यूजियम तक ही सीमित नहीं थी। वह इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन यूनिवर्सिटी तथा शहर की सभी बड़ी लाइब्रेरीज़ में घण्टों विद्याध्ययन में लीन रहते थे। इस प्रकार अपनी थीसिस की तैयारी में वे दिन-रात जुटे रहते थे। ऐसे कड़े परिश्रम के पश्चात् वह शाम को खुली हवा में एकाध घण्टे के लिये घूमा करते थे और फिर वे रात का भोजन उसी महिला के यहां करते, जहां ठहरे हुए थे। वह महिला भोजन के साथ थोड़े बिस्कुट्स, थोड़ा मक्खन और दे दिया करती थी ताकि विद्यार्थी लोग शिकायत न करें। वह महिला इतनी बेरुखी थी कि बाद में, डॉ० साहब ने कहीं लिखा—'वह मकान मालकिन बड़ी खतरनाक महिला थी। मैं सदैव उसकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करता रहता था; लेकिन मुझे विश्वास है, वह तबाह होकर ही रहेगी।' भोजन के बाद उनके अध्ययन का दूसरा दौर अपने निवास-स्थान पर चलता। रात्रि के दस बजे तक यदि मानसिक भूख शान्त हो जाती तो वे पेट की भूख से कुलबुलाते। भूख उन्हें पागल बना देती। उनकी जान-पहिचान का एक भारतीय दयालु व्यक्ति वहीं था जिसने पापड़ों का एक टिन उन्हें दिया ताकि वह उन्हें इस्तेमाल कर सकें। रात को वह एक कप चाय और चार पापड़ों को खाकर अपनी भूख मिटाते। फिर वह ध्यान-यज्ञ में लीन हो जाते। यह यज्ञ सुबह तड़के तक

चलता रहता। जब उनका रूम-साथी, मि० अस्नोडकर, एक अच्छी नींद के बाद अचानक उठता, वह भीमराव को पढ़ते ही देखा करता था। तब वह उनसे प्रार्थना करता कि भाई साहब अब तो आप कृपाकर सो जाइए; लेकिन डॉ० साहब का नम्र निवेदन होता कि गरीबी के कारण, उसके पास इतना समय नहीं कि वह लन्दन में ही पड़ा रहे। उसे तो जहां तक हो वहां तक शीघ्र ही अध्ययन समाप्त कर भारत लौटना है।

यदा-कदा उनके पास जेब-खर्चे की कमी हो जाती तो अपने मित्र मि० भथेना को पत्र लिखते। वह भी सच्चा मित्र था, जिसने सदैव उनके लिए धन भेजा। एक बार उन्होंने पत्र में लिखा—'मेरा विश्वास करो, मुझे अत्यधिक खेद है कि मैं तुम्हें तंग करता हूँ। मैं पूर्णतः महसूस करता हूँ कि वे तकलीफें जो मैं तुम्हें देता हूँ, वे ऐसी हैं जिन्हें परम मित्र ही सहन कर सकता है। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे बार-बार पैसा मांगने से तुम्हारी कमर कमजोर नहीं होगी, तुम मुझसे अलगाव नहीं चाहोगे क्योंकि तुम ही मेरे एकमात्र प्रिय मित्र हो।' भीमराव ने लन्दन से जर्मनी जाने के लिए, मि० भथेना से 2000/- रुपयों की मांग की। भथेना ने वह रकम भेज दी। उसने सच्ची मित्रता का परिचय दिया।

बेंजामिन फ्रेन्कलिन ने; जिसने एक बहुत ही निर्धन लड़के के रूप में जीवन प्रारम्भ किया और जो एक महान् व्यक्ति बना, कहा था कि सफलता दो बातों पर निर्भर होती है—परिश्रम और मितव्ययता। भीमराव ने इसी सिद्धान्त का परिपालन किया। वह महीने भर आठ पाउण्ड से गुजारा करते थे जो बहुत ही कम रकम होती थी। फिर भी वे मन और शरीर से बहुत स्वस्थ बने रहे। वे मुश्किल से ही कपड़ों पर कुछ खर्च किया करते थे। शहर में आने-जाने के लिये कोई पैसा खर्च नहीं करते थे। पैदल ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे। होटलों में एक पैसा भी खर्च नहीं करते, न कभी दावतों में शामिल होते और न ही कभी थियेटर देखते। कुछ ही व्यक्ति इस प्रकार जीवन बिताकर इतिहास में महान् बन पाये हैं। कड़े परिश्रम, घोर कठिनाइयों और उच्च चिन्तन तथा ज्ञान-साधना के द्वारा ही, सफलता ऐसे लोगों के पैर चूमती है।

निस्सन्देह भीमराव उच्च शिक्षा की प्राप्ति में लीन थे; पर उन्होंने अपने जीवन के मूल लक्ष्य को भुलाया नहीं था। महान् आदमी वास्तव में भोग-विलास के लिये नहीं जीता, बल्कि अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का अभ्यास करता है। लन्दन में आने के बाद, उन्होंने उस समय के भारतीय मामलों के विदेशमन्त्री, माण्टेग से मुलाकात की और उस समय लन्दन में पधारे विट्ठलभाई पटेल से भी वे मिले। उन्हें भारत में रहने वाले अछूतों की दयनीय स्थिति के बारे में अवगत कराया। लन्दन से ही वे 'मूकनायक' को संभालने का प्रयास करते रहे और निरन्तर लेख एवं पत्र लिखते रहे। प्रत्येक पत्र में, उन्होंने इसी बात पर बल दिया कि अछूत जातियों में एकता एवं संगठन स्थापित हो ताकि वे सामूहिक दृष्टि से, अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढ सकें। वे सदैव अपने समाज के नेताओं के स्वास्थ्य के बारे में पूछते रहते थे। उन्हें मूक-नायक के सम्पादक की खैर-ख्वाह की चिन्ता

बनी रहती, हालांकि वह सम्पादक आत्म-प्रशंसा में डूबकर पत्र के जनक भीमराव को उपेक्षित करने लगा था; लेकिन वे तो केवल इतना ही चाहते थे कि पत्र का प्रकाशन निरन्तर चलता रहे।

उन दिनों डॉ० अम्बेडकर को मराठी ड्रामा पढ़ने का बड़ा शौक था। वे अपने मित्र शिवतारकर को निरन्तर लिखते रहते थे कि वह उन्हें महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लेखक गडकरी के मराठी ड्रामा भेजते रहें। एक और पुस्तक जिसके लिए उन्होंने लन्दन से लिखा वह मेककुल्लॉक द्वारा लिखित 'रिकार्डोज वर्क्स' थी। यह पुस्तक अप्राप्य; किन्तु महत्त्वपूर्ण थी। उसे बॉम्बे के एक बुक-स्टॉल से खरीद कर लन्दन भेजा गया। सामान्यत: भीमराव लन्दन में स्वस्थ रहे; पर एक पत्र से ऐसा लगा कि वे अक्टूबर 1922 में बीमार पड़ गये थे; परन्तु यह खबर उनके परिवार वालों से छिपा ली गई ताकि उनकी पत्नी रामाबाई परेशान न हो जाएँ क्योंकि उन्हें सदैव अपने पति के स्वास्थ्य की चिन्ता बनी रहती थी।

दिन पर दिन बीतने के पश्चात्, भीमराव ने अपना शोध-कार्य बहुत कुछ पूरा कर लिया था। जब एक शोध-कार्य पूरा हो गया तब उसे उन्होंने 'प्रॉविंसियल डीसेण्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पेरियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया' के नाम से उपस्थित किया। इस कार्य के लिए, उन्हें जून 1921 में मास्टर ऑफ साइन्स की डिग्री प्रदान की गई। अक्टूबर 1922 में, उन्होंने अपनी प्रसिद्ध थीसिस 'द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी' लन्दन यूनिवर्सिटी को प्रस्तुत की और फिर वे बार-एट-लॉ की परीक्षा के लिए, कानून के अध्ययन में जुट गये। कानून की परीक्षा वे पहले नहीं कर पाये थे क्योंकि एक ओर तो वे डी० एस० सी० के शोध-कार्य में संलग्न थे और दूसरी ओर उन्हें वे कानून की पुस्तकें प्राप्त न हो पाईं जिनके लिए कुछ विद्यार्थियों ने उन्हें देने का वादा किया था।

इसी बीच, डॉ० अम्बेडकर यूरोप के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र बॉन (जर्मनी) जाने की सोच रहे थे क्योंकि लन्दन यूनिवर्सिटी का अध्ययन प्राय: समाप्त हो चुका था। वे अप्रेल 1922 के मध्य से लेकर मई 1922 के मध्य जर्मनी में रहे ताकि वे बॉन यूनिवर्सिटी में प्रवेश का प्रबन्ध कर सकें। फिर वे लन्दन वापिस आ गये। लन्दन यूनिवर्सिटी में डी० एस० सी० का शोध-कार्य प्रस्तुत करने के बाद, वे बॉन यूनिवर्सिटी में अध्ययन के लिए पुन: चले गये। जहां वे जर्मन एवं फ्रेन्च भाषाओं का अध्ययन करने लगे। मुश्किल से वे वहां तीन महीने रहे होंगे कि मार्च 1923 को उन्हें उनके प्रोफेसर एडविन कैनन ने लन्दन वापिस बुला लिया क्योंकि उनके परीक्षकों ने, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादी विचारधारा में रुचि रखते थे, थीसिस को, सारांश बदले बिना कुछ संशोधन के पश्चात् पुन: पेश करने के लिए लिखा। डॉ० अम्बेडकर की थीसिस ने कट्टरवादी ब्रिटिश परीक्षकों के मन में कुछ उत्तेजना पैदा कर दी जिसका प्रतिफल उन्हें इस रूप में मिला। वैचारिक जगत में उत्तेजना पैदा करने का डॉ० साहब का यह प्रथम अवसर नहीं था। कुछ दिनों पहले जब उन्होंने विद्यार्थी संघ के समक्ष 'रेस्पॉन्सिबिलिटीज ऑफ ए रेस्पॉन्सिबिल गवर्नमेण्ट' नामक लेख पढ़ा तो बड़ी गरम-गरम बहस हुई। उससे वैचारिक जगत् में भी

उत्त जना फैली और डॉ० अम्बेडकर को भारतीय क्रान्तिकारी समझा जाने लगा। यहां तक कि प्रोफेसर हेरॉल्ड जे० लॉस्की ने, जो उस समय लन्दन स्कूल ऑफ साइंस में अध्यापन कार्य कर रहे थे, कहा कि लेख में जो विचार व्यक्त किए गए हैं स्पष्टतः क्रान्तिकारी स्वरूप के ही हैं।

डॉ०अम्बेडकर, प्रोफेसर कैनन की सलाह के अनुसार, अपने प्रबन्ध में आवश्यक सुधार करने में जुट गए; लेकिन पास में जितना पैसा था वह समाप्त होता जा रहा था। जो कुछ थोड़ा सा धन उन्होंने पेट काटकर इकट्ठा किया था, वह उन्होंने पुस्तकों के खरीदने पर खर्च कर दिया था। उधर भारत में परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी। अतः अपनी थीसिस पर विचार केन्द्रित करते हुए, वे 14 अप्रेल 1923 को बॉम्बे वापस लौट आए। कुछ दिनों के पश्चात्, उन्होंने अपनी थीसिस, 'द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी' को बॉम्बे से पुनः लन्दन यूनिवर्सिटी को भेजा। इस बार परीक्षकों ने उसे स्वीकार कर लिया और अन्त में, भीमराव को डी० एस-सी० की डिग्री प्रदान की गई। कई वर्षों के कड़े परिश्रम का फल उन्हें मिला जिसे पाकर वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। लन्दन के मेसर्स पी० एस० किंग एण्ड सन ने दिसम्बर 1923 में उसे प्रकाशित किया। भीमराव ने ग्रन्थ को अपने पूजनीय माता-पिता को समर्पित किया। जिन्होंने अपने पुत्र को महान् बनाने में अनेक प्रकार के कष्टों का सामना किया था। इस ग्रन्थ की भूमिका उनके ही शिक्षक प्रोफेसर एडविन कैनन ने लिखी। प्रोफेसर कैनन वैसे कई बातों से सहमत नहीं थे; पर ग्रन्थ की उन्होंने प्रशंसा की क्योंकि उसमें विचार एवं दृष्टिकोण की ताजगी थी जो सामयिक रूप से महत्त्वपूर्ण थी।

डॉ० अम्बेडकर शिक्षा की दृष्टि से पूर्णतः परिपक्व हो गये। उन्होंने कोलम्बिया यूनिवर्सिटी से एम० ए०, पी-एच० डी०, लन्दन यूनिवर्सिटी से एम० एस-सी०, डी० एस-सी० और ग्रेज़-इन से बॉर-एट-लॉ की डिग्रियां प्राप्त कर लीं। अब वे दलितों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर अधिकार पूर्वक विचार कर सकते थे और उनका मार्ग-दर्शन भी कर सकते थे। अतः उनका ध्यान वकालत द्वारा परिवार के भरण-पोषण तथा समाज-सुधार की ओर गया। उनकी यह मान्यता थी कि परिवार एवं समाज दोनों का साथ-साथ ध्यान रखना आवश्यक है ताकि एक के लिए दूसरे की उपेक्षा न हो।

वकालात एवं समाज-सुधार :

सर्वोच्च शिक्षा प्राप्ति के पश्चात्, डॉ० अम्बेडकर ने अपना ध्यान जीविका कमाने तथा समाज-सुधार की ओर दिया। उन्होंने वकालात करने का निश्चय किया। यही एक ऐसा पेशा था जिससे उन्हें बहुत से ऐसे अवसर सुलभ हुए जब वे अपने जीवन के एकमात्र ध्येय, छुआछूत-निवारण के प्रति अपना समय दे पाये। दलितों के उद्धार की भावना ने ही उन्हें वकालत के पेशे की ओर आकर्षित किया। उस समय वे अत्यन्त धनाभाव में चल रहे थे। यहां तक कि वकालात की सनद प्राप्त करने के लिए उनके पास पैसा नहीं था। ऐसी स्थिति में, उनके परम मित्र मि० भथेना ही काम आए। मि० भथेना ने उन्हें पैसे दिए जिनसे भीमराव ने

अपनी सनद प्राप्त की। एक बैरिस्टर के रूप में, उन्होंने जून 1923 में वकालात का काम प्रारम्भ कर दिया। छुआछूत रूपी कांटे, अनुभवहीन वकालत की शुरूआत, अदालतों में अप्रिय वातावरण, आदि ने उनके कार्य को बड़ा ही कठिन बना दिया था। इन बातों से वे निरुत्साहित कतई नहीं हुए। वे यह जानते थे कि उत्तमता कड़े परिश्रम से ही होती है। बचपन से ही उनका ऐसा अनुभव था और वकालात में उत्तम स्थान प्राप्त करने में वे जुट गये।

डॉ० अम्बेडकर ने बॉम्बे बॉर की एपिलेट शाखा में वकालात प्रारम्भ की क्योंकि ऑरिजिनल शाखा में व्यावहारिक रूप से सफलता किसी वकील की योग्यता तथा क्षमता की अपेक्षा न्यायाभिकर्ता (प्रतिवक्ता) के साथ प्रभाव पर निर्भर होती थी। उन दिनों सामान्य धारणा यह हो गई थी कि यूरोपियन बैरिस्टर ब्रिटिश न्यायाधीशों के समक्ष अच्छा प्रभाव डालता है। उसके तर्कों की अपेक्षा उसके शरीर का रूप-रंग कहीं अच्छा प्रभावशाली होता था। भीमराव का मार्ग तो चारों ओर से अवरुद्ध था। सवर्ण हिन्दू-न्यायाभिकर्ता (सॉलिसटर्स) डॉ० साहब के साथ किसी प्रकार का काम करने के लिए कतई तैयार नहीं होते थे क्योंकि उन्हें भय था कि एक अछूत बैरिस्टर के साथ रहने से, उनके पास सवर्ण हिन्दुओं का आना-जाना बन्द हो जाएगा। फलतः वे उसी काम से सन्तुष्ट रहते जो उनके पास स्वतः आता था। यद्यपि वे बाद में बॉम्बे हाई कोर्ट के वकीलों की श्रेणी में आ गये; पर प्रारम्भ में, सभी महान् वकीलों के समान, उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयां उठानी पड़ीं। डॉ० साहब तो अछूत भी थे। इसलिए उनकी परेशानियों का तो ठिकाना ही नहीं था।

डॉ० अम्बेडकर सरकारी नौकरी के पक्ष में नहीं थे क्यों कि उससे समाज सुधार के काम में बड़ी अड़चन पैदा होने की संभावना थी। उन्होंने धर्मान्तर के समय नागपुर में 15 अक्टूबर 1956 को कहा, "जब मैं लन्दन से पढ़कर वापिस आया तब मुझे सरकार ने डिस्ट्रिक्ट जज बनने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन इस रस्सी को मैंने अपने गले में इसलिए नहीं बन्धवाया कि मेरे सरकारी नौकर हो जाने पर मेरे लोगों की सेवा कौन करेगा? इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मैं नौकरी के चक्कर में नहीं पड़ा।" श्री कृष्णाजी केलुस्कर के सद्प्रयासों से, उन्हें फिर से एल्फिन्स्टन कॉलेज में प्रोफेसर की नौकरी मिल रही थी, पर डॉ० साहब ने उन्हें सूचित कर दिया कि अब वह ऐसी नौकरी नहीं करना चाहते जिससे उनके समाज-सुधार आन्दोलन में बाधा उत्पन्न हो। परिवार का खर्च तो उन्हें चलाना ही था। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने 'बाटली बॉयज अकाउन्टेंसी ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट' में अंशकालिक लेक्चरर के पद को जून 1925 में स्वीकार किया और मार्च 1928 तक वे इस पद पर कार्य करते रहे। उनकी वकालात अच्छी तरह नहीं चल रही थी। उनका अधिकांश समय समाज-सुधार में व्यतीत होता था, जब कि वकालात के लिए अदालतों में जमकर बैठने पर ही वह पेशा अच्छी तरह चल सकता था और आज भी वही स्थिति है।

उनके जीवन का प्रमुख ध्येय अछूतोद्धार था और डॉ० अम्बेडकर ने अपने

अछूतोद्धार आन्दोलन का शुभारम्भ 20 जुलाई 1924 के दिन बॉम्बे में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना से किया। इस सभा का रजिस्ट्रेशन हुआ, जिसका कार्य-क्षेत्र सारे बॉम्बे प्रान्त को बनाया गया। सभा के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

1 दलित वर्गों में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करना। छात्रावासों की स्थापना करना और उन साधनों का विकास करना जो उनके उत्थान के लिए समयानुसार आवश्यक हों।

2 दलित वर्गों में वाचनालय, समाज-केन्द्र और विद्या-केन्द्र स्थापित करके, संस्कृति का प्रसार करना।

3 दलित वर्गों की आर्थिक स्थितियों को औद्योगिक तथा कृषि विद्यालयों की स्थापना द्वारा सुधारना।

4 दलित वर्गों की विभिन्न कठिनाइयों का प्रतिनिधित्व एवं निवारण करना।

इस सभा का अध्यक्ष सर सी० एच० सीतलवाड़, एल० एल० डी०, को बनाया गया। उसके उपाध्यक्ष थे—सर्वश्री मीयर निसिम, रुस्तमजी जिनवाला, जी० के० नरीमन, डॉ० आर० पी० पारांजपे, डॉ० वी० पी० चावड़, और वी० जी० खेर जो बाद में बॉम्बे राज्य के मुख्यमन्त्री बने। प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष डॉ० अम्बेडकर, उसके मन्त्री श्री शिवतारकर और खजाञ्ची श्री एन० टी० जाधव थे। हितकारणी सभा की ओर से सर्वप्रथम सोलापुर में छात्रालय की स्थापना की गई और बॉम्बे में वाचनालय तथा महार हॉकी क्लब खोले गये।

सभा का एकमात्र ध्येय अछूतोद्धार था। साथ ही, निहित स्वार्थों में लीन वर्तमान संस्थाओं से दलितों की रक्षा करना था। डॉ० अम्बेडकर एक नए पृथक मार्ग की स्थापना क्यों कर रहे थे? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। अछूतोद्धार तथा समाज-सुधार से सम्बन्धित उस समय अनेक संस्थाएँ थीं। उनमें डॉ० साहब की आस्था नहीं थी। उन्होंने कहा कि हिन्दू परिवार सुधार तथा हिन्दू समाज सुधार में अन्तर है, जिसे सामान्य आदमी नहीं समझ पाता। ये सभी संस्थाएँ हिन्दू परिवार सुधार तक सीमित थीं। समाज के पुनरुत्थान में बहुत कम रुचि थी। प्रार्थना-समाज तथा ब्रह्म-समाज के कार्य-कर्त्ताओं ने मानववादी दृष्टिकोण को लेकर सुधार की आवाज उठाई। छत्रपति साहू महाराज तथा समाजीराव गायकवाड और अन्य नेताओं, सुधारकों, बुद्धिजीवियों, महात्माओं, देशभक्तों आदि ने समाज-सुधार तथा दलितोद्धार के प्रशंसनीय प्रयास किए, पर वे बीमारी की जड़ को समझने में असमर्थ रहे। फलत: सदियों पुराना रोग—जातिवाद एवं छुआछूत, ज्यों का त्यों बना रहा। अछूतों को बाह्य रूप से सहायता तो मिली, परन्तु वे अन्यों द्वारा की गई सहायता और आत्म-सहायता में अन्तर नहीं कर पाए। डॉ० अम्बेडकर ने यही नारा बुलन्द किया कि 'आत्म-सहायता सबसे उत्तम सहायता है।' यह भावना ही अछूतों तथा दलितों को अविरल प्रगति के मार्ग पर ले जा सकती है। आत्म-सहायता के बिना अच्छी गति संभव नहीं थी और आज भी सम्भव नहीं है।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना के साथ आत्म-सहायता तथा आत्म-सम्मान का युग प्रारम्भ हुआ। सभा के पैर अच्छी तरह जमने लगे। दलित वर्गों से सम्बन्धित हाई स्कूल के छात्रों के लिए, 4 जनवरी 1925 को सभा ने सोलापुर में एक छात्रावास शुरु किया। छात्रों के कपड़ों, स्टेशनरी तथा निवास-स्थान पर खर्च को सहन करने का भार सभा ने उठाया। सोलापुर की म्यूनिसिपेलिटी ने भी उन्हें 40 रु माहवार की मदद दी। सभा ने एक मासिक पत्रिका 'सरस्वती विलास' भी चलाई। डॉ० साहब की ईमानदारी तथा कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर अब अछूत लोग उनकी ओर आकर्षित हो रहे थे। लन्दन से आने के बाद, उन्होंने एक आम सभा का आयोजन भी किया था; पर दलित वर्ग के अधिकतर सदस्यों ने उसमें भाग नहीं लिया हालांकि डॉ० अम्बेडकर ने स्वयं अपने को उनसे पृथक् नहीं समझा। वे बाम्बे प्रेसीडेन्सी के निपानी नामक स्थान पर प्रान्तीय दलित वर्ग कान्फ्रेन्स में भाग लेने गए और अपने भाषण द्वारा अछूतों में उत्साह एव आत्म-सहायता का विचार संचारित किया। उन्हें उनके लक्ष्य की दिशा प्रदान की। इस प्रकार वह जनता में लोकप्रियता प्राप्त करते रहे।

रत्नागिरी जिले के मालवण नामक गांव में 'बॉम्बे प्रान्तीय अस्पृश्य परिषद्' का पहला अधिवेशन अप्रेल 1925 में डॉ० अम्बेडकर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अभी तक महाराष्ट्र में अछूतोद्धार की लगाम सवर्ण हिन्दुओं के हाथों में थी जिनके सामने निहित स्वार्थ कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। अछूतोद्धार आन्दोलन का संचालन ईमानदारी से नहीं हो रहा था। निस्सन्देह कार्य कम और प्रदर्शन अधिक था। वह भी राजनीतिक रंग में डूबा हुआ प्रदर्शन था, जिससे किसी मौलिक परिवर्तन की संभावना की आशा नहीं थी। डॉ० अम्बेडकर की इच्छा थी कि दलित लोग स्वयं ही अपने आन्दोलन का संचालन करें। वह चाहते थे कि अछूतों में आत्म-सम्मान की भावना पैदा हो और वे स्वावलम्बन के साथ जिएँ। मालवण गांव के अलावा, डॉ० साहब, शिवतारकर के साथ, गोवा भी गए और वहां कुछ लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के बाद वह बॉम्बे वापिस लौट आए।

देश के विभिन्न भागों में हो रहे दलित आन्दोलनों तथा घटनाओं का भीमराव बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने रामस्वामी नायकर द्वारा प्रारम्भ अछूतों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह की प्रशंसा की और अपनी पत्रिकाओं में उसका विवरण प्रकाशित किया। शनैः शनैः दलितों का ध्यान डॉ० अम्बेडकर के 'आत्म-उत्थान' के नारे की ओर आकर्षित हो रहा था। अप्रेल 1925 में, उन्होंने जेजूरी नामक स्थान पर एक आमसभा में भाग लिया और अछूतों से कहा कि वे अपने बसने के लिए बंजर भूमि की मांग करें ताकि वे सम्मानित नागरिकों की तरह जीवन-यापन कर सकें। जहां कहीं भी डॉ० साहब गए, स्त्री-पुरुष भारी संख्या में उनके दर्शन हेतु इकट्ठे होते थे। निर्धनता से पीड़ित, अछूत भाई-बहिन मैले-कुचेले फटे-पुराने कपड़ों में ही आया करते थे। उनमें निरुत्साह होता था। अभाव की छाया बनी रहती थी। बहुत सी स्त्रियों के पास तो तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र भी नहीं होते थे। इन असहाय चेहरों को देखकर डॉ० अम्बेडकर को बड़ा दुःख होता था। उनका हृदय क्षुब्ध हो उठता था, हांलाकि ऐसी अवस्था में

भी वे उनको प्रेमपूर्वक फटकारते हुए कहते: "अरे तुम कितनी दुर्दशा में हो। तुम्हारे असहाय चेहरे देखकर और तुम्हारे दीनता भरे शब्द सुनकर मेरा हृदय रोता है। तुम अपने ऐसे दीन-हीन जीवन से दुनिया के दुःख-दर्द क्यों बढ़ाते हो? तुम अपनी मां के गर्भ में ही क्यों न मर गए? अब भी मर जाओ तो तुम संसार पर बड़ा उपकार करोगे। यदि तुम्हें जीवित रहना है, तो जिन्दादिल बन कर जिओ। इस देश के अन्य नागरिकों को मिलता है, वैसा अन्न, वस्त्र और मकान तुम्हें भी हाँसिल हो। यह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए, तुम्हें ही आगे आना होगा। बड़ी मेहनत तथा दृढ़ता के साथ संघर्ष करना होगा।"

प्रारम्भ में डॉ० अम्बेडकर की वकालत बहुत ही ठण्डी रही। अन्य साथी वकीलों ने उनका स्वागत नहीं किया। उलटे विरोध ही किया। उनके विरुद्ध ऐसा वातावरण पैदा कर दिया कि कोई मुवक्किल उनके पास नहीं आता था। यहां तक कि कोर्ट में बैठने के लिए उन्हें कुर्सी भी नहीं मिलती थी। मि० जिनवाला की सहायता से कोर्ट में बैठने के लिए उन्हें मुश्किल से एक स्थान मिला। निस्सन्देह उनके पास ऐसे दलाल नहीं थे जो उनके धन्धे को चमकाकर उन्हें धन्धाखोर बनाते। सोना तपने के बाद ही चमकता है। वकालात के प्रारम्भिक दिनों में, उन्होंने बड़े बुरे दिन देखे। एक ओर कभी-कभी तो उनको पानी पीकर ही रहना पड़ता और दूसरी ओर सारा परिवार परेशान रहता था। उनके बच्चों को कुछ भी नहीं मिल पाता था। उनकी पत्नी रामाबाई में बड़ा स्वाभिमान था। दिन काटने के लिए, वह भी संतोष से रहती थीं। अपने पड़ोसियों से उधार मांगना उन्हें पसन्द नहीं था। फिर भी एक दिन उन्हें अपने पड़ौसी मारवाड़ी से कुछ पैसा उधार लेना पड़ा। डॉ० अम्बेडकर कोर्ट में जाते और खाली हाथ लौट आते थे। इससे बढ़कर उनकी दुर्दशा और क्या होती?

दिन तो सभी के बदलते हैं। व्यापक जन-सम्पर्क तथा सभाएं करने के फलस्वरूप, डॉ० अम्बेडकर की वकालत के अच्छे दिन आने लगे। इसी बीच, उनके पास एक महत्त्वपूर्ण मुकदमा आया जिसने उनकी वकालत को और भी चमका दिया। पूना के कुछ ब्राह्मणों ने तीन गैर-ब्राह्मण नेताओं-बागड़े, जेधे तथा जवालकर पर मुकदमा दायर कर दिया कि उन्होंने एक पर्चा प्रकाशित करवा कर, जिसमें लिखा है कि ब्राह्मणों ने भारत को तबाह कर दिया, ब्राह्मण समाज का अपमान किया है। ब्राह्मणों की ओर से, पूना के प्रसिद्ध वकील भोपतकर थे। जब वह मुकदमा सेशन जज के सामने आया तब डॉ० अम्बेडकर ने बड़ी योग्यता-पूर्वक सबल ढंग से अभियुक्तों की वकालत की और अक्टूबर 1926 में वे उस मुकदमे में विजयी हुए। वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टि से इस विजय का महत्त्व बड़ा व्यापक था, न केवल डॉ० साहब के लिए, बल्कि सम्पूर्ण दलित वर्गों के लिए। एक बैरिस्टर के रूप में, अब वे धीरे-धीरे चमक रहे थे। वे बॉम्बे हाई कोर्ट की पिछली कतार से अब प्रथम कतार में आने का प्रयास कर रहे थे, हालांकि सारा वातावरण उनके विपक्ष में ही कार्य कर रहा था जिसकी उन्हें कतई चिन्ता नहीं थी।

मुकदमे की एक और घटना थी, जो बड़ी रोचक है। एक दिन एक व्यक्ति बैरिस्टर अम्बेडकर को ढूँढते हुए उसी स्थान पर आ पहुँचा जहां वह रहते थे। उनके पुत्र यशवन्त ने डॉ० साहब को सूचना दी और वह बाहर आए। उन्हें देखकर वह व्यक्ति रोने लगा और भारी स्वर में बोला कि, 'आप मेरे मुकदमे की पैरवी कीजिए।' मालूम हुआ कि मुकदमे में इस व्यक्ति को सेशन जज द्वारा फांसी की सजा सुनाई जा चुकी है जिसकी अपील हाई कोर्ट में दायर कर दी है, पर कोई वकील उस मुकदमे में पैरवी नहीं करना चाहता क्यों कि उस मुकदमे में कोई जान नहीं है। अन्त में, एक वकील ने उस व्यक्ति को यह कहकर टाल दिया था कि तेरा मुकदमा बैरिस्टर अम्बेडकर ही ले सकता है, उनके घर जाकर मिलो। इसी कारण वह व्यक्ति डॉ० साहब के घर जा पहुँचा था। डॉ० साहब खुश थे कि अब लोग मुकदमों के लिए घर आने लगे हैं, पर जब उन्हें सारी कहानी का पता लगा तो मन उदास हुआ। सहृदय उन्होंने, उस व्यक्ति के मुकदमे को अपने हाथ में ले लिया। वह रात-दिन उसकी तैयारी में जुट गए। मुकदमे की पेशियां हुई। एक दो बार नहीं, कई बार। अपनी बहसों द्वारा डॉ० साहब ने जजों को बड़ा प्रभावित किया। उधर सारे घाघ वकील बहस सुनने आया करते थे कि डॉ० अम्बेडकर क्या कहता है? उस मुकदमे की काया पलट हो गई। जिसमें कोई दम नहीं था, उसे डॉ० साहब ने जीत कर दिखाया। सब लोग हाई कोर्ट में चकित रह गये। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर की एक योग्य बैरिस्टर के रूप में धूम मच गई। उनकी क्षमता एवं दक्षता में लोगों का विश्वास निरन्तर बढ़ने लगा जिसके कारण अनेक मुकदमे आने लगे।

बैरिस्टर अम्बेडकर के पास प्रायः ऐसे ही मुकदमे आते जिनमें जीतने की कोई गुन्जाइश नहीं होती थी; परन्तु वह अपनी योग्यता एवं ठोस तर्कों से उन्हें जीत लिया करते थे। जब उन्होंने प्रथम मुकदमा जीता तो उनकी श्रमिक बस्ती में बड़ी खुशियां मनाई गई और बॉम्बे के कोने-कोने में उनका नाम फैल गया। डॉ० अम्बेडकर अब भी उसी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चाल में रहते थे जहां वह माँ-बाप के समय से रह रहे थे। यहां आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं। अधिकांशतः वहां मजदूर लोग रहते थे जिनके पास जीवन निर्वाह के साधन बहुत कम थे। मिलों में काम करने वाले दलित वर्गों से सम्बन्धित श्रमिक ही यहां रहते थे।

पास की ही एक बिल्डिंग में, जो बॉम्बे की सोशल सर्विस लीग की थी, भीमराव का एक छोटे से कमरे में ऑफिस था। बड़े-बड़े लोग उनसे मिलने वहां आया करते थे। सूचना देकर जब कोई बड़ा आदमी वहां आता था तब वे अधिकतर अपने निवास-स्थान पर पूर्ण वस्त्र पहने मिला करते थे। अपने कमरे के दालान में वे उन सभी से मिला करते, जो उनसे मिलने आते थे। मेहमानों को सादा बेंचों पर ही बैठना पड़ता था। एक दिन महाराजा कोल्हापुर यों ही अचानक उनके निवास-स्थान पर आ टपके। भीमराव सिटपिटाते हुए, अपने कमरे में दौड़े और ड्रेस पहनकर आए, तब महाराजा का स्वागत किया। उन्हें अपने अध्ययन कक्ष में बैठाया। उनके कमरे में सफाई एवं सादगी थी। एक दिन म्युनिसिपल ऑफीसर ने अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा स्कीम के उद्घाटन के लिए, एक सभा बुलाई

जो उन्हीं के ऑफिस के सामने हुई। मुस्लिम नेता, मौलाना शौकत अली भी वहां आये हुए थे जो भीमराव से भी मिले। अली साहब मोटे थे। भीमराव ने हँसते हुए उनसे कहा कि वे अपने विशाल शरीर को सभा समाप्त होने तक एकत्र भीड़ में संभाल कर रखें अन्यथा कहीं किसी से टकराव न हो जाये।

बैरिस्टर होने के साथ-साथ, डॉ० भीमराव विविध प्रकार के काम करते रहते थे। कुछ ऐसे अवसर भी आए जब वे शिक्षा जगत् में फिर से जा सकते थे अथवा विधान परिषद् या बॉम्बे म्यूनिसिपल कार्पोरेशन के सदस्य मनोनीत हो सकते थे। इसी बीच सिडेनहॅम कॉलेज के प्रिंसिपल का पद रिक्त हो गया। उस समय सारे बॉम्बे शहर में उनसे अधिक योग्य आदमी उस पद के लिए नहीं था। वे वहां प्रोफेसर भी रह चुके थे। उनकी इच्छा प्रिंसिपल बनने की नहीं थी; पर प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति, डॉ० आर० पी० परांजपे ने भीमराव को नियुक्त करने में असमर्थता दिखाई। इस संबन्ध में, श्री केलुस्कर डॉ० परांजपे से मिले और यह अनुरोध किया कि भीमराव को प्रिंसिपल बनाया जाये। भीमराव को प्रोफ़ेसर का पद वे पुनः देने पर राजी हुए; परन्तु उन्होने वह पद स्वीकार नहीं किया। भीमराव ने श्री केलुस्कर को लिख दिया कि वह प्रोफेसर की नौकरी करना नहीं चाहते, क्योंकि वह उनके अछूतोद्धार आन्दोलन में बाधक सिद्ध होगी। वे जून 1925 में बॉटलीबॉइ'ज एकाउन्टेन्सी ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट में मर्कण्टायल लॉ के पार्ट-टाइम लेक्चरर हो गये और मार्च 1928 के अन्त तक वहां काम करते रहे।

समय उनके पक्ष में नहीं था। आशा-निराशा के दिन तो चल ही रहे थे। असहायता की भावना ने उनके हृदय पर आंशिक रूप से छाया डाल रखी थी। वे घण्टों तक, बिना बांहों की बेंच पर बैठे, नंगे शरीर एक लंगोटी पहने, बिना हिले-डुले, विचारों में डूब जाते थे। वे साधक के रूप में बैठा करते थे। संभवतः वे नई रोशनी की तलाश में लीन रहते। नीले आसमान की ओर घण्टों ताकते रहते और फिर दो बेंचों को मिलाकर, उन पर सो जाते थे; फिर भी वे परेशान नहीं थे। एक योगी की भांति, वे अपना समय चिंतन, तपस्या एवं साधना में व्यतीत करते थे। दुनिया के सभी महान् लोगों के सामने मुसीबत के दिन आये हैं। निराशा के क्षणों का भी उन्होंने साक्षात्कार किया है। भीमराव का जीवन भी कोई अपवाद नहीं था। उन्होंने तो कहीं अधिक मुसीबत एवं निराशा के क्षणों का सामना किया। दुःख से पीड़ित, नंगे-भूखे लोग उनके पास मुकदमों के संबन्ध में आया करते थे। वे उनकी बातों को शान्तिपूर्वक सुनते और उनकी कठिनाइयों का निवारण करते थे, हालांकि वे स्वयं भी उनकी दयनीय स्थिति को देखकर द्रवित होते थे।

इसी बीच डॉ० अम्बेडकर के परिवार में एक पुत्र ने जन्म लिया। उसका नाम राजरत्न रखा गया। भीमराव राजरत्न को बहुत ही प्रेम किया करते थे। राजरत्न के पूर्व, एक पुत्री का जन्म भी हुआ था; पर वह अपने शैशवकाल में ही मर गई थी। उसका नाम इन्दु था। रामाबाई का स्वास्थ्य अब कुछ बिगड़ चुका था। अतएव भीमराव ने उन्हें स्थान परिवर्तन की दृष्टि से, यशवंत एवं राजरत्न

सहित कहीं दूसरे स्थान पर भेज दिया। उसके बाद, कहीं दूसरे जिले से दो आदमी उनके यहां आ टपके। वे उनके पास ठहरे। भीमराव ने उन्हें भोजन बना कर खिलाया और सुबह कोर्ट जाने से पूर्व, उन्हें चाय एवं डबलरोटी गरम करके दी और शाम को दोनों व्यक्ति उस समय चकित रह गये जब उनका नेता उनके रात्रि भोजन को तैयार कर उनका इन्तजार कर रहा था।

1927 के प्रारम्भ में, कोरेगांव के युद्ध-स्मारक के पास अछूत-समुदाय का एक सम्मेलन हुआ। इस स्थान पर, जो एक ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर चुका था, 1 जनवरी 1818 को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिक अधिकारी कैप्टेन स्टॉन्टन तथा बाजीराव पेशवा का युद्ध हुआ था। कैप्टन की सेना में 500 सैनिक थे जो महार थे। 250 तो घुड़सवार थे जिसमें अधिकांश महार तथा थोड़े से अरब थे। कैप्टन स्टॉन्टन के महार सैनिकों ने बाजीराव पेशवा की बहुसंख्यक सेना को एक दिन एक रात कोरेगांव के पास रोके रखा और अन्त में परास्त कर दिया। अतएव कोरेगांव महार जाति के अद्भुत पराक्रम का परिचायक है। यहीं पर अछूतों के सम्मेलन को संबोधित करते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने कहा—"सैकड़ों महार 1818 में और महायुद्ध में कम्पनी सरकार तथा ब्रिटिश सरकार की ओर से युद्ध में वीरतापूर्वक लड़े और हताहत हुए। ब्रिटिश सरकार की ओर से इसका पुरस्कार क्या मिला? ब्रिटिश सरकार ने महार जाति को गैर-लड़ाकू जाति घोषित करके, महारों की सेना में भर्ती कानूनन बन्द करदी। क्या यह महार जाति का अपमान नहीं है? ब्रिटिश सरकार की यह कितनी कृतघ्नता है? आप इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करें ताकि सरकार को अपनी नीति बदलने के लिए मजबूर किया जा सके।"

डॉ० अम्बेडकर, निश्चय ही, स्पष्टवक्ता थे। सही बात कहने में किसी का लिहाज नहीं करते थे। अपने दलितों को भी वह ताड़ना देते थे ताकि वे मांस-मदिरा त्याग दें, बच्चों को पढ़ाएं और सफाई से रहें। डॉ० अम्बेडकर का नाम तथा काम दोनों ही समाज एवं राजकीय क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करते जा रहे थे, हालांकि आर्थिक दृष्टि से, उनकी स्थिति अच्छी नहीं बन पाई थी। सन् 1927 में, सरकार ने उन्हें बॉम्बे लेजिस्लेटिव कॉउन्सिल का सदस्य मनोनीत किया था। यह उनके कर्म-योग तथा ज्ञान-योग का ही फल था कि धनाभाव की स्थिति में भी, वे प्रगति की दिशा में निरन्तर बढ़ते गए। साथ में, अपने दलित-समाज की सदियों से डूबी हुई नौका को फिर से किनारों पर लाने में व्यस्त होते गए। यहीं से उनके लिए, भारी चुनौतियों का एक और दौर प्रारम्भ हुआ जिसका मुकाबला उन्होंने अपनी बल-बुद्धि, धीरज एवं धर्म के साथ किया।

□

अध्याय—२

व्यक्तित्व

डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व को सामाजिक व्यवस्था से पृथक् नहीं किया जा सकता। किसी भी महान् नेता अथवा युग-प्रवर्त्तक का व्यक्तित्व उसकी समाज सेवा से परस्पर सम्बद्ध होता है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक व्यक्ति के रूप में, डॉ० अम्बेडकर ने समाज में फैले अन्याय एवं दमन, जाति एवं छुआछूत, शोषण तथा अधर्म, से डटकर मुकाबला किया। थककर बैठने की बजाय उन्हें मरना पसन्द था। फलत: उनका व्यक्तित्व-निर्माण एक सतत संघर्ष की अनुकरणीय अभिव्यक्ति है। डॉ० साहब ने अपने आत्म-विश्वास एवं आत्म-शक्ति को, ज्ञान तथा कर्म को, समाज परिवर्तन के साथ जोड़ा। यही उनके व्यक्तित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष था।

बाह्य स्वरूप :

डॉ० अम्बेडकर जैसे असाधारण व्यक्ति ने जिस प्रकार जीवन की विषम एवं संघर्षमयी परिस्थितियों से जूझकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया, उसके स्पष्ट संकेत उनकी बाह्याकृति से प्रकट होते थे। जीवन की वीरान घाटियों तथा कठिन मार्गों को अपने परिश्रम तथा प्रतिभा के बल पर पार करने वाला वह व्यक्ति जितना बाह्य रूप से गम्भीर एवं कठोर प्रतीत होता था उतना ही वह अन्तरतम से कोमल एवं सरस था। उनके मुख पर विषम परिस्थितियों के चिह्न स्वत: अङ्कित हो गए थे। अम्बेडकर की गम्भीर मुखाकृति एवं उनका परिश्रमी जीवन मित्रता के लिए पक्ष में नहीं लगते थे। उनके साथ रहने वाला ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहा होगा, जिसने उनकी डपटें तथा फटकारें न सुनी हों। कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने उन्हें एक ब्रिटिश बुलडॉग कहा और सरोजिनी नायडू ने तो उन्हें भारत का मुसोलिनी की संज्ञा दी; लेकिन वे अपने हृदय में बड़े विनोदप्रिय एवं सरस थे। उनके व्यक्तित्व में अधिनायकत्व की बू नहीं थी।

जीवन के कटु अनुभवों ने डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व में चार चाँद लगा दिए थे। उनकी गम्भीरता एवं विशालता को प्रखर बना दिया था। ठोस, विशाल, गम्भीर एवं गत्यात्मक डॉ० अम्बेडकर सघन, गठीले बदन के व्यक्ति थे। उनकी गोलाकार मुखाकृति थी जो देखने में भयानक प्रतीत होती थी। उनके माथे का उभार अनावृत था। उनकी लम्बाई पांच फीट नौ इन्च थी और उनका वजन लगभग एक सौ अस्सी पाउण्ड था। उनका शानदार ललाट, उनकी महान् महत्त्वाकांक्षा का प्रतिरूप था जो प्रत्येक महत्ता प्राप्त व्यक्ति में पाई जाती है। उनकी बाहर निकली हुई ठोड़ी, किसी चुनौती का आह्वान करती थी, उनके साहस की प्रतीक

थी जो विषम परिस्थितियों में कठिन से कठिन कार्य करने के लिए प्रेरित करती थी, भले ही आसमान टूट जाए। डॉ० अम्बेडकर की नाक तूफानी जीवन में चलते जहाज के लिए एक पतवार के समान थी। उनकी आंखें भेदनकारी तथा वेधनशील और जोशीली तथा जीवित थीं, पर उनमें सन्देहवाद की एक निश्चित झलक मिलती थी; लेकिन जब वे क्रोधित होते थे, उनकी आंखों में युगयुगीन तीक्ष्णता झलकती थी और फिर उनके मोटे होठों के बीच से एक अछूत की घृणा के अङ्गारे निकलते थे। उनका गौर वर्ण था और देहाकृति बड़ी सुन्दर थी। अन्य शब्दों में, उनका गौर-वर्ण, लम्बा-गठीला शरीर, विशाल वक्षःस्थल, प्रलम्ब बाहु, चमकता ललाट, बड़ी-बड़ी आँखें और ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्तमान सुन्दर मुखाकृति और ज्ञान-गम्भीर मुद्रा; ये सभी उनके बाह्य व्यक्तित्व की आकर्षक बातें थीं।

बाह्य रूप से डॉ० अम्बेडकर कितने ही कठोर लगते थे, पर जब वे प्रसन्न-मुद्रा में हुआ करते थे तब उनकी मुखाकृति एक लाइट हाउस के समान चमकती थी; लेकिन स्वभाव, चक्रवाती, बवण्डरपूर्ण था। थोड़ी सी उत्तेजना पर वे आक्रोश में फूट पड़ते थे। उनकी मेज़ पर सभी पुस्तकें व्यवस्थित ढंग में होती थीं। उनमें जरा-सी गड़बड़ी उनको खिन्न बना देती और फिर वे जोर-जोर से दहाड़ते, 'कहाँ हैं वे कागज, किताबें ? किसने उन्हें हटाया है ?' उनकी डॉक्टर पत्नी तथा नौकर भयभीत हो जाते थे। तब धीरे से कोई कमरे में आता और उनसे विनय-पूर्वक पूछता 'कागजों से उनका क्या तात्पर्य ? क्या पुस्तक अथवा नोट बुक ? क्या रंग था ?' फिर उसकी उस समय तक खोज जारी रहती, जब तक वह मिल न जाती। पुस्तक मिलने के बाद जब उनके सामने रखी जाती, वे बोल उठते (अन्यथा मानसिक तनाव में चुप बने रहते थे), 'ओह, यह है वह। वह कहाँ थी ?' थोड़ी ही क्षणों में उनका गुस्सा ठण्डा हो जाता था और फिर शान्तपूर्वक अपने काम में जुट जाते थे।

कुछ लोगों का कहना था कि डॉ० अम्बेडकर अहङ्कारी एवं कम बोलने वाले व्यक्ति थे। उनका बाहरी रूप कुछ ऐसा भले ही लगता हो, सरकारी अफ़सर जैसे भले ही लगते हों, पर एक बार वे बातें शुरु कर देते तो फिर रुकना कठिन था। अपनी जीवन-गाथा, कटु अनुभव, ब्राह्मणी राजनीति, हिन्दू अत्याचार आदि पर घण्टों बोलते रहते थे। आने वाले मेहमानों की बातें, दुःखभरी कहानियाँ शान्तिपूर्वक सुनते। उनका हृदय ऐसा कोमल था कि वे करुणामय स्थिति में पहुँच जाते और अथाह संवेदना अनुभव करते। वे दीन-दुःखी लोगों के कल्याण के लिए कटिबद्ध थे। वह वास्तव में कल्याण मित्र थे उन सभी के जो पीड़ित एवं शोषित थे। उनके विरोधियों ने उनके साथ कभी उदारता नहीं दिखाई। केवल थोड़ी सी सहमति का प्रदर्शन करते थे। डॉ० अम्बेडकर भी उनके प्रति उदारता का प्रदर्शन नहीं करते थे। वे प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसकी स्थिति देखकर व्यवहार करते थे।

डॉ० अम्बेडकर स्वभाव से जिद्दी भी थे। बचपन से ही उनका ऐसा स्वभाव बन गया था। जिस बात की वे ठान लेते थे, उसे करके छोड़ते थे। भले ही कितनी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े। मूसलाधार वर्षा में यदि ठान

ली तो पढ़ने चले जाया करते थे; लेकिन गलत बात के लिए ज़िद्द करना उनकी आदत नहीं थी। न्याय और मानवीय अधिकारों की मांग पर डटे रहना उनकी जिद्द रहती थी। उन्होंने अछूतों के कल्याण की जिद्द ठान ली जिसका परिणाम अच्छा ही निकला। उनका यह स्वरूप व्यापक क्रान्ति के रूप में अभिव्यक्त हुआ। उनकी जिद्द वैयक्तिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक एवं मानवीय उत्थान तथा सम्मान के लिए होती थी। अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् अन्यों के हितों के लिए वह जिद्द किया करते थे।

जिद्दीपन तथा लचीलेपन का समन्वित रूप उनके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। उनमें यद्यपि अवसरवादिता नहीं थी, पर किसी अच्छे अवसर को हाथ से नहीं जाने देते थे और उसे दलित समाज के हितों की रक्षा में लगाते थे। राजनीति में उनकी सफलता का यही राज़ था। वह उनके व्यक्तित्व का लचीलापन था न कि कोई अवसरवादी प्रवृत्ति कि वे अपनी जिद्द का परित्याग करके समझौता कर लिया करते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि भोर किसी आदमी को दो बार जगाने नहीं आता। डॉ० अम्बेडकर में वह बल एवं योग्यता थी कि जैसे ही गेंद उनके पक्ष में हो, शीघ्रता से पकड़ लें। यही कारण है कि ऐसे आत्म-निर्मित एवं आत्म-उन्नत व्यक्ति अम्बेडकर का जीवन सुबह के समय धूलमय, दुपहरी को उज्ज्वल और शाम की सुनहरी सिद्ध हुआ। उनके व्यक्तित्व के बदलते रूप सदैव ही दलितों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शैक्षणिक उत्थान की दिशा में पाए जाते थे।

रहन-सहन का स्तर

डॉ० अम्बेडकर के प्रारम्भिक जीवन का रहन-सहन बड़ा ही सरल एवं मितव्ययी था। वे धनाभाव के कारण अत्यन्त साधारण स्तर के व्यक्ति रहे। बचपन तो उनका आर्थिक कठिनाइयों में बीता हो, किशोर अवस्था में भी उनको कोई विशेष सुविधाएँ प्राप्त नहीं हुई। अपने विवाह तक उन्होंने चाल (परल, बॉम्बे) के एक कमरे में अपना जीवन-निर्वाह किया। उसी कमरे में घर-परिवार का सामान, बकरी तथा अन्य सदस्य रहते थे। स्थानाभाव के कारण, वे जमीन पर ही एक रजाई पर सोया करते थे। सिर की ओर चाकी और पैरों की ओर बकरी सटी रहती थी। मिट्टी के तेल की टिमटिमाती लेम्प की रोशनी में ही पढ़ा करते थे। बाद में जब उसी क्षेत्र में दो कमरे वाला भाग उनके पिताजी ने किराए पर लिया तब एक में घर-परिवार का सामान और दूसरे को, डॉ० साहब का अध्ययन कक्ष बनाया गया ताकि वे घर की भीड़भाड़ से अलग रहकर विद्याध्ययन कर सकें।

जब वे सिडेनहॅम कॉलेज में प्रोफेसर बने, तब भी वे डिवलपमेण्ट बोर्ड की उसी चाल में रहते थे जहां उनके पिता रहते थे और जब वे बैरिस्टर होकर आए तथा हाई कोर्ट में वकालत करने लगे तब भी वे परिवार सहित उसमें गुजारा करते थे। जो रुपए वे जर्मनी से बचाकर लाए थे, सब खर्च हो गए। वकालत से आमदनी प्रारम्भ में तनिक भी नहीं थी। वे किसी से कर्ज भी लेना

नहीं चाहते थे । इस लिए कोई नया मकान लेने में असमर्थ थे । जिस चाल में वे रहते थे, वह किसी विद्वान बैरिस्टर के रहने के लायक निवास-स्थान नहीं था । वे तो कुलियों, मिल-मजदूरों आदि श्रमजीवियों के रहने योग्य जगह थी । लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने वहीं रहने में अपनी प्रतिष्ठा समझी । उस जगह रहने में वे प्रसन्न थे क्योंकि वहां हजारों श्रमजीवी मिल-मजदूरों से उनकी मुलाकात होती थी और वह उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति से अवगत होते रहते थे । साथ ही, वहां हजारों मजदूरों से उनका परिचय होता गया और बाद में, वे उनके मजदूर नेता भी बने । उनकी समस्याओं को लेकर, उनका सफल नेतृत्व किया तथा निष्कपट होकर उनका मार्ग-दर्शन किया ।

अमेरिका और लन्दन में भी उनका रहन-सहन साधारण था, हालांकि उन्हें साफ-सुथरा तथा अच्छी तरह रहने का शौक हो गया था । अमेरिका में, खर्चीले स्थान में न रहकर, मात्र साधारण विद्यार्थियों के साथ रहना उन्हें अधिक पसन्द था क्योंकि खर्च कम पड़ता था । उधर लन्दन में भी एक महिला के यहां अपने भारतीय साथी के साथ एक ही कमरे में वे रहा करते थे ताकि खर्चा अधिक न पड़े । इस प्रकार विद्यार्थी जीवन में उनका रहन-सहन बड़ा ही सादा था । धनाभाव के होते हुए भी, वह विचारों से धनी थे । प्रारम्भ में, वह अपने सभी कपड़े स्वयं साफ किया करते थे जिससे उनका स्वास्थ्य बड़ा ही अच्छा बना रहता था ।

कालान्तर में, डॉ० अम्बेडकर ने धनार्जन किया और सन् 1935-36 के बीच, बॉम्बे की दादर कालोनी में एक विशाल भवन का निर्माण करवाया जिसका नाम उन्होंने 'राजगृह' रखा । अपने भवन का निर्माण कर के उन्होंने अपनी योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया जो उनके पूर्वज नहीं कर सके थे । यह भवन उनकी खून-पसीने की कमाई तथा परिश्रम और अपनी धर्मपत्नी के सहयोग से बना कर दिखाया था । उन्होंने अपनी सन्तान तथा भावी पीढ़ी के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया ताकि वे यह कह सकें कि वे धनी एवं सुशिक्षित माता-पिता की सन्तान हैं । स्वयं ने कितनी ही कठिनाइयों का सामना किया हो, पर उन्हें अपनी सन्तान की सुख-सुविधा का पूरा- पूरा ध्यान था ।

डॉ० अम्बेडकर के 'राजगृह' को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस भव्य भवन का निर्माण (नक्शा-नवीसी), विद्वान् बैरिस्टर के ही मस्तिष्क की उपज है । कहां एक प्रोफेसर, बैरिस्टर, नेता और कहां भवन की नक्शा-नवीसी में सुरुचि का इतना बड़ा परिचय देने वाला इंजीनियर अम्बेडकर । उन्होंने अपने ही ढंग से भवन का निर्माण करवाया । प्रत्येक सुख-सुविधा की दृष्टि से भवन का निर्माण किया गया । भवन का विशेष आकर्षण यह है कि वह विशाल ग्रन्थागार है । इसी दृष्टि से, उन्होंने इस भवन को बनवाया था और निश्चित रूप से, उसे उन्होंने एक बहुत बड़ी होम-लाइब्रेरी के रूप में विकसित किया । जब उनके भारतीय तथा यूरोपियन विद्वान् मित्र उस ग्रन्थागार का अवलोकन करते थे, तब वे आश्चर्य चकित हो जाते थे । यहां तक कि एक बार पंडित मदनमोहन मालवीय ने भीमराव

के ग्रन्थ-संग्रह के लिए दो लाख रुपयों का प्रलोभन दिया और उसे खरीदना चाहा, पर डा० साहब ने किसी भी मूल्य पर अपने दुर्लभ ग्रन्थ-संग्रह को बेचने से इन्कार कर दिया। डा० अम्बेडकर का 'राजगृह' बाह्य रूप से तो बड़ा आकर्षक है ही, पर अन्दर जाने से पता लगता है कि उसमें ज्ञान-भण्डार भी है जिसे देखकर सभी स्त्री-पुरुष अभिभूत हो जाते थे।

भवन निर्माण में बाबा साहब की बड़ी रुचि थी। जब नई दिल्ली में, अम्बेडकर-भवन का निर्माण हो रहा था, तब यह प्रश्न उठा कि लेट्रिन किस प्रकार की हो। कुछ लोग चाहते थे कि साधारण रूप में बनवा दी जाये, पर बाबा साहब ने उसे अंग्रेजी ढंग की बनवाया क्योंकि भवन में विदेशी लोगों के लिए अंग्रेजी ढंग के ही शौचालय होने चाहिए। उनका विचार था कि भवन बार-बार तो बनाए नहीं जाते, इसलिए जहाँ तक हो उसे बढ़िया बनाया जाना चाहिए। इस रुचि की अभिव्यक्ति हमें उनके 'राजगृह' भवन के भव्य निर्माण में मिलती है। भवन-निर्माण के सम्बन्ध में, उन्होंने थामस जैफरसन के समान, कई पुस्तकों को खरीदा और अध्ययन भी किया ताकि आधुनिक ढंग से भवन में विभिन्न प्रकार की डिजायनों का प्रदर्शन सम्भव बनाया जा सके। भवन निर्माण के समय, यदि उनके मन में किसी हिस्से को परिवर्तित करने की बात आती तो वह उसे तुड़वाकर पुनः इच्छानुसार बनवाते थे। ऐसा कई बार हुआ। इसलिए उनके एक मित्र ने कहा था कि अच्छा हुआ उनका 'राजगृह' (दादर, बाम्बे) बन ही गया अन्यथा डा० साहब यदि निरन्तर भवन की तोड़-फोड़ में लगे रहते तो संभवतः आज तक उसकी छत नहीं पट पाती।

'राजगृह' में उनका रहन-सहन पहले से कहीं अच्छा था। चाल से वे सारे परिवार को वहीं ले आए थे। जब वे वाइसरॉय की कार्यकारिणी में लेबर मेम्बर बनाए गए तब वे सन् 1942 में नई दिल्ली आए और अपना निवास-स्थान भारत की राजधानी को बनाया। उन्हें ऐसा सरकारी निवास-स्थान मिला जिसमें ढेर सारे कमरे तथा खुला हरा-भरा मैदान था। वे चाहते थे कि उनका निवास-स्थान हरियाली से घिरा हो। कभी-कभी वे सारे बगीचे का निरीक्षण किया करते थे क्योंकि उन्हें हरियाली देखकर आत्म-तृप्ति होती थी। यह भवन भी एक ग्रन्थागार बन गया था। उसके प्रत्येक कमरे में पुस्तकों का ढेर लगा रहता था। एक कमरे में वे आसन आदि किया करते थे। उनकी मेजों पर अलग-अलग पुस्तकों के लिखने के कार्य चलते रहते थे। कभी एक मेज पर और कभी दूसरी पर। उनका यह पढ़ना-लिखना निरन्तर चलता रहता था। यहां उनके शाही ठाठ हो गये क्योंकि सरकारी निवास-स्थान था। वहां सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं। नौकर-चाकर भी थे। एक समय था जब वे घर का काम-काज सम्भालने में हाथ बटाते थे और एक समय ऐसा भी आया कि उनके इर्द-गिर्द नौकर-चाकर चक्कर लगाते थे।

भीमराव के प्रारम्भिक जीवन के रहन-सहन और बाद के जीवन के रहन-सहन में बड़ा अन्तर हो गया। प्रारम्भ में, धनाभाव के कारण, वे अत्यन्त साधारण

स्तर के व्यक्ति रहे; परन्तु नई दिल्ली के जीवन के रहन-सहन को देखकर यह पता लगाना कठिन था कि वह व्यक्ति निर्धन रहा होगा अथवा जीवन के कटु अनुभवों तथा थपेड़ों का सामना किया होगा। बॉम्बे के स्थान पर, दिल्ली ही उनका स्थाई निवास स्थान हो गया था। आरम्भ में, वे सरकारी निवास वेस्टर्न कोर्ट के कमरे में रहा करते थे और बाद में, वे हार्डिङ्ग एवेन्यू में आकर रहने लगे। यह तो सभी जानते थे कि भीमराव एक अछूत हैं। कुछ लोग जब किसी कामवश आते तो सोचा करते थे कि वे अछूत हैं, मामूली ढंग से रहा करते होंगे; पर आकर जब उनके जीवन स्तर को देखते तब वे यह भूल जाते थे कि वे अछूत हैं। एक अछूत इतने ठाठ-बाट से रहे, यह उस समय सम्भव नहीं लगता था। एक विरोधाभास प्रतीत होता था कि एक ओर वह साधनहीन गरीबों एवं शोषितों की वकालत करते थे और दूसरी ओर वेश-भूषा, रहन-सहन आदि से आई० सी० एस० अफसर अथवा बहुत धनीमानी व्यक्ति लगते थे; लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि वे सदैव अपने आपको गरीबों के साथ जोड़ते रहे। भले ही वे भव्य भवनों में रहने लगे थे; पर उनके जीवन का उद्देश्य दलितों का उत्थान करना था। एक अछूत होने के नाते, उनका लक्ष्य वहीं केन्द्रित था जहाँ किसी महापुरुष का होना चाहिए।

जब से वे वाइसराय की कार्यकारिणी के श्रम-सदस्य बने तब से भारत के प्रथम कानून-मन्त्री बने रहने तक, वे बड़े ही ठाठ-बाट से रहे। एक समय ऐसा भी आया जब उन्होंने मन्त्री-पद से स्तीफा दे दिया; लेकिन उनके रहन-सहन पर कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। सारा काम-काज नौकर ही करते थे। बगीचे का माली भी था। जीवन के अन्तिम दिनों में जब वे अलीपुर रोड आकर रहने लगे थे, वह कोठी भी विशाल थी। बीसियों कमरे उसमें थे। सर्वेण्ट्स क्वार्टर्स अलग थे। भयानक रोग से पीड़ित होने के बावजूद भी वे कभी अस्पतालों में नहीं गए। बड़े से बड़े डॉक्टर और हकीम उन्हें उनके ही निवास स्थान पर देखने आते थे। उनके पास अपनी दो निजी कारें थीं जिनका प्रयोग वे अधिकतर दलितों की सेवा में किया करते थे। संक्षेप में, मन्त्री न रहने पर भी उनके रहन-सहन का स्तर बड़े ही अच्छे ढंग का रहा और धनाभाव जैसी स्थिति अब उनके सामने नहीं रही क्योंकि आय के विभिन्न स्रोत—पेन्शन, वकालत, पुस्तकों की रायल्टी बन गये थे।

आचार-विचार :

सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अनेक व्यक्तियों तथा पत्रिकाओं की प्रशंसा एवं कटु आलोचना का पात्र होते हुए भी डॉ० अम्बेडकर के व्यवहार में किसी प्रकार का असन्तोष एवं अहं-भावना का प्रदर्शन नहीं मिलता था। देश के महान् नेताओं से उनका सीधा संघर्ष था; पर आक्षेप एवं आरोप करने वाले व्यक्तियों को वे बड़ी सतर्कता, सावधानी एवं आत्म-विश्वास के साथ उत्तर देते थे। उनके विचारों की तीखी आलोचनाएँ हुईं; पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों को छोड़ा नहीं क्योंकि वे पूर्वाग्रही नहीं थे, बल्कि बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरे विचार

उनमें थे। उनका व्यक्तित्व आत्म-प्रशंसा से दूर था। उनके आचार-विचार समाज को निरन्तर आत्माभिव्यक्ति की विशिष्ट सामग्री से समृद्ध करते रहे। उनके आचार-विचार में मिथ्याडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं था। बाहरी टीप-टाप में भी उनका विश्वास नहीं था। ठोस आत्म-शक्ति उनके व्यक्तित्व की मूल विशेषता थी।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वे अपनी कृतियों में जैसे असाधारण, तीखे आलोचक एवं कठोर समीक्षक व्यक्ति प्रतीत होते हैं वैसे व्यवहार में नहीं थे। डॉ० साहब से, जिनका सम्बन्ध केवल पुस्तकों तक ही सीमित है, वे इसे श्लाघा भी मान सकते हैं; पर व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाने पर वे अति सामान्य साधारण विचारों वाले सरल आकर्षक प्रकृति के व्यक्ति सिद्ध होते थे। निस्सन्देह उनके द्वारा सत्यता की अभिव्यक्ति व्यवस्थाओं को अस्त-व्यस्त करने वाली होती थी और सत्य के समान, वे दृढ़-संकल्प भी थे। साथ ही साथ सभी महापुरुषों के समान उनमें अथाह शक्ति थी और समय का सदुपयोग करना उनकी आदत थी। उनमें भगवान् बुद्ध के समान व्यापक दृष्टि थी; लेकिन नम्रता उनकी योग्यताओं में सुस्पष्ट नहीं होती थी। व्यवहार मे अभद्रता का आरोप, आज तक उनके ऊपर किसी ने नहीं लगाया। कभी-कभी वार्तालाप में वे बहुत कुछ अपनी योग्यताओं के बारे में कह जाते थे; परन्तु अपनी योग्यताओं के बारे में जो कुछ राय वे प्रकट करते थे, उसको वे राष्ट्र के प्रति की गई सेवाओं से उचित सिद्ध करते थे। यही कारण है कि उनके पास आने वाले पत्रों के अन्त में जो 'जयभीम' लिखा होता था, वह न्यायोचित समझते थे।

कहा जाता है कि कोई व्यक्ति जितना ऊँचा उठता है, वह उतना ही अन्य लोगों से अलग होता जाता है। भीमराव के बारे में यह कथन लागू नहीं होता क्योंकि जब वे अपनी आराम मुद्रा में होते थे तब वे निरन्तर बातचीत करते रहते थे। उनकी बातचीतों से आने वाले मेहमानों का मनोरंजन होता था और तर्क भी सुनने को मिलते थे। जब वे हँसते थे तब बहुत जोर से हँसते थे, विशेषकर उस समय जब वे किसी पर व्यंग्य करते और उनकी हँसी में, उनके सामने बैठे लोगों द्वारा उत्तर में कुछ कहने का ही लोप हो जाता था। तहमद और कमीज पहने बैठे हुए, डॉ० अम्बेडकर हँसी का आनन्द लेते थे। हँसी-मजाक द्वारा आनंद के अतिरिक्त उनकी देहाती मजाकों और कहावतों में बड़ी रुचि थी। उनका प्रयोग कठोर, विचलित करने वाला होता था; पर वे जिन्दादिल हुआ करती थीं। उनमें आमोद-प्रमोद की भावना निहित होती थी। सुनने वाले अपनी बातों को मानते हुए, उनके चुटकुलों से बड़ा आनन्द प्राप्त करते थे। डॉ० साहब का विनोद या मजाक बड़ा ही मर्मभेदी हुआ करता था। तीखापन भी उसमें होता था। इस प्रकार की आदत सम्भवतः उनकी उस सामाजिक पृष्ठभूमि की अभिव्यक्ति थी जिसमें उन्हें अनेक प्रकार के कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा। एक घण्टे में डॉ० साहब इतनी हँसी-मजाक फेंका करते थे कि शायद ही कोई अन्य महापुरुष पांच वर्ष में भी ऐसा नहीं करता हो।

निस्सन्देह उनकी मुद्रा विनोद-प्रिय और ज्ञानात्मक थी; पर धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य गिरता गया और साथ ही, उनकी आमोद-प्रमोद की आदत भी लुप्त होती गई; लेकिन फिर भी, शाम के वक्त वे एक सजीव राजा का रूप धारण कर लेते थे। वे बंगले के खुले मैदान में भी बैठा करते थे। अपने आने वाले मेहमानों से मिलने के पूर्व वे यह घोषणा करवाया करते थे कि वे अब मिलने के लिए तैयार हैं और आ रहे हैं। कभी-कभी वे चूड़ीदार पाजामा और कुर्त्ता पहना करते थे। वे आराम कुर्सी पर विराजमान हो जाते और उनके नौकर सोफा आदि को संभालने लग जाते जिन पर वे अपने पैरों को टिका लेते। कभी-कभी स्त्री-पुरुष भीड़ की भीड़ में आते और उनसे मिलने के लिए घण्टों इन्तजार करते थे; लेकिन जब डॉ० साहब बातें प्रारम्भ करते तो लोग प्रसन्न हो जाते और लम्बे समय तक वे उन्हें प्रवचन देते रहते थे।

कहा जाता है कि मीठी गिरी कठोर नारियल में ही निकलती है। यद्यपि डॉ० अम्बेडकर देखने में गम्भीर एवं भयानक लगते थे, पर उनमें भावनाओं का सङ्गम था। उनकी भावनाओं का प्रदर्शन बड़ा ही सार्थक होता था। एक बार वे पिक्चर देखने गए और उसकी दर्दनाक कहानी से द्रवित होकर, उसे बीच में ही छोड़कर चले आए थे। जब उनका पालतू कुत्ता बीमार पड़ गया, तब वे उसके स्वास्थ्य के बारे में बार-बार पूछते और स्वयं दिन में दो बार अस्पताल में उसे देखने जाया करते थे। जब उन्हें यह समाचार मिला कि कुत्ता मर गया है, तब वे अपनी कुर्सी में दुःख से पीड़ित चुपचाप बैठे रहे। एक बार रात के दो बजे एक गरीब महिला ने उनके दर्वाजे को खटखटाया और कहा कि वह अपने मरणासन्न पति को लिए बारह घण्टों से अस्पताल में भर्ती कराने का प्रयास कर रही है, लेकिन कोई डॉक्टर सुनता ही नहीं। डॉ० अम्बेडकर ने अपनी कार में उसे बैठाया, अस्पताल गए और उसके पति को वहाँ भर्ती करवाया। तब वे सुबह चार बजे अपने मित्र आचार्य एम० वी० दॉन्दे के दरवाजे पर जा चिल्लाए और वहाँ बैठकर चाय पी। श्री दॉन्दे अस्पताल के पास ही रहा करते थे। डॉ० साहब अपनी वकालत के दौरान, बहुत से गरीब लोगों को निःशुल्क राय दिया करते और अधिकतर निर्धनों की सहायता में बड़ी रुचि लेते थे।

उनका आचार-विचार स्पष्ट एवं सरल, किन्तु मर्मभेदी तथा सार्थक हुआ करता था। उनके व्यक्तित्व मे भावना एवं संवेदना का सङ्गम मिलता था। जब उनके सबसे छोटे पुत्र का देहावसान हुआ, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे इतने द्रवित हो गए कि मृत बालक को छोड़ना नहीं चाहते थे। कई दिन तक वे उस कमरे में अन्दर नहीं गए जहाँ उस बालक ने अन्तिम सांस ली थी। जब उनकी प्रथम पत्नी का देहान्त हुआ, तब तो उन्हें लगा कि जीवन में कुछ नहीं रखा है। उनके दुःख का ठिकाना न रहा। वे काफी दिनों तक दुःख एवं शोक में डूबे रहे। एक बार उनकी आँखों में भयंकर दर्द हुआ, वे खूब रोए कि कहीं उनकी आँखों की रोशनी न चली जाए और उनका जीना दुश्वार हो जाए। अपने किसी मृत मित्र के अन्तिम संस्कार के समय श्मशान घाट में ही वे फूट-फूट कर रोए। ऐसा था

उनका कोमल हृदय कि वे अपने सगे-सम्बन्धियों एवं मित्रों के दुःख-दर्द में साझीदार हुआ करते थे।

जब डॉ० साहब की धर्मपत्नी, रामाबाई का देहावसान हुआ, वे उनके पास ही थे। लगभग दस हजार धनी एवं निर्धन, सामान्य तथा महान्, स्त्री-पुरुषों ने उनकी अन्त्येष्ठी यात्रा में भाग लिया। गम्भीर मुद्रा, दुःखी भावना में भारी मन सहित, डॉ० अम्बेडकर भी लोगों के बीच चल रहे थे। श्मशान घाट से लौटने के पश्चात्, वे अपने कमरे में कई दिन तक बन्द रहे। दुःख से पीड़ित होते रहे। लगभग एक सप्ताह तक वे एक बच्चे के समान रोए। उनके मित्रों के लिए यह कठिन था कि डॉ० साहब को ढाढ़स दिलाएँ। उनकी समृद्धि की देवी, मानवता के उत्थान में सहभागी, और सांसारिक जगत् में अर्धाङ्गिनी, अब उनसे बिछुड़ गई। यद्यपि डॉ० साहब ईश्वरादि को नहीं मानते थे, पुरोहितवाद की गलत धारणाओं के विनाशक थे; परन्तु धर्मपत्नी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण, उन्होंने एक महार पुरोहित को लेकर अपने पुत्र द्वारा सभी क्रिया कर्म हिन्दू रीति से करवाए। यह पुरोहित, साम्भूमोर, डॉ० साहब का स्कूल के दिनों से ही मित्र था। यहाँ तक कि डा० साहब ने साधु जैसे वस्त्र भी पहन लिए ताकि सांसारिक भोग विलासों से विरक्ति संभव हो सके। उन्होंने अपने सिर को भी मुंड़ा लिया। उनका गम्भीर चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, शान्त वातावरण और केसरी वस्त्र यह संकेत करते थे कि मानो डा० अम्बेडकर वास्तव में, जगत्-नकारात्मक प्रवृत्ति में खो गए हों।

उनके आचार-विचार का एक और रोचक उदाहरण मिलता है। उनके अनुयायियों की उनमें अटूट आस्था थी। जब डॉ० अम्बेडकर ने अपने भक्तों से कहा कि वे देवी-देवताओं की पूजा-पाठ का परित्याग करें तो सबने उनकी आज्ञा का पालन आरम्भ कर दिया। लेकिन परम्परा तथा रीति-रिवाज जहाँ खून में व्याप्त हों वहाँ ऐसा अधिक दिनों तक करना कैसे संभव होता? अज्ञान ने लोगों के मन-हृदय को जकड़ रखा था। उन्हें ईश्वर आदि का भय परेशान करने लगा। बहुत से स्त्री-पुरुष फिर से देवी-देवताओं की पूजा में लग गए। एक वृद्ध भक्त डॉ० साहब के पास गया और प्रार्थना की कि वह उसे गणपति की पूजा करने की केवल एक बार अनुमति दे दें ताकि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके जिसे उसने बहुत पहले किया था। डॉ० साहब उस वृद्ध की मुख मुद्रा देखकर हँसे और भारी आवाज में बोले; "तुम्हें किसने बतलाया कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता? जाओ, तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा ही करो।" वह वृद्ध बड़ा प्रसन्न हुआ और इस प्रकार, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की स्वीकृति माँगी।

दिनचर्या एवं भोजन :

बचपन में परिवार के अन्दर बालक भीमराव का जीवन नियमित नहीं था। उसकी प्रथम माँ तो भीम का बहुत ध्यान रखती थीं। ठीक समय पर उनका खाना बना देती, उनके कपड़े साफ कर देती और भीम की हर चीज की देखभाल रखती किन्तु उनकी सौतेली माँ उनका कोई काम नहीं करती। मानो उसे स्कूल जाना

नहीं पड़ता था। अपनी असली माँ के अभाव में भीम अपने को घर में वैसे ही अकेला महसूस करता जैसे कि हिन्दू समाज के अन्दर एक अछूत होने के नाते। एक दिन खिन्न होकर वह घर छोड़कर भाग गया। अभी उसके जीवन में संयम नहीं था, अस्थिरता थी। उसका ज्ञान अपूर्ण था, विद्या की पर्याप्तता नहीं थी और आर्थिक शक्ति की कमी थी। सारे परिवार में इस घटना से दुःख हुआ। सब ने पश्चाताप किया। भीम दो-तीन दिन में घर लौट आया। उसने भी परिवार की मुसीबतों को महसूस किया। फिर उसने प्रतिज्ञा की कि वह उच्च शिक्षा प्राप्त करेगा और नियमित जीवन व्यतीत करेगा। वह ऐसी कोई हरकत नहीं करेगा जिससे परिवार वालों को परेशानी हो।

तत्पश्चात् अम्बेडकर ने बी० ए० पास किया और उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका, लन्दन, तथा जर्मनी गए। यहाँ उनका जीवन बड़ा ही संयत रहा। वे मितव्ययी बने और अपने समय के क्षण-क्षण को उपयोगी बनाते रहे। धनाभाव के कारण डॉ० साहब का विदेशों में जीवन सधा हुआ और नियमित बना। उनका एक-एक मिनट और क्षण ज्ञान-साधना में व्यतीत होता था। सादा भोजन उनका खाना होता था। अधिकतर वह एक समय ही खाना खाया करते थे ताकि आलस्य न आए और साथ-साथ पैसा भी बचे। समय का अच्छा उपयोग करना उनकी आदत बन गयी थी। उनमें फिजूलखर्ची नहीं थी, पर आवश्यक वस्तुओं पर खर्च करने में उनको कोई संकोच नहीं होता था। विदेशों में शिक्षा के दौरान उनके जीवन में जो परिवर्तन आया वह अनुकरणीय था। हर समय पुस्तकों की संगति में डूबे रहना उनके जीवन का अङ्ग बन गया था।

विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद और हाईकोर्ट में व्यस्त रहने से, डॉ० अम्बेडकर ने समय की पाबन्दी को अत्यधिक महत्त्व दिया। उनके द्वारा समय के सदुपयोग पर किसी का अधिकार नहीं था। हर समय व्यस्त रहना उनका जीवन था। नेपोलियन के लिए, समय सब कुछ था। किसी व्यापारी के लिए, समय धन होता है; लेकिन डॉ० अम्बेडकर के लिए, समय ज्ञान था। उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग किया। किसी क्षण का क्या मूल्य होता है, डॉ० साहब अच्छी तरह जानते थे। समय उनके लिए, सोने की खान के समान था। हमारे युग के महापुरुषों में डॉ० अम्बेडकर एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें दृढ़-प्रतिज्ञा, दृढ़-लक्ष्य, धैर्यपूर्वक परिश्रम और समय की पाबन्दी थी। इन्ही गुणों के आधार पर, उन्होंने अपना ज्ञान भण्डार बढ़ाया और काम करने की वह सामर्थ्य अपने में पैदा की जिसे सामान्य व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयास करे तो दस जन्म लेने पर भी न कर पाए।

डॉ० अम्बेडकर की जीवनचर्या का अनिवार्य अङ्ग पुस्तकों का अध्ययन था। पुस्तकें, उनकी दृष्टि में, शिक्षा एवं आत्म-विकास का उत्कृष्ट साधन हैं। वे मनोरञ्जन एवं आनन्द का सबसे बढ़िया माध्यम हैं। उन्होंने पुस्तकों का अध्ययन मात्र मनोरञ्जन के लिए कभी नहीं किया। उन्होंने कहा; "जो पुस्तक मुझे शिक्षा देती है, वही मेरा मनोरञ्जन है।" पुस्तकों के बीच व्यस्तता ने डॉ० साहब को जीवन का

परमानन्द और गम्भीर अकेलापन प्रदान किया। उनका पढ़ना सुबह से प्रारम्भ होता, दोपहर, शाम और रात तक चलता रहता था। रात्रि के भोजन के बाद भी पुस्तकों का अध्ययन निरन्तर बना रहता। अधिकतर पढ़ते-पढ़ते सुबह के सूर्य की रोशनी चमकने लगती थी। पीटर नाम का कुत्ता सुबह होते ही उनके कमरे में आता। वह उनके पैर चूमता और तब डॉ० साहब को पता लगता कि सुबह हो गई है। उनकी इच्छा होती थी कि घण्टियों की आवाज, गाड़ियों की गडगडाहट, हथोड़ों के धम-धमाके, और कारों की सनसनाहट से वे कहीं दूर चले जायें। ज्ञान के अथाह सागर में डूबकर, ज्ञानार्जन करें। विद्यानुराग उनमें अद्वितीय था। उनकी इच्छा थी कि कहीं दूर सघन जगलों में एक पुस्तकालय रूपी कुटिया बनाकर सर्वोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन किया जाए। क्या यह दैनिक प्रकाश के लिए साधना थी अथवा मानवीय हृदय, अहम्, न्याय तथा स्वार्थ के भेद को जानने का प्रयास था?

वाइसराय की कार्यकारिणी के श्रम-मन्त्री होने के पूर्व, डॉ० अम्बेडकर का जीवन अधिक नियमित नहीं था। उन दिनों वे सुबह तड़के उठा करते थे अथवा सारी रात पढ़ने के पश्चात् चार बजे सो जाते और फिर सुबह उठ जाते। सुबह थोड़ा सा व्यायाम करना उनकी आदत थी। फिर स्नान करते और नाश्ता लेते। अखबार पढ़ने के बाद, वे खाना खाते, और फिर जल्दी-जल्दी सुबह डाक से आने वाली पुस्तकों पर नज़र डालते, उसके कुछ पृष्ठ उलटते, अपनी कार में बैठकर कोर्ट चले जाते थे। जब कभी अदालत में मुकदमा होता था, वे दोपहर का भोजन किसी होटल में ले लिया करते थे। अदालत का काम करने के पश्चात्, वह बुक-स्टॉलों की देखभाल करते, और खरीदकर नई पुस्तकों का ढ़ेर घर ले आते थे अथवा रास्ते में, वे अपने किसी मित्र के पास जाते जहाँ से उन्हें कोई पुस्तक लेनी होती थी। रात्रि भोजन के साथ, वे पुस्तक भी देखते रहते थे और फिर वही निरन्तर अध्ययन चलता रहता था।

जब डॉ० अम्बेडकर किसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक के अध्ययन में लीन होते, या फिर किसी पर क्रोध दिखा रहे होते, तो वे मिलने वालों को समय मुश्किल से देते थे। वे उनपर एक नज़र डालते और फिर पुस्तक के अध्ययन में खो जाते थे। कभी- कभी कोई मिलने वाला काफी देर तक इन्तजार करता, कुछ अटपटा महसूस करता और थोड़ी देर बाद सोचता कि ऐसे गहन अध्ययन में डूबे महापुरुष का समय नष्ट करना पाप है। वह मिले बिना ही सीढ़ियों से नीचे उतर आता और अपने घर चला जाता था, ऐसा कभी-कभी होता था। रात्रि को सोने से पूर्व वे एक गिलास दूध पिया करते थे, जो उन्हें बहुत पसन्द था। अपनी दूसरी शादी के बाद, उनकी डॉक्टर पत्नी ने उनके जीवन को पूर्णतः नियमित करने का भरसक प्रयास किया; लेकिन उनके लिए, यह असम्भव सिद्ध हुआ। पढ़ाई-लिखाई के अभाव में, किसी प्रकार के नियमित जीवन की कल्पना उनके मन में कतई नहीं आई।

डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व में, संयम, परिश्रम एवं कार्यक्षमता दिनोदिन बढ़ती चली गई और वह उनकी दिनचर्या के अंग बन गई। कानून मंत्री पद से त्याग-

पत्र देने के बाद, वे किसी कार्यालय में नहीं जाते थे। घर पर ही वह अपना सारा काम काज स्वयं करते थे। वह स्वयं लिखते थे। चाहते तो कोई स्टेनो रख सकते थे, पर वृद्धावस्था तक ऐसा नहीं किया। उन्हें लिखने में आनन्द आता था और लेखक के रूप में उन्होंने 'स्व' की अनुभूति को मंगलमय माना, भले ही अनेकों अभाव विद्यमान क्यों न हों। नेत्र-रोग ने उनके पढ़ने-लिखने के कार्य में व्यवधान डालने का प्रयास किया, पर वे ऐसे महान् योद्धा निकले कि उस रोग पर उन्होंने विजय प्राप्त करली और जीवन के अन्तिम क्षणों तक पढ़ने-लिखने की साधना में निरन्तर लीन रहे। उन्हें घुटनों का दर्द भी बहुत परेशान करता था। सारी उम्र इस दर्द से वह पीड़ित रहे। महापुरुष कहीं भी हो, कैसा भी हो, वह किसी भी स्थिति में हो, वह कभी भी अपनी ज्ञान-कर्म भक्ति से विमुख होकर विश्राम में समय नष्ट नहीं करता। उसका जीवन निरन्तर साधना के मार्ग पर गतिशील रहता है और अपने प्रकाश से जन-समुदाय का मार्ग-दर्शन करता है। भीमराव का जीवन ऐसा ही एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बाबा साहब का भोजन बड़ा ही सादा हुआ करता था। जब से रामाबाई की मृत्यु हुई तब से उनके खाने-पीने की व्यवस्था अच्छी नहीं बन पाई। जैसा नौकर-चाकर उन्हें खाना बना कर देते, वैसा ही वे खा लिया करते थे। उन्हें स्वादिष्ट तथा गरम-गरम भोजन खाने में कोई विशेष रुचि नहीं थी। उन्हें कुछ लोगों की यह आदत पसन्द नहीं थी कि चूल्हे के पास बैठकर गरम चपातियां खाई जायें और साथ ही साथ अपनी पत्नियों से गप्प-सप्प लड़ाई जाए। "पेट में ईंधन डालना है ताकि शरीर में शक्ति उत्पन्न हो सके। ऐसे व्यक्तियों ने जीवन का लक्ष्य केवल स्वाद, भोजन खाना ही समझ रखा है।" ऐसा उनका विचार था। डा० साहब का भोजन थोड़ा सा चावल, दही, अरहर या कोई और दाल, बाजरे की एक आध रोटी और वेसन में तली मछली के तीन-चार टुकड़े और थोड़ा सा सलाद प्रायः हुआ करता था। विशेष खाद्य पदार्थों में उनकी रुचि नहीं थी। खाना खाते समय पढ़ना उनकी आदत थी। जहां वह खाना खाते वहां ढ़ेर सारे पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तकें पड़ी होती थीं। वह एक कौर खाते और पढ़ने लग जाते थे। खाना ठण्डा हो रहा हो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी। खाना खाकर, थोड़ा सा लेटकर विश्राम करते थे। फिर भी कुछ न कुछ पढ़ते रहते थे। केवल झपकी आने पर ही वे पढ़ना वन्द करते थे। सुवह का नाश्ता भी उनका सादा था। एक चाय का प्याला और विस्कुट्स के कुछ टुकड़े उनके लिए पर्याप्त थे।

डॉ० साहब को दो सब्जियां बहुत अधिक पसन्द थीं—मूली की भाजी और सरसों का साग। सरसों का साग उनको विशेष पसन्द था विशेषकर उस समय उन्हें साग खाने में आनन्द आता था जब उसमें शुद्ध देशी घी का तड़का लगा रहता था। वह मीट अवश्य खाते थे, पर उसके शौकीन नहीं थे। मछली उन्हें पसन्द थी। वह अण्डे भी खाया करते थे। लेकिन मधुमेह रोग ने उनकी खुराक को बहुत कम कर दिया था। दूध उन्हें प्रिय था। रुखी-सूखी रोटी से उन्हें परहेज नहीं था। एक बार कहीं देहात में वे भाषण देने गए हुए थे। वहाँ जाते ही उन्हें भूख लगी

और शीघ्र कुछ खाने को मांगा। आयोजन के कार्य-कर्ता बड़े झेंपे क्योंकि भोजन का प्रबन्ध काफी देर में होने वाला था। पड़ोस के ही किसी घर से बासी रोटी और प्याज उनके लिए उपलब्ध हो पाई। डॉ० साहब ने प्याज-रोटी को बड़े ही चाव से खाया। सभी देहाती स्त्री-पुरुषों को आश्चर्य हुआ कि बाबा साहब इतना सादा खाना भी खा लिया करते हैं।

वेशभूषा एवं रुचि :

डॉ० अम्बेडकर की वेशभूषा में बड़े उतार-चढ़ाव आए। धनाभाव के कारण उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत ही सरल था। स्कूल जाते समय वे एक लंगोटी और सीधी-सादी कमीज पहन जाया करते थे। घर आते ही कमीज उतार देते और नंगे शरीर खेलते-घूमते रहते थे। बॉम्बे आने तक उनके पास कीमती वस्त्र नहीं थे। एक सामान्य विद्यार्थी की तरह, वे सादा जीवन व्यतीत करते थे।

पाश्चात्य देशों में विद्याध्ययन के पश्चात्, उनकी वेशभूषा में बड़ा परिवर्तन आया और वे अच्छे वस्त्र पहनने के शौकीन बन गए। साफ-सुथरे कपड़े तो वे प्रारम्भ से ही पहनते थे; पर अच्छे-अच्छे सूट पहनने का शौक उन्हें हो गया। उन्हें चटकीले वस्त्र पसन्द नहीं थे। उनके कपड़ों का रंग अधिकतर गेहुँआ, बादामी, स्लेटी तथा सफेद हुआ करता था। हल्के रंग के सूट तथा अन्य वस्त्र उन्हें अधिक पसन्द थे। रंग-बिरंगी टाइयां भी वे रखा करते थे। छींट एवं पट्टीदार टाइयां उन्हें अधिक पसन्द थीं। जब वे सूट पहनकर निकलते या कहीं भाषण देते तो उनकी छवि निराली होती थी। उनका गौर-वर्ण, भारी-गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, सफाई के कटे-छँटे बाल, चौड़ा खुला वक्ष आदि प्रत्येक रंग के सूट के साथ बड़े अच्छे लगते थे। अपनी इस वेशभूषा में वे उच्च पद पर आसीन एक बड़े सरकारी ऑफीसर से कम नहीं लगते थे। वे पेण्ट और बन्द गले का कोट भी पहनते थे। जब वे किसी बड़े आदमी से मिलने जाते या किसी सभा में भाषण करने जाते तो वे सूट अथवा बन्द गले का कोट पहनकर ही जाते थे। उनके वस्त्रों में सादगी तथा गम्भीरता झलकती थी।

डॉ० अम्बेडकर जो घर के बाहर होते थे, वैसे घर के अन्दर नहीं थे। घर में प्रायः चूड़ीदार या थोड़ा खुला पाजामा तथा कुर्ता पहनते थे और वह भी कढ़ाईदार तथा एकदम सफेद। शाम को वे आरामदेह वस्त्र पहनकर लॉन में बैठा करते थे और घण्टों तक आगन्तुकों से दर्दभरी कहानियां एवं घटनाएँ सुना करते थे। बाहर वे चाहे गर्मी हो या सर्दी सदैव सूट में जाया करते थे। उनकी मान्यता थी कि व्यक्तित्व का सर्वप्रथम प्रभाव कपड़ों से ही होता है। उन्होंने शिक्षित दलित नवयुवकों को सलाह दी कि वे अपने-अपने गांवों या मुहल्लों में साफ-सुथरे कपड़े पहनकर निकला करें। उनका ऐसा करना ही दलित समाज के स्त्री-पुरुषों को सफाई एवं अच्छे वस्त्रों की ओर आकर्षित करेगा और इस प्रकार वे समाज की सेवा का उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। उन्होंने महाराष्ट्र की स्त्रियों को सलाह दी कि वे अपने अर्द्ध-नग्न शरीर को कपड़ों से ढककर रखा करें। घुटनों से नीचे तक धोतियां पहना करें और पीठ को भी चोलियों से ढ़का करें। सभी स्त्रियां ऐसा ही

करने लगीं, क्योंकि उनके उद्धारक ने उन्हें आज्ञा दी थी।

कहा जाता है कि लोग अपनी प्रतिभा के अनुकूल अपनी रुचियों का निर्माण कर लेते हैं। भीमराव की रुचि को यदि हम इस मापदण्ड से मापने का प्रयास करें तो निश्चय ही यह बात सही प्रतीत होती है। उनकी रुचि बहुमुखी थी। उनको कई प्रकार के विरल शौक थे। उनका जीवन बड़ा ही व्यस्त था। एक प्रकार का तूफानी जीवन था; लेकिन अपनी वृद्धावस्था में वे संगीत सुनने के लिए कुछ समय निकाल लिया करते थे। उन्हें संगीत का पहले से कुछ शौक था। उनका अपना यह दृष्टिकोण था कि प्रत्येक आदमी को संगीत की सामञ्जस्यता और कला की सौन्दर्यता से प्रेम करना चाहिए। अपने जीवन की शाम की वेला में, उन्होंने वॉयलिन सीखने के पाठ सुने। प्रधानमन्त्री चर्चिल के समान, वे चित्र भी खींचा करते थे और जब नौकर यह बतलाता कि उनकी चित्रकारी बड़ी सजीव है तो वे हँस दिया करते थे। एक कलाकार एवं चित्रकार के रूप में, उनका ध्यान उस समय उनके नौकर एवं डॉक्टर पत्नी द्वारा कला-चित्रकारी की ओर आकर्षित किया जाता जब वे कई दिनों तक पुस्तकों से ही निरन्तर चिपके रहते थे। अच्छे चित्रों एवं वास्तुकला के सुन्दर नमूनों में उनकी विशेष रुचि थी। उन्हें इस बात की बड़ी शिकायत थी कि भारत में कला की प्रशंसा को जातिवाद तक सीमित कर दिया गया है। कोई कलाकार, यदि किसी विशेष कला में रुचि रखता हो तो उसे जाति विशेष में ही पैदा होना चाहिए। चूँकि आदमी अपनी कलात्मक रुचि का अनुसरण अपने मनपसन्द नहीं कर पाया, इसलिए भारतीय समाज में कला की बहुत बड़ी क्षति हुई।

डॉ० अम्बेडकर का निवास-स्थान निर्जन दूर जङ्गलों में नहीं था जिससे त्याग या तपस्या के स्थान का आभास मिलता हो। उनके वृहद् पुस्तकालय, कीमती कपड़े, विभिन्न प्रकार के पेन, आलीशान कार, विविध प्रकार के शू तथा बूट और दुर्लभ चित्रों का संकलन—सभी चीजें उनकी बहुमुखी रुचि का मात्र प्रदर्शन ही नहीं बल्कि उनके आकर्षक विजेता व्यक्तित्व के जीवित लक्षण थीं। उन्होंने अपने अनुभव से वह सब कुछ प्राप्त किया जिसमें उनकी रुचि थी। ये अच्छी, सुन्दर एवं दुर्लभ वस्तुएँ उनकी विरक्ति के प्रदर्शन नहीं, बल्कि एक महान् व्यक्ति द्वारा प्रगति की उच्चता, शान, शक्ति एवं ज्ञान के प्रतीक थीं। ये वस्तुएँ एक ऐसे महान् व्यक्ति द्वारा छोड़े गए जीवन-चिह्न थीं जिसे भूख का सामना करना पड़ा, जिसे मामूली गाड़ी से ढकेला गया, होटलों से खदेड़ा गया और कॉलेजों, अदालतों एवं दफ्तरों से बहिष्कृत किया गया। एक ऐसा भी समय आया कि वह व्यक्ति अपनी रुचि की हर वस्तु को खरीद सकता था।

बड़े और विविध प्रकार के फाउण्टेन पेनों में डॉ० साहब की बड़ी रुचि थी। वे घण्टों तक लिखते रहते थे। इसलिए वे बड़े पेनों के शौकीन थे ताकि स्याही जल्दी समाप्त न हो। कीमती ड्रेस और बढ़िया कटिंग को वे पसन्द करते थे। लगता है उन्हें अपने को जितना सम्भव हो महान् बनने में खुशी महसूस होती थी। फिर भी, जीवन के सभी क्षेत्रों में, उनके अन्दर आत्म-संयम था जो उन्हें विद्यार्थी-

जीवन से ही रखना पड़ता था। आत्म-संयम, आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण मूल्य थे। वे बीड़ी-सिगरेट नहीं पीते थे। मीट अवश्य खाते थे; पर उसके अत्यधिक शौकीन नहीं थे। वे पूर्णत: मद्य त्यागी थे। उनका भोजन प्राय: सादा ही हुआ करता था।

पुस्तकों के अध्ययन में लीन रहना उनका बहुत बड़ा शौक था। अत: उन्हें कुछ लोग 'किताबी-कीड़ा' भी कहा करते थे। यही कारण है कि सामाजिक चहल-पहल के लिए उनके पास समय नहीं था। सभाओं में अवश्य जाते थे। जीवन की सामाजिक चटक-मटक के लिए उनमें रुचि नहीं थी। वे कभी-कभी पिक्चर देखने भी जाया करते थे। 'अंकिल टॉम' पिक्चर को उन्होंने अपनी प्रथम पत्नी रामाबाई के साथ देखा। 'अछूत कन्या' नामक फिल्म भी उन्होंने देखी और उसे देखकर, उनकी आंखें वेदना से भर गईं। फिल्म एक अछूत लड़की के जीवन से सम्बन्धित थी। अपनी डॉक्टर पत्नी के साथ डॉ० अम्बेडकर ने 'ऑलीवर ट्विस्ट' फिल्म को देखा। उन्हें फिल्म देखने का शौक नहीं था क्योंकि जब वे निर्धनों, दलितों आदि के जीवन की ओर देखते थे तब उनके हृदय में धड़कन पैदा हो उठती थी। अपने बचपन में उन्होंने क्रिकेट का खेल भी देखा और जब उनकी प्रथम पत्नी स्थान-परिवर्तन के लिए धरवार गई थीं तब वहां भी उन्होंने होस्टल के विद्यार्थियों के साथ क्रिकेट खेली। दलित विद्यार्थियों के मुखिया वही थे। 21-22 वर्ष की उम्र में वे कार्ड्स भी खेलकर आनन्दित होते थे और कभी-कभी बड़ी रुचि के साथ ब्रिज के दौर भी चलते थे। समुद्र में वे रोजाना नहाया करते थे, प्राय: व्यायाम की दृष्टि से, कभी-कभी विषयान्तर के लिए।

डॉ० साहब स्वयं भोजन बनाने में दक्ष थे पर उनकी विशेष स्वादिष्ट खाने में रुचि कम थी। जैसा मिल जाता वे खा लिया करते थे। अपनी प्रौढ़ावस्था में, विशेषकर जब वे दिल्ली में रहने लगे थे, वे इतवार के दिन स्वयं भोजन तैयार करते और अपने किसी मित्र के साथ उसका आनन्द लिया करते थे। कभी-कभी वे भोजन अपने पुस्तकालय में ही मंगवा लिया करते थे। जब वे अपने परिवार के सदस्यों से नाराज होते तब वे एक मूर्ति के समान शान्त बने रहते थे। न बोलते और खाना भी नहीं खाते थे। तब वे स्वत: भुनभुनाते कि वे एक ऐसे आदमी हैं जो अन्य व्यक्तियों की सङ्गति में रहने के लायक नहीं है। उन्होंने वर्षों तक निरन्तर संघर्ष किया, दलितों की चिन्ताएं की और स्वयं अनेक प्रकार की मुसीबतों से से घिरे रहे, पर उनके चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आई। कुछ दिनों तक वे एपेण्डिसाइटिस तथा ब्लड प्रेशर से पीड़ित रहे। इसके अलावा, उनकी वृद्धावस्था को डॉयबिटीज रोग ने घर दबोचा। उनकी देह उन्हें जवाब देती जा रही थी, परन्तु उनका सङ्कल्प सुदृढ़ था। उनकी मानसिक स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। सन् 1954 के आरम्भ में उनके पैरों का बिजली से उपचार हुआ। उन्हें विशेष आराम नहीं हुआ। टांगों से चलना उनके लिए कठिन हो गया। किसी छड़ी या लट्ठ अथवा अपने अवैतनिक सचिव या अन्य किसी व्यक्ति के कंधों के सहारे, वे थोड़ा बहुत चल सकने में समर्थ थे।

डॉ० सहाब का हस्त-लेखन बहुत अच्छा था। उनका अपना शानदार स्टाइल था। वे अधिकतर बड़ा-बड़ा तथा ठोस लिखते थे। उनका हस्त-लेखन उनकी दृढ़ता, स्पष्टता एवं कलात्मकता का प्रतीक था। डॉ० अम्बेडकर को बढ़िया किस्म के कुत्तों से बड़ा प्रेम था। देश के किसी भी कोने से वे उस कुत्ते को घर ले आया करते, जिसे वे पसन्द किया करते थे। महाड जल सत्याग्रह के दौरान, उनके कुत्ते ने ही सर्वप्रथम चौवदार तालाब से पानी पिया था। फिर स्वयं डॉ० साहब तथा अन्य लोगों ने जलाचमन किया। उन्हें मुर्गी-पालन का शौक भी था। उनकी कोठी में मुर्गीखाना बना था जिसमें मुर्गी-मुर्गों को वे पालते थे। उन्हीं के अण्डों का वे सेवन किया करते थे। उन्होंने उन सभी रुचियों को पूरा किया जिन्हें वे पूरा कर सकते थे। उनको जिन आकर्षक वस्तुओं से प्रेम था, वह उन्हें यथासम्भव खरीद भी लिया करते थे।

डॉ० अम्बेडकर से मिलना एक बोलते म्यूजियम के साक्षात्कार के समान था। उनका वार्तालाव देदीप्यमान, आकर्षक, कठोर तथा ज्ञानवर्धक हुआ करता था। उनकी बातचीतों के दौरान विविध विषयों पर चर्चाएं चलती रहती थीं जो उनके मन रूपी म्यूजियम में भरी पड़ी रहती थी। वह अपने श्रोताओं को प्राचीनकाल की ओर ले जाते। मध्यकालीन अन्धकार से निकालते हुए एक ऐसे स्थान पर ले आते जहां वे दुनिया को दृष्टिगोचर कर सकते थे। डॉ० अम्बेडकर उन्हें भूतकाल की व्याख्या से परिचय देते, विभिन्न दन्त कथाओं का महत्त्व बतलाते और फिर प्राचीन एवं आधुनिक दर्शनों, धर्मों एवं सिद्धान्तों का विश्लेषण करते थे। श्रोताओं को बड़ा आनन्द आता था। वे उनकी बातों से उकताते नहीं थे। आधुनिक युग के महान् ऋषियों में से एक, डॉ० अम्बेडकर, के साथ सम्पर्क स्थापित कर वे बहुत आनन्दित होते थे। उनके सम्पर्क में सामीप्य तथा आत्मीयता थी जिसके कारण जन-साधारण भी उनसे एक बार मिलकर मुग्ध हो जाया करता था।

उन्हें किताबें खरीदने एवं पढ़ने का ही शौक नहीं था, उन्हें सम्भाल कर रखना, व्यवस्थित रूप में पाना भी, उनको प्रिय लगता था। एक बार डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि, दुर्भाग्यवश यदि कोई कारिन्दा उनके पुस्तकालय को कब्जे में करने आए तो वे उसे प्रथम पुस्तक छूने से पहिले ही जान से मार देंगे। पुस्तकें ही उनका असली जीवन था। उन्हीं में उनके प्राण थे। सिसरो कहता था कि वह पुस्तकों के बीच रहने के लिए सबका त्याग कर देंगे। गिब्बन ने कहा, कि वह भारत के समस्त खजानों के बदले में भी पुस्तक-प्रेम का त्याग नहीं करेंगे। मेकॉले ने इच्छा व्यक्त की, कि यदि वह राजा होने के बाद पुस्तकें नहीं पढ़ सका अथवा उसे नहीं पढ़ने दिया गया तो वह राजा बनना कतई पसन्द नहीं करेगा। डॉ० अम्बेडकर की भी अपनी प्रतिज्ञा थी। जब उन्हें नेत्र-रोग हुआ तब वह फूट-फूट कर रोये कि कहीं उनका पुस्तक पढ़ना बन्द न हो जाये। उन्होंने सोचा कि यदि उनके नेत्रों की रोशनी चली गई तो वे अपने जीवन का अन्त कर लेंगे। ऐसा था उनका पुस्तक-शौक। पुस्तकें ही उनके साथी और मित्र थे। पुस्तकों के अभाव में उनका समस्त जीवन शून्य था।

डॉ० अम्बेडकर को केवल पुस्तकें पढ़ने का शौक नहीं था। पुस्तकें लिखना भी उनके व्यक्तित्व का अङ्ग था। जब कभी भी वे नई पुस्तक लिखते थे, उनको बहुत खुशी होती थी और जब वह अपने विचारों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित देखते थे, तब उन्हें असीम आनन्द की अनुभूति होती थी। उनके मस्तिष्क से निकली एक पुस्तक की उनकी खुशी कहीं चार बच्चों के जन्म से बढ़ कर होती थी। जैफरसन ने अपने पुस्तकालय को अमेरिकी सरकार को बेच दिया था ताकि वह अपने ऋणों को चुका दे। डॉ० अम्बेडकर ने अपने पुस्तकालय के सिद्धार्थ कॉलेज, बॉम्बे, जिसकी स्थापना स्वयं उन्होंने ही की थी, को दे दिया जिसकी केवल उन्हें आधी कीमत मिली, जितनी कि बिरला ने उन्हें देने को कहा था। बिरला ने उनके पुस्तकालय की पुस्तकों की कीमत पन्द्रह लाख रुपये आंकी थी। बिरला को उन्होंने अपने पुस्तकालय को नहीं बेचा; बल्कि अपनी ही संस्था को आधी कीमत पर बेचा ताकि उस पुस्तकालय से उनका सम्पर्क बराबर बना रहे। उसके बाद जब वह श्रममन्त्री बने और 26 अलीपुर रोड़, दिल्ली, में रहने लगे, तब भी वह निरन्तर पुस्तकें खरीदते रहे। वहां पर भी बहुत बड़ा पुस्तकालय विकसित हो गया, जिसकी कीमत भी लाखों में थी।

उनकी रुचियां स्वतन्त्र थीं। डॉ० साहब का जीवन रूढ़िगत संस्कारों से मुक्त था। वे अपनी रुचि, बुद्धि एवं आचरण के अनुसार रूढ़िबद्ध संस्कारों का पूर्णतया खण्डन करते थे तथा उस खोखली ब्राह्मणी आदर्श नीति को नष्ट करना चाहते थे जिसके कारण व्यक्ति अपनी-इच्छानुसार स्वतन्त्र न रह कर, अपनी रुचि अनुसार काम न कर, समाज की परम्पराओं और संस्कारों के इशारों पर कठपुतला मात्र बन कर नाचता रहे। डॉ० साहब की मान्यता थी कि यदि मनुष्य को अपनी रुचि अनुसार धन्धा या रोजगार न मिले तो आर्थिक व्यवस्था खुशहाल नहीं हो सकती। मनुष्य को रूढ़ि, परम्परा, अन्धविश्वास, अज्ञान एवं अशिक्षा के बन्धन से मुक्त किया जाना चाहिए। उम्र के मोड़ के साथ-साथ डॉ० साहब की रुचियों, आचार-विचारों, तथा अभ्यासों में थोड़ा सा अन्तर अवश्य आया, पर परिस्थितियों के थपेड़े सहन करके भी, दलितों की सेवा में लीन रहते हुए भी, वे अपने ढंग, रुचि अनुसार जिये। बनावटी रहन-सहन तथा वेशभूषा में उनका विश्वास नहीं था।

डॉ० अम्बेडकर का शरीर काफी स्थूल था। उन्हें घूमने-फिरने तथा टहलने का शौक नहीं था और न ही किसी प्रकार के नियमित व्यायाम में उनकी रुचि थी। अमेरिका जब गए उस समय उनकी पहलवानी में रुचि थी। स्वास्थ्य के बारे में उन्हें कोई भारी चिन्ता नहीं थी। वास्तव में वे विद्या प्रेमी थे और पढ़ने लिखने से उन्हें फुरसत नहीं थी। वे स्नान के बाद कच्चे खोपरे (नारियल) का तेल अपने सिर में लगाया करते थे। वृद्धावस्था तक उनके बाल काले बने रहे। चेहरे पर एक भी झुर्री नहीं पड़ पाई। व्यायाम तथा आसनों को वे अच्छा मानते थे। चूंकि वह शरीर को स्वस्थ एवं बलिष्ठ बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं; लेकिन डॉ० साहब तो विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों से घिरे रहते थे। उन्हें रोटी भूख की अपेक्षा पढ़ने-लिखने की भूख इतनी अधिक थी कि वह

अपने मधुमेह रोग की कतई चिन्ता नहीं करते चिन्ता नहीं करते थे। हर स्थिति में पुस्तकों के अथाह सागर में डूबे रहना, उनका बहुत बड़ा शौक था जो जीवन पर्यन्त बना रहा।

प्रभावशाली वक्ता :

कोई महान् व्यक्ति प्रभावशाली वक्ता हो, उसकी अच्छी भाषण-कला हो; यह आवश्यक नहीं; लेकिन बाबा साहब न केवल महान् आदमी के रूप में एक ठोस विद्वान् के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके थे, बल्कि वह प्रभावशाली वक्ता भी थे। उनके व्यक्तित्व की यह विलक्षणता उनके निरन्तर परिश्रम का ही परिणाम था। एक बार उन्होंने किसी पत्रकार से कहा कि 'तुम्हें मेरे परिश्रम एवं पीड़ाओं का तनिक भी ऐहसास नहीं होगा, यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो नष्ट हो गए होते।' उनके प्रभावशाली वक्ता होने का भी एक रहस्य था जिसे सामान्य लोग समझने में समर्थ नहीं हो पाते। वह रहस्य था उनके जीवन की एक निश्चित आदर्श के प्रति निष्ठा एवं भक्ति। डॉ० साहब की मान्यता थी कि किसी सर्वोच्च आदर्श का अनुसरण, आदमी को प्रेरक शक्ति और अडिग नैतिक नायकत्व प्रदान करता है। जीवन भर उन्होंने अपनी शक्तियों का विकास किया और उन्हें अपने लोगों के मुक्ति संग्राम में निष्ठापूर्वक अभिव्यक्त किया। दलितों को मुक्ति ही उनकी साँस थी। उनके रक्त की ज्वाला थी। उसी आदर्श की प्राप्ति के लिए डॉ० अम्बेडकर ने अपने समस्त ज्ञान, सामर्थ्य, सुख एवं परिश्रम को अर्पित कर दिया था। उनमें एक विचारक जो कर्म को प्रेम करता हो और एक विद्वान् जो विभिन्न विषयों में व्यस्त हो, का विचित्र सङ्गम था। कर्म ज्ञान के बिना अन्धा होता है; लेकिन डॉ० अम्बेडकर में कर्म, ज्ञान एवं चिन्तन सभी का अच्छा समन्वय था। उन्होंने विद्या एवं राजनीति के क्षेत्र में तहलका मचा दिया। उनमें अथाह ज्ञान-भण्डार था। जीवन का व्यापक अनुभव था। साथ ही साथ अपने आदर्श को पूरा करने की उनमें असीम उत्कण्ठा थी।

निस्सन्देह डॉ० अम्बेडकर का अथाह ज्ञान, आदर्श का अनुसरण और कर्तव्य के प्रति निष्ठा उन्हें प्रभावशाली वक्ता बनाने में समर्थ हुए। उन पर समय की छाप अत्यन्त तीव्र गति से पड़ी थी। समय एव परिस्थिति को पहचानने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। नेतृत्व के सभी गुण उनके व्यक्तित्व में निहित थे। उनके जीवन में आदर्शवाद एवं व्यवहारिकता का अद्भुत समन्वय था। ज्ञान और अनुभव का अनुपम सङ्गम था। एक ओर उनका शान्तप्रिय विद्याध्ययन था तो दूसरी ओर तूफानी राजनीतिक जीवन, जो उन्हें सदैव कार्यरत एवं व्यस्त बनाए रखता था। व्यक्तिगत ईमानदारी और बौद्धिक निर्भीकता उनके व्यक्तित्व की सुन्दर विशेषता थीं। यही कारण है कि उनका अपने लोगों पर अटूट प्रभाव था। जिस कार्य के लिए वह हाँ या ना कहते सभी स्त्री-पुरुष ऐसा ही करते थे। जनता की भी उनमें अटूट आस्था थी। वह वास्तव में जन-समुदायों के लिए लोकप्रिय नेता थे। उनके नेतृत्व का गुण यह था कि वह कार्य-निष्ठा को सङ्गठन की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे।

डॉ० अम्बेडकर प्रभावशाली वक्ता एवं नेता दोनों ही थे। उनका नाम ऐसे नेताओं की श्रेणी में आता है जिनका जन्म विशेष मिशन के साथ हुआ। वह प्रभावशाली वक्ता क्यों बने ? इसलिए कि उनका एक मिशन था जिसकी सफलता के लिए उन्होंने जीवन भर काम किया। सङ्गठन शक्ति के साथ-साथ उन्होंने जन-जागृति से एक महान् कार्य का प्रतिनिधित्व किया। डॉ० साहब की मान्यता थी कि किसी नेता को जनता का दलाल नहीं होना चाहिए। समय एवं परिस्थिति के अनुसार जनता की आवश्यकताओं और माँग की वकालत करनी चाहिए। वह स्वयं एक ऐसे नेता थे जिसने अपने लोगों के समक्ष मुक्ति का सच्चा मार्ग प्रस्तुत किया। उनका भाषण जनता को खुश करने या उनके मनोरञ्जन के लिए कभी नहीं होता था। उनके प्रत्येक वक्तव्य तथा भाषण में, अपने मिशन की ही रोशनी झलकती थी। जनता उनके पीछे इसलिए थी कि उनमें स्पष्ट ईमानदारी, योग्यता, आत्म-बलिदान एवं ज्ञान के अद्भुत गुण विद्यमान थे। वैयक्तिक सङ्गठनों में, उनकी आस्था कम थी। वह मात्र सङ्गठन नहीं, बल्कि ठोस काम चाहते थे और जब वे चाहते थे लोगों को थोड़े से समय में सङ्गठित कर लिया करते थे।

मञ्च एवं संसद दोनों में डॉ० अम्बेडकर एक प्रभावशाली वक्ता थे। अपने भाषण में बहुत ही उत्तेजक एवं उलझन में डालने वाले प्रभाव को लेकर वे अपने विरोधियों पर पिस्टल शॉटस् के समान बौछार किया करते थे। एडमण्ड बर्क जैसी भाषण-कला तो उनमें नहीं थी; परन्तु उनका भाषण सरल, स्पष्ट एवं तीखा हुआ करता था। उनके भाषण की अपनी विशेषता थी। उसमें जो निर्भीकता होती थी, वह, उनके वृद्ध अनुभव और आत्म-विश्वास से, जिसे उन्होंने अपने अविरल अध्ययन के दौरान प्राप्त किया था और तीव्र हो गई थी। वे जो कुछ कहते उसमें उनका अटूट विश्वास होता था ; एक अकाट्य सत्य था और वह सत्य जिस किसी के लिए कहा जाता था, उसका बड़प्पन और हिंसात्मक रुख ढ़ीला हो जाता था। संसद में उनके भाषण बड़े ही मर्मभेदी और ज्ञानवर्द्धक हुआ करते और सभी सदस्य उन्हें बड़े ध्यानपूर्वक सुना करते थे। डॉ० राधाकृष्णन् जब राज्यसभा के अध्यक्ष थे तब वे डॉ० अम्बेडकर को बड़े चाव से सुना करते थे, हालाँकि वे स्वयं उच्च कोटि के वक्ता थे। संसद में बहुत से सदस्य फालतू बातें किया करते थे। उनकी अपेक्षा डॉ० साहब को बोलने के लिए अवसर ही नहीं, बल्कि अधिक समय दिया जाता था। गम्भीर भाषणों की दौड़ में उनका प्रथम स्थान था।

जीवन में उन्होंने अनेक भाषण दिये होंगे। प्रत्येक भाषण की अपनी विशेषता होती थी। अपने वक्तव्यों में वे आँकड़े तथा तथ्यों का उद्घाटन किया करते थे। उनके एक भाषण की चर्चा कई दिन तक अखबारों में चलती रहती थी। उनका भाषण कभी सरकार को हिला देता था तो कभी रूढ़िवादी हिन्दू समाज को। वे कुछ ऐसी बातों का रहस्योद्घाटन करते थे जिनसे सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक उत्तेजना का वातावरण बन जाता था और फिर उनके भाषण निरन्तर चर्चाओं के विषय बन जाते थे। आलोचना, समीक्षा तथा टीका की बाढ़ सी आ जाती थी। मुझे कई बार उनके भाषण को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ

विशेषकर दिल्ली में अम्बेडकर-भवन पर जब मैं वहाँ सर्विस करता था। पहली बार उन्हें देखकर, हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। वे कार में आए थे। लोगों ने कन्धों का सहारा दिया और एक छड़ी के सहारे उन्हें मञ्च पर बैठाया। बुद्ध पूर्णिमा का दिन था। जब वह बोलने खड़े हुए तो दो घण्टे तक बोलते रहे। सारे समय तक श्रोता-गण अपने स्थानों पर बर्फ की भांति जम से गए। कितना आनन्द था उनके प्रवचन में, इसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। सभी स्त्री-पुरुष मुग्ध हो गए। उनकी भाषण-शैली बड़ी सरल, स्पष्ट और ग्राह्य थी। एक बार जिसने उन्हें सुन लिया वह उनका भक्त हो गया और सदैव उन्हें सुनने की अभिलाषा बनाए रखता था।

डॉ० अम्बेडकर कई भाषाओं के ज्ञाता थे। वे हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, जर्मन तथा परसियन जानते थे। महाराष्ट्र में मराठी तथा उत्तरी भारत में हिन्दी में ही वे जनता के बीच भाषण करते थे। संसद में अंग्रेजी में बोलते थे। हिन्दी पर उनका उतना ही अधिकार था जितना मराठी तथा अंग्रेजी पर। बहुत ही सरल, किन्तु प्रभावशाली हिन्दी में बोलते थे और अग्रेजी में तो अच्छे-अच्छे पाश्चात्य विद्वान् उनका मुकाबला नहीं कर पाते थे। एकबार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बोलने के लिए आमंत्रित किए गए। वे वहाँ गए। कुछ पण्डित छात्रों ने यह निश्चय किया कि यदि डॉ० अम्बेडकर अंग्रेजी में ही भाषण दें तो वे शोरगुल करेंगे और कहेंगे कि हिन्दी में बोलो। जब डॉ० साहब विश्व-विद्यालय संघ की ओर से आर्ट्स कॉलेज मैदान में बिना कहे सुने हिन्दी में ही बोले तो सभी पण्डित छात्र चकित रह गए कि वह इतनी अच्छी हिन्दी में कैसे भाषण कर गए, जब कि उनकी शिक्षा-दीक्षा विदेशों में हुई थी। वहाँ उन्होंने छात्रों से निवेदन किया; "आप लोग इस विषय पर गम्भीरता से चिंतन करें कि हमारे धर्मशास्त्रों में वर्णित जीवन क्या हमारे संविधान के साथ मेल खाता है? यदि नहीं, तो क्यों? या तो धर्म को जिन्दा रखा जा सकता है या फिर संविधान को, दोनों को एकसाथ नहीं। दोनों में जो अन्तर्विरोध हैं, उन्हें समाप्त किया जाना चाहिए।" वे लगभग डेढ़ घण्टे से अधिक बोले और सभी छात्र चुपचाप सुनते रहे। उनके भाषण की भाषा एवं विषय में अद्भुत आकर्षण होता था जिसके कारण उनके प्रतिद्वन्द्वी भी उन्हें शान्तिपूर्वक सुना करते थे।

अपनी ज्ञान शक्ति, आत्म-विश्वास और जन-कार्य के प्रति निष्ठा के आधार पर डॉ० अम्बेडकर ने बॉम्बे में श्रमिकों को अच्छी तरह सङ्गठित किया। वे उन्हें साम्यवादियों के चंगुल से बचाना चाहते थे क्यों कि मिलों आदि में हड़तालें करवा करवा कर, वे अपना उल्लू सीधा करते थे जब कि मज़दूरों को भारी नुकसान, दु:ख एवं पीड़ा का सामना करना पड़ता था। उन्होंने एकबार भाषण में कहा कि दुनियां में केवल दो, धनी एवं निर्धन, वर्ग हैं। उन्होंने मज़दूरों को समझाया कि वे अपनी गरीबी के कारणों के विषय में भलीभांति सोचें। कुछ लोगों की अमीरी ही उनके दु:खों का मूल कारण है। इसका एकमात्र उपाय है कि सभी श्रमिक, जाति एवं धर्म पर आधारित भेदभाव के बिना, एक मजदूर मोर्चा बनाएं और उन लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनें जो उनके वास्तविक हितों की रक्षा कर सकें।

यदि वे ऐसा कर लें तो उन्हें कपड़ा, रोटी और मकान अवश्य मिलेगा। हड़तालों से देश को होने वाला नुकसान भी बन्द हो जाएगा। उनके भाषण की तर्कना शक्ति एवं तीव्रता ने साम्यवादियों के छक्के छुड़ा दिए। उनके विरोधियों को यह भय होने लगा कि डॉ० अम्बेडकर कहीं किसानों, मज़दूरों तथा भूमिहीन श्रमिकों का प्रभावशाली नेता न बन जाए। इस प्रकार उनकी भाषण-कला खोखली एवं विनोद-प्रिय नहीं थी, बल्कि अपने मिशन के अनुसार, ठोस, स्पष्ट एवं तार्किक थी। उनकी भाषण-कला तथा शक्ति का सीधा स्रोत उनका मिशन था।

वह एक श्रमिक नेता के रूप में ही स्थापित नहीं हुए, बल्कि अपनी भाषण-शैली से वह उच्चकोटि के एक वकील भी सिद्ध हुए। उनके समय के अंग्रेजी न्यायाधीश उनके तर्क एवं भाषा से बड़े मुग्ध हो जाया करते थे। जब वह वाइसराय की कॉन्सिल में श्रम-मन्त्री थे, तब उनके भाषणों से सभी सदस्य बड़े प्रभावित होते थे। वह अपनी बात को ठोस सिद्ध करने के लिए, कभी-कभी मेज पर अपनी मुट्ठी भी जमाया करते थे। सबका ध्यान उनकी ओर केन्द्रित होता था कि कहीं उनके द्वारा कहे महत्त्वपूर्ण अंशों से वंचित न रह जाएं। गोलमेज सम्मेलनों में तो उनके सामने गान्धी जैसे नेता भी फीके पड़ गए थे। डॉ० साहब के तर्कों तथा भाषा से प्रभावित वहां के राजा जार्ज पंचम ने उन्हें अपने महल में आमंत्रित किया। उनके परिवार के विषय में जानकारी ली। तत्पश्चात् राजा ने उनके व्यक्तित्व एवं मिशन की बड़ी प्रशंसा की। उस समय के सभी ब्रिटिश अधिकारी तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री, उनके व्याख्यानों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। गोलमेज परिषदों में, उन्होंने भारत में रहने वाले अछूतों की करुण कहानी इतने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की कि सुनने वाले चकित रह गए और उन्हें ही दलितों का एकमात्र नेता तथा प्रतिनिधि स्वीकार किया गया, जिससे गान्धी तथा अन्य कांग्रेसी बड़े रुष्ट हुए।

प्रिन्सिपल के रूप में :

परिवार की दृष्टि से, डॉ० अम्बेडकर अपने को असफल मानते थे क्योंकि उनके पास इतना समय नहीं था कि परिवार के सदस्यों की अच्छी तरह देखभाल करते। थोड़ा बहुत समय मिलने पर, वह पारिवारिक मामलों में रुचि ले लिया करते थे। सन् 1930 के पश्चात्, उनकी धर्मपत्नी, रामाबाई, प्राय: बीमार रहती थीं। स्थान्तरण के लाभ की दृष्टि से, वह उन्हें घर बार भी ले गए थे; परन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। नि:सन्देह डॉ० साहब को एक अच्छी, कर्तव्यनिष्ठ तथा पवित्र पत्नी मिली थीं, पर उनके स्वास्थ्य के बिगड़ने से घर में अधिक आनन्द-प्रिय वातावरण नहीं रहा। उधर उनके तीन पुत्र और एक पुत्री का देहान्त हो चुका था जिनका दु:ख उन्हें बहुत दिनों तक कचोटता रहा। तभी से वह परिवार से प्राय: दूर-दूर रहा करते थे। रामाबाई का स्वास्थ्य दिनोदिन बिगड़ता जा रहा था। 'राजगृह' में आने से उन्हें कोई बड़ी भारी प्रसन्नता नहीं हुई थी क्योंकि वह जीवन की वास्तविकताओं से भलीभांति परिचित थीं। वह रात-दिन 'अपने साहब' की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को चिंता में डूबी रहती थीं। उन्हें बड़ी शिकायत

थी कि सभाओं के संयोजक डॉ० साहव की गम्भीर स्थितियों में डाल देते हैं और आराम नहीं करने देते। लेकिन इतना स्नेह वह अधिक दिनों तक न दे पाई और 27 मई 1935 के दिन उनका देहान्त हो गया।

सन् 1935 की एक और हृदयविदारक घटना उस समय हुई जब वास्सीन के डॉ० सदानन्द गॉलवंकर का देहान्त हुआ। डॉ० अम्वेडकर अपनी पत्नी के देहान्त से इतने दु:खी नहीं थे जितने कि डॉ० सदानन्द की मृत्यु से हुए क्योंकि वह अछूतों के सच्चे संरक्षक थे। उनकी मृत्यु के समय, डॉ० साहव उनके पास थे। दोनों ही घटनाओं से, वह काफी दिनों तक शोक संतप्त रहे। कई दिनों तक वह अपने कमरे में वन्द मौन पड़े रहे। इन दु:खद घटनाओं के पश्चात्, डॉ० अम्वेडकर के जीवन में एक ऐसा परिवर्तन आया जो उनकी रुचि के अनुकूल था। वॉम्वे सरकार ने उन्हें 1 जून, 1935 को गवर्नमेण्ट लॉ कॉलेज का प्रिन्सिपल नियुक्त किया, हालांकि पत्नी के देहावसान के पूर्व ही, उन्होंने अपनी स्वीकृति दे रखी थी। अतएव जून के मध्य से, उन्होंने कॉलेज के प्रशासनिक मामलों को अच्छी तरह देखना आरम्भ कर दिया। सरकार ने इस चुनाव से एक ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को ढूंढ़ा जो पद को ही सुशोभित नहीं कर सका, वल्कि कॉलेज के शैक्षणिक स्तर को भी उसने आगे वढ़ाया। वह न्यायिक सेवाओं में प्रवेश के लिए एक सीढ़ी थी। कभी-कभी प्रसन्नचित्त में, डॉ० साहव न्यायिक सेवाओं में उच्च पद पर पहुँचने की आकांक्षा भी व्यक्त करते थे। उनके लिए यह कोई वड़ी वात नहीं थी। कॉलेज का कार्यभार पूर्णत: संभालने के पश्चात्, उन्होंने कॉलेज के विकास के लिए, कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जिन्हें मानकर सरकार ने पूरा-पूरा सहयोग दिया। वह न केवल अच्छे अध्यापक, वल्कि एक अच्छे-कुशल प्रशासक भी थे।

डॉ० अम्वेडकर ने अपने पद के अनुसार, कॉलेज के शैक्षणिक एवं नैतिक स्तर को काफी ऊँचा उठाया और उन्होंने उसे प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँचा दिया। उनके अनुसार, किसी प्रिन्सिपल में दो गुणों का समावेश अनिवार्य है। प्रथम उसमें प्रशासनिक क्षमता एवं समझ वूझ हो और द्वितीय उसमें गम्भीर, विद्वता हो ताकि वह कालेज के दो महत्त्वपूर्ण पक्षों-शैक्षणिक एवं प्रशासनिक, की भलीभांति देखभाल कर सके। उनकी दृष्टि से, किसी प्रोफेसर में तीन गुणों का समावेश हो तो अच्छा है। (i) प्रोफेसर का व्यक्तित्व आकर्षक हो; वेश-भूषा, चाल-चलन, में सौम्यता हो; (ii) अपने विषय पर उसका अधिकार हो अर्थात् अपने द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय पर उसका गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन हो; और (iii) उसमें अपनी वात कहने की आकर्षक कला हो अर्थात् विषय को अच्छी तरह समझाने की उसमें क्षमता होनी चाहिए। इन तीन गुणों से युक्त कोई भी प्रोफेसर निश्चित रूप से सफल ही वनेगा और विद्यार्थी न केवल उससे लाभान्वित होंगे, वल्कि उसका सम्मान भी करेंगे।

इसी वीच यह अफवाह उड़ गई कि डॉ० अम्वेडकर राजनीति से संन्यास लेने वाले हैं। एक पत्रकार ने तो यहाँ तक लिख दिया कि वे या तो हाईकोर्ट में जज

बनेंगे या फिर सरकार में मंत्री। यह सोचना कहीं न्यायसंगत था, चूंकि डॉ० अम्बेडकर सरकारी नौकरी पर थे, इसलिए वे राजनीति में भाग नहीं ले सकते थे। अम्बेडकर साहब ने यह तो स्वीकार नहीं किया कि वह राजनीति या सार्वजनिक जीवन से संन्यास लेंगे, पर यह अवश्य कहा कि यदि वे जिला न्यायाधीश का पद स्वीकार करलें तो हाई कोर्ट के न्यायाधीश अवश्य बन जायेंगे। डॉ० साहब के मन में वस्तुत: क्या था, यह वही जानते थे, पर उनकी क्रियाओं से यह आभासित होता था कि हाई कोर्ट में न्यायाधीश के रूप में बैठना, उनके लिए एक छोटे कटघरे में एक बड़े शेर को बन्द करने के समान था। यदि उन्होंने न्याय-मूर्ति के पद को संभाल लिया होता तो इससे केवल इतना सिद्ध होता कि एक अछूत भी अवसर पाने पर उच्च पद पर पहुँच सकता है। एक बार उन्होंने कहा था कि न्यायमूर्ति का पद उनके लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। यहाँ तक कि वाइसराय का पद भी उनकी महत्वाकांक्षा के बराबर नहीं है, क्यों कि उनमें योग्यता एवं क्षमता दोनों गुण विद्यमान थे।

यह ठीक भी है जो व्यक्ति दीन-हीनों की सेवा में लगा हो और जिसने अपनी सारी खुशियों को अछूतों की सेवा में अर्पित कर दिया, उसके लिए हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति का पद क्या अर्थ रखता है। समाज की सेवा में कोई भी सरकारी नौकरी बाधक होती है, ऐसा उनका निश्चित विचार था। यही कारण है कि उन्होंने जिला न्यायाधीश के पद को, जो उन्हें दिया गया था, स्वीकार नहीं किया। गवर्नमेण्ट लॉ कालेज के प्रिन्सिपल तो वे इसलिए बन गए थे कि उस समय उनके जीवन का दौर कुछ विचित्र ढंग से चल रहा था। उस पद पर भी अधिक दिनों तक बने रहने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी। समाज सेवा की भावना से प्रेरित, उन्होंने उस पद से भी निवृत्ति प्राप्त कर ली और एक स्वतंत्र नेता के रूप में, वे अछूतों की सेवा में लीन हो गए। अछूतोद्धार ही तो उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। जो काम उन्हें प्रिय लगा, उसी में वह जुटे रहे।

शारीरिक रोग का सामना :

डॉ० अम्बेडकर जब बॉम्बे से आकर दिल्ली ही रहने लगे तो अकेले आए थे। उनकी पहली पत्नी रामाबाई का देहान्त सन् 1935 में ही हो चुका था और पुत्र यशवन्तराव बॉम्बे में ही रहता था। यहां आने के बाद उनकी टांगों का दर्द, विशेषकर पिण्डलियों का, बढ़ता जा रहा था। उनकी अदम्य कार्यक्षमता को चोट पहुँचाने वाली उनकी निरन्तर रुग्णता की स्थिति बन गई। निरन्तर रोग-ग्रस्तता ने उन्हें पंगु बना दिया था। वे अच्छी तरह चल तथा टहल नहीं सकते थे। उनका स्वास्थ्य भी रुग्णता से गिरने लगा था, हालांकि उनका चेहरा कान्ति से चमकता था।

जब डॉ० साहब सितम्बर 1947 में भारत सरकार के प्रथम विधि मंत्री बने तो उन्हें हार्डिंग एवेन्यू की कोठी निवास-स्थान के लिए मिली। उसके पूर्व वे वेस्टर्न कोर्ट के रूम न० 11 में रहा करते थे। उन्हीं दिनों उनकी दोनों टांगों के निचले भाग अर्थात् पिण्डलियों में प्रात: तीन-चार बजे असह्य पीड़ा प्रारम्भ हो

जाती थी। वह सूर्य उदय तक दीवार का सहारा लेकर इधर-उधर चक्कर काटते रहते थे। उन्हें बहुत बेचैनी होती थी। लेकिन जब अनेक शिष्य तथा अन्य लोग पुरानी रुई सेंक-सेंक कर बाबा साहब की पिण्डलियों को सेंकने लग जाते थे तब उन्हें उससे आराम मिलता था और वे दो-तीन घण्टे सो जाते थे। चालीस की उम्र के बाद यह असह्य रोग उनके लग गया जिसने उन्हें वृद्धावस्था तक पीड़ित रखा। जब वे वैस्टर्न कोर्ट में ही रहते थे तब श्री सोहनलाल शास्त्री उनके पास एक वैद्यराज एवं गुरुकुल काँगड़ी के आयुर्वेदाचार्य, श्री सुधन्वा, को लाए। वैद्यराज ने बाबा साहब का बारीकी से निरीक्षण किया और कहा कि वे मधुमेह जैसे असाध्य रोग से पीड़ित हैं। उनकी टांगों में जो पीड़ा होती है, वह उसी मधुमेह रोग के कारण है। वैद्यराज जी ने सलाह दी कि मधुमेह के रोगी को स्त्रीसंगम अवश्य करना चाहिए। उन्होंने बाबा साहब से कहा, "आप चिर विधुर हैं। यदि आप विवाह करलें तो स्वस्थ हो सकते हैं।" यह बात सुनकर बाबा साहब को गुस्सा आ गया और आक्रोश में बोले कि तुम्हें वैद्य की उपाधि किसने दी। आप महरबानी करके अपना रास्ता नापें और मुझे यहीं छोड़ दें।

उन्हें रोग अवश्य था; पर बाबा साहब को अपनी सेहत एवं स्वास्थ्य की किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। विभिन्न प्रकार के डॉक्टरों, वैद्यों तथा हकीमों से उपचार कराने में उनकी रुचि थी। अपनी पिण्डलियों पर वे कच्चे खोपरे (नारियल) के तेल की मालिश करवाते थे जिससे उन्हें आराम मिलता था। उसी तेल को स्नान करने के पश्चात् अपने सिर में लगाते थे। फलतः वृद्धावस्था में भी उनके बाल काले थे। बाबा साहब की टांगों का दर्द निरन्तर थोड़ा-बहुत बना रहता था। विलिंगटन हॉस्पीटल के अनुभवी तथा शहर के प्रसिद्ध डॉक्टर उनका निरीक्षण करते रहते थे। उनको रोजाना इन्सुलिन का टीका लगाया जाता था। डॉ० जीवराज मेहता भी, जो गुजरात के मुख्यमन्त्री, प्रसिद्ध डॉक्टर और संविधान सभा के सदस्य थे, बाबा साहब का कई बार निरीक्षण-परीक्षण कर चुके थे। उनकी राय यह थी कि यदि बाबा साहब अपने दांत निकलवा दें तो उनकी टांगों का रोग दूर हो सकता है। उनके दांत-दाढ़ें बहुत मजबूत थीं और वे नहीं चाहते थे कि उन्हें उखड़वाया जाए, भले ही उनका रोग निरन्तर बना रहे।

श्री सोहनलाल शास्त्री दिल्ली के प्रसिद्ध हकीम हाजिक सिराजुद्दीन को भी बाबा साहब की कोठी पर लाए ताकि उनका रोग नियन्त्रित हो जाए। हकीम जी ने बाबा साहब को अच्छी तरह देखा। उनकी नब्ज देखी, उनकी पिंडलियों को दबाकर देखा। उनके दांतों-दाढ़ों को गौर से देखा और कहा कि आप अपने दांतों-दाढों को डॉक्टर की सलाह से कतई मत निकलवाना। हकीम साहब ने उन्हें ज्याबतीस की बीमारी बतलाई। अतएव शक्कर, चावल आदि छोड़ने की उन्हें सलाह दी और यह भी कहा कि इन्सुलिन का टीका बराबर लगवाते रहें। इस प्रकार इलाज चलता रहा; पर कोई विशेष आराम नहीं मिला और वे उस कष्ट-दायक रोग का सामना करते रहे। उनकी कार्यक्षमता में कोई कमी नहीं आई। रोग के दौरान ही, उन्होंने संविधान का मूलरूप तैयार किया और हिन्दू कोडबिल

की पृष्ठभूमि बनाई थी। यह भी एक कारण था कि निरन्तर पढ़ते-लिखते रहने ने, उनके रोग को ठीक नहीं होने दिया। उन्हें विरला मन्दिर के बौद्ध-विहार के भिक्षु धम्मालोक ने योगक्रियाओं का महत्त्व बतलाया। बाबा साहब को योगासनों पर विश्वास था और उन्होंने कुछेक सीखे भी; लेकिन उनके पास समय कहां था। कुछ दिनों आसन-ध्यान किया और फिर उन्हें छोड़ दिया।

डॉ० अम्बेडकर के एक और विश्वासपात्र, डी० जी० जाधव ने, जो डिप्टी लेबर कमिश्नर थे, उनके इलाज के लिए बॉम्बे का एक डॉक्टर ढूंढा, जो बिजली लगाकर इलाज करता था। जाधव साहब ने बॉम्बे के डॉक्टर मालवंकर का नाम बतलाया। वह काफी दिनों तक डॉक्टर साहब को इलाज के लिए राजी करने में लगा रहा और अन्त में बाबा साहब बॉम्बे उपचार हेतु जाने के लिए तैयार हो गए। वे एक दिन डॉ० मालवंकर के क्लीनिक में पहुँच गए। सर्वप्रथम उस अयोग्य डॉक्टर ने उनके मजबूत-चमकीले दांत-दाढ़ उखाड़ दिए और तत्पश्चात् बिजली लगाकर उनका इलाज करता रहा। लगभग एक सप्ताह तक वे वहां रहे। उनका रोग तो दूर नहीं हुआ; पर क्लीनिक में काम करने वाली डॉक्टर महिला, शारदा कबीर के प्रेम में उन्हें फँसवा दिया गया जो बाद में जाकर उनकी दूसरी धर्मपत्नी बनीं। मिस शारदा कबीर से शादी का रिश्ता, इसलिए तै हो गया कि डॉ० अम्बेडकर दिल्ली में अकेले रहते थे। उनकी देखभाल के लिए कोई अपना आदमी नहीं था। पहली पत्नी का देहान्त हो चुका था। उनकी सगी बहन भी मर चुकी थीं। उनका पुत्र यशवन्तराय अविवाहित था। ऐसी स्थिति में, वे नौकरों पर ही आश्रित थे। जैसा खाना मिल जाता, वे खा लिया करते थे। डॉक्टर धर्मपत्नी से यह लाभ था कि वह प्रतिदिन इन्सुलिन का टीका लगा दिया करेगी और उनके भोजन आदि की व्यवस्था अच्छी तरह करती रहेगी। इस लक्ष्य को लेकर पुनर्विवाह सम्पन्न हुआ, हालांकि बाद में उस धर्मपत्नी से उन्हें विशेष लगाव नहीं हुआ और घर की शान्ति भंग हो गई।

भीमराव मानसिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ थे। शारीरिक रोग ने उन्हें दुर्बल बना दिया था। एक बार उन्हें खूनी पेचिश हो गई। डॉक्टर पत्नी ने उन्हें उबले हुए भुट्टे खिला दिए थे। उसी रात वे दस्तों से पीड़ित हो गए थे, रात भर टट्टियां जाते रहे। यहां तक कि उनका बिस्तर भी गन्दा हो गया। रात भर उनके पेट में दर्द रहा। प्रातःकाल धोबी ने बतलाया कि उन्हें खूनी पेचिस हो गई है। उनकी हालत गम्भीर होती जा रही थी। उनसे प्रार्थना की गई कि वे हॉस्पीटल चलें। उन्होंने मना कर दिया क्योंकि वे कभी भी हॉस्पीटल नहीं गये थे। बड़ी मिन्नतों पर वे विलिंगटन हॉस्पीटल के नर्सिंग होम में दाखिल हुए। वे ठीक तो हो गए; पर उनका स्वास्थ्य अधिक गिर गया। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि भुट्टों के खाने से गड़बड़ हुई है। अतः वे डॉक्टर पत्नी पर बड़े नाराज थे, उससे कतई बोलना नहीं चाहते थे। चूँकि वे अधिक जमकर बैठने वाले थे इसलिए उनकी पाचन शक्ति कमजोर हो गई थी। वे मधुमेह के रोगी थे और वृद्धावस्था में पहुँचकर भी वे सारे दिन, सारी रात पढ़ने-लिखने का ही काम किया करते थे। इसलिए उन्हें रोग से कोई छुटकारा नहीं मिला। ऐसी स्थिति में, उन्हें ऐसी-वैसी खाद्य वस्तुएं

पचती भी नहीं थीं।

निस्सन्देह मधुमेह रोग ने डॉ० अम्बेडकर के स्वास्थ्य को रसातल में पहुँचा दिया था। वे चलने-फिरने से मजबूर हो गए और सीधे बैठना भी उनके लिए कठिन हो गया था; परन्तु वह वीर और साहसी, फिर भी एक सफल नाविक की भांति अपनी जीवन-नौका को पार कर गए। उनकी जीवन-नौका को उनके नेत्र-रोग ने भी भयंकर रूप से झकझोरा था; परन्तु उनका अदम्य साहस, धैर्य एवं मिशन उन्हें निरन्तर संघर्षमय बनाता चला गया। इसी रोगी अवस्था में; भीमराव ने महान् ग्रन्थ 'भगवान् बुद्ध और उनका धम्म' की रचना की, सविधान का प्रारूप तैयार किया, उसके लिए संविधान-सभा में निरन्तर बहसें कीं, बाद में हिन्दू कोडबिल के लिए रात-दिन परिश्रम किया, जीवन के अन्य काम भी करते रहे और दूर-दूर जाकर दलितों के बीच भाषण भी करते रहे। रुग्णावस्था में रहकर अपने मिशन की पूर्ति विरले व्यक्ति ही कर पाते हैं। दलितों के कल्याण की भावना ही भीमराव को निरन्तर प्रेरित करती रही। इसी आत्मीयता की भावना ने भीमराव को अदम्य साहस और शक्ति प्रदान की और वे अपने असाध्य रोग को नाचीज समझते रहे। आज न भीमराव का शरीर है और न वह रोग; पर उनका जीवन मिशन एक प्रकाश-स्तम्भ के रूप में निरन्तर प्रेरणा-स्रोत बना हुआ है।

पारिवारिक जीवन :

डॉ० अम्बेडर के व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया में उनकी पत्नी रामाबाई की संगति का पूर्ण प्रभाव था। रामाबाई ने विवाह के बाद से ही, डॉ० साहब को वह सहयोग दिया जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा सभी ने की। इसका प्रमाण हमें उस समय मिला जब बाबा साहब सिडेनहॅम कॉलेज में प्रोफेसर बने। भीमराव के प्रोफेसर बन जाने से, रामाबाई को सबसे अधिक खुशी एवं सन्तोष हुआ क्योंकि घर में खर्चे की कमी हर समय रहती थी। अब घर परिवार का काम-काज अच्छी तरह चल सकेगा, ऐसा विश्वास उन्हें हुआ; लेकिन भीमराव ने उन्हें समझाया कि घर का खर्चा बहुत ही किफायत से चलाना है। कुछ वर्षों के बाद उन्हें फिर लन्दन पढ़ने के लिए जाना है जिसके लिए धन जमा करना है। इससे रामाबाई को थोड़ी सी परेशानी हुई। वह सरल हृदय की सीधी-सादी महिला थीं। उन्होंने डॉ० साहब के अनुसार ही खर्चा करना आवश्यक समझा और फिर दो साल बाद वे लन्दन रवाना हो गए। रामाबाई के सहयोग से ही यह सम्भव हो सका।

डॉ० अम्बेडकर रामाबाई को प्यार में 'रामू' कहा करते थे। वह विवाह के समय बिलकुल अनपढ़ थीं। बाद में भीमराव ने उन्हें साधारण पढ़ना-लिखना सिखा दिया था। वह सहयोगी एवं धार्मिक वृत्ति की स्त्री थीं। उन्हें अपने विद्वान् पति पर बहुत ही अभिमान था; लेकिन स्त्री-स्वभाव के कारण उनकी अपनी कमजोरियां भी थीं। जब भीमराव प्रोफेसर हुए तब उन्हें 4:0/- रुपए माहवार वेतन मिलने लगा था। उन्होंने सोचा कि जीवन निर्वाह के लिए यह वेतन पर्याप्त है। वह चाहती थीं कि डॉ० साहब फिर से लन्दन न जाएं क्योंकि घर का प्रबन्ध उन्हीं पर आ पड़ता है। पति की महत्त्वाकांक्षा से अनभिज्ञ होने के कारण, भीमराव

का हमेशा पुस्तकों में डूबे रहना उन्हें अधिक पसन्द नहीं था; लेकिन वह उनकी आदत से परिचित हो गईं और पूर्ण सहयोग प्रदान करने लगीं। पति-पत्नी की शिक्षा-दीक्षा में जमीन-आसमान का अन्तर था; परन्तु दोनों में एक-दूसरे के प्रति हार्दिक प्रेम था। रामाबाई ने भारतीय नारी की परम्परा पूर्णतः निभाई और डॉ० साहब ने भी उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम का ही व्यवहार किया। दोनों में घनिष्ठ आत्मीयता और पूर्ण समायोजन था।

रामाबाई धार्मिक स्वभाव की पूर्णतः पतिपरायण स्त्री थी। वह डॉ० साहब के खाने-पीने और आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखती थी। एक बार रमाबाई ने बाबा साहब से पंढरपुर जाने की अभिलाषा प्रकट की। पंढरपुर महाराष्ट्र में एक बहुत बड़ा तीर्थ-स्थान है जिसका सम्बन्ध भागवत सम्प्रदाय से है। बाबा साहब को इन बातों में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने रामाबाई को समझाया कि जिस मन्दिर में छुआछूत होती हो, वहाँ जाने से क्या लाभ और ऐसे देवता के दर्शन भी क्या करने जो अपने भक्तों में परस्पर भेदभाव सहन करता हो। हमें तो अपने दीनहीन दलितों ही की निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिए। उनकी समझ में बात आ गई और पंढरपुर जाने की इच्छा त्याग दी। अनपढ़ होने पर भी रामाबाई की समझ अच्छी थी। स्वभाव से सरल, सीधी-सादी और कर्त्तव्य परायण स्त्री थी। उनमें स्वाभिमान था। वह निरर्थक लड़ाई-झगड़ों से दूर ही रहा करती थीं।

रामाबाई के तीन सन्तानें हुई—यशवन्त, रमेश और गंगाधर। रमेश और गंगाधर की बचपन में ही मृत्यु हो गई। आगे चलकर दो सन्तानें और पैदा हुई, इन्दु और राजरत्न; लेकिन दुर्भाग्यवश उन दोनों का भी बचपन में ही देहावसान हो गया। डॉ० साहब की एक मात्र सन्तान यशवन्तराव अम्बेडकर जीवित रहे। डॉ० साहब यशवन्त से खुश नहीं थे क्यों कि उसने न तो ऊँची शिक्षा प्राप्त की और न ही वह किसी विशेष व्यापार में प्रविष्ट हुआ। जब कभी यशवन्त की शादी की बात चलती तब बाबा साहब कहते कि वह कोई काम-धन्धा तो करता नहीं है। किस प्रकार वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण कर पायेगा? "यदि वह मुझे कहे भी तो मैं उसकी शादी के बारे में कुछ भी नहीं करूँगा। शादी कोई ऐसी सीढ़ी नहीं है जो मानव को आकाश तक ऊपर उठा ले जाए।"

जून 1934 में बाबा साहब बॉम्बे के सरकारी लॉ कॉलेज में प्रोफेसर हुए और साल भर बाद ही 1 जून, 1935 को उस कॉलेज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। कुछ धनार्जन करने के पश्चात् डॉ० साहब ने बॉम्बे की दादर कालोनी में 'राजगृह' नाम का विशाल भवन बनवाया और उसमें सपरिवार रहने लगे; लेकिन रमाबाई का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वह बीमारी की हालत में भी बाबा साहब के आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखती थीं। 27 मई, 1935 को रामाबाई का यकायक देहान्त हो गया। डॉ० साहब को एक ओर 'राजगृह' में प्रवेश की खुशी थी तो दूसरी ओर उन्हें पत्नी-वियोग का दुःख सहना पड़ा। निस्सन्देह रामाबाई के वियोग से डॉ० साहब अकेले हो गए। केवल यशवन्त ही परिवार में बचा और वह भी उन्हें अधिक प्रिय नहीं था क्यों कि उसने उनकी भांति उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं

की। परन्तु बाबा साहब ने अपने अकेलेपन को अपना दुर्भाग्य नहीं समझा। वह विद्याध्ययन तथा ग्रन्थ-रचना में लीन रहने लगे। वे दिन-रात ग्रन्थ-मंथन में डूबे रहते थे। वे ज्ञानी, योगी तथा लेखक की तरह जीवन-यापन करने लगे और अपनी निरन्तर साधना से एक महान् व्यक्ति एवं युग-पुरुष बन गए। पारिवारिक अकेलापन उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ।

यह योगी पुरुष सन् 1935 से लेकर सन् 1947 तक अकेला रहा। पुनर्विवाह की बात कभी सोची ही नहीं! उन्हें अपनी दूसरी शादी का तनिक भी ख्याल नहीं था। तेरह-चौदह वर्ष प्रथम पत्नी का देहान्त हुए गुजर गए। वे तो अकेले पढ़ने-लिखने में मस्त रहते थे। यहाँ तक कि यशवंत के विवाह की भी उन्हें चिन्ता नहीं थी। लेकिन महान् लोगों की बड़ी बातें हुआ करती हैं। कुछेक डॉक्टरों ने पहले सलाह दे रखी थी कि यदि बाबा साहब पुनर्विवाह करलें और स्त्रीसंगम करें तो उनका मधुमेह रोग नियंत्रित हो सकता है। उधर उनकी अवस्था भी अधिक होती जा रही थी। घर में उनकी देखभाल के लिए उनका अपना कोई निजी आदमी नहीं था। न कोई पुत्री, न सगी बहिन और न ही पुत्र-वधु। ऐसी स्थिति में उन्हें भोजन के लिए नौकरों पर ही आश्रित रहना पड़ता था। जैसा खाना मिलता, वे खा लिया करते थे। मधुमेह के कारण, उनके रोजाना इन्सुलिन का टीका लगता जिसके लिए बाहर से डॉक्टर आता था। उधर कुछ डॉक्टरों ने सलाह दे रखी थी कि घर में यदि कोई डॉक्टर महिला हो तो उनका जीवन सरलता से कट सकता है। यह बात उनके मन में जँच गई।

जब वे डॉ० मालवंकर के बॉम्बे क्लीनिक में अपना इलाज करवाने के लिए, एक सप्ताह ठहरे तब वहां मिस (डा०) शारदा कबीर से मुलाकात हुई। वे वहीं क्लीनिक में डाक्टर-नर्स का काम किया करती थी। उसकी आयु लगभग चालीस वर्ष की थी। वही एक सप्ताह तक डा० साहब की सेवा मे रही। उधर डा० मालवंकर ने भी, अपनी पूर्व योजनानुसार, डा० साहब को यह सही जचवा दिया कि यदि वे किसी डाक्टर महिला से पुनर्विवाह करलें तो उनकी सभी कठिनाइयां दूर हो सकती हैं। वृद्धावस्था में उनकी देखभाल अनिवार्य है। भोजन आदि का ठीक प्रबन्ध हो और मेडिकल देखभाल होती रहे तो अच्छा रहेगा। डा० मालवंकर ने मिस शारदा कबीर का नाम प्रस्तावित किया और उधर उसने अपनी सेवा से डा० साहब को प्रभावित किया ही था। वैसे क्लीनिक में बाबा साहब के लिए भोजन बाहर से आता था परन्तु कहा यह गया कि मिस शारदा ऐसा अच्छा भोजन स्वयं तैयार करती हैं। बाबा साहब और भी खुश हुए कि वे एक अच्छी गृहिणी बन सकती है। चौदह वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत को त्यागने के लिए, वे मार्च 1948 में दृढ़ संकल्प हो गए। बड़े लोगों की कुछ विचित्र धुन हुआ करती हैं। यह भी उनमें से एक थी। मिस शारदा के सम्बन्ध में, डा० साहब के मित्रों की धारणा अच्छी नहीं थी। एक तो वह जाति से ब्राह्मण और दूसरे उसकी उम्र भी ढ़ल चुकी थी। वस्तुत: उसमें सेवा-भाव नहीं था। वे तो इतने महान् आदमी के साथ विवाह करके महान् बनना चाहती थी। डा० साहब के सभी मित्र तथा भक्त इस शादी के पक्ष

में नहीं थे। यहां तक कि यशवंत भी नाराज हुआ था; लेकिन डा० साहब को कुछ धुन सवार हो गई और वे अपनी जिद्द पर अड़ गए। शारदा का पुराना फोटो उनके विश्राम कक्ष में लटक गया और बाम्बे से रोजाना ट्रंक-काल्स भी आने लगे। वे उसकी ओर आकर्षित हो गए। टाल्सटाय ने भी तो अपनी 'जीवन सम्बन्धी यथार्थ डायरी' में लिखा है कि जब महापुरुषों पर 'मुहब्बत' के देवता का प्रहार होता है तो वे भी साधारण अर्थात् "आम मानव प्राणियों की तरह तड़पते हैं।"

उनकी देखभाल कौन करे? यह प्रश्न तो उनके मन में था ही और यह हकीकत भी थी। इसके लिए, श्री बी० के० गायकवाड़ ने यह सुझाव दिया था कि वे अपनी साली शान्ता को उनकी सेवा-सुश्रुषा के लिए नियुक्त कर सकते हैं। वे पढ़ी-लिखी अविवाहित महिला थीं। महार जाति की भी थी। लेकिन बाबा साहब ने यह कहकर मामला टाल दिया कि वह उस लड़की को अपने पास रखकर बदनामी मोल लेना नहीं चाहेंगे। लोग कहेंगे कि डा० साहब ने किसी रखैल को पाल लिया है। गायकवाड़ जी ने शादी का प्रस्ताव भी रखा, पर साहब ने उत्तर दिया कि वे उस लड़की से कैसे शादी करलें जो उन्हें 'बाबा साहब' कहकर सम्बोधित करती है। यह बात ठीक भी थी। किन्तु उन्होंने अपना पक्का इरादा जाहिर कर दिया कि वे उसी लेडी डाक्टर से अपनी शादी करेंगे। उन्हें विश्वास हो गया कि वह महिला डाक्टर उनके स्वास्थ्य की संरक्षिका बन जाएगी। वह खाना पकाने में दक्ष है, चतुर है। डा० साहब को वह हर प्रकार से जंच गई थी। अतएव वह उसे साड़ी भी खरीदकर दे आए थे जिसका अर्थ होता है शादी करने की पूरी सहमति।

जब यह बिल्कुल निश्चित हो गया कि डा० अम्बेडकर और सविता कबीर का विवाह सम्पन्न होने जा रहा है, तब महाराष्ट्र के अन्तर्गत तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी, विशेषकर ब्राह्मण-समाज में हलचल मच गई क्योंकि एक शूद्र, अछूत, एक ब्राह्मणी से विवाह करने वाला था जो हिन्दू धर्म ग्रन्थों में निषिद्ध है। फिर क्या था? समूचे महाराष्ट्र के ब्राह्मणों ने भारी विरोध व्यक्त किया और तत्कालीन गृह-मंत्री, सरदार पटेल को अनेक तार भेजे कि वे ऐसे अशुभ तथा अनर्थ कार्य को रोकें। ऐसे ही तार एवं विरोध-पत्र भारत की कई संस्थाओं द्वारा गृह-मंत्री को भेजे गए। यहां तक कि इस घटना को अखबारों में भी उछाला गया। सरदार पटेल बड़ी उलझन में फंस गए कि क्या किया जाए, पर वे करते भी क्या? उन्होंने प्रधान-मंत्री नेहरू को एक पत्र लिख कर, उन्हें सारी स्थिति से अवगत कराते हुए, अन्त में, यह वाक्य लिखा: "हाउ केन आई स्टाप सच नॉन-सेन्स?" अर्थात् "मैं ऐसी निरर्थक बात को कैसे रोक सकता हूं?" वास्तव में, सरदार पटेल तथा अन्य संस्थाएं, इस ऐतिहासिक घटना को रोक नहीं पाईं, हालांकि चारों ओर से विरोध प्रकट किए गए।

शारदा कबीर अपने भाई के साथ बॉम्बे से हवाई जहाज द्वारा दिन के 11 बजे दिल्ली पहुँच गई और 14 अप्रेल 1948 के दिन ठीक ढाई बजे उनका विवाह हो गया। शादी सिविल मैरेज एक्ट के अनुसार सिविल मैरेज की विधि प्रक्रिया से

हुई। दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर, श्री रामेश्वरदयाल, रजिस्ट्रार के रूप में शादी में सम्मिलित हुए। तत्पश्चात् मिस शारदा कबीर का नाम डा० सविता रखा गया। इस प्रकार डा० अम्बेडकर ने अपना पुनर्विवाह किया। वस्तुत: यह सुख-सुविधा के लिए किया था, पर डा० साहब को, कहते हैं, उससे विशेष आराम नहीं मिला। उसके कारण कुछ मानसिक द्वंद्व तथा परेशानियां और पैदा हो गई क्यों कि डा० साहब जिस सच्ची भावना से उसे लाए थे, और उसे एक आदर्श पत्नी बनाना चाहते थे, वैसी वह अपने को सिद्ध करने में समर्थ न हो पाई। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी उनके और दलितों के बीच सम्पर्क की सजीव कड़ी बने और वह भी दीन-हीन दलितों को वैसे ही प्रेम करे जैसा वे करते थे; लेकिन वह ऐसी नहीं बन पाई क्यों कि उनका इरादा संभवत: ऐशो-आराम का था जो बाबा साहब की संगति में संभव नहीं हो पाया।

लगता है कि अम्बेडकर और कबीर के मन में पहले से ही गलत धारणाएँ बन गई थी अन्यथा पारिवारिक अशान्ति पैदा होने का सवाल ही नहीं उठता। एक ओर डॉ० सविता कबीर ने सोचा था कि ऐसे महापुरुष से विवाह करने से वे स्वयं महान् व्यक्तियों में आ जाएगी और चूंकि बाबा साहब मंत्री हैं, इसलिए उसका जीवन बड़े आराम में व्यतीत होगा। शान-शौकत की कोई कमी नहीं रहेगी। नौकर-चाकर काम करेंगे। लेकिन दूसरी ओर बाबा ने सोचा था कि उनकी देखभाल वे अच्छी तरह करती रहेंगी और चूंकि वे पहले ही बाबा साहब को उनकी पुस्तकों से अपने को प्रभावित बतला चुकी थी, इसलिए डॉ० साहब को विश्वास हो गया था कि वे समविचार महिला हैं, यह एक अच्छी गृहिणी बन जाएगी। इन अलग-अलग धारणाओं को लेकर, उनमें दाम्पत्य-सम्बन्ध हो गया; लेकिन कालान्तर में दोनों की धारणाएँ गलत सिद्ध हो गई और पारिवारिक अशान्ति का वातावरण उनकी कोठी में छा गया, जो बढ़ता ही गया, कम नहीं हुआ।

बाबा साहब के कुछ ऐसे भक्त लोग थे जो या तो उन्हीं की कोठी के आउट हाउसेज में रहते थे या फिर बाहर से आया करते थे और उनकी सेवा-सुश्रुषा में रहा करते थे। कोई उनकी टांगों की पीड़ा को शान्त करने के लिए गरम रुई से सेंका करता था, कोई उनकी पिण्डलियों की मालिश करता, तो कोई नींद न आने पर उनके सिर को सहलाया करता था। कहा जाता है ऐसे लोगों के साथ डॉ० सविता कबीर का व्यवहार, जिन्हें सभी 'माईजी' कहते थे, कठोर हो गया था। कुछ को तो वे कोठी पर भी नहीं आने देना चाहतीं थीं। सुदामा नाम का एक महार लड़का, जो बाबा साहब का खाना बनाया करता था। उसकी माँ पहले ही मर चुकी थी और बाप भी उस बच्चे को डॉक्टर साहब को, मरने से पहले सौंप गया था। प्राय: माईजी उसे भी झाड़ डाला करती थीं। बाबा साहब उस लड़के को अपने पास बड़े प्यार से रखते थे। एक दिन बाबा ने कह ही डाला; "मेरे दफ्तर या पार्लियामेण्ट में चले जाने के बाद सारा दिन तुम कार घुमाती रहती हो और बामण अफसरों और मन्त्रियों के घरों में चक्कर लगाती फिरती हो। तुम यहाँ कुम्भ का मेला देखने आई हो या मेरी सेवा करने के लिए। तुमने

मेरे साथ वायदा किया था कि तुम मेरी किताबों को झाड़-फूंककर मेरे सामने तिपाइयों पर रखोगी, तुमने वायदा किया था कि तुम मेरे खाने पीने की देखभाल करोगी; किन्तु तुम्हें मेरी गैरहाजिरी में सारा दिन आवारागर्दी से फुरसत नहीं मिलती। क्या मैंने शादी से पहले तुमसे साफ-साफ नहीं कहा था कि मेरे अन्दर काम वासना समाप्त हो चुकी है ? मेरी सेवा का बहाना करके साले बदमाशों ने मेरे साथ धोखा किया है। तुम्हें न तो पढ़ने-लिखने का शौक है और न ही मेरी किसी प्रकार की सेवा का समय है। तुम तो मौज करने आई हो। मैंने पिछले साल से तुम्हें अच्छी तरह परख लिया है।"

माई का स्वभाव अत्यन्त रूखा तथा अहंकारयुक्त था। जो भी बाबा के भक्त या जनता के लोग उन्हें देखने आते या मिलना चाहते, माई उन्हें न मिलने के लिए कहती; लेकिन उनके आग्रह पर जब उन्हें अन्दर आने देतीं तो उन पर डाट लगातीं और कभी-कभी कुछ आगन्तुकों का अपमान भी कर देती। घर में दलित नौकर-चाकरों के साथ उनका व्यवहार सौहार्दपूर्ण नहीं था। बाबा साहब को इन सब बातों का पता नहीं लगता था। जब किसी प्रकार वह जान लेते, तो माईजी को बुरी तरह फटकारते थे। फिर वह फूं-फूं कर कहीं खड़े होकर रोने लगतीं। बाबा साहब तो अपने अध्ययन में, या कुछ लिखने में व्यस्त हो जाते। वस्तुत: बाबा साहब से बहुत से लोग रोजाना मिलने आया करते जो माईजी को अखरता था। साहब के इलाज के लिए जो भी वैद्य-हकीम उनकी कोठी पर आते, माईजी उन्हें अपमानित कर बाहर जाने के लिए संकेत करतीं और कहती कि वे कोई डाक्टर नहीं हैं, मात्र खोटे सिक्के हैं जिनका बाजारू मूल्य कुछ नहीं है।

डॉ० अम्बेडकर की स्मरणशक्ति बहुत तेज थी। निश्चित किए गए समय को वे अच्छी तरह याद रखते थे। जिस किसी को मिलने का समय दे दिया करते, उन्हें याद रहता था और उसके न आने पर पूछते थे कि वह क्यों नहीं आया? ऐसी स्थिति में माई मिलने वालों के मार्ग में बाधा नहीं डाल पाती थीं। जब बाबा साहब ने नेहरू मंत्रि-मण्डल से स्तीफा दे दिया तब उनके पास सरकारी नौकर-चाकर नहीं रहे। माईजी को परेशानी हुई और उधर बाबा साहब का स्वास्थ्य मधुमेह रोग के कारण दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था; किन्तु उनकी मुखाकृति सदैव तेजस्वी एवं प्रसन्न बनी रही। उनकी मुखाकृति उनके स्वस्थ होने का आभास देती थी। माईजी द्वारा रोजाना इन्सुलिन के टीके लगाने से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ था। वैसे डॉ० साहब माईजी की ओर से बिलकुल असंतुष्ट थे; किन्तु वह किसी से शिकायत नहीं करते थे और मानसिक तौर पर शीघ्र ही वह शान्ति एवं संतुलन बनाए रखने में सक्षम हो जाते थे।

बाहर से कुछ भी प्रतीत हो, अन्दर से डॉ० साहब में अथाह उत्साह था। अपने शारीरिक स्वास्थ्य के कमजोर होने के बावजूद भी, वह चौबीस घण्टे चार-पाई पर लेटे रहना पसन्द नहीं करते थे। वह दुबले शरीर के होने पर भी, बैठने-उठने, चलने-फिरने, बात-चीत करने में कोई आलस्य महसूस नहीं करते थे। विशेष कर पढ़ाई-लिखाई में तो किसी प्रकार की सुस्ती नहीं दिखाते थे। अपने दिनप्रति-

दिन के कामों को सदैव नियत समय पर ही करते थे। वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक मन से पूर्ण स्वस्थ और तन से भी बड़े सक्रिय थे। पारिवारिक वातावरण जैसा वे चाहते थे वैसा उन्हें नहीं मिल पाया। यही उन्हें कभी-कभी अखरता था। लेकिन चूंकि उनका मिशन ही कुछ और था, इसलिए उनको पारिवारिक सङ्गति में कोई विशेष रुचि नहीं थी। वे तो हर क्षण दलितोद्धार के ही चिंतन में डूबे रहते थे और यही कारण है कि वे सभी प्रकार के वातावरण में निश्चित लक्ष्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखते थे।

बाबा साहब के एकमात्र पुत्र यशवन्तराव अब जीवित नहीं हैं। उनके परिवार में उनकी पत्नी, मीराताई तथा बच्चे हैं। ये सब उसी 'राजगृह' (दादर, बॉम्बे) में रहते हैं जिसे डॉ० अम्बेडकर ने अपनी गाढ़ी कमाई से अपनी ही देखरेख में बनवाया था। प्राय: देखा गया है कि महान् व्यक्तियों के बच्चे, महान् नहीं बन पाते। यही बाबा साहेब के साथ हुआ। यशवन्तराव न तो उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाए, न बड़े उद्योग में प्रविष्ट हुए और न ही राजनीति में कोई स्थान बना पाए। वे बाबा साहेब के मिशन को भलीभांति नहीं समझ पाए। फलत: उनका उनकी मृत्यु के पूर्व अथवा पश्चात् कुछ भी सामाजिक योगदान नहीं रहा। दरअसल शराब की बुरी आदत ने, यशवन्तराव की बुद्धि एवं व्यक्तित्व दोनों को धूमिल कर रखा था। अत: ऐसे पुत्र से, पिता या समाज क्या आशा कर सकता था? आज, मीराताई, अपनी सीमाओं एवं तुच्छ साधनों सहित, सक्रिय हैं और बाबा साहब के मिशन के प्रचार-प्रसार हेतु भारत में भ्रमण करती रहती हैं जिससे जन-जागृति में कुछ सहयोग मिल रहा है। मीराताई के बच्चे क्या कर पायेंगे, यह भविष्य ही बतलायेगा, हालाँकि वर्त्तमान में बाबा साहब के पोते, प्रकाशराव अम्बेडकर जो लॉ के विद्यार्थी हैं, काफी सक्रिय हैं और अपने दादा के स्वप्नों को साकार करने में प्रयत्नशील हैं।

डॉ० अम्बेडकर की द्वितीय धर्म-पत्नी, डॉ० सविता कबीर भी जीवित हैं। उनका विवाह बाबा साहब के साथ किन परिस्थितियों में हुआ, दोनों का पारिवारिक जीवन कैसा रहा अथवा बाबा के मित्रों एवं भक्तों की क्या प्रतिक्रियाएँ रहीं, ये सब अतीत के प्रश्न हैं जिनसे उलझना संभवत: विशेष रूप में सार्थक नहीं होगा। बाबा की मृत्यु के पश्चात्, सविता कबीर के मन में, अपने पति के प्रति अटूट श्रद्धा एवं आस्था का संचार हुआ है। यह उनके वर्त्तमान जीवन से स्पष्ट है। वह बाबा साहब के मिशन की सम्पूर्ति में स्थापित एवं सक्रिय संस्थाओं, सभाओं तथा सम्मेलनों में सम्मिलित होती हैं। वे विभिन्न आन्दोलनों में भी भाग लेती हैं। कहा जाता है कि उनके पास बाबा की अनेकों निजी चीजें है, जिन्हें वह राष्ट्रीय-संग्रहालय में सुरक्षित रखवाने हेतु प्रयत्नशील हैं ताकि उनके पति के स्मृति-चिह्न, जनता को निरन्तर स्फूर्ति, उत्साह एवं प्रेरणा देते रहें। 'वास्तव में, बाबा के निर्जीव अवशेषों को उनके अनुयायी बड़ी ही श्रद्धा एवं प्रेम से, देखते पूजते हैं। फिर उनका यह भी कर्त्तव्य है कि डॉ० साहब के सजीव अवशेष, उनकी अर्धाङ्गिनी, डॉ० सविता कबीर को भी, उतना ही श्रद्धा-सम्मान दें जो वे बाबा की अन्य चीजों

को प्रदान करते हैं। आखिर बाबा का सम्बन्ध तो उनके साथ हुआ ही था, भले ही पारिवारिक मतभेद कुछ भी रहे हों, जो प्रत्येक परिवार की सामान्य बातें हुआ करती हैं। संक्षेप में, यदि बाबा साहब से सम्बन्धित सभी सजीव-निर्जीव चीजों को, उनके अनुयायी प्रेम करते हैं, सम्मान देते हैं, तो डॉ० सविता कबीर भी उनमें से एक है। अतः वह भी प्रेम-सम्मान की पात्र हैं।

अन्तिम यात्रा :

जून 1956 से लेकर, डॉ० अम्बेडकर अपने दिल्ली निवास-स्थान, 26 अलीपुर रोड, में ही अधिकतर रहे। जून-जुलाई के दौरान, वे कुछ अप्रसन्न, लगभग निरुत्साह से हो गए थे। उनकी टांगें इतनी कमजोर हो गईं कि वे उनके भारी शरीर का वजन उठाने में असमर्थ हो गयीं। उनके नेत्रों की रोशनी भी कम होने लगी। वे घर में स्वतः घूमने-फिरने से लाचार हो गए और कहीं बाहर जाने के लायक भी न रहे। लगभग पिछले दस-बारह वर्षों से उनका स्वास्थ्य सामान्य नहीं था। अधिक दवाइयां खाना भी एक बुरी आदत है, पर मधुमेह रोग के कारण दवाइयों ने उन्हें घेर लिया था। जहाँ कहीं से वैद्य या हकीम या डॉक्टर की कोई दवाई उन्हें प्राप्त हुई, वह उन्होंने इस्तेमाल की ताकि कुछ आराम मिले। एक ओर इस तरह प्राप्त दवाइयाँ या जड़ी-बूटियाँ डॉ० सविता कबीर को अच्छी नहीं लगती थीं; दूसरी ओर डॉ० साहब ठीक होने की सभी आशाएँ त्याग चुके थे। किसी फ्रेन्च डॉक्टर महिला ने उनका कॉस्मिक रेडियेशन के सिद्धान्त पर आधारित इलाज करना चाहा, पर डॉ० कबीर ने आना-कानी कर दी और वह इलाज न हो पाया। इस पर डॉ० अम्बेडकर को बड़ा गुस्सा आया और उस पर चिल्ला पड़े; 'तुम दूसरों के द्वारा मेरे इलाज पर क्यों एतराज करती हो जब कि आठ साल में भी तुम्हारे डॉक्टर लोग मुझे ठीक नहीं कर पाए ?' तब वह भोजन और दवाइयां लेना छोड़ देते; लेकिन प्रिय भक्तों के आग्रह पर वे उन्हें फिर से लेना प्रारम्भ कर देते थे।

वे पंगु, निरुत्साह हो गए और यह सोचकर कि अपना मिशन पूरा करने में सफल नहीं हो पायेंगे, खूब रोते थे। वे चाहते थे कि उनके दलित लोग उनके जीते-जी शासक बन जायें; लेकिन उन्हें रोग ने दबोच दिया और अभी तक जो कुछ दलितों के लिए प्राप्त किया था, उसका लाभ कुछेक पढ़े-लिखे दलितों ने ही उठाया। गांवों तथा देहातों में रहने वाले दलितों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन उन्हें दृष्टिगत न हुआ। इसी का उन्हें बहुत दुःख था। अपने जीवन के अन्तिम दिन इन्हें आभासित होने लगे थे। उन्हें दलितों का ऐसा नेता दिखाई नहीं दिया जो उनकी मृत्यु के उपरान्त, उनकी जिम्मेदारियों को संभाल लेता। उनके राजनीतिक शिष्य लोभ लालसा में उनका साथ छोड़ गए और जो बाकी रहे, उनमें नेतृत्व एवं शक्ति के लिए परस्पर झगड़ा होता था। अपनी परम्परा के अनुकूल, दूर-दूर तक उन्हें कोई ईमानदार तथा समाज-सेवी नेता दिखाई नहीं देता था।

अपने बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की स्थिति में भी, डॉ० अम्बेडकर कुछ पुस्तकों को अन्तिम रूप देने में व्यस्त थे। ये पुस्तकें थीं—'द बुद्ध एण्ड कार्ल कार्क्स', 'रिवॉल्यूशन एण्ड काउण्टर रिवॉल्यूशन इन इण्डिया', 'द रिडिल्स ऑफ हिन्दुइज्म', 'द केस ऑफ द अनटचेबिल्स', 'रिवॉल्यूशन इन एनशेण्ट इण्डिया' और 'द बुद्ध एण्ड हिज धम्म'। बाबा साहब के परम भक्त नानक चन्द रत्तू इन पुस्तकों को टाइप करने में व्यस्त रहते थे। जब उन्होंने देखा कि वे इन पुस्तकों को पूरा नहीं कर पाएँगे, वे बुरी तरह विचलित हो गए। उनके बाद उन्हें कौन पूरा करवा पाएगा ? यह विचार उनके मन में चलता रहता था। भीमराव की इच्छा थी कि देश की सेवा और की जाए; पर उन्हें दुःख था कि संसद तथा बाहर गैर-दलित लोग उन बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं थे, जिनकी संगति प्रधानमन्त्री के विचारों से न हो। एक दिन रत्तू को उन्होंने कहा—"ऐसे देश में जन्म लेना महा पाप है जहां के लोग इतने अधिक पक्षपाती हों। फिर भी, चारों ओर से मेरे पर गालियों की बौछार के बावजूद भी, मैंने बहुत कुछ किया है। मैं अपनी मृत्यु तक अपना काम करता ही रहूँगा।" इतना कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आए। रत्तू तुम मेरे लोगों से कहना कि—"जो कुछ मैंने किया है, वह बहुत सी मुसीबतों तथा कठिनाइयों के मध्य जीवनभर अपने विरोधियों से जूझते रहने के बाद किया है। बड़ी कठिनाई के साथ मैं उस कारवां को यहां ले आया हूँ जहां तुम आज उसे देखते हो। अनेक विपत्तियों के आने पर भी इस कारवां को आगे बढ़ाना है। यदि मेरे अनुयायी इस कारवां को आगे ले जाने में सफल न हो पाएँ तो उसे जहां है वहीं छोड़ दें; लेकिन किसी भी स्थिति में उसे पीछे न जाने दें। मेरे लोगों को यही मेरा सन्देश है।" आंसू भरी आंखों के साथ चारपाई पर लेट गए और फिर ध्यानमग्न हो गए।

डॉ० साहब बहुत ही दुर्बल होते चले जा रहे थे। जो भी उन्हें देखने आता, समझता था कि उनका अन्त निकट ही है। उनकी संकल्प-शक्ति बहुत ही सुदृढ़ थी। भले ही वे मधुमेह रोग से पंगु और पीड़ित थे; पर उनकी कार्य-क्षमता अद्भुत थी। उधर 14 अक्टूबर 1956 शीघ्र आ रहा था जब उनको बौद्ध-धर्म दीक्षा लेनी थी। उस दिन विजय दशमी थी। वह दिन भीमराव ने हिन्दू-धर्म त्याग करके बौद्ध-धर्म स्वीकार करने के लिए चुना था। नागपुर धर्म-परिवर्तन-स्थान नियुक्त किया गया। 23 सितम्बर के दिन डॉ० साहब ने अपने धर्म-परिवर्तन की घोषणा कर दी जिससे सारे भारत में तहलका मच गया। हिन्दू एवं आर्यसमाजी तो बहुत ही बेचैन हो गए। नौ और ग्यारह बजे के बीच सुबह धर्म-परिवर्तन का समय निर्धारित हुआ। भारत के सबसे वृद्ध भिक्षु चन्द्रमणि को कुशीनारा, जिला गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) से दीक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और वे वहां सहर्ष पधारे। उधर भीमराव, उनकी पत्नी और रत्तू हवाई जहाज द्वारा 12 अक्टूबर की सुबह नागपुर पहुँच गए। नागपुर के श्याम होटल में उनका प्रबन्ध किया गया। हजारों लोगों की भीड़ वहां आने लगी ताकि उनके दर्शन किए जा सकें। यहां तक कि देहाती क्षेत्रों के सैकड़ों स्त्री-पुरुष जो उनके दर्शन नहीं कर पाते वे उनके पद-चिह्नों की धूल को ही अपने माथे पर लगाकर सन्तुष्ट हो जाते थे। बहुत से स्त्री-

पुरुष और बच्चे जिनके पास किराये के पैसे नहीं थे, मीलों पैदल चलकर आए और कुछ अपनी चीजों को वेचकर दूर-दूर से रेल तथा मोटर गाड़ियों से पधारे। ये सभी लोग अपने देवता, हृदय-सम्राट् के दर्शन करने के लिए 14 अक्टूबर से पहले ही लगातार आ रहे थे।

13 अक्टूबर की शाम को डॉ० अम्बेडकर ने एक पत्रकार सम्मेलन बुलाया जिसमें उन्होंने बतलाया कि वे भगवान् बुद्ध द्वारा बताए गए धर्म का ही अनुसरण करेंगे। वे हीनयान या महायान बौद्धधर्म के चक्कर में पड़ना नहीं चाहेंगे। उन्होंने बतलाया कि एक बार गांधी के साथ बातचीत में उन्होंने स्पष्ट कहा था कि वे छुआछूत की समस्या को लेकर गांधी से मतभेद रखते हैं; लेकिन समय आने पर, "मैं ऐसा मार्ग अपनाऊँगा जो देश के लिए कम से कम हानिकारक हो और बौद्ध-धर्म स्वीकार करना सबसे बड़ा लाभ है जो मैं देश के प्रति कर रहा हूँ क्योंकि बौद्ध-धर्म भारतीय संस्कृति का अपृथक् अङ्ग है। मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि मेरे धर्म-परिवर्तन से इस भूमि की संस्कृति एवं इतिहास की परम्परा को कोई हानि नहीं पहुँचे।" उन्होंने बतलाया कि आने वाले वर्षों में धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन बहुत व्यापक रूप से चलेगा और उनके समस्त अनुयायी, यहां तक कि ब्राह्मण भी उनका अनुकरण करेंगे। उसी पत्रकार-सम्मेलन में उन्होने यह भी बतलाया कि वे ऑल इण्डिया रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना भी करेंगे जो उन सब स्त्री-पुरुषों को अपने में शामिल करने के लिए आमन्त्रित करेगी जिनकी भ्रातृत्व, समानता तथा स्वतंत्रता के सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था हो। डॉ० साहब में धर्म एवं राजनीति दोनों के कार्यों को सम्भालने की इच्छा थी और ऐसा करने के लिए वे समर्थ थे। उन्होंने यह भी घोषणा की कि वे आगामी चुनावों (1956) में कहीं उपयुक्त चुनाव-क्षेत्र से लोकसभा के लिए उम्मीदवार होंगे।

13 अक्टूबर की रात को डॉ० अम्बेडकर और उनके निकट-साथियों के साथ इस बात को लेकर कि धर्म-परिवर्तन को आगामी चुनावों तक स्थगित क्यों न कर दिया जाए, विचार-विमर्श हुआ। उनके साथी एवं कुछ अनुयायी चाहते थे कि आयोजन स्थगित कर दिया जाए ताकि सुरक्षित सीटों पर वे चुनाव लड़ सकें। बौद्ध-धर्म स्वीकार करने के बाद वे ऐसा नहीं कर पाएँगे। इस मत-भिन्नता को देखकर भीमराव को बड़ा दुःख हुआ। वे रो पड़े कि जिन लोगों के लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया, वे आज थोड़े से लोभ-लालच के कारण इतने महान् कार्य की टालमटोल करना चाहते हैं। डॉ० साहब ने उन्हें ताड़ना दी और कहा कि यदि वे उनके साथ धर्म-परिवर्तन करना चाहते हैं तो उनका स्वागत है अन्यथा वे जो कुछ चाहें, करें। वे तो अपना धर्म-परिवर्तन निश्चित रूप से करेंगे। वे लोग अपना सा मुँह लेकर होटल से बाहर निकल आए। अपनी स्वार्थपूर्ण नीति पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

14 अक्टूबर की सुबह, डॉ० अम्बेडकर कुछ जल्दी उठे। उन्होंने रत्तू को गरम पानी के प्रबन्ध के लिए कहा ताकि वे स्नान कर लें और स्नान के पश्चात्, उन्होंने रत्तू को पाण्डाल आदि के प्रबन्ध को देखने दीक्षा-भूमि भेजा। सूचना

मिली कि सब प्रबंध ठीक है। सुबह तड़के से ही, दीक्षा-भूमि की ओर बच्चों, स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे थे। श्याम होटल से लेकर दीक्षा-भूमि तक जाने वाली सड़क को सफाई वालों ने तड़के ही साफ कर दिया था। वे सब प्रसन्न थे कि वहां से उनके मुक्तिदाता का पदार्पण होगा। साढ़े आठ बजे डॉ० साहब, सिल्क की सफेद धोती तथा कोट पहनकर अपनी कार में बैठकर और साथ में डॉ० सविता तथा रत्तू को बैठाकर दीक्षा-भूमि के लिए रवाना हो गए। मिसेज (डॉ०) सविता अम्बेडकर भी सफेद साड़ी पहने हुए थीं। मार्ग में दोनों ओर बेशुमार भीड़ थी। आकाश भगवान् बुद्ध और बाबा साहब की जय से गूंज उठा। लोगों में बड़ा उत्साह था। सब स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न थे। भीड़ इतनी थी कि सारा प्रबंध अपर्याप्त सिद्ध हुआ। जैसे ही डॉ० साहब पाण्डाल में पहुँचे, उन्हें मञ्च पर ले जाया गया। एक हाथ में लठिया और दूसरे हाथ को वे रत्तू के कंधे पर रख कर खड़े हुए। एकत्र जन-समूह ने तालियों की गगनभेदी गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया। अब नौ बज कर पन्द्रह मिनट हो चुके थे। पत्रकार लिखने में और और फोटोग्राफर चित्र लेने में व्यस्त थे। मञ्च पर भगवान् बुद्ध की ताम्बे की प्रतिमा रखी थी जिसके सामने ढेर सारी मोमबत्तियां, अगरबत्तियां तथा धूप-बत्तियां प्रकाश एवं सुगंध फेंक रही थीं। प्रतिमा के दोनों ओर दो चीतों के चित्र थे। मंच पर भिक्षुगण भी विराजमान थे।

सभा का कार्यक्रम डॉ० अम्बेडकर की प्रशंसा में एक महिला द्वारा मराठी में गाए गए गीत से प्रारम्भ हुआ। सभी श्रोता एक साथ खड़े हुए और भीमराव के पूज्य पिता, रामजी सकपाल के मृत्यु-दिवस के उपलक्ष में दो मिनट मौन रहे। तत्पश्चात् वास्तविक कार्यक्रम आरम्भ हुआ। लगभग पांच लाख लोगों की भीड़ एकत्र थी। मञ्च पर विराजमान 83 वर्षीय महास्थविर चंद्रमणि और उनके चार भिक्षुओं ने डॉ० अम्बेडकर और उनकी पत्नी को, जो भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष खड़े थे, पाली भाषा में त्रिशरण का और फिर पञ्चशील का उच्चारण करवाया गया। उन्होंने पाली भाषा के शब्दों का मराठी में उच्चारण किया। तब वे, डॉ० साहब और मिसेज डॉक्टर सविता, हाथ जोड़े तीन बार बुद्ध की प्रतिमा के सामने झुके और सफेद गुलाब के फूल अपने कर-कमलों द्वारा भेंट किए। फिर उनके द्वारा बौद्ध-धर्म स्वीकार करने की घोषणा की गई। क्षण भर में सारा आकाश 'बाबा साहब अम्बेडकर की जय' और 'भगवान् बुद्ध की जय' के नारों से गूंज उठा। सारे कार्यक्रम की फिल्म तैयार की गई थी। अब नौ बजकर पैंतालिस मिनट हो चुके थे। धर्म-परिवर्तन के पश्चात् भीमराव को फूल-मालाओं से लाद दिया गया। मि० डी० वालीसिन्हं ने भीमराव और मिसेज सविता अम्बेडकर को भगवान् बुद्ध की प्रतिमा भेंट की। तब भीमराव ने यह उद्घोषणा की—

"अपने पुराने धर्म को त्यागकर, जो असमानता और दमन पर आधारित है, मैं आज पुनः जन्मा हूँ। अवतारवाद के दर्शन में, मेरा कोई विश्वास नहीं है और यह कहना गलत एवं शरारतपूर्ण है कि भगवान् बुद्ध विष्णु के अवतार थे। मैं अब किसी भी हिन्दू देवी-देवता का पुजारी नहीं हूं। मैं श्राद्ध की क्रिया नहीं करूँगा। मैं भगवान् बुद्ध के अष्टांग-मार्ग का

पूर्णतः अनुसरण करूँगा। बौद्ध-धर्म एक सच्चा धर्म है और मैं अपने जीवन को ज्ञान, सम्यक् मार्ग तथा दया के सिद्धांतों के अनुसार संचालित करूँगा।"

डा० अम्बेडकर ने एक-दो बार यह कहा कि—"मैं हिन्दू-धर्म का त्याग करता हूँ।" बड़ी भावपूर्ण मुद्रा में उनका यह उच्चारण लोगों ने सुना। उन्होंने निश्चय किया कि वे हिन्दू-परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का अनुसरण कतई नहीं करेंगे। उन्होंने बाईस प्रतिज्ञाओं को प्रस्तुत किया जिनका स्वागत वहां एकत्र जन-समूह ने किया। उनमें यह प्रतिज्ञा भी थी कि वे प्राणियों में समानता का प्रचार करेंगे। अब बौद्ध होने के बाद, उन्होंने सामने बैठे हुए स्त्री-पुरुषों को धम्म दीक्षा दी। वे सब कतार बनाकर खड़े हो गए और बाबा साहब ने त्रिशरण एवं पञ्चशील का उन्हें उच्चारण करवाया और इस प्रकार उनके साथ, लाखों नर-नारी बौद्ध हो गए। इनमें नागपुर हाई कोर्ट के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश डा० एम० बी० नियोगी भी सम्मिलित थे। सारा कार्यक्रम साढ़े दस बजे समाप्त हुआ। सम्राट अशोक के पश्चात्, यह प्रथम ऐतिहासिक घटना थी जब इतने लाख स्त्री-पुरुषों ने अपने मुक्ति-दाता के कहे अनुसार बौद्धधर्म को अंगीकार किया जिससे सारे भारत और एशिया में तहलका मच गया था।

15 अक्टूबर को डॉ० अम्बेडकर ने उसी दीक्षा-भूमि में बहुत से अपने अनुयायियों को बौद्धधर्म में दीक्षित किया और कहा कि दलित लोगों को जो सरकारी सुविधाएँ प्राप्त हैं, धर्म-परिवर्तन के साथ समाप्त नहीं होंगी। वर्तमान संविधान में जो सुविधाएँ मिलीं, वह उन्हीं के परिश्रम का फल है और वे उन्हें फ़िर से दिलाने की सामर्थ्य भी रखते हैं। डॉ० साहब ने नव-बौद्धों को यह स्मरण दिलाया कि सन् 1935 में जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि "यद्यपि मैं हिन्दू पैदा हुआ हूँ, लेकिन हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं", वह पूर्ण हुई। उन्हें अत्यधिक सन्तुष्टि मिली कि उनकी वर्षों पुरानी प्रतिज्ञा अन्ततः पूरी हुई। उस प्रतिज्ञा की सम्पूर्ति ने सभी के कंधों पर एक भारी जिम्मेदारी डाल दी है जिसे निभाना उनका परम कर्तव्य है। ऐसा दृढ़ विश्वास उन्होंने प्रकट किया।

जब डॉ० अम्बेडकर नागपुर में थे, उन्होंने शाम होटल में ही अपने दल के कार्य-कर्ताओं की एक मीटिंग बुलाई। वे उन कार्य-कर्ताओं से कुछ नाराज थे क्यों कि जैसा कि डा० साहब ने ठीक ही समझा, सभी कार्य-कर्ताओं की रुचि धर्म की अपेक्षा राजनीति में अधिक थी, जब कि उनकी स्वयं की रुचि राजनीति की अपेक्षा धर्म में अधिक थी। चूंकि वे बौद्ध हो गए इसलिए जातिगत संस्थाओं या दलों की निरन्तरता के पक्ष में नहीं थे। शैडच्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन के स्थान पर वे कोई ऐसे राजनीतिक दल की स्थापना करना चाहते थे जिसमें सभी धर्म के लोग निस्संकोच सम्मिलित हो सकें। डॉ० साहब ने अपने कार्य-कर्ताओं को सुझाया कि वे जातिगत भावनाओं को त्याग कर सभी नागरिकों के हित की बात सोचें और राष्ट्रहित में काम करें। 15 अक्टूबर की शाम को ही, नागपुर म्यूनिसिपल कार्पोरेशन ने टाउन हॉल में, डॉ० अम्बेडकर का अभिनन्दन किया, जहाँ उन्होंने कहा कि कांग्रेस पार्टी

ने राजनीति को एक खिचड़ी बना दिया है। वे सदैव यह देखते रहे कि संविधान, जिसके वे प्रमुख निर्माता थे, ठीक तरह से काम कर रहा है अथवा नहीं। उसके अधीन हम वास्तविक जनतंत्र स्थापित कर पायेंगे या नहीं? कार्पोरेशन के सभी सदस्य उस महान् 'समाज सुधारक, दार्शनिक एवं संविधान-निर्माता' का स्वागत करने के बाद बड़े ही आनन्दित हुए।

16 अक्टूबर को डॉ० अम्बेडकर ने चान्दा में धर्म-परिवर्तन के कार्यक्रम में भाग लिया जहाँ एकत्र जन-समूह ने उनसे बौद्ध दीक्षा ली। आज चान्दा एवं नागपुर दोनों जगह की दीक्षा-भूमियों पर डॉ० अम्बेडकर महाविद्यालय स्थापित हैं। चान्दा से डॉ० साहब नागपुर वापिस आए और वहाँ से वे, उनकी पत्नी एव रत्तू, हवाई जहाज द्वारा दिल्ली आ गए। यद्यपि डॉ० साहब बुरी तरह थके हुए थे, पर उनमें अपार उत्साह तथा मनोबल था। लगातार तीन दिन तक उन्होंने आराम किया और फिर वे अपने कामों में व्यस्त हो गए। कभी-कभी वे जोर-जोर से भजन भी, विशेषकर कबीर साहब के गाया करते थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य कमजोर था, पर उनका चेहरा आनन्द और अभिमान से दैदीप्यमान था। वास्तव में, उनकी मुखाकृति किसी महान् कार्य की सम्पन्नता की द्योतक दिख रही थी। शताब्दियों पश्चात्, उन्हीं के द्वारा बौद्धधर्म का जयघोष हुआ और भारत-भूमि में भगवान बुद्ध के धम्म का पुनरुत्थान हुआ। यह कोई मामूली घटना नहीं थी। यह एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक पर्व था जिसे उन्होंने स्वयं सम्पन्न किया।

प्रसन्न मुद्रा में बैठे, डॉ० अम्बेडकर अपने मेहमानों तथा प्रशंसकों को दीक्षा कार्यक्रम के ढेर सारे फोटोग्राफ दिखाया करते थे। वे उन्हें बतलाते थे कि अब वे दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, पंजाब और महाराष्ट्र, विशेषकर बॉम्बे में, बौद्धधर्म दीक्षा के कार्यक्रमों में जायेंगे और इस प्रकार, धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन को वे व्यापक रूप से गतिशील बनायेंगे। 30 अक्टूबर 1956 को बाबा साहब ने मि० डी वालीसिंह के एक पत्र के उत्तर में लिखा: "बौद्धधर्म दीक्षा बहुत महान् घटना थी और वह भीड़ जो दीक्षा लेने आई, मेरी आशा से परे थी। भगवान् बुद्ध को धन्यवाद कि सब कार्यक्रम अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। हमें अब उन विधियों एवं साधनों पर विचार करना है जिनके द्वारा उन लोगों को बौद्धधर्म का ज्ञान दिया जा सके, जिन्होंने उसे स्वीकार कर लिया है अथवा मेरे कहने पर उसे स्वीकार करेंगे। मैं चाहता हूँ कि बौद्ध संघ अपना दृष्टिकोण बदले; और संन्यासी बनने की अपेक्षा, भिक्षुओं को, क्रिश्चियन मिशनरियों के समान, सामाजिक कार्यकर्ता और सामाजिक प्रचारक बनना चाहिए।"

यद्यपि डॉ० अम्बेडकर का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, पर उनके अनुयायियों ने उन्हें काठमाण्डू (नेपाल) जाने के लिए राजी कर लिया जहाँ विश्व बौद्ध सम्मेलन होने वाला था। नेपाल जाने के सब प्रबन्ध कलकत्ता के मि० एम० ज्योति द्वारा हो चुके थे। डॉ० मावलङ्कर को बॉम्बे से दिल्ली बुलाया ताकि वह डॉ० साहब के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए उनके साथ नेपाल चले। वहाँ जाने के पूर्व डॉ० साहब के पास बॉम्बे हाईकोर्ट से एक नोटिस आ गया कि वे 'राजगृह' में कुछ अतिरिक्त

निर्माण हेतु अपने काण्ट्रेक्टर के लगभग 40,000 रुपये जमा कर। डॉ० साहब ने उस रकम का प्रबन्ध किया और मिसेज सविता अम्बेडकर उसे बॉम्बे जाकर जमा करवाकर दिल्ली वापिस आगई। 14 नवम्बर 1956 को, डॉ० अम्बेडकर और उनका दल जिसमें मिलिन्द महाविद्यालय, (औरङ्गाबाद) के प्राचार्य एम० बी० चिटनिस, मि० बाराले, डॉ० मावलङ्कर, मिसेज सविता अम्बेडकर आदि थे, काठमाण्डू के लिए रवाना हो गया। राजा महेन्द्र ने उस चतुर्थ विश्व बौद्ध सम्मेलन का 15 नवम्बर 1956 को दरबार गैलरी हॉल में उद्घाटन किया। उस दिन नेपाल सरकार ने छुट्टी का दिन घोषित कर दिया और उधर, पशुपतिनाथ के मन्दिर में बौद्धों के लिए जो प्रवेश निषिद्ध था, उसके पुजारियों ने उसे उनके लिए खोल दिया। डॉ० अम्बेडकर जब सम्मेलन में बोले तब सम्पूर्ण भीड़ ने उनका जयघोष किया। डॉ० साहब ने बतलाया कि वे यहाँ ये कहने आए हैं कि संसार के सभी धर्मों में बौद्धधर्म सर्वोत्तम धर्म है। सम्मेलन के अध्यक्ष, डॉ० मलालासेकार ने बोलते हुए, डॉ० अम्बेडकर का लाखों लोगों सहित, धर्म-परिवर्तन को एक अद्वितीय घटना बतलाया, हालांकि भारत के किसी हिन्दू विद्वान् या नेता ने उनके धर्म-परिवर्तन का स्वागत नहीं किया था। डॉ० अम्बेडकर से 0 नवम्बर को 'बौद्धधर्म में अहिंसा' नामक विषय पर बोलने के लिए निवेदन किया गया, पर सम्मेलन में भाग लेने वालों की अधिसंख्या चाहती थी कि वह 'भगवान् बुद्ध और कार्लमार्क्स' पर अपना भाषण दें· श्रोताओं की रुचि देखते हुए डॉ० अम्बेडकर 'बौद्धधर्म एवं साम्यवाद' पर ही बोले जिसकी व्याख्या आगामी पृष्ठों में होगी।

नेपाल से वापस लौटते समय, डॉ० अम्बेडकर बनारस रुके और वहां बनारस यूनिवर्सिटी तथा काशी विद्यापीठ में विद्यार्थियों के समक्ष कुछ व्याख्यान दिए। उनके व्याख्यानों से सदैव चुनौती की ध्वनि निकलती थी। उसी ध्वनि में वह वहाँ बोले। बौद्धिक विजय में उनका बड़ा आत्म-विश्वास था। उन्होंने कहा कि वे बौद्धधर्म के लिए वही करेंगे जो शङ्कराचार्य ने हिन्दूधर्म के लिए किया था। बनारस यूनिवर्सिटी के हॉल में वह शंकराचार्य के प्रसिद्ध वाक्य; 'ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या' पर बोले। डॉ० साहब ने तर्क दिया कि यदि ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है तो एक ब्राह्मण और एक अछूत समान हैं। लेकिन शंकर ने अपने सिद्धान्त को समाज पर लागू नहीं किया। मात्र विचार स्तर पर ही उसे रख छोड़ा। यदि शंकर ने अपने सिद्धान्त का परिपालन सामाजिक स्तर पर किया होता और समानता के सिद्धान्त का प्रचार किया होता तो वह अत्यधिक महत्त्व की बात होती। फिर भी शंकराचार्य का यह विश्वास कि जगत् एक भ्रम है, गलत है। डॉ० साहब ने विद्यार्थियों से पूछा कि क्या वे असमानता पर आधारित पुरुष-सूक्त में विश्लेषित समाज सङ्गठन को मानेंगे अथवा समानता पर आधारित, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व पर आधारित संविधान में उल्लिखित समाज व्यवस्था कायम करेंगे? क्या वे हिन्दू-शास्त्रों में व्याप्त असमानता के सिद्धान्त का खण्डन नहीं करेंगे?

डॉ० अम्बेडकर ने लगभग सभी बौद्ध तीर्थ-स्थानों का भ्रमण कर लिया। बनारस से वह कुशीनगर भी गए थे। वहाँ से 30 नवम्बर 1956 को वह हवाई

जहाज द्वारा दिल्ली लौट आए। दिल्ली आते थे, उन्होंने रत्तू से अपने कुत्ते के स्वास्थ्य एवं बॉम्बे में चल रहे सिविल सूट के विषय में पूछताछ की। संभवत: उत्तर अनुकूल नहीं मिला, और निवास-स्थान पर पहुँचते ही वह दु:खी, निरुत्साह दिखाई पड़े। उस समय उनकी कोठी में मिसेज सविता अम्बेडकर के पिता, भाई और डॉ० मावलंकर ठहरे हुए थे। डॉ० साहब बुरी तरह थके हुए थे। उन्होंने रत्तू को कहा कि उस रात वह वहीं ठहर जाए। रत्तू वहीं ठहर गए। डॉ० अम्बेडकर 1 दिसम्बर को सात बजकर पन्द्रह मिनट पर उठे, स्नान किया, चाय का एक प्याला पिया। फिर वह अच्छा महसूस करने लगे। शाम को, डॉ० साहब ने मथुरा रोड़ पर लगी बुद्धिस्ट आर्ट गैलरी को बड़ी रुचिपूर्वक देखा। बाहर आए और कार में बैठकर घर के लिए, रवाना हो गए। मार्ग में कनाट प्लेस की एक बुक-शॉप पर रुके और कुछ नई पुस्तकों को उनके निवास-स्थान पर भेजने आर्डर दिया।

2 दिसम्बर को डॉ० अम्बेडकर ने अशोक विहार पर दलाई लामा के स्वागत में, जो बौद्धगया में होने वाली 2500वीं बुद्ध जयन्ती के उपलक्ष में भारत पधारे थे, एक आयोजन में भाग लिया। शाम को वह अपनी कोठी के लॉन में आराम कुर्सी पर बैठे घण्टों अपने भक्तों तथा आगन्तुकों से बातचीत करते रहे। वहीं बैठकर उन्होंने अपना रात्रि का भोजन किया। लगभग वह साढ़े दस बजे सो गए। अच्छी तरह नींद भी आई; किन्तु सुबह उठते ही उन्होंने कुछ थकान महसूस की। अपने नौकरों को बुलाया। उन्होंने वहीं लॉन में उनकी कुर्सी डाल दी और बाबा साहब कुछ धूप में आराम की मुद्रा में पड़े रहे। वहीं मिसेज अम्बेडकर के भाई बालू कबीर ने बाबा साहब के कुछ चित्र खींचे। एक ग्रुप फोटो भी हुआ जिसमें मिसेज सविता अम्बेडकर, उनके पिता के० बी० कबीर और डॉ० मावलङ्कर सम्मिलित थे।

उसी दिन शाम को काफी रात गए, डॉ० अम्बेडकर एक हाथ में सोटा तथा दूसरा हाथ रत्तू के कन्धे पर रख के अपने माली को देखने गए, जो तीन दिन से बुखार में था। वह वहीं कोठी के आउट-हाउस में रहता था। उस वृद्ध माली को बुखार था और कफ आता था। उसकी निर्धन पत्नी उसकी चारपाई के पास खड़ी हो गई। बेचारा माली बड़ा भयभीत था कि कहीं उसकी नौकरी न छूट जाए और यदि वह मर गया तो उसकी वृद्ध विधवा पत्नी का क्या होगा? वह सड़कों पर भटकती घूमेगी। अपने बिस्तर पर पड़े, उसने बाबा साहब को नमस्कार किया और थोड़ा सा मुस्कराकर उनका आदर-सत्कार किया। फिर वह फूट-फूट कर रोने लगा। वह डॉ० साहब की दया एवं महरबानी से बड़ा कृतज्ञ हुआ। उसने रोना बन्द किया। दो क्षण साँस ली और बोला—'भगवान् स्वत: मेरे घर दर्शन देने आए हैं; लेकिन, श्रीमन्! मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं, न मालूम मेरी पत्नी का क्या होगा?' वह फिर आंखों में आंसू भर लाया और रोने लगा। डॉ० साहब अपने सभी नौकर-चाकरों के साथ अच्छा व्यवहार करते और वे भी उन्हें हृदय से प्रेम करते थे। वृद्ध माली को ढाढस बंधाते हुए, डॉ० साहब ने कहा—'रोना बन्द करो। प्रत्येक आदमी को कभी न कभी मरना है। मैं भी किसी दिन

मरूँगा। जरा धैर्य से काम लो। उन दवाइयों को ले लो जो मैं अभी भेजता हूँ और तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।' उन्होंने रत्तू से कहा—'देखो! बेचारा गरीब मृत्यु से भयभीत है ...मैं नहीं हूँ....किसी भी क्षण उसका आगमन हो सकता है....।' क्या पता था कि मौत उन्हीं की चुनौती को सुन रही थी ?

3 दिसम्बर को डॉ० अम्बेडकर ने रत्तू से यह जानना चाहा कि बॉम्बे जाने के लिए 14 दिसम्बर का उनके लिए रिजर्वेशन हो गया है अथवा नहीं। वह 16 दिसम्बर को वहां धर्म-परिवर्तन की दीक्षा देने वाले थे। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी लाइब्रेरी से मार्क्स की 'दॉस केपिटल' पुस्तक को निकाला और फिर अपनी पुस्तक 'द बुद्ध एण्ड कार्ल मार्क्स' के अन्तिम अध्याय को पूरा किया। उसे रत्तू को टाइप करने के लिए दे दिया। 4 दिसम्बर को डॉ० अम्बेडकर राज्य सभा में भी गए। वह राज्य सभा के सदस्य थे। वहाँ अपने साथियों के साथ उन्होंने बातें कीं और कुछ गम्भीर विचार-विमर्श भी किया। कौन जानता था कि यह उनका राज्यसभा में अन्तिम आना होगा। शाम को उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण पत्र टाइप करवाए, एक आचार्य पी० के० आत्रे और दूसरा श्री एस० एम० जोशी को। ये दोनों ही महाराष्ट्र की राजनीति में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। डॉ० साहब द्वारा उन्हें पत्र लिखने का उद्देश्य यह था कि वे उनके नये दल रिपब्लिकन पार्टी में सम्मिलित हो जाएँ।

यद्यपि डॉ० अम्बेडकर और अन्य लोग 14 दिसम्बर को बॉम्बे जाने वाले थे; लेकिन कुछ कारणों से कार्यक्रम बदल गया था। मिसेज अम्बेडकर के पिता, उनका भाई और एक कोई श्री जाधव, 4 दिसम्बर को ही ट्रेन द्वारा बॉम्बे रवाना हो चुके थे। डॉ० साहब ने हवाई जहाज से ही जाना निश्चित किया था क्योंकि ट्रेन से सफर करने में वह कठिनाई महसूस करते थे। रत्तू ने लगभग रात को डेढ़ बजे तक टाइप का काम किया और वहीं कोठी में सो गया। 5 दिसम्बर की सुबह रत्तू जल्दी उठा, पर बाबा साहब सोए हुए थे। बाबा साहब लगभग पौने नौ बजे उठे। रत्तू ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे रुकसत ली। निहायत ईमानदार और सच्चा भक्त अपनी साइकिल ले दफ्तर रवाना हो गया। मार्ग में जाते समय कहीं होटल में भोजन किया और दफ्तर जा पहुँचा। बाबा साहब के अन्तिम दिनों में रत्तू ही उनका एकमात्र सक्रिय भक्त था जो अपने दफ्तर के अलावा सुबह-शाम उनकी सेवा में व्यस्त रहता था और जिसने सहृदय बाबा साहब के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

लगभग दिन के डेढ़ बजे डॉ० (मिसेज) अम्बेडकर, डॉ० मावलङ्कर के साथ, कुछ सामान खरीदने के लिए बाजार चली गईं। काफी देर गए, डॉ० साहब ने दो-तीन बार घण्टी बजाई। अपनी पत्नी के विषय में मालूम हुआ कि वह अभी बाजार से लौटी नहीं हैं। शाम हो चली थी। रसोइए ने लाइट जलाई और बाबा साहब को स्नानघर की ओर ले गया ताकि वह शौचादि से निपट लें। तब डॉ० साहब ने चाय पी। दुबारा उन्होंने घण्टी बजाई पर मिसेज सविता नहीं दिखाई दीं। बाबा साहब का चेहरा यकायक लाल हो गया। रत्तू लगभग शाम को छह बजे आया तो बाबा साहब बुरी तरह बिगड़े थे कि सविता अभी तक क्यों नहीं

आई ? उन्होंने रत्तू को कुछ टाइप का काम दिया। उसी बीच मिसेज़ अम्बेडकर डॉ० मावलङ्कर सहित पधार गईं और जैसे ही उन्होंने अन्दर की ओर झांका, तो बाबा साहब ने, जो पहले से ही नाराज़ थे, उस पर आक्रोश का प्रहार किया। उसने रत्तू से कहा कि वह साहब को शान्त कर दे। कहा जाता है कि उस दिन बाबा साहब तलाक देने की बात सोचने लगे थे।

रात के आठ बजे तक बाबा साहब बिलकुल शान्त हो गए। उसी समय एक जैन शिष्ट मण्डल उनसे मिलने आया, हालांकि डॉ० साहब उन्हें दूसरे दिन बुलाने की सोच रहे थे। चूंकि वह मण्डल आ ही गया था, साहब ने बात करना उचित समझा। कुछ मिनट वह स्नानघर जाकर रत्तू के कन्धों पर हाथ रखे बाहर आ गए। अपने ड्राइङ्ग रूम में वह एक सोफा पर बैठ गए और उधर मण्डल के सदस्य आदर हेतु खड़े हुए। कुछ समय वातावरण बिलकुल शान्त रहा। जैन नेता उनके चेहरे की ओर टकटकी लगा कर देखते रहे। कुछ क्षण बाद डॉ० साहब ने अपना सिर उठाया और उसने मिलने का उद्देश्य पूछा। प्रथम उन्होंने उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की। साहब ने कहा—स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। तब मण्डल के सदस्यों ने जैन तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कुछ प्रश्न किए। लगता है वे बड़े प्रभावित हुए और साथ में लाई पुस्तक—'जैन और बुद्ध' उन्हें भेंट की। उन्होंने प्रार्थना की, कि वह अगले दिन एक जैन समारोह में भाग लें और उनके मुनि से विचार-विमर्श करें। बाबा साहब ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की बेशर्ते कि उनके स्वास्थ्य ने उनका साथ दिया। जैन महानुभाव अपने घर चले गए। जब वह जैन नेताओं से वार्तालाप में व्यस्त थे, उस बीच उनके अन्तिम मेहमान, डॉ० मावलङ्कर रात्रि को ही हवाई जहाज द्वारा बॉम्बे चले गए।

सच्चा भक्त रत्तू उनकी टांगों को दबा रहा था। डॉ० साहब ने रत्तू से कहा कि वह उनके सिर में तेल मालिश कर दे। उसने ऐसा ही किया। बाबा साहब को थोड़ी राहत मिली और वह प्रसन्नचित्त दिखाई देने लगे। अचानक रत्तू को एक मधुर धीमी सङ्गीतपूर्ण ध्वनि सुनाई दी। जब उसने देखा तो बाबा साहब ही अपने सीधे हाथ की अँगुलियों को सोफा पर टिक-टिक करते हुए कोई गीत गा रहे हैं। धीरे-धीरे वह गीत रत्तू को स्पष्ट ध्वनि में सुनाई देने लगा। गीत की पंक्तियां जब बिलकुल साफ सुनाई दीं तो पता लगा, वह 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की ध्वनि सुना रहे थे। बाबा साहब ने रत्तू को कहा कि वह उसी गीत का रिकार्ड उनके रेडियोग्राम पर चढा दे और बड़े ही भक्ति भाव से बाबा ने वह गीत सुना। उसी बीच उनका रसोइया सुदामा आ पहुँचा और सूचना दी कि उनका भोजन तैयार है। डॉ० साहब ने कहा कि वह थोड़ा सा चावल खाएँगे और कुछ नहीं। वह अब भी गीत की मधुर ध्वनि में ध्यान मग्न थे। कुछ क्षणों में सुदामा वापिस आ गया और बाबा साहब भोजन कक्ष में जाने के लिए उठ खड़े हुए। रत्तू के कन्धों पर हाथ रख कर वह कुछ अलमारियों के पास गए और दो-चार पुस्तकें अपने हाथों में ले लीं। अन्य किताबों पर भी उनकी दृष्टि पड़ी जिनको उनकी टेबिल पर रखने के लिए उन्होंने रत्तू को कहा। वह और गहरी दृष्टि विभिन्न

ग्रन्थों पर डालते रहे। वही तो उनके वास्तविक जीवन साथी थे। रत्तू की सहायता से वह रसोईघर की ओर मुँह कर अपनी कुर्सी पर बैठ गए। उन्होंने थोड़ा सा भोजन लिया और रत्तू को सिर दबाने के लिए कहा। तब वह एक सोटे की सहायता से कबीर का एक भजन गाते हुए, 'चल कबीर तेरा भव सागर डेरा', उठ खड़े हुए। ऐसा करते हुए वह पास में ही अपने सोने वाले कक्ष में प्रविष्ट हो गए। जैसे ही वह जाकर कमरे में बैठे, उन्होंने उन सभी पुस्तकों को एक-एक करके देखा जिन्हें वह कुछ समय पहले अलमारियों से निकाल कर लाये थे। उन्हें फिर अपने पास की टेबिल पर ही रख दिया।

लगभग ग्यारह बजकर पन्द्रह मिनट पर, डॉ० अम्बेडकर अपने बिस्तर पर लेट गए और रत्तू से धीमे-धीमे अपने पैर दबाने को कहा। रत्तू पहली रात को भी अपने घर नहीं गया था। उसने घर जाने की इच्छा महसूस की, क्योंकि डॉ० साहब को नींद का झोंका आ रहा था। उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए, रत्तू ने टेबिल पर रखी पुस्तकों को ठीक किया। उसने देखा कि बाबा साहब अब सो गए हैं, वह अपनी साइकिल लेकर घर चल दिया। रत्तू को जोर से भूख लगी हुई थी। वह थका हुआ भी था। वह जानता था कि उसकी पत्नी उसका इन्तजार कर रही होगी। जैसे ही वह कोठी के द्वार पर पहुँचा होगा कि सुदामा पीछे भागता हुआ आया और कहा कि तुम्हें डॉ० साहब वापस बुला रहे हैं। उन्होंने रत्तू से अपनी अलमारी से 'द बुद्ध एण्ड हिज धम्म' नामक ग्रन्थ की भूमिका तथा प्रस्तावना लाने को कहा और टाइप किए उन पत्रों को भी अपनी मेज पर रखवा लिया जो उन्होंने आचार्य आत्रे, एस० एस० जोशी तथा वर्मा सरकार को लिखवाए थे। रत्तू ने पुस्तक की भूमिका तथा प्रस्तावना, और वे पत्र उनकी चारपाई के पास रखी मेज पर रख दिए और अपने घर चला गया। डॉ० साहब उन पत्रों को रात्रि में देखना चाहते थे, क्योंकि सुबह की डाक से उन्हें भेजना था। सुदामा ने उसी मेज के ऊपर कॉफी भरा एक थरमस और मिठाइयों की एक प्लेट भी रख दी थी जो रोजाना कार्य-क्रम के अनुसार था। लेकिन कोई भी नहीं जानता था कि मृत्यु उनके पीछे खड़ी थी। सुदामा, रत्तू तथा मिसेज अम्बेडकर को कतई आभास नहीं था कि उनका अन्त इतना निकट है।

अपनी दिनचर्या के अनुसार, मिसेज अम्बेडकर साढ़े छः बजे सुबह उठीं और उन्होंने डॉ० साहब को सोये हुए पाया। उनके पैर एक तकिये पर आराम की स्थिति में थे। थोड़ी देर अपनी कोठी के बगीचे में टहलकर वह डॉ० साहब को रोजाना की भांति जगाने गईं। मिसेज अम्बेडकर ने उन्हें जगाने का प्रयास किया, पर वह एकदम भयभीत हो गईं यह देखकर कि उनके पतिदेव इस दुनिया से जा चुके हैं। मात्र उनका पार्थिक शरीर बिस्तर पर पड़ा हुआ है। उन्होंने अपनी कार रत्तू के घर भेजी और वहां भक्त रत्तू भी आ गया। उसके आते ही मिसेज अम्बेडकर सोफे पर गिर पड़ी और चिल्लाईं कि अब बाबा इस संसार में नहीं रहे। रत्तू इसे सहन न कर सका और कांपती आवाज में चीख पड़ा—'बाबा साहब ! क्या हो गया ?' फिर दोनों बाबा के कमरे में प्रविष्ट हुए। दोनों ने उनके हाथ पैर दबाए; उनकी तेल

मालिश की; इधर-उधर उनके शरीर को हिलाया-डुलाया; लेकिन वे उनकी सांस लौटाने में असमर्थ रहे। एक चम्मच ब्राण्डी भी उनके मुख में डाली, पर उसमें भी क्या होता, वह तो अपनी निद्रा में ही चल बसे थे। पता नहीं रात्रि में, कब उनका देहावसान हो गया था।

मिसेज अम्बेडकर अब जोर-जोर से रोने लगीं। वह बाबा की मृत्यु के गम में डूब गईं और उधर रत्तू भी उनके मृत शरीर के पास बैठा फूट-फूट कर रोने लगा। वह चिल्लाया; 'ओह ! बाबा साहब, मैं आ गया हूँ। मुझे कुछ काम दो।' लेकिन उसकी आवाज को सुनने वाला महान् नेता अब जीवित नहीं था। बाबा की मृत्यु के समय, उनके एक अच्छे परिचित, श्री चमनलाल शाह, जिन्हें उनकी योगिक रहस्यवादी अध्ययनशीलता के लिए, डॉ० साहब पसन्द करते थे, वहां ठहरे थे। बहुत पहले ही बाबा ने कहा था कि उनके जीवन का अन्त उस समय हो जाएगा जब उनका मिशन पूरा हो जायेगा और वैसा ही हुआ। कुछ ही क्षणों में रत्तू ने इस अभागे समाचार को बाबा साहब के निकट रहने वाले व्यक्तियों, केन्द्रिय मंत्रियों तथा सरकार को टेलीफोन पर दिया। कुछ ही घण्टों में यह समाचार, अग्नि की भांति, सारी दिल्ली में फैल गया। ऑल इण्डिया रेडियो ने इस समाचार को दो बार प्रसारित किया। संसद का अधिवेशन उस समय चल रहा था। सूचना मिलते ही सदनों की कार्यवाही बन्द करदी गई। लोक सभा में प्रधानमन्त्री नेहरू ने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की और वह बाबा साहब के निवास-स्थान भी गए। बड़ी मौन मुद्रा में नेहरू ने अपने एक सहयोगी मित्र के अन्तिम दर्शन किए और कुछ क्षण उनके पास खड़े रहे।

लगभग दस बजे से 26 अलीपुर रोड़ पर, बाबा के शव के दर्शनार्थ स्त्री-पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो गई और शाम सात बजे तक हजारों नर-नारी वहां आते रहे। सभी दर्शनार्थी विचित्र सी खोई हुई मुद्रा में थे और बहुत से आँसू बहा रहे थे कि अब उनका मसीहा इस दुनिया में न रहा। यह खबर सिद्धार्थ कॉलेज के द्वारा बॉम्बे में पहुँचाई गई और वहाँ भी सारे शहर में शोक लहरें फैल गईं। वहां सूचित किया गया कि उनका पार्थिव शरीर हवाई जहाज द्वारा बॉम्बे पहुँच रहा है। फिर क्या था ? लाखों नर-नारी उनके दादर स्थित 'राजगृह' मकान पर पहुँच गए। हजारों लोग हवाई अड्डे पर जमा हो गए।

जब जवाहरलाल नेहरू उनके निवास-स्थान पर अन्तिम दर्शन के लिए पहुँचे तो उन्होंने बाबा साहब के बारे में बहुत सी जानकारी की कि उनकी मृत्यु कैसे कब और किन परिस्थितियों में हुई। बाबा की उम्र भी पूछी। श्री सोहनलाल शास्त्री ने इन सबका उत्तर दिया। उनकी आयु लगभग पैंसठ वर्ष की थी और वह मधुमेह के रोगी थे। उसी रात बाबा ने अपने महान् ग्रन्थ 'भगवान् बुद्ध और उनका धम्म' की भूमिका लिखी, जिसे टाइप करवाया था। यह सुनकर नेहरू जी कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध हो गए क्योंकि वह स्वयं भी तो भगवान् बुद्ध के भक्त थे। गृह-मन्त्री पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त, संचार-मंत्री श्री जगजीवनराम और राज्य सभा के डिप्टी चैयरमेन भी बाबा के निवास-स्थान पर अपनी

श्रद्धांजलियां अर्पित करने आए। जगजीवनरामजी ने उनके शरीर को बॉम्बे ले जाने के लिए एक डेकोटा (हवाई जहाज) का प्रबन्ध रियायती दर पर करवाया। नेहरू तथा इन लोगों ने, लोकसभा तथा राज्यसभा के सचिवों और बहुत से संसद सदस्यों ने बाबा के शरीर पर मालाएँ चढ़ाई।

डेकोटा के जाने का समय रात्रि साढ़े दस बतलाया गया। अत: बाबा के अनुयायियों ने उनके पार्थिव शरीर की यात्रा दिल्ली में निकालना निश्चित किया। सायं साढ़े छह बजे उनके शरीर को एक ट्रक पर रखकर सजाया गया। जुलूस 26 अलीपुर रोड़ से मुख्य बाजारों में होता हुआ सफदरजङ्ग हवाई अड्डे पर पहुँचा। मार्ग में 'बाबा साहब की जय हो' के नारों से सारा आकाश गूँज उठा। उनका शरीर फूल-मालाओं से ढक दिया गया था। हवाई अड्डे पर भी लाखों की भीड़ इकट्ठी थी। लगभग साढ़े दस बजे डेकोटा बाबा साहब के शरीर को लेकर बॉम्बे रवाना हो गया। उस पार्थिव शरीर के साथ बॉम्बे जाने वालों में सर्वश्री सोहनलाल शास्त्री, शंकरानन्द शास्त्री, भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन, रत्तू, सुदामा, मिसेज़ अम्बेडकर आदि थे। सान्ताक्रुज हवाई अड्डे पर सुबह के तीन बजे से हजारों शोकाकुल नर-नारी अश्रुपूरित नेत्रों में बाबा के अन्तिम दर्शन हेतु उपस्थित थे। यह विशाल जन-समुदाय एक जुलूस में, उनके दादर स्थित 'राजगृह' निवास-स्थान पर शव के साथ गया। ढेर सारे लोग, नेता तथा विद्वान वहाँ भी एकत्र थे। सभी शोकाकुल थे। सूर्य निकलने तक तो वहां अपार भीड़ एकत्र हो गई थी। लोगों को इतना असह्य दुःख था कि कुछेक तो मूर्छित हो गए। 7 दिसम्बर को उनके सम्मान में सारे बाजार, मिल, फैक्ट्री आदि बन्द रहे।

7 दिसम्बर के दोपहर तक अन्तिम संस्कार के सभी प्रबन्ध पूर्ण कर लिए गए थे। उनके शरीर को फिर एक ट्रक पर सजाया गया और उसे फूल-मालाओं में लपेटा गया। उनके सिर के पास भगवान् बुद्ध की एक प्रतिमा रखी गई। शरीर के चारों ओर मोमबत्तियां जलाई गईं और धूप बत्तियों से सारे ट्रक को महका दिया गया। लगभग डेढ़ बजे जुलूस प्रारम्भ हुआ और बॉम्बे के मुख्य बाजारों में होता हुआ दादर श्मशान घाट पर पहुँचा। लगभग पांच घण्टों तक शहर का यातायात ठप्प हो गया। सड़कों के दोनों ओर अपार भीड़ कतारों में शोकाकुल खड़ी थी। चारों ओर सफेद पोशाक में स्त्री-पुरुष थे। कहते हैं बॉम्बे के बाजारों में सफेद धोतियां समाप्त हो गई और इतनी भीड़ केवल लोकमान्य तिलक की शवयात्रा में ही इकट्ठी हो पाई थी। शाम के अन्धेरे में बाबा के पार्थिव शरीर को चन्दन की चिता में रखा गया और उनके एकमात्र पुत्र यशवन्त राव ने उनकी चिता में साढ़े सात बजे अग्नि संस्कार सम्पन्न किया। इस अन्तिम संस्कार का सारा काम भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने पूर्णत: बौद्ध रीति से सम्पन्न किया। जैसे ही अग्नि प्रज्वलित हुई, सभी नर-नारी फूट-फूट कर रोने लगे। सिटी पुलिस ने अपना बिगुल ध्वनित कर अन्तिम आदर प्रदान किया जो प्रथम बार ही किसी गैर-सरकारी व्यक्ति के लिए दिया गया था।

7 दिसम्बर, 1956 वह दिन था जब सांची में बुद्ध की 2500 वीं जयन्ती

का आठ दिन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ, जिसमें सम्भवतः बाबा साहब जाने वाले थे, पर मृत्यु ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। दाह-संस्कार के समय भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन बोले कि बाबा साहब एक महान् नेता, युग-पुरुष थे। उन्होंने देश की जीवन भर सेवा की और आज परिनिर्वाण प्राप्त किया है। उस समय दो व्यक्ति और बोले, आचार्य पी० के० आत्रेय और दादा साहब गायकवाड़। गायकवाड़ जी ने केवल थोड़े से शब्दों में यह कहा कि 16 दिसम्बर को आप लोग बाबा साहब द्वारा दीक्षा में धर्मान्तर करने वाले थे। समय ने उन्हें हम से पहले ही छीन लिया है; लेकिन उनकी चिता के सामने प्रतिज्ञा करो कि आप उनकी इच्छा पूरी करोगे और कुछ ही क्षणों में लाखों स्त्री-पुरुष बौद्ध हो गए। आचार्य आत्रेय ने सिंह गर्जना में बाबा साहब के प्रति भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। आत्रेय जी ने कहा कि बाबा ने जीवन भर अन्याय, दमन एवं असमानता के विरुद्ध संघर्ष किया है। उनका भाषण इतना मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी था कि उसे सुनकर वहाँ समुद्र तट पर बैठी अपार भीड़ दहाड़ें मार-मार कर रोने लगी। इस प्रकार एक महान् युग पुरुष को उनके प्रिय भक्तों ने विदा किया। उनके जीवन की यह अन्तिम यात्रा थी जिसके एक-एक क्षण में उनके ऐतिहासिक योगदान की ध्वनि गूँज रही थी और वह गूँज आज भी करोड़ों नर-नारियों के मन-मन्दिर में विराजमान है, जो सतत प्रेरणा एवं प्रयत्न का स्रोत बन गई है।

□

कृतित्व

डॉ० अम्बेडकर का जीवन और व्यक्तित्व वेदना एवं कष्ट की अग्नि में तप कर निखरा था। उन्होंने अपने विद्रोही जीवन के व्यक्तित्व रूपी भवन का साहस तथा निर्भीकता की नींव पर निर्माण किया। अतः उनके समस्त कार्य विद्रोही जीवन और निर्भीक व्यक्तित्व की अभिव्यक्तियां हैं। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व परस्पर सम्बद्ध है। उनकी वैयक्तिक विशेषताएँ, भावनाएँ तथा आकांक्षाएँ ही उनके कृतित्व में परिणत हुई। उनके कार्य वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक प्रेरणा से ओत-प्रोत थे। यदि यह कहा जाए कि उनका व्यक्तित्व सामाजिक व्यक्तित्व और उनका कृतित्व मानवीय कृतित्व था तो कोई असङ्गति नहीं होगी। उन्हें अर्थाभाव, सामाजिक अभिशाप, राजनीतिक प्रकोप, धार्मिक भेदभाव आदि का सामना करना पड़ा; किन्तु डॉ० साहब इन विकट परिस्थितियों से हताश नहीं हुए और अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ने का निरन्तर प्रयास करते रहे। प्रतिभा, परिश्रम तथा उनकी प्रथम पत्नी और साथियों के सहयोग ने डॉ० अम्बेडकर को जिस जीवन की उच्च सीढ़ी पर पहुँचा दिया वह अद्वितीय है। इनका ज़ीवन एक अद्भुत ऐतिहासिक यात्रा है जिसके महत्त्वपूर्ण पक्ष यहाँ प्रस्तुत हैं :

अछूतोद्धार आन्दोलन :

पूर्व बौद्धकाल से ही हिन्दू समाज अवनति की ओर चला गया था। समाज का एक वर्ग यदि देवता बन गया तो दूसरा वर्ग निम्न स्तर पर ढकेल दिया गया था। ऊँच-नीच का वातावरण पनप चुका था। इस प्रकार समाज में असमानता तथा अन्याय का बोलबाला हो चला था। ऐसी स्थिति के लिए मूलतः ब्राह्मणवाद तथा वर्णाश्रमधर्म उत्तरदायी थे। आर्य समाज में सबसे अधिक शोषित एवं पीड़ित शूद्र ही थे जिन्हें हर प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। उनको मानवी अधिकारों से वञ्चित कर दिया गया था। इस सामाजिक स्थिति के प्रति सर्वप्रथम विद्रोह भगवान् बुद्ध ने किया था और उनके पश्चात् सदियों तक निम्न जाति के लोगों को मानव-सम्मान प्राप्त हुआ; परन्तु ब्राह्मणवाद के कुचक्र में फिर से शूद्रों तथा अन्य निम्न जाति के लोगों की स्थिति शोचनीय हो गई। शूद्रों के अलावा एक और अछूतों का वर्ग पैदा हो गया जिनकी दशा पशुओं से भी बदतर हो गई। अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते तो उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि उनका देखना, साया तथा छुआ जाना भी उच्च वर्ग के लोगों को दूषित कर देता था। इस प्रकार शूद्रों एवं अछूतों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। इनकी दयनीय स्थिति सामान्यतः समूचे भारत में थी और मध्यकालीन समाज के

पूर्व तक, बुद्ध के पश्चात् किसी ने इनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। ब्राह्मणवाद से तंग आकर बहुत से शूद्र अछूत मुसलमान होने लगे थे।

महाराष्ट्र में जहाँ डॉ० अम्बेडकर का जन्म हुआ, शूद्रों तथा अछूतों की हालत तो और ही दयनीय थी। बारहवीं सदी से लेकर अंग्रेजी राज्य की समाप्ति तक, महाराष्ट्र में सनातनी ब्राह्मण वर्ग की दृष्टि अत्यन्त सकुचित तथा हीन हो गई थी। प्रायः सारे समाज का धीरे-धीरे पतन हो चला था। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने सन्त ज्ञानेश्वर से लेकर संत तुकाराम तक सभी सन्तों का—इतना ही नहीं, शिवाजी के क्षत्रियत्व अर्थात् राज्याभिषेक का भी ब्राह्मण पुरोहितों ने विरोध किया। अछूतों की स्थिति तो इतनी दयनीय थी जिसकी कल्पना करना सभ्य मानव प्राणियों के लिए असंभव है। वैसे उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अछूतों की हालत पशुओं से भी बदतर रही, पर कुछ समाज सुधारकों और सङ्गठनों का उनकी ओर ध्यान जाने लगा था।

तेरहवीं सदी में महाराष्ट्र में चक्रधर स्वामी ने एक महानुभाव पंथ की स्थापना की जिसमें अधिकांशतः ब्राह्मण सदस्य थे; किन्तु पंथ ने ब्राह्मणवाद पर एक प्रहार किया और चारों वर्णों के स्त्री-पुरुषों को संन्यास का अधिकार प्रदान किया। ब्राह्मण तथा अछूत समान हैं क्यों कि दोनों के मानव शरीर हैं और दोनों के शरीरों से पाप-पुण्य हो सकते हैं। ब्राह्मण भी नीच कर्म कर सकता है और अछूत भी। अतः जन्म के आधार पर ऊँच-नीच मानना महापाप है। ब्राह्मणी पंथ होने के बावजूद भी इसके सदस्यों का दृष्टिकोण उदार था जिसके फलस्वरूप इस पंथ का महार जाति में प्रचार-प्रसार हुआ। चूँकि ब्राह्मणवाद से मुक्ति पाने के लिए अछूत लोग इस्लाम स्वीकार करने लगे थे, इसलिए भागवत धर्म के सन्तों ने हिन्दू-समाज में धार्मिक समता, न कि सामाजिक समता का, प्रचार आरम्भ कर दिया था। ईश्वर भक्ति का सबको अधिकार है अर्थात् ईश्वर के समक्ष सभी मानव प्राणी समान हैं। भागवत धर्म की सन्त परम्परा में सभी जाति के सन्त पैदा हुए। मराठी भाषा का सन्त साहित्य बड़ा ही समृद्ध है; लेकिन जब जनता में शूद्र-अछूत सन्तों का आदर-सत्कार बढ़ने लगा तो कट्टर ब्राह्मणों ने उनका विरोध किया। फिर भी तुकाराम तथा चोखामेला जैसे सन्तों ने अछूतोद्धार में अच्छा योगदान किया। इतने पर भी अछूतों की महाराष्ट्र में बड़ी दयनीय अवस्था बनी रही।

डॉ० अम्बेडकर ने स्वयं अपनी पुस्तक (एनिहिलेशन ऑफ कास्ट) में यह लिखा है—'पेशवाओं के शासन-काल में महाराष्ट्र मे यदि कोई सवर्ण हिन्दू सड़क पर चल रहा हो तो अछूत को वहाँ चलने की आज्ञा नहीं थी ताकि कहीं उसकी छाया से वह हिन्दू अपवित्र न हो जाए। यह अनिवार्य था कि प्रत्येक अछूत अपनी कलाई या गले में एक निशानी के तौर पर काला डोरा बांधे ताकि सवर्ण हिन्दू उसे पहचान लें और भूल से उससे स्पर्श न कर बैठें। पेशवाओं की राजधानी पूना में अछूतों के लिए यह राजाज्ञा थी कि वे कमर में झाड़ू बांधकर चलें ताकि उनके चलने से जमीन पर अंकित उनके पद-चिह्न झाड़ू से मिटते चले जाएँ अन्यथा उनके पद-चिह्नों पर सवर्ण हिन्दू पैर रखने से अपवित्र हो जाते थे। इतना ही नहीं पूना में अछूतों को गले में मिट्टी की हांडी भी लटका कर चलना पड़ता था ताकि वे अपने

थूक को उसी में कर लें क्यों कि उनका भूमि पर गिरा थूक न केवल भूमि को अपवित्र बनाता बल्कि सवर्ण हिन्दू भी उस पर पैर डालने से अपवित्र हो जाते।'

अंग्रेजों द्वारा स्थापित भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बाद ही अछूतों को शिक्षा की कुछ सुविधाएं प्राप्त हुई थी अन्यथा हिन्दुओं के स्कूलों के दरवाजे उनके लिए बन्द थे। कम्पनी की सेवा में बहुत से महार लोग भर्ती थे जिनके बच्चों के लिए कम्पनी की ओर से शिक्षा का प्रबन्ध था। उधर बम्बई में सन् 1867 में 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना न्यायमूर्ति रानाडे तथा डॉ० भण्डारकर की देखरेख में हुई जिसने जातिभेद के विरुद्ध आवाज उठाई, हालांकि कट्टर हिन्दुओं के समक्ष वह प्रार्थना-समाज मात्र सुधारवादी ही रह गया। महाराष्ट्र के महान् क्रान्तिकारी समाज-सुधारक महात्मा ज्योतिबा फुले ने अछूतोद्धार का काम सुसंगठित ढग से किया। उन्होंने अछूतों में जागृति उत्पन्न की और सन् 1854 में, अछूत लड़की-लड़कों के लिए पूना में स्कूल खोले जिनमें स्वयं महात्मा जी पढ़ाते थे। सम्भवतः भारत में वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अछूतों के लिए पाठशालाएं स्थापित कीं। उनकी धर्मपत्नी सावित्री बाई भी उनमें पढ़ाया करती थीं। उन्होंने सन् 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। ब्राह्मणवाद, जातिवाद, पुरोहितवाद, पूजापाठ आदि के विरुद्ध यह एक सजीव आन्दोलन था। इससे पिछड़ी जाति के लोगों के दृष्टिकोण को नया बल मिला और अछूतों में जीवन की नई नई लहरें दौड़ गईं। महात्मा फूले की सेवाओं को स्वीकार करते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'शूद्र कौन थे ?' उन्हें समर्पित करके अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। महात्मा फूले के व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने डॉ० अम्बेडकर के जीवन को प्रेरणा प्रदान की।

अछूतोद्धार आन्दोलन में गोपाल कृष्ण वलङ्कर का नाम भी आता है जिन्होंने डापोली में 'अनार्य दोप परिहार मण्डली' की स्थापना की। वे महात्मा फुले के विचारों से प्रभावित थे। इस संस्था ने भी ब्राह्मणवाद, जातिवाद तथा छूआछूत के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। छूआछूत मनुष्यकृत है, ईश्वरकृत नहीं। इनके अतिरिक्त छत्रपति साहू महाराज जो सन् 1894 में कोल्हापुर रियासत के राजा बने, महात्मा फुले की विचारधारा तथा कार्य-प्रणाली से प्रभावित हुए। महाराजा ने शूद्रों तथा अछूतों को अपने यहाँ नौकरियां दीं। उन्होंने शूद्र, अछूत, मुसलमान आदि के लिए छात्रालयों की स्थापना की और उन्हें छात्रवृत्ति की सुविधाएं भी दी। उनके इन कार्यों का ब्राह्मणों ने बहुत विरोध किया। यहां तक कि महाराजा के ही राजपुरोहित ने पर्व-स्नान के समय उनके लिए यह कहकर वेद-मन्त्र के उच्चारण से इन्कार कर दिया कि 'आप शूद्र हैं और शूद्र को वेदमन्त्र सुनने का अधिकार नहीं है।' हालांकि उसे नौकरी से हटना पड़ा। कोल्हापुर के शंकराचार्य ने भी राजपुरोहित का समर्थन किया। महाराजा ने शंकराचार्य के पद को भी समाप्त कर दिया और शंकराचार्य पूना भाग गए। इस प्रकार साहू महाराज ने ब्राह्मणवाद का प्रतिरोध करके सत्यशोधक समाज के अछूतोद्धार आन्दोलन को आगे बढ़ाया। अछूतोद्धार में उनका सहृदय योगदान रहा।

महाराष्ट्र के अछूतोद्धार आन्दोलन में, प्रार्थना समाज के प्रचारक, कर्मवीर वी० आर० शिंदे (1873-1944) ने भी योगदान दिया। उनके ही प्रयत्नों से अक्टूबर 1906 को सर नारायणराव चन्दावरकर (1855-1923) की अध्यक्षता में 'डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन सोसाइटी ऑफ इण्डिया' की स्थापना हुई। इस संस्था ने अछूतों में शिक्षा-प्रचार पर बल दिया। अछूतों के लिए, छात्रालय तथा औद्योगिक स्कूल खुलवाए। इन दोनों व्यक्तियों ने अछूतोद्धार के लिए सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त की। उनका सरकार से इतना तालमेल हो गया कि महाराष्ट्र में शिंदे और चन्दावरकर को सरकार अछूतों का नेता मानने लगी थी। लेकिन अछूतों की स्थिति कोई विशेष सुधरी नहीं क्यों कि कोई प्रभावशाली नेता सामाजिक रंगमंच पर पूर्णत: खुलकर नहीं आया था।

डॉ० अम्बेडकर के आगमन से ही, महाराष्ट्र में अछूतोद्धार आन्दोलन को बल और तीव्र गति प्राप्त हुई। वे हिन्दू समाज में प्रचलित ब्राह्मणवाद के कट्टर विरोधी थे। एक प्रकार से ब्राह्मणी व्यवस्था के शत्रु थे। उन्होंने सर्वप्रथम अछूतों के इतिहास का अध्ययन किया। वैदिक काल से शूद्रों की स्थिति का सिंहावलोकन किया और चूंकि उन्होंने अपने जीवन में स्वयं छुआछूत के कटु अनुभवों का सामना किया था, इसलिए उनमें ब्राह्मणवाद, छुआछूत तथा जातिवाद के प्रति जो उग्रता तथा तीक्ष्णता थी, अन्य किसी में मुश्किल से ही मिलेगी। उन्होंने अछूतोद्धार आन्दोलन को एक नया मोड़ दिया और कहा: "अछूत समाज की प्रगति में बाधक बनने वाला कोई भी व्यक्ति या संस्था हो, वह चाहे अछूत समाज की हो अथवा सवर्ण हिन्दू समाज की, उसका हमें तीव्र विरोध तथा निषेध करना चाहिए।" डॉ० अम्बेडकर द्वारा चलाए गए अछूतोद्धार आन्दोलन के पूर्व अछूतों की कांग्रेस राजनीति तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में क्या स्थिति थी, यह देख लेना आवश्यक है क्यों कि उनका आगमन कई परिस्थितियों के साथ जुड़ा है जो उस समय विवादास्पद बन चुकी थीं और जिनकी आड़ में लोग अपने राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि में लगे हुए थे।

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। उसके संस्थापकों में न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे भी थे जो समाज-सुधार में गहरी दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने ही कांग्रेस का ध्यान समाज-सुधार की ओर आकर्षित किया। अतएव 1386 के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस ने 'अखिल भारतीय समाज-सुधार सम्मेलन' की स्थापना का निर्णय लिया और यह भी निश्चय किया कि उसका वार्षिक अधिवेशन भी कांग्रेस के साथ हुआ करे। इसका विरोध कुछ ब्राह्मण कांग्रेसी नेताओं ने किया था, पर लगभग आठ वर्ष तक कांग्रेस तथा समाज-सुधार सम्मेलन के अधिवेशन साथ-साथ चलते रहे। लेकिन समाज-सुधार के प्रश्न को लेकर कांग्रेस में तो भिन्न मत उठ खड़े हुए। एक का कहना था कि राजनीतिक तथा सामाजिक सुधार साथ-साथ चलें, परन्तु दूसरा मत यह चाहता था कि कांग्रेस में समाज-सुधार का प्रश्न कतई न उठाया जाए। फलत: कट्टर ब्राह्मण तथा कुछ कांग्रेसी समाज-सुधार के विरुद्ध होते चले गए और जब सन् 1895 में कांग्रेस का पूना में अधिवेशन होने जा रहा था तब लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में कुछ कट्टर ब्राह्मणों

ने निश्चय किया कि वे कांग्रेस-पंडाल में समाज-सुधार सम्मेलन नहीं होने देंगे। उन्होंने वास्तव में नहीं होने दिया। रानाडे, गोखले, भण्डारकर आदि को विवश होकर पुलिस के संरक्षण में एक अन्य स्थान पर समाज-सुधार सम्मेलन करना पड़ा, हालांकि सनातनी हिन्दुओं ने यह धमकी दी थी कि पूना में सम्मेलन होने ही नहीं देंगे और यदि हुआ तो आग लगा देंगे। यह समाज-सुधार सम्मेलन का अन्तिम अधिवेशन था। इस प्रकार कांग्रेस ने समाज-सुधार की भावनाओं को कुचल दिया और समाज की ज्वलन्त समस्या से पीछा छुड़ा लिया।

कांग्रेस के राजनीतिक आन्दोलन के फलस्वरूप इंग्लैण्ड की सरकार ने सन् 1909 में भारत में कुछ सुधार किए जिन्हें मिण्टो-मोर्ले सुधार कहा गया। इन सुधारों में मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व, पृथक् निर्वाचक संघ तथा साम्प्रदायिक संरक्षण दिया गया। चूंकि मुसलमान इस योजना के पक्ष में थे, इसलिए कांग्रेस ने कोई विरोध नहीं किया जो उसकी भयंकर भूल थी। कांग्रेसी हिन्दुओं को बाद में ध्यान आया कि पृथक् निर्वाचन तो भारतीय समाज के लिए ख़तरनाक है। अतः संयुक्त चुनाव का प्रश्न उठाया गया। सन् 1916 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में इस पर वाद-विवाद हुआ और मुसलमानों को कुछ और सुविधाएँ देकर संयुक्त निर्वाचन के लिए राजी कर लिया। इसी अधिवेशन में अछूतों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठाया गया। इसी समय महायुद्ध शुरु हो गया जिसमें भारतीय जनता ने अंग्रेजों का साथ दिया था। फलतः अगस्त 1917 में, भारत-मंत्री लार्ड मांटेग ने घोषणा की कि अंग्रेजी सरकार भारत को 'होम रूल' देने को तैयार है जिसके लिए शीघ्र ही ठोस कदम उठाए जायेंगे। तत्पश्चात् लार्ड मांटेग ने भारत का दौरा किया। उनसे सभी राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक नेता मिले। अछूत नेता भी मिले और उन्होंने भारत में होने वाले अछूतों पर अत्याचारों तथा अन्यायों का प्रबल इजहार किया। अछूतों में राजनीतिक चेतना का यह अच्छा अवसर था। वे अपने शोषण के प्रति सजग होने लगे। इस चेतना का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि सन् 1892 में अछूतों की सेना में भर्ती, जो कानूनन बन्द हो गई थी, सन् 1917 में फिर से खुल गई।

नारायणराव चन्दावरकर की अध्यक्षता में जो सन् 1900 में कांग्रेस के लाहोर अधिवेशन में सभापति रह चुके थे, 11 नवम्बर, 1917 को 'डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन' नाम से अछूतों की एक सभा हुई। उस सभा में यह प्रस्तावित किया गया कि कांग्रेस अपने आगामी अधिवेशन में छुआछूत के उन्मूलन पर एक स्वतन्त्र प्रस्ताव पास करे ताकि हिन्दू लोग अछूतों के साथ मानवी व्यवहार करें। उन्हें अछूतोद्धार की प्रेरणा मिले। तत्पश्चात् एक और सभा बापूजी बागले की अध्यक्षता में हुई जिसमें अछूतों की ओर से यह मांग की गई कि "यदि हिन्दू लोग अछूतों को राजनीतिक अधिकार नहीं देना चाहते तो उन्हें 'होम रूल' मांगने का क्या अधिकार है ? जो लोग अपने धर्म भाइयों को समान अधिकार नहीं दे सकते उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता की मांग रखने में शर्म आनी चाहिए।"

इसके बाद अंग्रेजी सरकार ने माण्टेग-चेम्सफोर्ड योजना प्रस्तुत की जिसके

अनुसार लार्ड साउथबरो की अध्यक्षता में 'इण्डियन फ्रेन्चाइज कमेटी' भारत आई। इस कमेटी ने अपना काम प्रारम्भ किया तब बम्बई सरकार ने अछूतों की समस्या उसके समक्ष प्रस्तुत करने को कर्मवीर शिंदे तथा डॉ० अम्बेडकर को नियुक्त किया। कमेटी के सामने डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों की दयनीय स्थिति को रखा और यह मांग की कि अछूतों को उनकी संख्या के अनुपात में राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिले। यह भी मांग रखी कि अछूतों की निर्धन तथा अशिक्षित स्थिति को देखते हुए मतदान की योग्यता निर्धारित की जाए ताकि वे चुनाव से वञ्चित न हों; लेकिन शिंदे ने एक विचित्र विचार रखा और यह कहा कि अछूत-प्रतिनिधियों का चुनाव न तो अछूत मतदाता करें और न सरकार वरन् उनका निर्वाचन कौंसिलों के निर्वाचित सदस्य करें। डॉ० अम्बेडकर ने इसका विरोध किया और कहा कि यह अछूत नेताओं का अपमान होगा। फलतः शिंदे का सुझाव अस्वीकार कर दिया गया।

सन् 1917 का वर्ष अछूतोद्धार के लिए अच्छा सिद्ध हुआ। मांटेग की घोषणा के पश्चात् सभी राजनीतिक दल और समुदाय सचेत हो गए थे। उधर लोग भी सजग हो गए ताकि भावी राजनीतिक व्यवस्था में उनकी समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया जाए। कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज ने अपनी रियासत में अछूतोद्धार आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। उन्हीं की सहायता से डॉ० अम्बेडकर ने अपना पाक्षिक मराठी पत्र 'मूकनायक' प्रकाशित किया जिसका विज्ञापन लोकमान्य तिलक के पत्र 'केसरी' ने निकालने से इन्कार कर दिया था। महाराजा ने रियासत के माँड-गाँव में 21 मार्च, 1920 को अछूतों की एक विराट् सभा करवाई जो डॉ० अम्बेडकर की ही अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। सभा में साहू महाराज ने कहा—'भाइयो! मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि आज तुम्हें डॉ० अम्बेडकर जैसा महान् नेता एक रक्षक के रूप में मिल गया है। वह तुम्हारी छुआछूत की जंजीर तोड़ देगा और अछूतों के सच्चे नेता के रूप में समूचे भारत में चमक उठेगा।'

साहू महाराज की अछूतोद्धार में अच्छी दिलचस्पी थी। मई, 1920 में डॉ० अम्बेडकर की प्रेरणा और प्रयत्न से नागपुर मे छत्रपति साहू की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय वहिष्कृत (अछूत) परिषद्' की स्थापना हुई। विषय-नियामक समिति में डॉ० साहब ने 'डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन सोसाइटी' की कार्य-प्रणाली की समीक्षा की और कहा कि इस सोसाइटी ने जो अछूत समाज से द्रोह किया, उसका निषेध किया जाए क्यों कि यह संस्था अब अछूत समाज के लिए विश्वासपात्र नहीं रही। उन्होंने मांग की कि अछूतों को अपनी उन्नति के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। नागपुर की वहिष्कृत परिषद् में निश्चय ही एक नया मोड़ आया। उसने अछूत समाज में स्वावलम्बन की आवश्यकता का अनुभव किया। डॉ० अम्बेडकर ने अभी पूर्णतः अछूतोद्धार आंदोलन को अपने निर्देशन तथा हाथों में लेना नहीं चाहा क्योंकि वह अपने लन्दन के अधूरे अध्ययन को पूरा करना चाहते थे। अपने दलित भाइयों को वे स्वावलम्बन तथा स्वतंत्रता का संदेश देकर 5 जुलाई, 1920 को अपनी शिक्षा-अभिलाषा को पूरा करने के लिए बॉम्बे के सिडेनहॅम कॉलेज में प्रोफेसर के पद से निवृत्त होकर लन्दन चले गए।

मानव अधिकारों की मांग :

डॉ० अम्बेडकर अप्रैल 1923 में अपना अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् लन्दन से भारत वापस आ गए। आते ही, उन्होंने देखा कि अछूतोद्धार आन्दोलन का संचालन सवर्ण हिन्दू कर रहे हैं जो उन्हें बड़ा अखरा क्योंकि वे वे चाहते थे कि अछूत लोग अपने सुधार-आन्दोलन का स्वतंत्र होकर संचालन करें। संस्थागत अध्ययन के पश्चात् जब डॉ० साहब निश्चित हो गए, तब उन्होंने अपने जीवन के मिशन का काम प्रारम्भ किया जिसमें जीवनपर्यन्त वे व्यस्त रहे। सर्वप्रथम बाम्बे में अछूतों की एक सभा करके, उन्होंने 'अंत्यज संघ' की स्थापना की जिसका मूल उद्देश्य अछूतों की हर प्रकार से सेवा करना था। संघ ने चन्दे द्वारा कुछ धन इकट्ठा किया जिसे अछूत बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए वितरित किया गया। यह कार्य हर वर्ष किया जाता था ताकि दलितों में शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा हो। संघ ने अछूत लोगों की बस्तियों में वाचनालय खोले और धीरे-धीरे दलित शिक्षार्थियों के लिए,' छात्रावास भी स्थापित किए। सघ की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। मद्रास में भी उसकी शाखा स्थापित हुई। सघ की ओर से सबसे बड़ी सेवा यह हुई कि दलित समाज में सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक चेतना का उदय हुआ।

डॉ० अम्बेडकर ने अपने अछूतोद्धार आन्दोलन की वास्तविक एवं ठोस शुरुआत 20 जुलाई 1924 को बाम्बे में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना के साथ की। सभा का कार्य-क्षेत्र बाम्बे प्रान्त था। उसने दलितों की सेवा शिक्षा के प्रचार द्वारा की। स्कूलों तथा छात्रावासों की स्थापना की। सभा के कार्य सांस्कृतिक विकास केन्द्र चलाना, औद्योगिक तथा कृषि विद्यालय खोलना, अछूतोद्धार आन्दोलन को आगे बढ़ाना आदि से सम्बन्धित थे। अप्रैल 1925 में रत्नागिरी जिले के मालवण नामक गांव में बम्बई प्रान्तीय अस्पृश्य परिषद्' का पहला अधिवेशन डॉ० साहब की अध्यक्षता में हुआ जहां उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे अछूतोद्धार को नया मोड़ देना चाहेंगे और सच्चा निःस्वार्थ नेतृत्व प्रदान करेंगे। अभी तक अछूतोद्धार आन्दोलन सवर्ण हिन्दुओं के हाथों, में था जो अपने स्वार्थों के कारण उसका संचालन कर रहे थे। ठोस कार्य की अपेक्षा, उनका प्रचार अधिक था अर्थात् दिखावा बहुत था। इसलिए डॉ अम्बेडकर चाहते थे कि अछूतोद्धार आन्दोलन का संचालन अछूत कार्यकर्ता ही करें। डॉ० अम्बेडकर का विश्वास था कि ऐसा करने से दलितों में स्वावलंबन, आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान की भावनाएं उत्पन्न होंगी। इन भावनाओं के बिना, अछूतों का उत्थान सम्भव नहीं था। जहाँ कहीं भी डॉ० साहब व्याख्यान देते, वहाँ वे दलितों को अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा देते क्योंकि आत्म-सहायता ही शोषित एवं पीड़ित लोगों को ठोस परिणाम प्रदान करती है। मालवण गांव की सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा :

"तुम लोग जो यहां एकत्रित हो, कितनी बुरी दुर्दशा है तुम्हारी ! तुम्हारे दयनीय चेहरे देखकर और तुम्हारे दीनता भरे शब्द सुनकर मेरा हृदय द्रवित हो

गया है । तुम अपने इस दु:खी जीवन से दुनिया के दु:ख दर्द क्यों बढ़ाते हो ? तुम जन्म के समय ही क्यों न मर गए ? यदि अब भी तुम मर जाओ तो संसार पर तुम्हारा उपकार होगा । लेकिन यदि तुम जीना चाहते हो तो जिन्दादिली के साथ जीओ। इस देश में जो अन्य नागरिकों को अन्न, वस्त्र और मकान मिलते हैं, तुम्हें भी प्राप्त होने चाहिए । यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है । इन मानवी अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, तुम्हें ही आगे आना होगा और निर्भीक होकर, सगठित बनकर काम करना होगा ।"

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अछूतोद्धार आन्दोलन के दौरान 'मानवीय अधिकारों' की मांग प्रस्तुत की जिनकी प्राप्ति न केवल समाज के सहयोग पर आधारित थी, वल्कि दलितों के संगठन और उत्साह पर भी निर्भर थी । इस दिशा में आगे बढ़ने का एक और उदाहरण उस समय सामने आया जब सन् 1927 के प्रारम्भ में कोरे गाँव के युद्धस्मारक के पास अछूत-समाज का एक सम्मेलन हुआ, जो एक ऐतिहासिक स्थान था । सम्मेलन में बोलते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने कहा: "यहां सन् 1818 की लड़ाई में और महायुद्ध में कम्पनी की सरकार तथा ब्रिटिश सरकार की ओर से, हजारों महार बड़ी वीरतापूर्वक लड़े । ब्रिटिश सरकार ने महार जाति को क्या पुरस्कार दिया ? महार जाति को गैर-लड़ाकू जाति मानकर महारों की सेना में भर्ती पर प्रतिबन्ध लगा दिया । महार जाति का यह कितना बड़ा अपमान है ? ब्रिटिश सरकार की यह कितनी कृतघ्नता है ! आप इसके विरुद्ध आन्दोलन करें तथा सरकार को मजबूर करें कि वह अपनी नीति बदल दे और सेना में पुन: भर्ती चालू कर दे ।" डॉ० अम्बेडकर एक स्पष्ट तथा निर्भीक वक्ता थे । वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि समस्त अछूत-समाज के हितों की रक्षा हेतु लड़ते थे । यही कारण था कि वे सच्ची बात कहते थे ।

मानव अधिकारों की मांग को अछूतोद्धार आन्दोलन के अन्तर्गत आगे बढ़ाने के लिए डॉ० अम्बेडकर ने स्वयं मध्य-प्रदेश, मद्रास और बॉम्बे प्रान्तों के तूफानी दौरे प्रारम्भ कर दिए । उन्होंने मलाबार के अछूतों की दुर्दशा का समाचार सुना और वहाँ सभा में गए । वहाँ के अछूत-परियाह, जब डॉ० साहब से मिले तब उन्होंने अपनी दयनीय कहानी सुनाई । मलाबार के ब्राह्मण बड़े कट्टर थे । वे अपनी औरतों को भी शूद्र मानते थे और उन पर विश्वास नहीं करते थे । ब्राह्मणों ने अछूतों पर कड़े प्रतिबन्ध लगा रखे थे । अछूत ऊँचे मकान नहीं बना सकते थे । दूध-घी नहीं खा सकते थे । पशुओं को नहीं पाल सकते थे । घुटनों से नीचे कपड़े नहीं पहन सकते थे । सिर के बाल नहीं रख सकते थे । सोने-चांदी के जेवर नहीं पहन सकते थे और किसी दुकान पर खाने-पीने की किसी चीज को छू नहीं सकते थे । ब्राह्मणों के जाने वाली सड़कों पर वे कतई नहीं चल सकते थे । वे 11 बजे से पहले बाजार आदि में नहीं जा सकते थे । संक्षेप में, मलाबार के अछूतों की स्थिति बड़ी दयनीय थी । उन्हें मृत पशुओं का मांस खाना पड़ता था और उनकी औरतें आधी नंगी रहने के लिए मजबूर थीं । मनु-स्मृति के कठोर से कठोर नियम वहाँ लागू थे ।

जब परियाहों ने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का हृदयविदारक चित्रण

किया, तो डॉ० अम्बेडकर का हृदय-द्रवित हो गया। ब्राह्मण इतना क्रूर हो सकता है इस की कल्पना करना कठिन था। वहाँ स्त्री-पुरुषों की दयनीय स्थिति देखकर, बाबा ने यह निश्चय किया कि वे भारत के इस दक्षिणी भाग से ही अपना आन्दोलन तीव्र करेंगे। दीन-हीन अछूतों की वहाँ एक सभा हुई। बहुत भारी संख्या में, स्त्री-पुरुषों की भीड़ वहाँ इकट्ठी हुई। बाबा ने उन्हें मृत पशुओं का मांस न खाने के लिए समझाया जिसके बाद परियाहों ने मांस खाना छोड दिया। वह मलाबार के हर क्षेत्र में गए। जोरदार प्रचार किया। फलतः सवर्ण हिन्दुओं में हलचल मच गई। बाबा साहब ने एक और सभा केवल परियाह-औरतों-बच्चों की बुलाई जिन्हें उन्होंने अपने भाषण में समझाया कि "तुम्हारे गांव में ब्राह्मण चाहे कितना ही निर्धन क्यों न हो अपने बच्चों को पढ़ाता है। उसका लड़का पढ़ते-पढ़ते डिप्टी कलैक्टर बन जाता है। तुम ऐसा क्यों नहीं करतीं ? तुम अपने बच्चों को पढ़ाने क्यों नहीं भेजतीं ? क्या तुम चाहती हो तुम्हारे बच्चे सदैव मृत पशुओं का मांस खाते रहें ? दूसरों की जूठन बटोरकर चाटते रहें ?" यह सभा रात में हुई थी जिसमें डॉ० साहब लगभग चार घण्टे तक बोले थे। उन्होंने परियाह-स्त्रियों को कहा—'तुम अपने शरीर को नंगा क्यों रखती हो और अपनी जांघों को क्यों नहीं ढकती ? यदि तुम इस प्रकार रहोगी तो अपने सतीत्व की रक्षा कैसे करोगी ? दुनिया में कहीं भी औरतें तुम्हारी तरह आधी नंगी नहीं रहतीं। यह बुरी बात है। यह लज्जाजनक जीवन है। तुम अपना सम्मान बनाओ और कपड़े पहनने का अपना ढंग बदलो। तुम्हें अपना सारा शरीर वस्त्र से ढकना चाहिए। तभी तुम सम्मान-जनक महिलाएँ बन पाओगी।'

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अछूत स्त्रियों को आत्म-सम्मान का पाठ सिखाया। अपने भाषण के अन्त में उन्होंने कहा था कि जो स्त्रियाँ मेरे से कल मिलने आएँ, वे अपने शरीर को पूर्णतः ढक कर आएँ। वे उस समय बड़े प्रसन्न हुए, जब दूसरे दिन परियाह औरतें अपने शरीरों पर नीचे से ऊपर तक वस्त्र पहन कर आईं। उन्होंने बाबा साहब को फूल अर्पित किए। वे मलाबार क्षेत्र में लगभग पांच महीने तक लगातार प्रचार करते रहे। मलाबार के अछूतों में उत्साह की नई लहरें दौड़ गईं। उन्होंने अपनी जीवन पद्धति को बदलना तथा बच्चों को स्कूल भेजना प्रारम्भ किया और मृत पशुओं का मांस खाना छोड़ दिया। डॉ० साहब ने उन्हें सचेत किया कि वे अपने मानवी अधिकारों को स्वयं पहचानें और निरन्तर उनके लिए संघर्ष करें।

डॉ० अम्बेडकर अछूतोद्धार आन्दोलन को एक नया मोड़ क्यों देना चाहते थे ? वास्तव में ऐसी संस्थाएँ और सङ्गठनों का भारत में अभाव नहीं था जो दलित वर्गों के उत्थान में रुचि रखते थे। उनमें से कुछ हिन्दू समाज को सुधारना चाहते थे। डॉ० अम्बेडकर ने परिवार से सम्बन्धित सुधार और वास्तविक समाज-सुधार में भेद किया। उनके अनुसार वह समाज सुधार आंदोलन जिसका सञ्चालन रानाडे जैसे समाज सुधारक और उनके समाज सम्मेलन ने किया उसका सम्बन्ध पारि-वारिक सुधार, जैसे विधवा पुनर्विवाह, स्त्री का सम्पत्ति अधिकार, स्त्री-शिक्षा, बाल-

विवाह आदि से था, वह हिन्दू समाज में मौलिक परिवर्तन के पक्ष में नहीं था। जैसे जाति एवं वर्ण की समाप्ति। वास्तविक समाज सुधार तो जाति या वर्ण की समाप्ति ही था जिसकी ओर सुधारकों का ध्यान कम था। अतएव हिन्दू समाज सुधारकों ने हिन्दू समाज में नई चेतना का सञ्चार तो अवश्य किया, पर उन्होंने जाति व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का उत्साह कतई नहीं दिखाया। वे हिन्दू समाज में फैली कुछ बुराइयों को दूर करना चाहते थे और इस दिशा में भी वे समाज की चोटी से प्रारम्भ हुए। निम्न स्तर तक वे नहीं पहुँच पाए। यही कारण है कि ब्रह्म-समाज, प्रार्थना समाज, हिन्दू महासभा, आर्य-समाज आदि सङ्गठन समाज में मौलिक परिवर्तन नहीं ला पाए। इसका एक और कारण यह था कि हिन्दू संस्थाओं और सङ्गठनों के बड़े नेता हृदय से अनुदार थे, मात्र ऊपर से समाज सुधार का दिखावा करते थे। इसलिए सामाजिक समानता का आदर्श केवल विचारों तक ही सीमित रह गया। व्यावहारिक जीवन में तो उसका नामो-निशान नही था।

अछूतों की समस्या की ओर कांग्रेसी नेताओं का रुख अनुकूल नहीं था। उनकी रुचि राजनीति में अधिक थी, समाज सुधार में कतई नहीं। अपने राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों के अस्तित्व, महत्त्व और जीवन को स्वीकार किया। वे मुस्लिम समाज के हितों की सुरक्षा में अधिक रुचि लेने लगे थे। इस धुन में कांग्रेसी नेता दलित वर्गों के अस्तित्व को ही भूल गए और उन्हें ऐसा लगा कि उन पर कोई अत्याचार तथा अन्याय होते ही नहीं हैं। वे यह भी भूल गए कि दलित लोग ईसाई मत तथा इस्लाम ग्रहण करते जा रहे हैं क्यों कि उनके ही हिन्दू भाई उन्हें अच्छा वस्त्र, मकान तथा जल प्रयोग में नहीं लेने देते। कांग्रेस के अतिरिक्त गांधी तथा सावरकर जैसे महापुरुष भी थे जो अछूतोद्धार में दिलचस्पी ले रहे थे, पर वे अछूत नहीं थे। अतएव उनमें वह आत्मीयता नहीं थी जो अछूतों का नेतृत्व करने वाले स्वयं अछूत में होनी चाहिए। वे केवल समाज सुधारक थे, क्रान्तिकारी नहीं थे।

डॉ० अम्बेडकर न केवल समाज विद्रोही, बल्कि समाज क्रान्तिकारी भी थे। कोई समाज सुधारक तो पुराने ढांचे को सम्भालने का प्रयास करता है, जब कि क्रांतिकारी पुराने सामाजिक ढांचे को उखाड़ फैंकता है और नया ढांचा बनाता है। डॉ० अम्बेडकर स्वयं अछूतों में पैदा हुए। वह जानते थे कि अछूत कौन होता है? उसकी यातनाएँ क्या हैं? वह किस प्रकार जीवन-यापन करता है? एक अछूत के रूप में डॉ० अम्बेडकर ने वही महसूस किया जो अन्य अछूतों ने, और वही सोचा जो अन्य दलितों ने। अतएव वह जानते थे कि उनका हृदय कैसे जीता जाए। विद्वान् डॉक्टरों ने उनकी पीड़ाओं, दुःखों और अयोग्यताओं को देखा। उनक अनुभव और गहन अध्ययन किया। मानवी अधिकार हीन इन अर्द्ध मानव प्राणियों को देखकर उनका खून खौल गया क्यों कि उन पर होने वाले जुल्मों की पीड़ा का अन्दाज वह भलीभांति लगा लेते थे। वे एक ऐसे नेता थे जिन्होंने समस्त अछूतों के दुःख-दर्दों तथा पीड़ाओं को अपना वैयक्तिक अपमान समझा। इसलिए उन्होंने यह प्रतिज्ञा ली कि अछूतों को दासता की स्थिति से मुक्त करेंगे और उनके लिए मानवी अधिकारों की दिशा में सतत् संघर्ष करेंगे।

डॉ० अम्बेडकर 'पराधीनता की भावना' से घृणा करते थे और अछूतों पर सवर्ण हिन्दू सुधारकों के संरक्षण के कट्टर विरोधी थे। वे उन आंदोलनों एवं सङ्गठनों के आलोचक थे जो दलित वर्गों के नाम पर प्रसिद्धि पाना चाहते थे और उन्हें कार्यक्रमों में यदाकदा स्थान दे दिया करते थे। डॉ० साहब का इस सिद्धान्त में अटूट विश्वास था कि 'आत्म-सहायता सबसे उत्तम सहायता है।' उन्होंने इतिहास से यह सबक सीखा कि अन्याय उस समय तक नहीं मिटता जब तक पीड़ित स्वयं उठकर उसकी समाप्ति के लिए कड़ी मेहनत तथा प्रयत्न नहीं करता। जब तक किसी दास का अन्तःकरण स्वयं दासता के प्रति घृणा से प्रज्वलित नहीं होता तब तक उसकी मुक्ति की कोई आशा नहीं की जा सकती। 'किसी दास को यह बतलाओ कि तुम दास हो, वह शीघ्र ही विद्रोह कर देगा।' यह नारा डॉ० अम्बेडकर ने बुलन्द किया। उन्होंने अछूतों को आत्म-उत्थान के लिए संघर्ष की दिशा में उत्साहित किया। आत्म-सहायता, आत्म-उत्थान और आत्म-सम्मान ऐसे आदर्श हैं जिन्हें डॉ० साहब ने अछूतों में सामाजिक क्रान्ति के लिए आवश्यक बतलाया।

उनके व्यक्तित्व में अछूतों के प्रति आत्मीयता थी और एक नेता के रूप में वह अछूतों, दीनहीन दलितों के साथ बड़े मार्मिक ढंग से बातचीत करते थे। उन्हें झड़कियाँ देते और विभिन्न प्रकार की ताड़ना भी देते। वह कहते कि अछूतों को भी उसी प्रकार मकानों में रहने, वस्त्र पहनने और भोजन प्राप्त करने का अधिकार है जिस प्रकार देश के अन्य नागरिक उनका उपभोग करते हैं। यदि अछूत आत्म-सम्मान का जीवन जीना चाहते हैं तो उन्हें आत्म-सहायता के सिद्धांत का अनुकरण करना चाहिए। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर द्वारा किए गए विभिन्न दौरों तथा दिए गए भाषणों ने दलितों पर ठोस प्रभाव डाला और वे अपनी दासतायुक्त स्थिति के प्रति विद्रोह के लिए तैयार हो गए।

स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान डॉ० अम्बेडकर कांग्रेसी नेताओं के पिट्ठू नहीं बने। ऐसा उन्होंने बड़ा समझकर किया। ये वही लोग थे जिन्हें विदेशी शासन ने राजनीतिक अधिकारों से वञ्चित कर रखा था और वे अपने इन्हीं अधि-कारों के संघर्ष में लगे थे। यदि ये लोग राजनीतिक अधिकारों को पाने में सफल होते हैं, तो निश्चय ही भारत में उन्हीं की प्रभुता स्थापित हो जाएगी। डॉ० अम्बेडकर को इन नेताओं द्वारा दिए गए जनतंत्र तथा स्वतंत्रता के नारों में विश्वास नहीं था। उन्होंने भारतीय इतिहास से यह सीखा कि यहां बड़े-बड़े दयालु राजे-महाराजे हुए, उनके राज्यों में बड़ी खुशहाली रही, पर अछूतों को अछूत ही माना गया। इन अछूतों के, जिन्हें समाज से पृथक् रखा गया, कोई नागरिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकार नहीं थे। डॉ० अम्बेडकर ने यही लक्ष्य निर्धारित किया कि उन अधिकारों को अछूत समाज के लिए प्राप्त किया जावे। अछूतों के दिल, दिमाग और हाथों को 'मनुष्य के अधिकार' प्राप्ति के लिए सुदृढ़ किया जाए ताकि वे भी अपने अन्य देशवासियों की तरह आत्म-सम्मान का जीवन यापन कर सकें। वास्तव में इन मानवी अधिकारों के लिए डॉ० साहब को अपने सहयोगियों सहित न केवल कट्टर हिन्दुओं से संघर्ष करना पड़ा, बल्कि ब्रिटिश शासकों से भी उन्हें लोहा लेना पड़ा।

डॉ० अम्बेडकर के जीवन का यह पवित्र ध्येय था जिसे पूरा करने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। उनके इस महान् मिशन से न केवल अछूतों को सामाजिक दासता से मुक्ति मिली, बल्कि राष्ट्र की शक्ति, स्वास्थ्य, दौलत, सम्मान और संस्कृति को भी बल मिला। उन्होंने भूखे-नंगे, दीनहीन दलितों में उत्साह तथा लक्ष्य का संचार किया। क्या यह उनका पवित्र मिशन नहीं था? एक ओर, डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों को मानवी अधिकारों के प्रति सचेत किया, तो दूसरी ओर कट्टर हिन्दुओं को चेतावनी दी कि उन्हें अपने में मानवी भावना का आदर करना चाहिए और अछूतों को भी मानव-प्राणियों की भांति समझना चाहिए अन्यथा भारत में ऐसी क्रांति आ सकती है जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। गांधी ने अछूतोद्धार के लिए सवर्ण हिन्दुओं से अपने हृदय-परिवर्तन का निवेदन किया; सावरकर की अपील ने हिन्दुओं के अन्तःकरण तथा बुद्धि को उत्तेजित किया; लेकिन अम्बेडकर की अपील ने अछूतों के हृदय को गतिशील बना दिया और उन्हें सामाजिक दासता के प्रति विद्रोही के लिए स्वयं उठ खड़े होने का साहस दिया।

उधर सन् 1920 में देश के विभिन्न भागों में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। इस वर्ष की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना दलित वर्गों द्वारा छेड़ा गया वह संघर्ष था जो ट्रावनकोर राज्य में रामास्वामी नायकर के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ था। नायकर एक गैर-ब्राह्मण नेता थे जिन्होंने अछूतों के उन अधिकारों को प्राप्त करने पर बल दिया, जिनसे उन्हें वञ्चित कर रखा था। ट्रावनकोर राज्य में कुछ सड़कों पर अछूत कतई नहीं जा सकते थे क्योंकि उन पर सवर्ण हिन्दू जाया करते थे। नायकर के नेतृत्व में अछूतों ने इस प्रतिबन्ध का निष्क्रिय प्रतिरोध किया जिसका नैतिक प्रभाव इतना पड़ा कि कट्टर हिन्दुओं में नागरिक भावना का उदय हुआ और उन्होंने अछूतों के लिए सभी सड़कों के मार्ग खोल दिए। यह घटना वायकॉम स्थान में घटित हुई। इसलिए उसे वायकॉम सत्याग्रह नाम दिया गया।

डॉ० अम्बेडकर इन सभी घटनाओं का अच्छी तरह अध्ययन कर रहे थे। एक और घटना उल्लेखनीय है, जिसने समय की स्थिति को हिला दिया था। सभी समझदार हिन्दू तथा अछूत इस घटना से द्रवित हो गए। मार्च, 1926 में मुर्गेसन नामक एक अछूत मद्रास के किसी हिन्दू मन्दिर में प्रवेश कर गया था। उस समय अछूतों के लिए वहाँ प्रतिबन्ध लगा हुआ था। जब यह पता लगा कि वह अछूत है, उसे गिरफ्तार करा दिया गया। उस पर मुकदमा चला और हिन्दू मन्दिर को अपवित्र करने के दोष में उसे दण्डित किया गया। डॉ० साहब ने इस घटना का वृत्तान्त अपनी पत्रिका में दिया। उन्हीं दिनों वह जेजूरी नामक स्थान पर गए और एक सभा में बोलते हुए कहा कि अछूतों को अपने उपनिवेशन के लिए कहीं भूमि पर कब्जा करना चाहिए। एक अन्य वक्ता ने आश्वासन दिलाया कि यदि वे छुआ-छूत का अन्त करने में असमर्थ रहे तो निश्चय ही वे उपनिवेशन के लिए भूमि प्राप्त करने का संघर्ष प्रारम्भ करेंगे। वास्तव में उपनिवेशन का विचार बड़ा ही उपयुक्त था। उससे यह संकेत मिलता है कि अछूतों के हृदय-सम्राट् डॉ० अम्बेडकर अपने लोगों की पीड़ाओं तथा यातनाओं से किस सीमा तक द्रवित एवं दुःखी थे।

डॉ० अम्बेडकर की सच्ची भावना को अछूतों ने पहचाना और उनके नेतृत्व में अटूट विश्वास प्रकट किया। उधर वे भी, एक वकील के रूप में, प्रसिद्धि प्राप्त करते जा रहे थे। उन्होंने कुछ ऐसे मुकदमों को हाथ में लिया जिन्हें अन्य वकील लेना नहीं चाहते थे। लेकिन डॉ० साहब ने उनकी पैरवी अच्छे ढंग से की और बाम्बे के हाई कोर्ट में उनकी धाक जम गई। अब वह अछूतों को एक सशक्त नेतृत्व प्रदान करने में सुदृढ़ हुए चले जा रहे थे। हिन्दू समाज में, सामाजिक क्रान्ति क अंकुर स्पष्टत: उग रहे थे। अछूत समाज की आंखें, अपने नेता की ओर टिक गईं। बोले-प्रस्ताव के बावजूद भी बम्बई प्रान्त के बहुत से म्यूनिसिपल बोर्डों ने उसे लागू नहीं किया था। उस प्रस्ताव के अन्तर्गत, उन्हें अछूतों को नागरिक अधिकार सुलभ कराने थे; लेकिन इन बोर्डो ने अछूतों की आवश्यकताओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। अछूतों को पब्लिक तालाबों से पानी नहीं पीने दिया जाता था और न ही उनको स्कूलों तथा धर्मशालाओं की कोई सुविधाएं मिल रही थीं। अतएव डॉ० अम्बेडकर ने अपने अधिकारों की अनुभूति के लिए ठोस योजना बनाई जो महाड-नासिक सत्याग्रह में अभिव्यक्त हुई। इस समय तक डॉ० साहब का नाम और काम दोनों सरकारी क्षेत्र तथा समाज में ख्यति प्राप्त कर चुके थे। सन् 1927 में उन्हें प्रान्तीय सरकार ने बम्बई कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया जो दलित समाज के लिए सम्मान की बात थी।

महाड का जल-सत्याग्रह :

डॉ० अम्बेडकर चाहते थे कि अछूतों को मानवी अधिकार शीघ्रातिशीघ्र मिलें ताकि वे भी अपने को मानव प्राणी समझें। इस बात में सफलता प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था क्यों कि कट्टर हिन्दुओं द्वारा कड़ा प्रतिरोध किया जा रहा था। अत: डॉ० साहब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सतत संघर्ष किए बिना, हिन्दू समाज में मानवी अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। उस समय के वातावरण में एक-मात्र उपाय संघर्ष के साथ-साथ सत्याग्रह था जिसपर चलने का उन्होंने और उनके साथियों ने निश्चय किया। उनके द्वारा किए गए सत्याग्रहों में से दो बड़े प्रसिद्ध है : एक महाड का जल सत्याग्रह और दूसरा नासिक का धर्म सत्याग्रह।

महाराष्ट्र के एक समाज-सुधारक श्री बोले ने सन् 1923 में बॉम्बे कौंसिल में यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया था कि "सरकार द्वारा या सार्वजनिक धन से सचालित संस्थाएं—अदालत, विद्यालय, चिकित्सालय, कार्यालय, धर्मशाला, कुंआ, जलाशय, पनघट, तालाब—इन स्थानों में प्रवेश करने और उनका उपयोग करने का अधिकार सरकार अछूत वर्गों को भी प्रदान करे।" यह प्रस्ताव 4 अगस्त 1923 को पास हो गया था। सरकार ने सब प्रमुख विभागों और स्थानीय बोर्डों को यह आदेश जारी कर दिए थे कि अछूतों को सार्वजनिक स्थानों का प्रयोग करने दिया जाए। इसी आदेशानुसार, कोलाबा जिले की महाड़ नगरपालिका ने सन् 1924 में चॉवदार तालाब से पानी भरने का अछूतों को अधिकार दे दिया था, पर वहां के सवर्ण हिन्दू नहीं चाहते थे कि अछूत लोग तालाब के पानी का प्रयोग करें। हालांकि ईसाई, मुसलमान, पारसी-सभी तालाब के पानी का उपयोग करते थे। सवर्ण हिन्दुओं ने

यह ठान ली थी कि किसी भी अछूत को तालाब का पानी छूने तक न दिया जाए। अछूतों के धर्म-भाई ही, उनका प्रतिरोध कर रहे थे।

उधर अछूत स्त्री-पुरुषों में बड़ा उत्साह पैदा हो गया कि वे अपने अधिकार का उपयोग अवश्य करना चाहेंगे। अतः कोलाबा जिले के प्रमुख अछूत नेताओं ने 19-20 मार्च 1927 को महाड में डॉ० अम्बेडकर की अध्यक्षता में दलित जाति परिषद् की ओर से एक सभा का आयोजन किया। इस आयोजन का काफी प्रचार किया गया और महाराष्ट्र तथा गुजरात के दूर-दूर के स्थानों से आकर वहाँ अछूत स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए। महाड गांव के देवता का नाम वीरेश्वर था जिसके नाम पर पण्डाल बनाया गया। जब डॉ० साहब वहाँ पहुँचे तो उनका भव्य स्वागत किया गया। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में भेदभावपूर्ण नीति द्वारा सवर्ण हिन्दुओं और महारों की सेना में भर्ती पर प्रतिबन्ध के कारण सरकार की कड़ी आलोचना की। उन्होंने अछूतों को समझाया: "ऐसा काम करो जिससे तुम्हारे बाल-बच्चे तुम से अधिक अच्छी स्थिति में रहें। यदि आप ऐसा कर सकने मे असमर्थ रहोगे तो आदमी के माता-पिता और पशु के नर-मादा होने में कोई अन्तर नहीं रहेगा। ... स्वतंत्रता किसी को उपहार के रूप में नहीं मिलती। उसके लिए संघर्ष किया जाता है। आत्म-उत्थान अन्यों के आशीर्वाद से नहीं होता बल्कि अपने ही प्रयत्न, सघर्ष तथा परिश्रम से होता है।" इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने सदियों से सोए हुए अछूतों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया।

19 मार्च की रात को विषय-नियामक समिति की बैठक हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि 20 मार्च की सुबह तालाब से पानी पीने के अधिकार को व्यावहारिक रूप दिया जाए। यह बड़ी विचित्र बात थी कि यदि कोई अछूत ईसाई या मुसलमान हो जाए तो वह चॉवदार तालाब से पानी पी सकता था, पर वे अछूत के रूप में उस पानी को छू तक नहीं सकता था। खैर दूसरे दिन तालाब से पानी-पीने का प्रस्ताव पास हुआ। डॉ० अम्बेडकर ने कहा: "हम अपने अधिकार का उपयोग करने अवश्य जाएंगे, पर तुम सब स्त्री-पुरुषों को बिल्कुल शान्त रहना है।" सुबह होते ही, डॉ० साहब के नेतृत्व में, कोई लगभग पांच हजार नर-नारियों का एक जुलूस चार-चार की कतार में बड़े नियंत्रित ढंग से, तालाब की ओर चल पड़ा। वह प्रथम बार इतने बड़े सत्याग्रह का नेतृत्व कर रहे थे। शान्तिपूर्वक ढंग से, वह जुलूस तालाब के किनारे तक पहुँच गया। डॉ० साहब का प्रिय कुत्ता भी साथ था। सर्वप्रथम उसी कुत्ते ने तालाब से पानी पिया और फिर उसके स्वामी ने तालाब के किनारे बैठकर दोनों हाथों से जलाचमन किया। तत्पश्चात् वह जुलूस शान्तिपूर्वक पण्डाल की ओर लौट आया।

इस घटना के ठीक दो घण्टे बाद, कुछ गुण्डे सवर्ण हिन्दुओं ने यह अफवाह फैला दी कि अछूत लोग वीरेश्वर के मन्दिर में प्रवेश की योजना बना रहे हैं। इस झूठी खबर से हिन्दुओं में गुस्सा चढ़ गया और जोश में आकर, वे संगठित हो गए और अपने हाथों में लाठियां लेकर पण्डाल की ओर चल पड़े। उधर हजारों सवर्ण हिन्दुओं ने महाड की मुख्य सड़कों पर लाठियां लेकर मोर्चे तैनात कर लिए। उन्होंने

यह नारा बुलन्द कर दिया कि उनका धर्म ही नहीं बल्कि ईश्वर भी अपवित्र होने के खतरे में है। उधर अछूत स्त्री-पुरुष इधर-उधर हो चले थे। कुछ अपने-अपने गांव जाने की तैयारी में थे। कुछ पण्डाल में भोजन कर रहे थे तो कुछ महाड के बाजार में घूम रहे थे। अधिकतर अछूत महाड से चले भी गए थे। फिर क्या हुआ ? इन कट्टर हिन्दुओं ने, जहाँ कहीं भी अछूत स्त्री, बच्चे और आदमी मिले, पीटना प्रारम्भ कर दिया। खाना खाते हुए अछूतों पर उन्होंने डण्डे बरसाए और उनके भोजन को मिट्टी में मिला दिया। भगदड़ मच गई। स्त्रियों तथा बच्चों तक को उन्होंने नहीं छोड़ा। बहुत से अछूतों ने मुसलमानों के घरों में शरण ली। इस प्रकार सवर्ण हिन्दुओं ने एक भयभीत स्थिति पैदा कर दी थी।

उस समय डॉ० अम्बेडकर, अपने साथियों सहित, प्रवासी बंगले में थे और परस्पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उन्हें उपर्युक्त घटना के विषय में कुछ पता नहीं था। पुलिस इन्सपेक्टर ने, जो स्थिति को नियंत्रित करने में असफल रहा, डॉ० अम्बेडकर से मुलाकात की। डॉ० साहब ने पुलिस अधिकारियों से कहा कि वे हिन्दुओं को सम्भालें और वे अछूतों की देखभाल करते हैं। शीघ्र ही वे अपने दो-चार साथियों सहित पण्डाल की ओर दौड़े। कुछ हिन्दू गुण्डों ने उन पर भी आक्रमण कर दिया। लेकिन डॉ० साहब ने उनको साहसपूर्वक कहा कि हम लोगों का वीरेश्वर मन्दिर में जाने का कोई आयोजन नहीं है। जब वे पण्डाल की ओर गए तो उन्होंने देखा कि पण्डाल धराशायी हो गया था। सारा भोजन छिन्न-भिन्न कर दिया था। रसोई के बर्तन मिट्टी में सने पड़े हुए थे और कुछ अछूत स्त्री-बच्चे तथा पुरुष चोटें खाकर जमीन पर पड़े हुए थे। वे कराह रहे थे। डॉ० अम्बेडकर ने शीघ्र ही उनकी दवादारू का प्रबन्ध करवाया। इस घटना में पी० एन० राजभोज भी घायल हुए थे जो पन्द्रह दिनों तक अस्पताल में रहे। फिर डॉ० साहब बाम्बे चले आए जहाँ आकर उन्होंने महाड-काण्ड की सूचना महाराष्ट्र के कोने कोने में फैला दी ताकि अछूतों में जागृति की नई लहर दौड़ जाए और सवर्ण हिन्दू भी अपने भाइयों की करतूत को जानें। महाराष्ट्र तथा भारत के प्रमुख समाचारपत्रों ने डॉ० अम्बेडकर के इस साहसिक सत्याग्रह की प्रशंसा की और सवर्ण हिन्दुओं द्वारा निहत्थे अछूतों पर आक्रमण की निन्दा की। इस दंगे में पुलिस ने केवल नौ हिन्दुओं को गिरफ्तार किया जिसमें से चार व्यक्तियों को चार-चार महीनों की कड़ी सजा हुई।

निस्सन्देह सवर्ण हिन्दुओं के इस हिंसात्मक कार्य से, डॉ० अम्बेडकर के हृदय को गहरी चोट पहुँची। फिर भी वह निरुत्साह नहीं हुए और साथ-साथ, अछूतों में उन्होंने जो जन-जागृति का बिगुल बजाया वह सफल रहा। उनके नेतृत्व में सामाजिक क्रांति का अध्याय प्रारम्भ हुआ। अछूतों ने सदियों से चली आ रही कुरीतियों तथा रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। अपनी कठिनाइयों तथा अयोग्यताओं को समाप्त करने के लिए वे स्वयं प्रोत्साहित हुए और अपने पैरों पर खड़े होने का सबक सीखा। उनमें आत्म-सम्मान एवं आत्म-उत्थान की भावनाएं जाग्रत हो गई। अछूतोद्धार आन्दोलन में महाड सत्याग्रह से एक नया मोड़ आया

जिसने अछूतों की मनःस्थिति को उत्तेजित किया। अछूतों में यह विचार जम गया कि संघर्ष के बिना कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा। अतएव उन्हें संगठित होकर ही संघर्ष करना पड़ेगा। वे महाड में हुए अपमान का बदला लेने की बात सोचने लगे और दंगे के समय कुछ फौजी महारों ने प्रतिहिंसा की योजना भी बनाई; परन्तु डॉ० साहब ने उन्हें समझाया कि सत्याग्रह और हिंसा का कोई तालमेल नहीं है। शान्ति एवं कानून की सीमाओं में ही बड़े कार्य हो सकते हैं। अछूतों ने आत्म-विकास तथा आत्म-संस्कृति के आदर्शों को पहचाना जिसके फलस्वरूप, उन्होंने मृत पशुओं को उठाना बन्द कर दिया और मांगना खाना छोड़ दिया।

उधर महाड के सनातनी हिन्दुओं ने आग में नमक और छिड़क दिया। उन्होंने घोषणा की कि अछूतों द्वारा चॉवदार तालाब का पानी छूने से वह अपवित्र हो गया अतः उन्होंने तालाब को शुद्ध करने का संस्कार किया। फलतः 108 घड़े जल से भरकर तालाब के बाहर फैंके गए और पञ्चगव्य से भरे हुए कुछ घड़े ब्राह्मण पुरोहितों के मन्त्रोच्चारण के साथ तालाब में उँडेले गए। फिर क्या था, वह तालाब शुद्ध हो गया और सवर्ण हिन्दू पहले की भांति पानी का प्रयोग करने लगे। लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने इस शुद्धिकरण को अछूतों का अपमान समझा। उन्होंने अपने पत्र 'बहिष्कृत भारत' के माध्यम से इसका प्रचार किया। महाड के हिन्दुओं के इस घृणित कार्य को वह धिक्कारना चाहते थे। उन्होंने पुनः सत्याग्रह की योजना बनाई जिसके लिए उन्होंने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' के कार्यालय में सत्याग्रह करने वालों के नाम लिखना प्रारम्भ करवा दिया। उधर महाड नगरपालिका ने सवर्ण हिन्दुओं के दबाव में आकर सरकार का वह आदेश रद्द कर दिया जिसके अन्तर्गत अछूतों को तालाब से पानी भरने का अधिकार दिया था। हिन्दुओं का प्रतिरोध तो एक चुनौती थी ही, पर महाड नगरपालिका ने एक और चुनौती प्रस्तुत कर दी। डॉ० अम्बेडकर ने दोनों चुनौतियों को स्वीकार किया। उन्होंने 'महाड सत्याग्रह समिति' की स्थापना की और 25-26 दिसम्बर 1926 के दिन पुनः सत्याग्रह के लिए निश्चित किए।

इसी समय सवर्ण हिन्दुओं ने महाड के आस-पास सभी अछूतों का सामाजिक बहिष्कार कर रखा था। जमीदारों तथा हिन्दुओं के ठेकेदारों ने अछूतों का गांव में घूमना-फिरना बन्द कर दिया और यह आदेश भी दिया कि उनमें से कोई भी उनके खेतों में न जाए। उन्हें चीजें बेचना भी बन्द कर दिया। यहां तक कि अन्न की बिक्री भी उनके लिए बन्द हो गई। किसी न किसी बहाने से, अछूतों के साथ झगड़ा करने लगे और सवर्ण हिन्दुओं ने उन्हें सभी प्रकार की कठिनाइयों में डालना अपना धर्म मान लिया। बहुत से अछूतों पर तो मुकदमे चला दिए और उन्हें दण्डित भी करवा दिया गया। महीनों तक ये यातनाएँ, पीड़ाएँ तथा अन्याय चलते रहे और हिन्दुओं को तनिक भी शर्म महसूस नहीं हुई। उन्होंने अछूतों के साथ, पशु समान व्यवहार किया।

उनके इन अत्याचारों तथा दमनों से अछूत घबराए नहीं और उनकी दलित जाति परिषद् ने सत्याग्रह की पूर्ण तैयारी करली। सवर्ण हिन्दुओं ने परिषद् के

पण्डाल को बनाने के लिए स्थान नहीं दिया। किसी मुसलमान ने जगह दी और पण्डाल बनाया गया। महाड के व्यापारियों ने परिषद् को कोई भी वस्तु देने से इन्कार कर दिया, परन्तु आवश्यक वस्तुओं को वाहर से मंगवाया गया। इस प्रकार पुनः सत्याग्रह का कार्य-क्रम पूर्ण किया गया। डॉ० अम्बेडकर 24 दिसम्बर 1927 को, अपने 200 साथियों तथा प्रतिनिधियों सहित, वॉम्बे से महाड रवाना हो गए और दूसरे दिन दोपहर वहां पहुँच गए। वे दासगांव उतरे जहां से महाड पांच मील दूर था। दासगांव में लगभग तीन हजार दलितों ने डॉ० अम्बेडकर तथा उनके सहयोगियों का अच्छा स्वागत किया। उन्हें एक जुलूस के रूप में दासगांव से महाड ले जाया गया। वहाँ पुलिस अधीक्षक ने डॉ० साहव से निवेदन किया कि वह पहले जिलाधीश से मिल लें। वे उनसे मिले। जिलाधीश ने कहा: "सवर्ण हिन्दुओं ने चॉवदार तालाव को खानगी सम्पत्ति होने का दावा किया है। अतः जव तक इस वात का कानूनी फैसला नहीं हो जाता तव तक आप सत्याग्रह न करें।" लेकिन चूंकि डॉ० साहव स्वयं एक वड़े वैरिस्टर थे, उन्होंने कहा कि "जिस स्थान का प्रयोग मुस्लिम, पारसी तथा हिन्दू करते हों वह खानगी स्थान कैसे हो सकता है ? हम सत्याग्रह अवश्य करेंगे।" डॉ० साहव ने जिलाधीश को उनकी इच्छानुसार परिषद् द्वारा आयोजित सभा में वोलने की अनुमति दे दी। उस सभा में, लगभग 15000 स्त्री-पुरुष महाड सत्याग्रह के लिए एकत्र हुए थे।

सत्याग्रह की पूरी तैयारियां थीं। लगभग पांच हजार लोगों ने सत्याग्रही सूची में अपने नाम अंकित कराए। अछूतों में वहुत जोश था। उस सभा में, जिलाधीश ने वोलते हुए कहा "सरकार के आदेशानुसार, सार्वजनिक तालाव, विद्यालय तथा सड़कें सवके लिए खुले हैं, परन्तु वारह हिन्दुओं ने अदालत में यह दावा पेश किया है कि चॉवदार तालाव निजी सम्पत्ति है। इसलिए, अदालत के निर्णय तक आपको प्रतीक्षा करनी चाहिए। पहले सत्याग्रह के समय जिन लोगों ने आप पर आक्रमण किया था उन्हें दण्डित किया गया। यदि आप कानून का उल्लंघन करते हैं तो आप भी दण्ड के भागी होंगे। एक मित्र के नाते, मैं आप को सलाह देता हूँ कि आप अदालत के निर्णय तक सत्याग्रह को स्थगित करदें।" उधर डॉ० अम्बेडकर ने वोलते हुए कहा: "मेरा हृदय यह देखकर खुशी से उछल पड़ता है कि आप अपने सम्मान तथा अधिकार को प्राप्त करने के लिए, सत्याग्रह को तैयार हैं। लेकिन साथ ही, संघर्ष छेड़ने से पूर्व यह अच्छा रहे यदि हम इसके कानूनी पक्ष पर भी विचार करलें। यह वात सही है कि दुनियां में कठिन परिश्रम के वाद ही कुछ प्राप्त होता है। .... ध्यान रहे, आप लोग अग्नि में इसलिए मत कूदो कि मैं कहता हूँ। आप इसलिए ऐसा करो कि आपका कार्य औचित्यपूर्ण है। हम ऐसे सत्याग्रही चाहते हैं जो अपने को मिटाकर भी छुआछूत मिटाने के लिए तैयार हों। जिलाधीश को सुनने के वाद यदि आप अपने निर्णय पर अडिग रहते हैं तो सत्याग्रह करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।"

सभा में प्रत्येक वक्ता ने सत्याग्रह का समर्थन किया। अछूतों में अपार उत्साह था और वहुत से भाई वड़े उत्तेजित भी थे। स्थिति की कटुता से जिला-

धीश को अवगत कराया गया। तब जिलाधीश ने डॉ० साहब से घण्टों तक विचार-विमर्श किया और रात को सभी नेताओं की बैठक भी हुई। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए यही निर्णय लिया कि सत्याग्रह को स्थगित कर दिया जाये। दूसरे दिन डॉ० अम्बेडकर ने एकत्र जन-समूह को बहुत समझाया, हालांकि यह काम बड़ा कठिन था। उन्होंने अच्छे ढग से उन अछूतों से निवेदन किया जो सत्याग्रह के लिए आतुर बैठे थे; "आप बड़े बहादुर लोग हैं। वे लोग जो अपने अधिकारों के लिए जीवन तक देने तैयार हैं अवश्य ही प्रगति करेंगे; लेकिन अब ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जहां आप को सत्याग्रह छेड़ने के पूर्व दो बार सोचना पड़ेगा।····आप जानते हैं गान्धी ने सत्याग्रह किया, जिसको हिन्दू जनता का समर्थन प्राप्त था; परन्तु हमें सवर्ण हिन्दुओं से तनिक भी आशा नहीं। इन तथ्यों को देखते हुए, हमें सरकार को नाराज नहीं करना चाहिए।" साथ ही, डॉ० साहब ने कहा; "यह मत सोचना कि यदि आप सत्याग्रह स्थगित करते हो तो इसमें कोई अपमान है।····मेरे भाइयो! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सत्याग्रह के स्थगन का अर्थ यह नहीं होगा कि हमने संघर्ष का परित्याग कर दिया है। संघर्ष उस समय तक जारी रहेगा जब तक चॉवदार तालाब पर हम अपना अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते।" दलित नेता ने जो निर्णय किया, उसको सबने स्वीकार किया।

डॉ० अम्बेडकर महाड में एक दिन और ठहरे। उन्होंने चमार मोहल्लों में भाषण दिए और दलितों में जागृति का बिगुल बजाया। शाम को एक सभा में भाषण देते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने कहा; 'आप अपने को कभी अछूत मत समझो। साफ-सुथरा जीवन व्यतीत करो। स्पृश्य स्त्रियों की भांति वस्त्र पहनो। इसकी कभी चिंता न करो कि तुम्हारे वस्त्र फटे-पुराने हैं। यह ध्यान रखो कि वे साफ हैं। आपके वस्त्रों की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता और न ही कोई तुम्हें अपने जेवरात के चुनाव में रोक सकता है। अपने मन को स्वच्छ बनाने का ध्यान रखो और आत्मसहायता की भावना अपने में पैदा करो।" धीमी आवाज में, डॉ० साहब ने कहा, "लेकिन तुम्हारे पति और पुत्र शराब पीते हैं तो उन्हें खाना मत दो। अपने बच्चों को स्कूल भेजो। स्त्री-शिक्षा उतनी ही अनिवार्य है जितनी पुरुष-शिक्षा। यदि तुम लिखना-पढ़ना जानते हो तो तुम्हारी प्रगति शीघ्र होगी। जैसे तुम रहोगे वैसे ही तुम्हारी सन्तान बनेगी। उनके जीवन को इस प्रकार ढालो जो दुनिया में आपका नाम रोशन करें।"

इन शब्दों के साथ महाड सत्याग्रह का अन्त हुआ। लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने, यह देखकर कि सत्याग्रह भविष्य में सम्भव नहीं होगा, अदालत में चॉवदार तालाब से अछूतों द्वारा पानी पीने के अधिकार के लिए दावा पेश किया। वह मुकदमा कई वर्ष तक चलता रहा और डॉ० अम्बेडकर स्वयं उसकी पैरवी करते रहे। बम्बई हाई कोर्ट ने 17 मार्च 1936 को अछूतों के पक्ष में फैसला दिया। इस प्रकार दस वर्ष के अदालती संघर्ष के पश्चात्, अनेक प्रकार के कष्ट और कठिनाइयों को सहते हुए, डॉ० साहब को सफलता मिली। न केवल डॉ० साहब की यह जीत थी, बल्कि समूचे अछूत समुदाय के सम्मान की यह ऐतिहासिक विजय थी।

महाड के सत्याग्रह के दौरान ही अमरावती (विदर्भ) के अम्बादेवी के मंदिर में, जो एक पुराण प्रसिद्ध धर्मस्थान हैं, दलितों के द्वारा प्रवेश का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। समस्या समाधान की दृष्टि से, अमरावती में डॉ० अम्बेडकर के सभापतित्व में 13 नवम्बर 1926 को दलित जाति परिषद की ओर से एक सभा आयोजित की गई। डॉ० पंजाबराव देशमुख उसके स्वागताध्यक्ष थे। उस सभा में बोलते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने कहा "हिन्दू लोग दक्षिण अफ्रीका की रङ्गभेद नीति की कड़ी आलोचना करते हैं; परन्तु अपने देश में वे स्वयं वर्णभेद की नीति पर चलते हैं जो रङ्गभेद की नीति से कहीं अधिक खतरनाक है। हिन्दुत्व पर सवर्ण तथा अवर्ण का समानाधिकार है। सार्वजनिक जलाशय पर पानी पीने तथा मन्दिर-प्रवेश का अधिकार स्थापित करना हमारा तात्कालिक कार्यक्रम है। दलित परिषद् की ओर से, मन्दिर के ट्रस्ट को नोटिस दिया जा चुका था। लेकिन अम्बादेवी मन्दिर समिति के अध्यक्ष जी० एस० खापर्डे ने निवेदन किया कि उन्हें तीन माह की अवधि दी जाए ताकि वह अछूतों द्वारा मन्दिर-प्रवेश के वातावरण को तैयार कर सकें। उस निवेदन पर विचार-विमर्श हुआ और मन्दिर-प्रवेश का कार्य-क्रम स्थगित कर दिया गया। उधर डॉ० अम्बेडकर को बम्बई से तार मिला कि उनके बड़े भाई का देहान्त हो गया है और वे शीघ्र ही बम्बई लौट गए। वहाँ जाकर वे कई दिनों तक शोक-संतप्त स्थिति में मौन रहे क्योंकि उनके देहावसान से उन्हें बड़ा आघात पहुँचा था।

नासिक का धर्म-सत्याग्रह :

महाड का सत्याग्रह जलाचमन के लिए था तो नासिक का सत्याग्रह मन्दिर प्रवेश के लिए। दोनों में मानवी अधिकारों की मांग निहित थी और डॉ० अम्बेडकर अछूतों के अधिकारों की दिशा में एक प्रबल संघर्ष छेड़ चुके थे। नासिक सत्याग्रह के पूर्व कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं जिनका पहले कुछ विवरण दे दिया जाए तो अच्छा रहेगा।

एक महत्त्वपूर्ण घटना साइमन कमीशन की है। सन् 1919 के मांटेगू-चेम्सफोर्ड योजना में सुधार तथा संशोधन के लिए ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन नियुक्त किया जो ३ फरवरी, 19 8 को बम्बई आकर उतरा। उस दिन समूचे भारत में हड़ताल मनाई गई ताकि कमीशन का हर जगह बहिष्कार हो। कमीशन जहाँ भी गया उसे काले झण्डे दिखाए गए और 'वापस जाओ' के नारों से उसका स्वागत किया गया। कांग्रेस दल ने कमीशन का बहिष्कार किया था।

कमीशन की सहायता के लिए केन्द्रीय असेम्बली द्वारा निर्वाचीन सदस्यों में से सरकार ने एक सेलेक्ट कमेटी बनाई। उसी प्रकार प्रान्तों में भी सेलेक्ट कमेटियाँ गठित की गईं। बम्बई प्रान्त की सेलेक्ट कमेटी में डॉ० अम्बेडकर चुने गए; लेकिन कमेटी में जो रिपोर्ट तैयार हुई, उस पर मतभेद के कारण डॉ० अम्बेडकर ने हस्ताक्षर नहीं किए। उन्होंने अपनी अलग एक स्वतन्त्र रिपोर्ट पेश की जिसमें उन्होंने सिंध को बम्बई प्रान्त से पृथक् करने का विरोध किया, क्यों कि मुस्लिम प्रान्तों की संख्या

बढ़ाने की दृष्टि से मुस्लिम नेता यह मांग कर रहे थे। डॉ० साहब ने मुसलमानों की पृथक् निर्वाचन संघ की माँग का विरोध भी किया और कहा कि 'पृथक् चुनाव तथा साम्प्रदायिक संरक्षण प्रजातन्त्र को नष्ट कर देगा। संख्या के अनुसार स्थान सुरक्षित हों; परन्तु संयुक्त चुनाव बालिगों के मतदान से होना चाहिए। बम्बई सभा में 140 सीटें हों, जिनमें 33 प्रतिशत मुस्लिम सदस्य और 15 प्रतिशत दलित जाति के सदस्य हों ···सरकारी सेवाओं में भारतीयकरण शीघ्रता से हो और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल पूर्णत: उत्तरदायी हो।' डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्टत: मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक नीति का राष्ट्रीयता की दृष्टि से जितना विरोध किया उतना कांग्रेस ने भी नहीं किया था। कुल मिलाकर दलितों की अट्ठारह संस्थाओं ने कमीशन के सामने अपने मत प्रस्तुत किए। सभी ने अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन का समर्थन किया। उधर 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' ने भी डॉ० अम्बेडकर के ही विचारों का अनुमोदन किया और यह मांग की कि अछूतों को सेना, नाविक तथा पुलिस दलों में भर्ती का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

जून, 1928 में डॉ० अम्बेडकर बम्बई के गवर्नमेण्ट लॉ कॉलेज में नियुक्त हुए। वे अध्यापन कार्य तथा समाजसेवा दोनों में रत थे। अगस्त, 1928 में उन्होंने 'दलित जाति शिक्षण समिति' की स्थापना की जिसने शिक्षा प्रसार का काम हाथ में लिया। सरकार ने इस योजना का स्वागत किया। फलत: हाई स्कूल के विद्यार्थियों की आवास स्थिति सुधारने की दृष्टि से छात्रावासों के लिए 9000/- रुपये स्वीकृत किए। सरकारी सहायता से जब कुछ न हुआ तो डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू, मुसलमानों, पारसी तथा ईसाइयों से धन इकट्ठा किया और अछूत विद्यार्थियों को सवर्ण हिन्दुओं के स्कूलों में प्रवेश नहीं मिलता था जिसके लिए, डॉ० साहब को निरन्तर संघर्ष करना पड़ा।

यह एक ऐसा समय था जब डॉ० अम्बेडकर के मन में हिन्दूधर्म के परित्याग का कोई विचार नहीं आया। वे चाहते थे कि हिन्दू व्यवस्था में ही आवश्यक सुधार हो जाए और अछूतों को समानता का स्तर प्राप्त हो। इसी दृष्टि से अप्रेल, 1929 में रत्नागिरि जिले में दलित जाति परिषद् का अधिवेशन डॉ० साहब की अध्यक्षता में चिपलूण नामक स्थान में सम्पन्न हुआ जिसमें डॉ० अम्बेडकर ने अपने ब्राह्मण सहयोगी देवराव नाईक को भी बुलाया। श्री नाईक ने वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ हजारों अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करवाये। यह कार्यक्रम इसलिए किया गया कि कट्टर हिन्दुओं को कुछ अक्ल आए और हिन्दू व्यवस्था में कुछ सुधार भी हो; लेकिन जलगांव की दलित जाति परिषद् में 9 मई, 929 को डॉ० अम्बेडकर ने कहा—'यदि हिन्दुओं ने अपने व्यवहार में परिवर्तन न किया तो सम्भवत: अछूत समाज किसी दूसरे धर्म में जाकर आश्रय ले ले। अछूत लोग अब मृत पशुओं को उठाने का काम कतई नहीं करेंगे। वे समानता के अधिकार के लिए संघर्ष जारी रखेंगे।' डॉ० अम्बेडकर ने बम्बई में 'समाज समता संघ' की स्थापना की थी जिसका मुख्य कार्य अछूतों के नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना था। अछूतों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना था। यह संघ बड़ा ही सक्रिय था।

एक बार दादर में गणेशोत्सव होने वाला था। यह सार्वजनिक मेला था। उस गणेशोत्सव के अध्यक्ष ने समाज समता संघ को सूचित किया कि उस उत्सव में किसी भी अछूत को नहीं आने दिया जाएगा। वे उस पण्डाल में तो कतई नहीं आ सकते जहाँ मूर्ति की स्थापना होगी। फिर क्या था? मूर्ति स्थापना के दिन सैकड़ों अछूत वहाँ इकट्ठे हो गए और पण्डाल में घुसने की मांग करने लगे। पुलिस की सहायता ली गई; लेकिन भारी भीड़ के सामने पुलिस क्या करती? थोड़ी देर में डॉ० अम्बेडकर वहाँ आए। एक ओर उन्होंने भीड़ को शान्त रहने के लिए आग्रह किया तो दूसरी ओर उत्सव के प्रबन्धकों को समझाया कि चूँकि यह सार्वजनिक उत्सव है इसलिए अछूतों को उसमें भाग लेने का अधिकार है। इसी बीच भीड़ इतनी आ चुकी थी कि उसे रोकना कठिन हो रहा था। प्रबन्धकों में शीघ्र ही बुद्धि आ गई और उन्होंने विवश होकर अछूतों को पण्डाल में प्रवेश की अनुमति दे दी।

वैसे डॉ० अम्बेडकर का कार्यक्षेत्र बम्बई प्रान्त था, पर उनकी कीर्त्ति पूरे भारत में पहुँच चुकी थी। उधर बम्बई सरकार ने उपाय सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया जिसमें सर्वश्री ए० व्ही० ठक्कर, डॉ० सोलंका तथा डॉ० अम्बेडकर तीन ही सदस्य थे। इस समिति के पास कई स्थानों से शिकायतें आई थी कि अछूत विद्यार्थियों को अन्य विद्यार्थियों के साथ क्लास रूम में नहीं बैठने दिया जाता और उन्हें स्कूल के बरामदों में बैठना पड़ता है। इसकी जांच करने के लिए एक सदस्य की हैसियत से डॉ० अम्बेडकर जब किसी स्कूल में गए तो हैडमास्टर ने उन्हें स्कूल के अन्दर आने से रोक दिया। एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार, वह पूर्व खानदेश के दौरे पर निकले। डॉ० अम्बेडकर चालीसगांव रेलवे स्टेशन पर उतरे। हजारों अछूतों ने उनका भव्य स्वागत किया। उन्हें गन्तव्य स्थान पर ले जाने के लिए एक तांगा करने की बात सोची; लेकिन उन्हें बिठाने के लिए कोई भी तांगे वाला तैयार नहीं हुआ। अन्त में एक तांगावाला इस शर्त पर तैयार हुआ कि वह स्वयं तांगा नहीं चलाएगा। वह पैदल चलेगा और कोई अन्य चलायेगा। अतएव एक अछूत ने तांगा सम्भाल लिया और डॉ० अम्बेडकर उसमें सवार हो गए। थोड़ी दूर जाकर चूँकि वह अछूत तांगा चलाना नहीं जानता था, वह तांगा उलट गया। डॉ० साहब बुरी तरह नीचे आ गिरे। उनके दाएँ पाँव की एक हड्डी टूट गई। उन्हें कई दिन तक चारपाई पर लेटे रहना पड़ा। वह चोट उन्हें बुढ़ापे तक महसूस होती रही। यह अभागी घटना 23 अक्टूबर, 1829 को घटित हुई। डॉ० साहब को हिन्दू समाज में कष्ट और कठिनाइयों के सिवाय और कुछ क्या मिल सकता था? इन कठिनाइयों के बावजूद उनका अछूतोद्धार आन्दोलन निरन्तर प्रगति करता है।

नासिक का धर्म सत्याग्रह भी एक विचित्र घटना है। नासिक हिन्दुओं का एक ऐतिहासिक तीर्थस्थल है। यहां पञ्चवटी है जहां रामचन्द्रजी वनवास के दिनों में रहे थे। रावण की बहन शूर्पणखा की नाक यहीं काटी गई थी। जिसके बदले में रावण ने सीताहरण किया था। यहां एक 'काला राम' मन्दिर है जिसमें राम की एक मूर्ति विराजमान है। रामनवमी के दिन यहां पन्द्रह दिन का एक लक्खी मेला होता है जहां रथ यात्रा भी होती है। अर्थात् काले राम रथ में

बैठकर गोदावरी में स्नान करने जाते हैं। रथ को हिन्दू लोग खींचते हैं। वे गोदावरी में स्नान करके कालेराम के मन्दिर में दर्शन करते हैं। अछूतों की भी यह इच्छा थी कि वे भी ऐसा करें, पर उन्हें कौन ऐसा करने देता ? अछूत लोग इस बात के लिए सन् 1929 से प्रयास कर रहे थे कि उन्हें भी रथ छूने दिया जाए, गोदावरी के मुख्य घाट पर स्नान करने दिया जाए और मन्दिर में कालेराम के दर्शन भी करने दिए जाएँ; लेकिन उनको सफलता नहीं मिली। महाड सत्याग्रह ने बाबा साहब का नाम वहाँ तक पहुँचा दिया था। उनके अछूतोद्धार आन्दोलन से वे परिचित थे। अतः वहाँ के अछूत लोगों ने डॉ० अम्बेडकर को बुलाया ताकि उनका नेतृत्व करें।

दो महान् नेताओं द्वारा एक ही दिन दो ऐतिहासिक कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। 2 मार्च 1930 को महात्मा गांधी ने, वाइसराय लार्ड इर्विन को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि वे अपना अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर रहे है और गांधी जी विभिन्न क्षेत्रों के दौरे पर निकल पड़े। 2 मार्च को ही डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों द्वारा कालाराम मन्दिर में प्रवेश के अधिकार को लेकर सत्याग्रह प्रारम्भ किया। अन्तर केवल इतना था कि एक ओर महात्मा जी भारतीयों की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे, तो दूसरी ओर डॉक्टर साहब दलितों की सामाजिक स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। दोनों ही आन्दोलन मानवी स्वतत्रता के लिए अहिंसात्मक ढंग से प्रारम्भ किए गए थे।

डॉ अम्बेडकर 2 मार्च 1930 को ही बंबई से नासिक पहुँच गए। उनकी प्रध्यक्षता में एक आम सभा हुई जिसमें अपार भीड़ थी। सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ कि सत्याग्रह अवश्य किया जाए। सत्याग्रह की विधिवत् घोषणा कर दी गई और सभी अछूत स्त्री-पुरुष बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने के लिए तैयार थे। दोपहर बाद तीन बजे अछूतों का एक विशाल जन-समूह इकट्ठा हुआ। सभी एकत्र स्त्री-पुरुष चार-चार की कतारों में, अनुशासित ढग से, कालाराम मन्दिर की ओर एक जुलूस के रूप में चल पड़े। आगे-आगे बैण्ड बाजा बज रहा था, उसके पीछे समतादल के सदस्य, फिर पांच सौ अछूत स्त्रियां और उनके पीछे अछूत भाइयों की अपार नियंत्रित भीड़। जुलूस का नेतृत्व डॉ० अम्बेडकर कर रहे थे। सभी स्त्रियां-पुरुष कालाराम के दर्शन के लिए लालायित थे; लेकिन जैसे ही विशाल जुलूस को मन्दिर के प्रबन्धकों ने आते देखा, मन्दिर के सभी दरवाजे बन्द कर दिए। थोड़ी देर प्रतीक्षा की, पर कोई उत्तर नहीं मिला। फिर वह जुलूस गोदावरी के घाट की ओर चल पड़ा, जहां पहुँच कर वह एक सभा में परिणत हो गया। भाषणों के पश्चात्, सभी स्त्री-पुरुषों ने सत्याग्रह की शपथ ग्रहण की ताकि प्रयास विफल न हो।

सत्याग्रह का स्वतः बहुत प्रचार हो गया। सरकार ने शहर में दफा 144 लगा दी। यह घोषणा भी करवा दी गई कि कालाराम मन्दिर के आस-पास सौ गज के अन्दर इकट्ठा घूमने वालों को पकड़ लिया जाएगा। फिर भी कुछ सत्याग्रही एक-एक करके मन्दिर के दरवाजों के पास पहुँच गए। कुछ स्त्री-पुरुष भजन गाते-गाते वहां तक पहुँच गए। उन्होंने मन्दिर के दरवाजों के समक्ष धरना

प्रारम्भ कर दिया; परन्तु दरवाजे बन्द रहे। उधर सत्याग्रह चालू रहा। हर रोज कुछ अछूत स्त्री-पुरुष सत्यागह में शामिल हो जाते। वह सत्याग्रह लगभग एक माह तक चलता रहा। इतना करते-करते रामनवमी आ गई। उस दिन रथयात्रा होती थी। मन्दिर के सामने सुसज्जित रथ आ गया। अछूत सत्याग्रही अड़ रहे थे कि वे भी रथ खींचेंगे। एक समझदार सिटी मजिस्ट्रेट ने यह समझौता करवा दिया कि एक ओर अछूत नवयुवक और दूसरी ओर सवर्ण नवयुवक लगकर रथ खींचेंगे। अछूत भाई तो तैयार हो गए, पर अन्य लोग मन से उसे स्वीकार नहीं कर पाए और झगड़ा मोल लेने पर उतारू हो गए।

जब रामनवमी का दिन आया तो हजारों स्त्री-पुरुषों की भीड़ वहां इकट्ठी हो गई। मन्दिर का उत्तरी दरवाजा खोल दिया गया। पुलिस का बड़ा भारी प्रबन्ध था। मन्दिर में दर्शनार्थ भीड़ का रेला चला गया जिसके साथ कुछ अछूत भाई भी अन्दर घुस गए; लेकिन उन्हें पकड़कर पीटना आरम्भ कर दिया गया। उन्हें बाहर निकाल फेंका। एक दूसरी गली से जब अछूतों की भीड़ आई तो सवर्ण हिन्दुओं ने उनका मार्ग रोक लिया। उधर पुलिस ने उन पर कोड़ों से प्रहार किया, पर वे हटने वाले नहीं थे। कोड़ों की बरसात में भी वे वहां डटे रहे। इस पर पुलिस ने यह एलान किया कि मन्दिर में केवल स्त्री-बच्चे जायेंगे, पु'ष कोई नहीं। जब स्त्रियों का रेला मन्दिर में गया तो कुछ अछूत स्त्रियां भी घुस गईं। लेकिन उनको भी पकड़ कर पीटना शुरू कर दिया। यहां तक कि पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और कइयों को बेइज्जत भी किया। इस प्रकार रामनवमी के दिन अछूत स्त्री-पुरुषों की हिन्दुओं तथा पुलिस ने निर्दयता से क्रूरतापूर्ण पिटाई की। यह भयावह स्थिति थी। उस कालाराम मन्दिर के आस-पास, अछूतों ने बाबा साहब के नेतृत्व में अपना अधिकार मांगा था।

अब देखिए उस दृश्य को जहां से रथयात्रा प्रारम्भ होने वाली थी। वहाँ डॉ० अम्बेडकर भी उपस्थित थे और अपने नवयुवकों का, जो रथ खींचने में रस्सी पकड़ने वाले थे, नेतृत्व कर रहे थे। वहां अपार भीड़ थी। चारों ओर से स्त्री-पुरुष की भीड़ उमड़ती आ रही थी। पूरी आशका थी कि वहाँ गड़बड़ होगी। नासिक के दलित जाति के नेता दादा साहब गायकवाड़ को किसी तरह मालूम हो गया कि हिन्दू लोग दंगा अवश्य करेंगे। अतएव उन्होंने डॉ० अम्बेडकर से कहा: "आपका जीवन ख़तरे में है। आप यहां से शीघ्र चलें। मोटर गाड़ी उधर खड़ी है।" लेकिन डॉ० साहब कहीं डरने वाले थे क्या ? उन्होंने दादा साहब से कहा: "आप मुझे अच्छी सलाह नहीं दे रहे हैं। मैं एक बहादुर सैनिक का बेटा हूँ, किसी कायर का नहीं। मैं डरपोक नहीं हूं। चाहे जो कुछ हो, मौत के भय से मैं यहां से कतई नहीं हटूँगा। दूसरों की जान मौत के मुंह में डाल कर मैं भागने वालों में से नहीं हूँ।" दादा साहब चुपचाप खड़े रह गए। आगे कुछ न कह पाए।

इसी बीच एक ओर खड़े हिन्दुओं ने उन अछूत नवयुवकों पर यह कहकर कि 'मारो मारो' हमला बोल दिया, जो रथ खींचने के लिए खड़े थे। इतने में दूसरी ओर खड़े सवर्ण हिन्दू उस रथ को खींच कर भाग गए और उस रथ को तंग मार्ग

में ले जाकर खड़ा कर दिया। रथ के आगे-पीछे सशस्त्र पुलिस का पहरा लगा दिया ताकि वहां अछूत न आ सकें। लेकिन कुछ अछूत नवयुवक, जिनमें बहुत जोश था, पुलिस की कतार काटकर रथ के पास पहुँच गए और जब उसे खींचने का प्रयास करने लगे तो सवर्ण हिन्दुओं ने उनपर ऐसी क्रूरता से प्रहार किया कि वे खून से लथ-पथ हो गए। इसी बीच डॉ० साहब भी वहां पहुँच गए। उन पर भी पत्थरों की वर्षा होने लगी जिनसे उनको काफी चोटें आई। उनके साथियों तथा अन्य अछूतों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था ताकि उन्हें गहरी चोटें न लगें। इस प्रकार उनके प्राणों की रक्षा की गई। उस दिन सारे नासिक शहर तथा आस-पास अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच दगे होते रहे। लेकिन सत्याग्रह जारी रहा। दोनों ओर से मारपीट चल रही थी। फिर भी अछूत स्त्री-पुरुष एक जुलूस के रूप में, मार खाते, जान खतरे में डालते हुए, गोदावरी के उस घाट की ओर बढ़े जा रहे थे जहाँ अछूतों को स्नान करने की अनुमति नहीं थी। उस समय वहां 50 हजार सवर्ण हिन्दू नर-नारी स्नान कर रहे थे। उनमें से कुछ पूजा-पाठ में लीन थे। वहीं अछूत नर-नारियों ने स्नान करना प्रारम्भ कर दिया। यह देख पुलिस ने उन पर हमला शुरू कर दिया। पुलिस ने स्नान करने वाले अछूत स्त्री-पुरुषों पर डण्डे बरसाए, पर वे स्नान करते रहे। अपने धर्म की रक्षा के लिए, हिन्दुओं ने पुलिस का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त किया। जहां-जहाँ अछूतों ने नहाया था, वहां-वहाँ डण्डों से अपवित्र जल को मार-मार कर शुद्ध किया गया। उसी समय सवर्ण हिन्दुओं ने अछूत नर-नारियों पर हमला बोल दिया। फलत: उन्हें खून से भी नहला दिया गया। मेले में हा-हाकार मच गया। आए हुए तीर्थयात्री भी भागने लग गए। सबको अपनी-अपनी जान बचाने की पड़ गई। इस प्रकार छुआछूत के कलंक ने न सवर्ण हिन्दुओं को नहाने दिया और न ही अछूतों को। कैसी विचित्र स्थिति थी हिन्दू मन एवं समाज की, जिसने अपने ही भाइयों के बीच गहरी खाई खोद दी थी।

स्पष्टत: सवर्ण हिन्दुओं ने लालायित अछूत नर-नारियों को न तो कालाराम के दर्शन होने दिए और न ही उन्हें गोदावरी के घाट पर स्नान करने दिया। अछूत नवयुवकों को रथयात्रा के स्थान पर निर्दयतापूर्वक मारा-पीटा; लेकिन अछूत लोगों में सत्याग्रह एवं सघर्ष का जोश निरन्तर बना रहा। फलत: हिन्दुओं को मन्दिर के दरवाजे एक साल तक बन्द रखने पड़े। वह मन्दिर प्रवेश का सत्याग्रह रथयात्रा पर केन्द्रित हो गया। जब रथयात्रा का समय आता तभी अछूत स्त्री-पुरुष उसे खींचने की मांग करते। अतएव जिलाधीश ने रथयात्रा की प्रथा ही बन्द कर दी। रथयात्रा के बिना ही मूर्ति को स्नान कराने के लिए ले जाने की अनुमति दे दी; परन्तु सन् 1931 में उस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। एक समय ऐसा आ गया जब मन्दिर प्रवेश पर कानून बन गया और अक्टूबर 1935 में कालाराम मंदिर के दरवाजे अछूतों के दर्शनार्थ खुल गए।

सत्याग्रह की महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अछूतों की सिक्ख भाइयों ने बड़ी सहायता की थी। कुछ सिक्ख महात्मा गांधी जी के पास भी गए ताकि वे सत्याग्रह का समर्थन करें; किन्तु उलटे गान्धीजी ने यह कहा; "सत्याग्रह विदेशियों के विरुद्ध किया जाना चाहिए, अपने ही देश के लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह करना उचित

नहीं।" एक सन्दर्भ में, महात्माजी ने यह भी सुझाव दिया था कि यदि सवर्ण हिन्दू अछूतों को पुराने मन्दिरों में नहीं जाने देते तो उनके लिए नए मन्दिर बनवा दिए जाने चाहिए। क्या गान्धीजी के ये तर्क वास्तव में न्यायोचित थे? क्या यह संभव था कि सवर्ण हिन्दू अछूतों के लिए नए पृथक् मन्दिर बनवाते?

गोलमेज परिषद् में :

एक लम्बे समय के पश्चात्, मई 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कमीशन ने भारतीय राष्ट्रवाद तथा उसकी शक्तियों की अवहेलना की। उसमें जानबूझकर भारतीय दृष्टिकोण की उपेक्षा की गई। चूँकि भारत के राजनीतिक दलों में कोई समझौता नहीं हुआ था, इसलिए कमीशन ने पृथक् निर्वाचन प्रणाली को ही बनाए रखने की सिफारिश की। कमीशन ने 250 केन्द्रीय विधानसभा की सीटों में से 150 हिन्दुओं को दी। दलितों को सम्मिलित करते हुए, संयुक्त चुनाव प्रणाली हिन्दुओं तथा दलितों के लिए रखी गई। कमीशन ने यह भी सिफारिश की कि दलित वर्गों में से उस समय तक कोई चुनाव नहीं लड़ सकता जब तक वह प्रान्त के गवर्नर द्वारा योग्यता का प्रमाणपत्र प्राप्त न कर ले। यह एक विचित्र शर्त थी जो एक प्रकार से समस्त अछूत समाज के लिए अपमान की बात थी, जिसका प्रतिरोध डॉ० साहब ने स्वयं किया।

8 अगस्त 1930 को नागपुर दलित जाति कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन डॉ० अम्बेडकर की अध्यक्षता में हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में, उन्होंने कहा कि यह सम्भव है कि भारत एक सङ्गठित देश बन सकता है, पर उसकी विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों का थोड़ा ध्यान रखना पड़ेगा। किसी एक ही जाति के लोगों को, विशेषकर हिन्दुओं को, समस्त राजनीतिक सत्ता सौंप दी तो यह अन्य अल्प-संख्यकों के हित में न होगा। यदि एक वर्ग दूसरे वर्ग पर अपना प्रभुत्व बनाए रखे तो उससे आधुनिक जनतांत्रिक व्यवस्था का गला घुट जाएगा। 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' का सिद्धान्त समाप्त हो जाएगा। सवर्ण हिन्दुओं के अतिरिक्त भारत में अन्य परिगणित जातियां, कबीले तथा घुमक्कड़ समूह हैं। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने इनकी संख्या के अनुसार, उनके हितों को सुरक्षित रखने की मांग प्रस्तुत की। साइमन कमीशन के सन्दर्भ में बोलते हुए, उन्होंने कहा, "गवर्नर द्वारा योग्यता का प्रमाण-पत्र मांगना एक प्रकार से शुद्ध तथा सरल मनमानी के सिवाय और कुछ नहीं है। यदि वह एक क्षेत्र में केवल एक ही प्रत्याशी को योग्यता का प्रमाण-पत्र प्रदान करता है तो वहां चुनाव की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। इसलिए डॉक्टर साहब ने दलित जाति के कांग्रेस में आए जन-समूह को सलाह दी कि "मांग करो कि हम अपने प्रत्याशी का स्वयं चुनाव करें और उस चुनाव में कोई शर्त नहीं होनी चाहिए। निश्चित रूप से; हम ही अपने हितों के उत्तम निर्णायक हैं और हमें गवर्नर के हाथ में यह अधिकार नहीं देना है कि वह हमारे लिए भले बुरे का निर्णय करे।"

डॉ० अम्बेडकर ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रति भी अपने विचार प्रकट किए। निःसन्देह इस आन्दोलन से जन-चेतना पैदा हुई, पर डॉ० साहब मूलतः आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे। वह अपने स्वरूप में एक दमनकारी पग था। यदि

उसे व्यापक स्तर पर लाया गया होता तो एक खूनी क्रांति अवश्यम्भावी थी। क्रांति कैसी भी हो, वह परिवर्तन की एक पद्धति है। क्रांति कभी-कभी अनिवार्य होती है। लेकिन क्रान्ति एवं सामाजिक परिवर्तन में बड़ा भारी अन्तर है। क्रान्ति में राजनीतिक सत्ता एक दल से दूसरे दल के हाथों में चली जाती है अथवा एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के हाथों में। समाज परिवर्तन एक व्यापक परिवर्तन है। दलित वर्गों को मात्र राजनीतिक परिवर्तन से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। राजनीतिक सत्ता का हस्तान्तरण इस प्रकार हो कि उससे भारतीय समाज में मौलिक परिवर्तन हो। डॉ० साहब ने यह कहा कि ब्रिटिश प्रशासन से कुछ सामाजिक परिवर्तन अवश्य हुए, किन्तु "स्वराज के शासन-विधान में ही हमें राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का अवसर मिल सकता है जिसके बिना आप अपने लोगों की मुक्ति संभव नहीं बना सकते। भूतकाल से कतई पीड़ित मत होओ। किसी भी प्रकार के भय से परेशान मत होओ और अपने निर्णय को स्वयं लो। अपने हितों पर गम्भीर विचार करो। मुझे आशा है कि आप लोग स्वराज को अपना लक्ष्य अवश्य बनाओगे।" डॉ० साहब ने कांग्रेस तथा गान्धी दोनों की आलोचना की। कांग्रेस ने छुआछूत के उन्मूलन को अपना लक्ष्य नहीं बनाया और न ही गान्धी ने छुआछूत को मिटाने के लिए कोई सत्याग्रह या उपवास किया। अतः हमारा हित इसी में है कि दलित वर्ग सरकार, कांग्रेस तथा गान्धी से स्वतंत्र रहे। "हमें अपने मार्ग का निर्धारण स्वयं ही करना चाहिए।" अन्त में, डॉ० अम्बेडकर ने कहा; "हमारा आन्दोलन दलितों के उत्थान में परिणत होगा और इस देश में हम एक ऐसा समाज स्थापित करने में सफल होंगे जहाँ एक व्यक्ति का, जीवन के राजनीतिक तथा आर्थिक, सभी क्षेत्रों में एक मूल सिद्धान्त प्रधानतः लागू होगा।"

उस समय गांधी का सविनय अवज्ञा आन्दोलन जारी था। कांग्रेस के लगभग सभी बड़े-बड़े नेता जेल में थे। सरकार तथा कांग्रेस में कोई समझौता नहीं हुआ था। कांग्रेस के प्रतिनिधित्व के बिना ही, ब्रिटिश सरकार ने अन्य नेताओं तथा रियासत के राजाओं के सहयोग से लंदन में गोलमेज परिषद् का आयोजन किया। सभी दलों तथा अल्प-संख्यक सङ्गठन के नेताओं को आमंत्रित किया गया। डॉ० अम्बेडकर तथा रायबहादुर श्रीनिवासन भी दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए आमंत्रित हुए। डॉ० साहब को 6 सितम्बर, 1930 को वाइसराय के द्वारा निमंत्रण-पत्र प्राप्त हुआ। वैसे भारत के इतिहास में, गोलमेज सभाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है, पर अछूतों के लिए तो यह एक अद्वितीय घटना थी क्योंकि भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था में अछूतों की राय भी ली जा रही थी। यहाँ के सविधान में, उनके विचारों का भी समावेश होगा। लगभग दो हजार वर्ष से लगातार शोषित रहने के पश्चात् यह शुभावसर आया जिसका सुयोग्य प्रतिनिधित्व डॉ० अम्बेडकर ने किया और वास्तव में, उनके प्रतिनिधित्व में जो सच्चाई तथा निष्ठा थी, वह स्मरणीय है। उनके प्रतिनिधित्व ने ही सारी दुनियां में तहलका मचा दिया था। अछूतों को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ले जाने का श्रेय उन्हीं

डॉ० पुरुषोत्तम सोलंकी की अध्यक्षता में आयोजित सभा में अछूतों ने डॉ० अम्बेडकर को एक मान-पत्र तथा थैली भेंट की और उनकी लन्दन-यात्रा के लिए, शुभकामनाएं प्रकट की गईं। अपनी ओर से डॉ० साहब ने सभी स्वागत-कर्ताओं को धन्यवाद दिया और कहा: "जो कुछ मेरे लोगों के लिए न्यायोचित है, मैं उसी की मांग प्रस्तुत करूँगा, और मैं, निश्चित रूप से, स्वराज की मांग पर अडिग रहूँगा।" अन्त में, डॉ० साहब ने उपस्थित स्त्री-पुरुषों को यह आश्वासन दिया कि वह जर्मनी, रूस, जापान और अमेरिका के प्रतिनिधियों तथा नेताओं से मुलाकात करके भारत में शोषित दलित लोगों की समस्या से उन्हें अवगत करायेंगे, और यदि संभव हुआ तो वह उनकी समस्या को लीग ऑफ नेशन्स के समक्ष भी प्रस्तुत करेंगे। डॉ० अम्बेडकर 16 अक्टूबर 1930 को लन्दन के लिए रवाना हो गए। देश में उस समय वातावरण उनके पक्ष में नहीं था क्योंकि सभी सवर्ण हिन्दू, गांधी तथा कांग्रेस नेता उनसे नाराज थे। वे उन्हें घृणा की दृष्टि से मूल्यांकित कर रहे थे। वास्तव में, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विरुद्ध थे, उनकी स्थिति नाजुक थी। उन्हें ब्रिटिश राज्य का पिछलग्गू कहा गया। उनको अपमान भरे शब्दों में गालियां दी गईं, उधर भारतीय अखबारों ने उनके ऊपर अपना आक्रोश व्यक्त किया। जैसे ही डॉ० अम्बेडकर तथा अन्य प्रतिनिधि लन्दन पहुँचे, वहाँ का वातावरण बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण था, विशेषकर दलित वर्गों की समस्या के प्रति तो सबकी सहानुभूति थी ही।

12 नवम्बर, 1930 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रम्जे मॅकडोनाल्ड की अध्यक्षता में प्रथम गोलमेज परिषद् प्रारम्भ हुई। परिषद् में कुल 89 प्रतिनिधि थे—53 ब्रिटिश भारत के, 20 रियासती भारत और 16 ब्रिटिश दलों के। उसमें सप्रू जैसे निर्दलीय नेता, जिन्ना-मुन्जे जैसे साम्प्रदायिक नेता, सर रामास्वामी अय्यर तथा ईस्माइल मिर्जा जैसे रियासती दीवान, अन्य कई रियासतों के महाराजा, सिक्ख, ईसाई, एंग्लोइण्डियन प्रतिनिधि और दलितों के नेता डॉ० अम्बेडकर तथा रायबहादुर श्रीनिवासन शामिल थे। प्रारम्भिक रूप से सभी प्रतिनिधियों ने अपना-अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। डॉ० अम्बेडकर ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो बड़ा ही आकर्षक तथा मर्मस्पर्शी था। प्रारम्भ में उन्होंने यह कहा—'मैं जिन लोगों के प्रतिनिधि की हैसियत से यहां खड़ा हूँ उनकी संख्या हिन्दुस्तान की जनसंख्या का पांचवां भाग है अर्थात् इंग्लैण्ड या फ्रांस की जनसंख्या के बराबर है; किन्तु आज उन्हें दास तथा गुलाम की स्थिति में ला पटका है।' उस समय सबको आश्चर्य हुआ जब डॉ० साहब ने यह कहा कि भारत में अछूत ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हैं और वे ऐसी सरकार के पक्ष में है जो जनता की, जनता के लिए और और जनता द्वारा बनाई गई हो। दलितों का यह दृष्टिकोण उनकी जागृति तथा देशभक्ति का प्रतीक है। इन शब्दों के साथ डॉ० साहब ने अपने दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराया :

> "जब हम अपनी वर्तमान स्थिति की तुलना उस भारतीय सामाजिक स्थिति से करते हैं जो पूर्व-ब्रिटिश दिनों में थी, तो हमें यह मिलता है कि

हम उन्नति करने के बजाय, मात्र समय गिन रहे हैं। ब्रिटिश सरकार के पूर्व हम छुआछूत के कारण दयनीय अवस्था में थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने उसकी समाप्ति के लिए कुछ किया है ? ब्रिटिश शासन के पूर्व गांव के कुएँ से हम पानी नहीं भर सकते थे। क्या ब्रिटिश शासन ने हमें यह अधिकार दिलाया है ? ब्रिटिश राज्य के पूर्व हम मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। क्या अब हम प्रवेश कर सकते हैं ? ब्रिटिश प्रशासन के पूर्व हमारे लिए पुलिस सेवा के द्वार बन्द थे। क्या ब्रिटिश सरकार पुलिस सेवा में हमें लेती है ? ब्रिटिश राज्य के पूर्व हमें सैनिक सेवा में भर्ती नहीं किया जाता था। क्या अब भर्ती हो सकते हैं ? इन प्रश्नों का कोई सकारात्मक उत्तर नहीं हो सकता। यद्यपि 150 वर्ष ब्रिटिश शासन के भारत में बीत चुके हैं, पर हमारे दु ख-दर्द ज्यों के त्यों बने हैं। उन्हें अभी दूर नहीं किया गया।"

'ऐसी सरकार किसी के लिए क्या काम की ?' डॉ० साहब ने गोलमेज कान्फ्रेंस में यह प्रश्न किया। यह सुनकर ब्रिटिश प्रतिनिधि एक दूसरे की ओर देखने लगे। भारतीय प्रतिनिधियों में उत्तेजना की भावनाएँ पैदा हो गईं। डॉ० अम्बेडकर ने आगे फिर कहा :

"यह वह सरकार है जिसने यह महसूस तो किया कि पूँजीपति लोग श्रमिक को अच्छी मज़दूरी नहीं देते और काम की स्थितियां भी बड़ी खराब हैं। सरकार ने यह भी महसूस किया कि जमींदार लोग सामान्य लोगों का खून चूसे जा रहे हैं, फिर भी सरकार ने उन सामाजिक बुराइयों का अंत नहीं किया जिनसे दलित वर्गों का जीवन सदियों से मुरझाए पड़ा है। यद्यपि सरकार के पास इन बुराइयों का अन्त करने के लिए, कानूनी शक्ति है, पर उसने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की वर्तमान संहिता को बदला नहीं क्योंकि सरकार को भय था कि उसके द्वारा हस्तक्षेप उसके लिए प्रतिरोध उत्पन्न करेगा।" इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट घोषणा की कि "हमें एक ऐसी सरकार चाहिए जहाँ सत्ता में रहने वाले लोग देश के सर्वोत्तम हितों के प्रति निर्विवाद रूप से वफादारी दिखा सकें। हमें एक ऐसी सरकार चाहिए जहाँ सत्ता में रहने वाले लोग यह जानते हुए कि निष्ठा कहां समाप्त और प्रतिरोध कहाँ आरम्भ होगा, न्याय एवं उपयोगिता की मांगों के अनुसार जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक संहिता को बदलने में कोई भय महसूस नहीं करेंगे।"

डॉ० अम्बेडकर ने भारत के लिए 'डोमीनियम स्टेटस' की मांग प्रस्तुत की। साथ ही यह आशंका व्यक्त की कि जब तक नए संविधान में राजनीतिक व्यवस्था एक विशेष प्रकार की न हो तब तक दलित वर्ग उसमें भाग नहीं ले पायेंगे। नए संविधान का निर्माण करते समय, यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि भारत में समाज का ढांचा जातिवाद पर आधारित है जिसमें कुछ लोग सबसे ऊँचे और कुछ सबसे नीचे माने जाते हैं। भारतीय समाज में समानता और भ्रातृत्व के लिए कोई स्थान नहीं है और तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं ने जातिवाद के संकुचित विचारों का

परित्याग नहीं किया है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि 'हमारे दुःखों को अपने सिवाय और कोई नहीं मिटा सकता और हम उन्हें उस समय तक समाप्त नहीं कर सकते जब तक हमारे हाथों में राजनीतिक सत्ता न आ जाए। दलित वर्गों ने सरकारी चमत्कार देखने के लिए, बहुत लम्बे अर्से तक इन्तजार किया है। अब और इन्तजार कतई सम्भव नहीं है।'

राष्ट्रीय आन्दोलन में गतिरोध का जिक्र करते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने राज-नीति-दर्शन के महान् शिक्षक एडमण्ड बर्क के शब्दों का स्मरण दिलाया कि "शक्ति का प्रयोग अस्थाई होता है।" अपने भाषण के अन्त में, उन्होंने यह कहा "संभवतः यह भलीभांति महसूस नहीं किया गया है कि देश के वर्तमान वातावरण में, कोई भी संविधान, जो अधिसंख्यक लोगों को स्वीकार नहीं है, कारगर सिद्ध नहीं होगा। वह समय जब आप लोग पसन्द करते थे और भारत उसे स्वीकार करता था, समाप्त हो चला है। कभी वापिस नहीं आयेगा। यदि आप चाहते हैं कि नया संविधान कारगर सिद्ध हो, तो उसका मूलाधार जनता की सहमति हो, न कि तर्क की आकस्मिकता।" भारतीय लोगों को अपने अनुकूल राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने का अधिकार होना चाहिए।

डॉ० अम्बेडकर के साहसिक एवं निर्भीक भाषण ने गोलमेज सभा के सभी सदस्यों पर अद्भुत प्रभाव डाला। सभी प्रतिनिधियों ने उन्हें बधाइयां दी और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री तो बड़े ही प्रभावित हुए, हालांकि ब्रिटिश शासन के प्रति कुछ कड़वी; किन्तु सत्य बातें कही गई थीं। महाराजा बड़ौदा की खुशी का तो ठिकाना न रहा। उन्होंने अपनी राजशाही पत्नी को यह भावना व्यक्त की कि डॉ० अम्बेडकर की पढ़ाई-लिखाई पर जो धन उन्होंने खर्च किया था वह आज वसूल हुआ। अतएव महाराजा ने शाम को अपने मित्रों को दिए जाने वाले भोज में डॉ० अम्बेडकर को भी सहर्ष आमंत्रित किया और इस प्रकार महाराजा गायकवाड़ तथा अम्बेडकर की एक विचित्र परिस्थिति में कई वर्षों के बाद मुलाकात हुई। ब्रिटेन के अखबारों ने भी दलितों के नेता, डॉ० अम्बेडकर की ओर ध्यान दिया। अपने नागपुर भाषण के लिए, कुछ ब्रिटिश नेताओं ने उनकी आलोचना की थी, पर गोलमेज में उनकी तकरीर सुनकर वे भी उनकी प्रशंसा करने लगे।

सभी प्रतिनिधियों के भाषण सुनने के पश्चात्, गोलमेज परिषद् ने नौ उप-समितियों की स्थापना की जिनमें से अधिकतर में डॉ० अम्बेडकर का नाम था। प्रान्तीय उप-समिति में बोलते हुए डॉ० साहब ने चिन्तामणि के दृष्टिकोण का समर्थन किया कि भारत के किसी भी प्रान्त में द्वितीय सदन का निर्माण बिलकुल अनावश्यक है। रक्षा-समिति की रिपोर्ट तैयार करते समय, डॉ० अम्बेडकर ने यह कहा कि सेना में भर्ती के द्वार सभी भारतीयों के लिए खुले होने चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो डॉ० साहब ने किया वह दलित वर्गों के सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकारों की रक्षा हेतु 'मौलिक अधिकारों का घोषणा पत्र' था। बड़ी योग्यता तथा दूरदर्शिता से उसे तैयार किया गया जिसे बाद में अल्पसंख्यक उप-समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। इस घोषणा पत्र में

यह कहा गया कि दलित वर्गों को राज्यों में अन्य नागरिकों की भांति समान नागरिकता प्रदान की जाए, छुआछूत समाप्त की जाए, उनकी अयोग्यताओं का अन्त हो, कानून के समक्ष भेदभाव न रहे, प्रान्तीय विधान सभाओं में दलितों का न्यायोचित प्रतिनिधित्व हो, सेवाओं में उन्हें सुरक्षित स्थान मिलें, और दलित अपने प्रतिनिधियों को स्वयं पृथक् निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत चुनें। डॉ० अम्बेडकर ने घोषणा पत्र की कुछ प्रतियाँ भारत में अपने मित्रों तथा सङ्गठनों को भेजीं ताकि वे उन मांगों के समर्थन में ब्रिटिश प्रधानमंत्री को ज्ञापन भेजें। तदनुसार, बहुत से तार तथा पत्र प्रधानमन्त्री को भेजे ताकि भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था में दलित वर्गों की मांगों को न्यायोचित स्थान मिले। फलत: अल्पसंख्यक उपसमिति की रिपोर्ट के अन्त में यह अङ्कित किया गया—" भारत के अल्पसंख्यक दलित वर्ग दृढ़ प्रतिज्ञ हैं कि जब तक उनकी मांगों को न्यायोचित ढंग से स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक वे भारत के लिए किसी भी आत्म-शासित संविधान को सहमति प्रदान नहीं करेंगे।"

नि:सन्देह डॉ० अम्बेडकर की विद्वता तथा सफल प्रतिनिधित्व से सभी क्षेत्रों के लोग प्रभावित हो रहे थे। उधर डॉ० साहब ने, गोलमेज परिषद् के समय, विदेशी पत्रों में लेख लिखकर, संवाददाताओं को मुलाकातें देकर, विभिन्न देशों के राजनेताओं तथा कूटनीतिज्ञों के साथ विचार-विनिमय करके और सभाओं में व्याख्यान देकर, हिन्दूधर्म तथा समाज में हो रहे अछूतों पर अन्यायों तथा अत्याचारों का पर्दाफाश किया। उन्होंने अछूतों की स्थिति का जो सच्चा चित्रण किया, उससे सभी प्रतिनिधि प्रभावित थे। विदेशों के लोग भी परिचित हुए कि भारतीय समाज में वास्तविक स्थिति क्या है। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों की ज्वलंत समस्या को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लाकर रखा। फलत: देश-विदेश के लोग, नेता एवं विद्वान् अछूतों की दयनीय स्थिति की ओर से अपनी आँखें नहीं मीच सके। उन्होंने विवश होकर, दलितों की समस्या को स्वीकार किया और उसके समाधान पर भी बल दिया।

निरन्तर वाद-विवाद के पश्चात् भी गोलमेज परिषद् में हिन्दू-मुस्लिम समझौता न हो सका क्योंकि दोनों पक्ष अधिक से अधिक स्थान प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। प्रथम गोलमेज परिषद् का प्रमुख योगदान यह रहा कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में संगठित भारत की धारणा का विकास संभव बनाया जाए। दूसरा ठोस नतीजा यह निकला कि भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर दलित वर्गों का निश्चित उद्भव सामने आया और डॉ० अम्बेडकर ने जो उनके दु:ख-दर्दों का चित्रण किया, उससे विश्व-जनमत उनके पक्ष में उभरने लगा। हिन्दू-मुस्लिम समझौता न होना एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी और एक दृष्टि से अच्छा ही था, क्योंकि भारत के सबसे लोकप्रिय राजनीतिक दल, कांग्रेस, का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। 19 जनवरी, 1931 को गोलमेज परिषद् का प्रथम अधिवेशन समाप्त हुआ। डॉ० अम्बेडकर 13 फरवरी, 1931 को लन्दन से रवाना हो गए। 27 फरवरी को वह बम्बई आ गए। 'अम्बेडकर सेवा दल' और दलितों के विभिन्न

संगठनों ने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें अछूतों के मसीहा की संज्ञा दी। डॉ० अम्बेडकर ने अपने लोगों को लन्दन की हलचलों से अवगत कराया। उधर बम्बई सरकार ने अछूतों की पुलिस विभाग में भर्ती प्रारम्भ कर दी जो डॉ० साहब के सतत् प्रयासों का ही फल था। डॉ० साहब ने बतलाया कि दलितों द्वारा समर्थन एवं आन्दोलन के कारण ही वह कुछ प्राप्त करने में सफल हुए हैं। साथ ही, उन्होंने यह चेतावनी दी कि उन्हें चुपचाप नहीं बैठना चाहिए, बल्कि अपने संघर्ष को निरन्तर बनाए रखना चाहिए।

जब डॉ० अम्बेडकर लन्दन से भारत वापस लौटे तो यहां का राजनीतिक वातावरण बड़ी तेजी से परिवर्तित हो रहा था। गोलमेज परिषद् में, ब्रिटिश प्रधान-मंत्री ने अपने अन्तिम भाषण में यह सुझाव दिया था कि कांग्रेस दल के नेताओं से समझौता किया जाए जो जेल में बन्द पड़े थे। अतः सभी कांग्रेस नेताओं को 26 जनवरी 1931 को जेल से रिहा कर दिया। उधर काफी विचार-विमर्श के पश्चात्, गांधी-इर्विन के बीच 5 मार्च 1931 के दिन दिल्ली में समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप, सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और गांधी जी ने द्वितीय गोलमेज परिषद् में शामिल होना स्वीकार किया। गांधी-इर्विन समझौता के परिणामस्वरूप भारत की राजनीतिक स्थिति नए मोड़ की ओर गतिशील होने लगी थी।

उधर नासिक में, जो धर्म सत्याग्रह अधूरा रह गया था, उससे सम्बन्धित एक नया संकट पैदा हो गया। नासिक के दलित वर्गों के नेता, बाबूराव गायकवाड़ ने उस आन्दोलन को पुनः छेड़ने का काम प्रारम्भ कर दिया और मन्दिर प्रवेश के अधिकार को प्राप्त करने का निश्चय किया। निश्चित् कार्यक्रम के अनुसार, डॉ० अम्बेडकर भी वहां 14 मार्च 1931 को पहुँच गए। उन्होंने एक सभा में अछूतों को आदेश दिया कि भले ही उनमें जोश और उत्साह है, उन्हें संयम तथा अहिंसात्मक विधि का परित्याग किसी हालत में नहीं करना है। रविवार के दिन अछूतों ने एक बहुत बड़ा जलूस निकाला, परन्तु कहीं-कहीं सवर्ण हिन्दुओं ने उन पर पत्थर भी फेंके। नासिक जिला कांग्रेस के अध्यक्ष ने कट्टर हिन्दुओं का पक्ष लिया और उधर कांग्रेस के करांची अधिवेशन में यह घोषणा की गई कि कांग्रेस धार्मिक मामलों में तटस्थता की नीति अपनायेगी। इस अधिवेशन के कुछ समय पूर्व, गांधी जी ने बम्बई में यह कहा था कि वह स्वतंत्रता मिल जाने के पश्चात्, अछूतों द्वारा मन्दिर प्रवेश के लिए संघर्ष करेंगे। निश्चित रूप से, यह गांधीजी का एक स्पष्ट आदेश ही था जिसका परिपालन करांची अधिवेशन में किया कि कांग्रेसी मंच पर धार्मिक विषयों पर चुप्पी साधी जाए। कांग्रेस तथा गांधी दोनों ही दलित वर्गों को राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष में तो घसीटना चाहते थे, पर उनकी विकट समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देने में कतरा रहे थे।

गान्धी के साथ संघर्ष :

प्रथम गोलमेज परिषद् के पश्चात् देश का राजनीतिक वातावरण कुछ

गरम हो गया था। जब डॉ० अम्बेडकर दलित जाति के छात्रावास का प्रबन्ध देखने अहमदावाद गए, तो स्टेशन पर कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने उन्हें काले झण्डे दिखाए। इसी बीच द्वितीय गोलमेज परिषद् के लिए, प्रतिनिधियों के नामों की घोषणा हो रही थी। जुलाई 1931 के तीसरे सप्ताह में, अम्बेडकर, शास्त्री, सप्रू, जयकर, सीतलवाड, मालवीय, नायडू, गांधी, मिर्जा ईस्माइल, जिन्ना, रामस्वामी मुदालियर और अन्यों को आमंत्रित किया गया। प्रथम गोलमेज परिषद् के समय जानबूझकर डॉ० अम्बेडकर का नाम फेड्रल स्ट्रक्चर कमेटी में नहीं रखा था क्योंकि उनके निर्भीक स्वभाव और देशभक्ति से ओतप्रोत भाषणों ने सम्भवत: अंग्रेज प्रतिनिधियों को नाराज कर दिया था। अबकी बार उनका नाम इस समिति में प्रारम्भ से ही रख लिया गया। यह वह समिति थी जिसकी देखरेख में भारत के नए संविधान का प्रारूप तैयार होना था। डॉ० अम्बेडकर को चारों ओर से बधाइयाँ प्राप्त हुईं क्योंकि यह एक अछूत नेता का बहुत बड़ा अन्तरराष्ट्रीय संम्मान था।

उधर गांधीजी ने एक रहस्यमय स्थिति पैदा कर रखी थी। यह पता नहीं लग रहा था कि वह लन्दन जायेंगे अथवा नहीं। वह अम्बेडकर की स्थिति देखकर कुछ परेशान से हुए और 6 अगस्त 1931 को एक पत्र द्वारा गांधीजी ने डॉ० अम्बेडकर को यह सूचित किया कि वह उनसे मिलना चाहते हैं। गांधीजी ने लिखा कि यदि संकोच न करें तो वह उन्हीं के निवास-स्थान पर रात के आठ वजे आ सकते हैं। डॉ० साहब उस दिन सांगली से लौटे थे और उन्हें बुखार था। शाम तक वह बुखार 106 डिग्री तक बढ़ गया। अतएव उन्होंने गांधी जी को सूचित किया कि बुखार समाप्त होने के बाद वे स्वयं उनसे मिल लेंगे। जब बुखार ठीक हो गया तो डॉ० अम्बेडकर 14 अगस्त को दो वजे मणि-भवन में अपने सहयोगियों सहित देवराव नाईक, शिवतारकर प्रधान, बाबूराव गायकवाड़ और कदरेकर, गांधी से मिलने गए। उस समय गांधी अन्य लोगों से भी मिल रहे थे। फलत: उन्होंने डॉ० अम्बेडकर की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। डॉ० साहब मिस स्लॉदे तथा अन्य लोगों से बातें करते रहे। थोड़ी देर बाद दोनों नेताओं की आँखें मिलीं और कुछ औपचारिक बातों के पश्चात् उनके बीच वार्तालाप प्रारम्भ हुआ जिसका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है :

गाँधी—अच्छा, डाक्टर ! तुम्हें क्या कुछ कहना है ?

अम्बेडकर—आपने मुझे अपने विचार बतलाने बुलाया है। कृपया आप ही बतलाएँ आपको क्या कुछ कहना है ? अथवा आप मुझसे कुछ प्रश्न करें तो मैं उनका उत्तर दूँगा।

गांधी—(अम्बेडकर की ओर घूरते हुए) मैंने सुना है, आपको मुझसे और कांग्रेस से कुछ शिकायतें हैं, जब आप पैदा भी नहीं हुए थे तब से मैं अछूतों की समस्या के बारे में सोच रहा हूँ। बड़ी मुश्किल से मैंने इस समस्या को कांग्रेस मञ्च पर ला पटका है। इतना ही नहीं कांग्रेस ने अछूतोद्धार के लिए 24 लाख रुपया खर्च किया। मुझे आश्चर्य है

कि फिर भी आप मेरा तथा कांग्रेस का विरोध कर रहे हो। आप अपने दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराने के लिए कुछ कहना चाहें, कहें। आप स्वतन्त्र हैं।

अम्बेडकर—यह बात सही हो सकती है कि मेरे पैदा होने से पूर्व आप अछूतों की समस्या के बारे में सोच रहे होंगे। सभी वृद्ध पुरुष आयु-पर आधारित तर्क देते हैं और यह भी सत्य है कि आपके कारण कांग्रेस ने, इस समस्या को स्वीकार किया; लेकिन मैं स्पष्टतः कहता हूँ कि कांग्रेस ने अछूतों की समस्या को पहचानने के सिवाय और कोई काम नहीं किया है। जो 24 लाख रुपया कांग्रेस ने खर्च किया वह सब निरर्थक है। इतने ही धन से मैं अछूतों में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला देता। ऐसी स्थिति में आप पहले मेरे से सम्पर्क करते तो अच्छा रहता। कांग्रेस ने यह सब दिखावा के रूप में किया है। वह अछूतों की समस्या के प्रति निष्ठावान् नहीं है। उसने कांग्रेसी कार्यकर्ता बनने के लिए, छुआछूत निवारण की ऐसी कोई शर्त नहीं रखी जैसी कि खादी के वस्त्र पहनने की। कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए खादी की तरह छुआछूत निवारण की शर्त लागू की होती तो नासिक जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने अछूतों के मन्दिर प्रवेश का विरोध न किया होता। कांग्रेसी अपने घरों में अछूतों को नौकरी नहीं देते और न ही अछूत विद्यार्थियों की सहायता करते हैं। कांग्रेस शक्ति चाहती है और इस-लिए छुआछूत निवारण की शर्त लगाना कोई बुद्धिमता नहीं होती। वह सिद्धान्त की अपेक्षा सङ्गठन में अधिक रुचि लेती है। आप कहते हैं अंग्रेजी सरकार का हृदय परिवर्तन नहीं हुआ; लेकिन हमारी समस्या के प्रति भी तो सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन नहीं हुआ। जब तक वे अपनी जिद् पर अड़े रहेंगे, तब तक हम न कांग्रेस का और न ही हिन्दुओं में विश्वास करेंगे। हम महान् नेताओं तथा महात्माओं में आस्था रखने के लिए तैयार नहीं हैं। हम तो आत्म-सहायता और आत्म-सम्मान में विश्वास करते हैं। मैं स्पष्टतः कहता हूँ, जैसा कि इतिहास बतलाता है, महात्माओं ने मरीचिकाओं के समान धूल को तो उठाया, पर समाज के स्तर को नहीं। कांग्रेस क्यों हमारे आन्दोलन का विरोध करती है और क्यों मुझे देशद्रोही कहती है ?

इस अवसर पर डॉ० अम्बेडकर कुछ उत्तेजित हो गए। उनका चेहरा कुछ गरम हो गया और उनकी आँखें तेज हो गईं। उन्होंने एक विराम रखा और फिर ओजस्वी ध्वनि में कुछ कहने में लीन हो गए।

अम्बेडकर—गांधीजी, मेरी कोई मातृभूमि नहीं है।

गांधी—(आश्चर्य चकित होकर बीच में बोल उठे) आपकी मातृभूमि है। गोल-मेज परिषद् में आपके कार्य की मुझे जो रिपोर्ट मिली उससे आप एक

महान् देशभक्त सिद्ध हुए हैं, यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

अम्बेडकर—आप कहते हो मेरी मातृभूमि है; परन्तु मैं कहता हूँ कि मेरी मातृभूमि नहीं है। जिस देश और धर्म में हमें कुत्तों, बिल्लियों से भी बदतर माना जाता है, जिस देश तथा धर्म में हम सार्वजनिक स्थानों पर पानी नहीं पी सकते, उस देश को मैं अपना देश कैसे कहूँ? उस धर्म को मैं अपना धर्म कैसे मानूँ? कोई भी आत्म-सम्मान से ओतप्रोत अछूत इस देश को अपना देश नहीं कह सकता। मुझ पर देशद्रोही होने का आरोप लगाया जाता है, पर मैं बुरा नहीं मानता, क्योंकि सवर्ण हिन्दुओं पर इसका उत्तरदायित्व है। देश के हित में कोई घातक कार्य न हो मुझे इसका पूरा ध्यान है, पर मैं अछूतों के न्यायोचित अधिकारों के लिए, निरन्तर संघर्ष करता रहूँगा।

वातावरण कुछ गरम एवं गम्भीर हो गया। उपस्थित सज्जनों के चेहरे बदल गए। गांधी जी बेचैनी महसूस करने लगे। वह चाहते थे कि डॉ० अम्बेडकर की बातों को कोई नया मोड़ दिया जाए। उसी बीच डॉ० साहब ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया जिसके लिए यह मीटिंग की गई थी।

अम्बेडकर—प्रत्येक आदमी जानता है कि मुस्लिम और सिख, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से अछूतों की अपेक्षा बहुत कुछ आगे हैं। प्रथम गोलमेज परिषद् ने मुसलमानों के पृथक् राजनीतिक अधिकारों को स्वीकृति दी और उनको साम्प्रदायिक संरक्षण भी प्रदान किया है। कांग्रेस मुसलमानों की मांगों से सहमत है। प्रथम परिषद् ने अछूतों के भी पृथक् राजनीतिक अधिकारों को स्वीकृति दी है और राजनीतिक संरक्षण तथा संख्यानुसार प्रतिनिधित्व की सिफारिश भी की है। अछूतों के लिए तो यह लाभदायक है। आपकी राय क्या है?

गांधी—मैं हिन्दुओं से अछूतों की राजनीतिक पृथक्ता के विरुद्ध हूँ। वह एक प्रकार से आत्मघात ही होगा।

अम्बेडकर—(उठते हुए) मैं आपके स्पष्ट मत के लिए आपका आभारी हूँ। यह अच्छा ही हुआ कि इस महत्त्वपूर्ण समस्या के सम्बन्ध में हम कहां खड़े हैं, यह मैं जान पाया। अच्छा, अब मैं आपसे विदा लेता हूँ।

इन दो महान् नेताओं की मुलाकात एक गम्भीर वातावरण में परिणत हो गई और किसी ठोस निर्णय के बिना ही, उसका अन्त हो गया। उस समय गांधीजी भारतीय राजनीति के बॉस, एक अधिनायक थे और भारतीय जन-समूहों के ताज-विहीन राजा थे। लोग उनके चमत्कारी व्यक्तित्व से प्रभावित थे। अतएव गांधीजी कि बातों का उलट कर जवाब देना एक स्थाई प्रकोप तथा कटुता को आमंत्रित करने के समान था और वह भी कोई अछूत नेता उनके साथ उलझे, यह गांधीजी की कल्पना से परे था; लेकिन दो नेताओं के बीच विरोध की चिंगारी सुलग गई और

इस प्रकार उपर्युक्त मुलाकात से गांधी तथा अम्बेडकर के बीच एक ऐतिहासिक संघर्ष का अध्याय प्रारम्भ हो गया। इस मुलाकात के पूर्व गांधी जी यह समझे बैठे थे कि डॉ० अम्बेडकर दलित जाति से नहीं थे और जब तक वह लन्दन के लिए रवाना न हो गए तब तक उन्होंने यही सोचा कि कोई ब्राह्मण है जो अछूतों की समस्या में गहरी रुचि ले रहा है और इसलिए वह ऐसी नाराजगी से बातें करता है।

उसी मुलाकात के दिन शाम को डॉ० अम्बेडकर का लन्दन जाने के लिए विदाई समारोह हुआ जिसमें उन्होंने कहा—"यदि तुम स्वयं अपनी दासता पूर्णतः समाप्त करने की प्रतिज्ञा पर डटे रहते हो और उसके लिए कष्ट एवं कठिनाइयां सहने को तैयार हो तो उस कार्य की सफलता में मुझे समर्थ बनाने का श्रेय आपका ही होगा। आप सब स्त्री-पुरुषों का मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम मेरे लिए प्रेरणा-स्रोत है।" द्वितीय गोलमेज परिषद् के सन्दर्भ में बोलते हुए डॉ० साहब ने कहा कि "120 सदस्यीय परिषद् में हम केवल दो सदस्य हैं; लेकिन विश्वास करो हम आपके लिए जमीन एवं आसमां को एक कर देंगे। आज दोपहर गांधी से मैंने बात की। वर्त्तमान स्थिति में, वह आपके हितों की रक्षा हेतु कुछ नहीं कर सकते। हमें स्वयं अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए और हमें अपने अधिकारों के लिए जितना संभव हो उतना तगड़ा संघर्ष करना चाहिए। अतएव आप अपने आन्दोलन को जारी रखो और अपनी शक्तियों को संगठित करो। संघर्ष के द्वारा ही आप शक्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाओगे।" दलितों के लिए यह एक प्रकार से आदेश था कि वे अपने संघर्ष में किसी प्रकार की ढील न डालें।

डॉ० अम्बेडकर 15 अगस्त, 1931 की द्वितीय गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन रवाना हो गए, जो 7 सितम्बर से प्रारम्भ होने वाली थी। इस परिषद् में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य फेडरल स्ट्रक्चरल कमेटी तथा मॉइनॉरिटीज कमेटी को करना था। महात्मा गांधी ने 15 सितम्बर को संघ योजना समिति में अपना प्रथम भाषण दिया जिसमें उन्होंने यह दावा किया कि कांग्रेस सभी भारतीय हितों एवं वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है और कांग्रेस ही सबसे शक्तिशाली संस्था है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस न केवल मुसलमानों, सिखों और पारसियों का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि अछूतों का भी नेतृत्व वह करती है क्योंकि छुआछूत मिटाने की योजना कांग्रेस के राजनीतिक मञ्च पर लाई जा चुकी है। कांग्रेस सभी भारतीय पुरुषों का ही नहीं, वरन् समस्त नारियों का प्रतिनिधित्व करती है, चूंकि वह (गांधी) स्वयं कांग्रेस के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, इसलिए यह समझना चाहिए कि वह सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र के प्रमुख प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार गांधी जी ने अपने प्रथम वक्तव्य में यह प्रदर्शित कर दिया कि कांग्रेस एवं गांधी ही भारत के प्रधान प्रतिनिधि हैं।

गोलमेज परिषद् में सभी अल्पसंख्यकों तथा राजशाही राज्यों के प्रतिनिधि अधिक से अधिक अपने-अपने हितों की वकालत कर रहे थे। उधर हिन्दू-मुस्लिम गतिरोध पैदा हो गया था। गांधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम अर्थात् कांग्रेस-लीग समझौते के लिए भारी प्रयत्न किए। उन्होंने मुसलमानों को कोरा चेक दे दिया कि वे जो

कुछ चाहें मांग लें; परन्तु वह सफल न हो पाए। साथ-साथ ही मुसलमान, अछूत, भारतीय ईसाई, एंग्लोइण्डियन और यूरोपियन, इनके प्रतिनिधियों ने परस्पर मिल कर अल्पसंख्यक समझौता तैयार किया जिसे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को प्रस्तुत किया। इस समझौते की महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसमें अछूतों के अलग प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया था। विभिन्न जातियों के प्रतिनिधित्व को लेकर गांधी ने अल्पसंख्यक समिति में भाषण देते हुए कहा—'हिन्दू-मुस्लिम, सिख समस्या के अन्तर्गत जो विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है उसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया है। उसके लिए ठोस ऐतिहासिक कारण भी हैं; लेकिन कांग्रेस उस फार्मूला को किसी भी रूप में अन्य अल्प-संख्यकों पर लागू नहीं होने देगी। मैंने विशेष हितों की सूची को सुना है। जहां तक अछूतों का सम्बन्ध है, मैं उसे नहीं समझ पाया जो कुछ डॉ० अम्बेडकर ने कहा है; लेकिन वास्तव में अछूतों के हितों के प्रतिनिधित्व में कांग्रेस डॉ० अम्बेडकर के साथ उत्तरदायित्व को वहन करेगी। अछूतों के हित कांग्रेस को उतने ही प्रिय हैं जितने कि भारत में अन्यों के हित। इसलिए मैं शक्तिशाली ढंग से अछूतों के लिए किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का विरोध करूँगा।'

डॉ० अम्बेडकर ने उपर्युक्त घोषणा को गांधी तथा कांग्रेस द्वारा अछूतों के विरुद्ध संघर्ष की संज्ञा दी। उन्होंने अल्पसंख्यक समिति में यह स्पष्ट कह दिया—"प्रारम्भ में, मैं निरपेक्षतः स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूँगा कि जो लोग समझौते का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि वे सब कुछ नहीं हैं। गांधी और कांग्रेस की स्थिति कुछ भी हो; लेकिन वे हमारे बीच सङ्गठन स्थापित करने की स्थिति में कतई नहीं है। मैं यह बलपूर्वक कहता हूँ कि जो कुछ विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए, कोई दे और किसी को दे; किन्तु वह मेरे हिस्से में से नहीं दिया जाना चाहिए।" इस पर अल्पसंख्यक समिति के अध्यक्ष श्री मॅक्डोनाल्ड ने कहा कि "डॉ० अम्बेडकर की स्थिति, उनके सामान्य शानदार ढंग से पूर्णतः स्पष्ट है। उन्होंने किसी प्रकार का सन्देह अब छोड़ा नहीं है।" जैसा कि गाँधी जी के विचार से स्पष्ट था। उनको डॉ० अम्बेडकर की बुलंद आवाज अच्छी न लगी और वह ऐसी सांठ-गाँठ में लग गए ताकि अछूतों को पृथक् प्रतिनिधित्व न मिल सके।

निस्सन्देह, गांधी और अम्बेडकर दोनों महान् नेता थे और महान् देशभक्त भी, पर अछूतों की समस्या को लेकर उन दोनों में मौलिक मतभेद थे। गांधी जी ने अछूतों के पृथक् प्रतिनिधित्व का विरोध किया। इसलिए डॉ० साहब गांधी जी से बहुत नाराज थे। महात्मा गांधी का यह दावा कि वह बहुसंख्यक अछूतों के प्रतिनिधि हैं, डॉ० अम्बेडकर को बुरी तरह खटका था। गांधी जी का यह कहना भी कि कांग्रेस तथा महात्मा के अतिरिक्त सभी प्रतिनिधि जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं बल्कि सरकार द्वारा चुने गए नुमाइन्दे हैं, उन सबका अपमान था जो भारत की ओर से गए थे। प्रारम्भ से ही दोनों एक दूसरे से सतर्क एवं सचेत थे। लन्दन में सरोजिनी नायडू के निवास-स्थान पर गांधी, अम्बेडकर की मुलाकात हुई, पर दोनों में कोई समझौता नहीं हो पाया था। दोनों ही नेता अपनी-अपनी

धुन के पक्के थे। डॉ० अम्बेडकर ने अल्पसंख्यक समिति में कहा—'मैं अन्यों के विषय में कुछ नहीं कह सकता; परन्तु मैं कैसा भी प्रतिनिधि हूँ, पूर्णतः अपने समुदाय के हितों का प्रतिनिधित्व करता हूँ। इस सम्बन्ध में किसी भी व्यक्ति को गलतफहमी का शिकार नहीं होना चाहिए।""कांग्रेस तथा गांधी का यह दावा कि वे दलित वर्गों के प्रतिनिधिहैं, बिलकुल बहुत से गलत दावों में से एक है।" उधर भारत से ढेर सारे तार जा रहे थे कि अछूतों के एकमात्र प्रतिनिधि डॉ० अम्बेडकर ही हैं। गांधी जी के पक्ष में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने कुछ तार भेजे; परन्तु लन्दन में यह सिद्ध हो चुका था कि डॉ० अम्बेडकर अछूतों के नेता हैं क्यों कि उनके तर्कों तथा व्याख्यानों में अछूतों की स्थिति के विश्लेषण में जो मार्मिकता तथा अपनत्व था, वह गांधी जी की तकरारों में नहीं थे। अतएव अम्बेडकर ने गांधी जी के उस मञ्च को नष्ट कर दिया जहाँ वे अछूतों के स्वाभाविक नेता बनने का प्रयास कर रहे थे।

लन्दन से डॉ० अम्बेडकर ने टाइम्स ऑफ इण्डिया को 12 अक्टूबर को एक पत्र भेज कर अपनी स्थिति को स्पष्ट किया। उसमें उन्होंने लिखा—"हमें यह पूर्णतः ज्ञात हो गया है कि गांधी जी ने अपने मुस्लिम मित्रों के साथ समझौता करने तथा उनकी चौदह सूत्रीय मांगों को स्वीकार करने के लिए एक शर्त यह भी रखी है कि मुस्लिम नेताओं को अछूतों के पृथक् प्रतिनिधित्व का विरोध करना है। किसी महात्मा से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती। केवल दलित वर्गों का घोर शत्रु ही ऐसा कर सकता है। मि० गांधी न केवल दलित वर्गों के एक मित्र की भूमिका अदा नहीं कर रहे हैं, बल्कि वह एक ईमानदार शत्रु की भूमिका भी अदा नहीं कर रहे हैं।" डॉ० अम्बेडकर ने महात्मा जी की राजनीति को भलीभांति पहचान लिया कि वे एक समुदाय को दूसरे समुदाय से भिड़ाने का प्रयास कर रहे थे ताकि कांग्रेस का प्रभुत्व स्थापित हो जाए। डॉ० अम्बेडकर ने इस प्रकार अपने नेतृत्व का प्रदर्शन किया कि उन्होंने न केवल अछूतों के पृथक् प्रतिनिधित्व की मांग को स्वीकृत करवाया, बल्कि गांधी, कांग्रेस द्वारा घोषित अछूतों के नेतृत्व का मञ्च भी धूमिल कर दिया। इस पर मिस म्यूरील लेस्टर ने, जिनके साथ गांधी जी ठहरे थे।' डॉ० अम्बेडकर से मुलाकात की ताकि वे उनके दृष्टिकोण को भलीभांति समझ सके। वे दोनों नेताओं से प्रभावित हुई और उसने दोनों को चाय पार्टी में आमंत्रित किया ताकि उनके बीच कोई समझौता संभव हो सके। डॉ० साहब ने यह स्वीकार किया कि गांधी जी ने मानवता की दृष्टि से अछूतोद्धार का कुछ काम किया है और छुआछूत को मिटाने का प्रयास भी किया है; किन्तु दोनों में मौलिक अन्तर है वहाँ, जहाँ वे अछूतों की समस्या का कोई स्थायी समाधान ढूढ़ते हैं।

जब गोलमेज परिषद् की कार्यवाही चल रही थी तब ब्रिटेन के राजा (किङ्ग-एम्परर) ने भारतीय प्रतिनिधियों को 5 नवम्बर के दिन स्वागत के रूप में चाय पानी पर आमंत्रित किया। वहां ऐसा निश्चय हुआ कि कुछ ही प्रतिनिधि बोलेंगे। गांधी भी वहाँ नंगे सिर, धोती तथा चप्पलें पहने मौजूद थे। थोड़ी देर

बाद जब राजा ने डॉ० अम्बेडकर से भारत में अछूतों की स्थिति के विषय में पूछताछ की और जब डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों की दयनीय स्थिति और हृदय-विदारक कहानियों का चित्र प्रस्तुत किया तो राजा का हृदय दहल गया। उनकी आँखें और चेहरा बदल गया। तब राजा ने डॉ० अम्बेडकर से उनके माता-पिता, जन्म-स्थान, शिक्षा-स्थान आदि के बारे में सहर्ष पूछताछ की और यह भी जानकारी प्राप्त की कि उन्होंने इतनी शिक्षा और कीर्ति किस प्रकार उपलब्ध की। राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ और डॉ० साहब को सहृदय बधाई दीं।

जब गांधी और कांग्रेस का विरोध डॉ० अम्बेडकर ने खुल कर भारत और लंदन में किया तो सवर्ण हिन्दुओं द्वारा नियंत्रित प्रेस ने डॉ० साहब की कटु आलोचना प्रारम्भ कर दी और शीघ्र ही वह भारत में हिन्दुओं द्वारा एक घृणित व्यक्ति के रूप में समझे जाने लगे। उन्हें न केवल ब्रिटिश राज्य का पिछलग्गू बल्कि एक राक्षस प्रतिक्रियावादी, देशद्रोही और हिन्दूधर्म विनाशक की संज्ञा दी गई। पत्रकार टी० ए० रमन को एक साथी यात्री ने यहाँ तक कहा कि यदि उसने किसी की हत्या की तो वह डॉ० अम्बेडकर ही होगा। पत्रकार ने बतलाया कि विद्वान् डॉक्टर के लिए और भी अपशब्दों का प्रयोग किया गया। डॉ० अम्बेडकर किसी से डरने वाले नहीं थे। उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि गांधी जी का गोलमेज परिषद् में व्यवहार ठीक नहीं रहा। जब चाहा तब किसी भी प्रतिनिधि को झटक दिया। गांधी जी ने प्रतिनिधियों को एकत्र करने के बजाए उनमें फूट डाल दी। अतएव एक कांग्रेसी प्रतिनिधि के रूप में, गांधी जी बड़े ही अयोग्य नेता सिद्ध हुए। डॉ० साहब की राय में संविधानिक तथा साम्प्रदायिक प्रश्नों के संदर्भ मे महात्मा जी ने बहुत सी आदर्शात्मक बातें कहीं; लेकिन कोई ठोस दृष्टिकोण या सुझाव प्रस्तुत नहीं किया।

डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों के हितों की जो प्रभावशाली वकालत गोलमेज परिषद् में की वह उनकी स्थिति को देखते हुए ठीक थी। सवर्ण हिन्दू राजनीतिक दासता से दुःखी थे तो अछूत लोग राजनीतिक एव सामाजिक दासता से अपने ही देश में पीड़ित थे। यदि 150 वर्ष की राजनीतिक गुलामी सवर्ण हिन्दुओं को ब्रिटिश सरकार के प्रति अतिवादी तरीके तथा हिंसात्मक क्रियाओं के लिए बाध्य कर सकती है, तो दलितों द्वारा गांधी, कांग्रेस तथा सवर्ण हिन्दुओं का विरोध न्यायोचित था, जो उनके पृथक् प्रतिनिधित्व का विरोध कर रहे थे और जिन्होंने दलितों को दो हजार वर्ष की गुलामी में रहते हुए पाया था। सवर्ण हिन्दू केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे पर यह डॉ० अम्बेडकर का महान् मिशन था कि अछूतों को मानवी स्तर पर लाकर, उन्हें मानवी अधिकार दिलाए जाएँ। उनका यह विश्वास था कि शोषक कभी रक्षक नहीं बन सकते।

गोलमेज परिषद् में डॉ० अम्बेडकर की स्थिति बड़ी नाजुक तथा विचित्र थी। वे मूक शोषित अछूतों के नेता थे और दलित वर्गों के हितों की रक्षा करना उनका धर्म था। जिन लोगों की स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व में आस्था थी, उनका यह कर्त्तव्य था कि वे डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत 'सुरक्षित सीटों तथा संयुक्त निर्वाचन' की मांगों का समर्थन करते; लेकिन कांग्रेसी नेताओं

ने समर्थन के बजाय, उनका विरोध किया और उसी तरह की मुस्लिम मांगों को दवाव में आकर स्वीकार कर लिया। डॉ० अम्बेडकर कई उलझनों में फंसे हुए थे। यदि वे ब्रिटिश राजनेताओं का विरोध करते और गांधी के साथ रहते तो वे अपने दलित भाइयों के लिए कुछ भी नहीं कर पाते। उधर गांधी दलितों को आशीर्वाद तथा कुछ मीठे शब्दों के सिवाय और कुछ नहीं दे पाते। यदि वे गांधी जी के साथ रहकर संयुक्त निर्वाचन के साथ विशेष प्रतिनिधित्व की मांग रखते तो गांधी जी मानने वाले नहीं थे क्यों कि वे इसके कट्टर विरोधी थे। यदि गांधी जी इतना मान लेते तो समस्या बहुत पहले ही सुलझ जाती। समस्या उलझती गई और अन्त में, अल्पसंख्यक समिति की एक मीटिंग हुई जिसमें सभी अल्पसंख्यक समूहों के प्रतिनिधियों ने एक प्रकार से समझौता कर लिया और दलित वर्गों के लिए विशेष रियायतें देने की दिशा में संकेत मिला।

सभी अल्पसंख्यकों—मुस्लिम, दलित वर्ग, ईसाई, सिक्ख, एंग्लो-इण्डियन तथा यूरोपियन, की ओर से एक स्मरण-पत्र प्रस्तुत किया गया जिसमें सभी के हितों की सुरक्षा हेतु प्रावधान रखे गए। इस स्मरण-पत्र के साथ साथ, अम्बेडकर और श्रीनिवासन ने एक पूरक स्मरण-पत्र में यह मांग रखी कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं में, जनसंख्यानुसार विशेष प्रनिनिधित्व दिया जाए। उन्होंने पृथक् निर्वाचन की मांग रखी, और यदि सुरक्षित सीटों के साथ संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था हो तो ऐसा जनमत द्वारा निश्चय हो और वह भी बीस साल से पहले नहीं। उनकी अन्तिम मांग यह थी कि अछूतों को दलित वर्गों को बजाय, 'अजाति हिन्दू', 'प्रोटेस्टेण्ट हिन्दू', या 'अपरम्परावादी हिन्दू' कहा जाए। इस प्रकार डॉ० साहब तथा श्रीनिवासन ने अछूतों की मांगों को अल्पसंख्यक समिति में रखकर, अल्पसंख्यक समझौते का समर्थन किया।

जब गांधी जी ने इस अल्पसंख्यक समझौते की ओर देखा जिसमें दलित वर्गों के लिए, पृथक् निर्वाचन की मांग का समर्थन था, तो वे विचलित हो गए और फिर अल्पसंख्यक समिति में दहाड़ने लगे; 'मैं जो पहले कह चुका हूँ उसे मैं दोहराना चाहूँगा अर्थात् कांग्रेस उस समाधान का स्वागत करेगी जो हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों को मान्य होगा, लेकिन वे अन्य किसी भी अल्पसंख्यक के लिए, विशेष प्रतिनिधित्व या निर्वाचन को स्वीकार नहीं करेगी।........मैं बड़े उत्तरदायित्व भाव से कहता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर का यह दावा उचित नहीं है कि भारत में रहने वाले समस्त अछूतों के वे नेता हैं। इससे हिन्दूधर्म में विभाजन पैदा होगा जिससे मुझे कोई संतुष्टि नहीं होगी। मुझे परवाह नहीं, यदि अछूत लोग इस्लाम या ईसाई-धर्म के स्वीकार करलें, मैं उसे सहन कर लूँगा, पर मैं यह नहीं चाहूँगा कि प्रत्येक गांव में विभाजन—छूत एवं अछूत की स्थिति रहे। जो अछूतों के राजनीतिक अधिकारों की मांग करते हैं वे भारत को नहीं जानते और यह भी नहीं जानते कि आज भारत में समाज का ढांचा क्या है? इसलिए, मैं अपनी पूरी शक्ति से कहता हूँ कि इस बात का विरोध करने वाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला रहूँ, तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर इसका विरोध करूँगा।"

डॉ० अम्बेडकर ने गान्धी जी को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। आगे क्या होगा ? यह समय पर छोड़ दिया; लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया था कि जिनको लेन-देन करना हो करें; परन्तु अपने अधिकारों के निर्धारण में हम किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करेंगे। जब ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने देखा कि कोई सर्वमान्य समझौता संभव नहीं हुआ है, तो उन्होंने जो गोलमेज परिषद् के अध्यक्ष थे, प्रतिनिधियों से कहा कि "आप सब, अल्पसंख्यक समिति के सदस्य, साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने के लिए मेरे पास प्रार्थना-पत्र भेजें; मुझे अधिकार दें कि मैं समस्या के हल की घोषणा करूँ और आप सब उस निर्णय को स्वीकार करें।" सबने इस सुझाव को मान लिया। गांधी जी ने अन्य सदस्यों के साथ उस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किए; परन्तु डॉ० अम्बेडकर ने नहीं, क्यों कि उन्हें अपनी मांगों की न्यायोचितता पर पूरा विश्वास था। तत्पश्चात् द्वितीय गोलमेज परिषद् 1 दिसम्बर, 1931 को समाप्त हो गई। उसका महत्त्वपूर्ण निर्णय यह रहा कि साम्प्रदायिक समस्या का हल जो ब्रिटिश प्रधानमंत्री घोषित करेंगे, वह निर्णय सबको मान्य होगा। अन्य शब्दों में गोलमेज परिषद् में गांधी तथा कांग्रेसी नेताओं की उपस्थिति ने राजनीतिक समाधान ढूँढने की बजाय अनेक प्रकार की उलझनें उत्पन्न कर दीं जिससे सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया में बहुत विलम्ब हुआ।

डॉ० अम्बेडकर 5 दिसम्बर को अमेरिका रवाना हो गये जहाँ वह अपने पुराने प्रोफेसरों से मिले, जिनका वह भारी सम्मान करते थे। वहाँ वे एक महीना रहे जहाँ से कई पेटियाँ पुस्तकों से भरी उन्होंने भारत भेजी। अमेरिका से फिर लंदन लौटे और 29 जनवरी, 1932 को बम्बई पहुँच गए। उस समय तक देश में राजनीतिक वातावरण काफी गरम हो चुका था। विशेषकर दलित समाज में जहाँ डॉ० अम्बेडकर का सर्वोपरि स्थान था, क्योंकि उन्हीं ने अछूतों की समस्या के अस्तित्व को स्वीकार करवा कर न्यायोचित समाधान पर अत्यधिक बल दिया था।

पूना-पैक्ट की राजनीति :

जब गांधी और अम्बेडकर दोनों नेता लन्दन से लौटकर भारत आए तो उनका शानदार स्वागत किया गया, लेकिन अपने-अपने क्षेत्रों में। एक बार अहमदाबाद में डॉ अम्बेडकर को काले झंडे दिखाए, जिसका बदला दलितों ने बम्बई में महात्मा गांधी को काले झंडे दिखाकर चुकाया। एक ओर कांग्रेस तथा सवर्ण हिन्दुओं के क्षेत्र में डॉ० अम्बेडकर को देश द्रोही तथा राजनीतिक स्वतंत्रता का विरोधी समझा जा रहा था, तो दूसरी तरफ गांधीजी को अछूतों के हितों का शत्रु और उनकी सामाजिक आज़ादी का कट्टर विरोधी कहा जा रहा था। दोनों की एक दूसरे के क्षेत्र में बड़ी निन्दा की जा रही थी। इस प्रकार देश का राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण उत्तेजना तथा उथल-पुथल की स्थिति में आ पहुँचा था।

देश की लगभग सौ संस्थाओं ने डॉ० अम्बेडकर को उनकी सेवाओं के लिए मान-पत्र भेंट किए। उनको एक जुलूस में भी, मौलाना शौकत अली के साथ, निकाला गया और परले बम्बई में एक आम सभा हुई जिसमें डॉ० अम्बेडकर ने कहा, "मुझे कांग्रेसी लोग देशद्रोही कहते हैं, क्यों कि मैं ने गांधी का विरोध

किया। मैं इस आरोप से कतई विचलित नहीं हूँ। वह निराधार, झूठा तथा विद्वेष-पूर्ण है। यह दुनियां भर के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी कि स्वयं गांधी ने आपकी दासता की जंजीरों को तोड़ने का तगड़ा विरोध किया। मुझे विश्वास है कि हिन्दुओं की भावी पीढियाँ जब गोलमेज परिषद् के इतिहास का अध्ययन करेंगी तो मेरी सेवाओं को प्रशंसा करेंगी।" उन्होंने कहा कि वह चार-पांच बार गांधीजी से लन्दन में मिले ताकि कोई ठोस समझौता हो जाए, पर उनकी हठ के कारण ऐसा संभव नहीं हुआ। यह रहस्योद्घाटन भी किया कि गांधी जी, अपने हाथों में पवित्र कुरान को लेकर, आगा खाँ से मिले और आग्रह किया कि वह दलित वर्गों को दिए गए अपने समर्थन को वापस ले लें; परन्तु आगा खां ने साफ इन्कार कर दिया कि वह ऐसा कदापि नहीं करेंगे। अन्त में, डॉ० साहब ने अछूतों से अपील की कि वे अपना संघर्ष जारी रखें क्यों कि उनके सतत संघर्ष से ही वह सफलता प्राप्त कर पाए हैं।

इधर कांग्रेसी लोग तथा सवर्ण हिन्दू तो डॉ० अम्बेडकर के विरुद्ध थे ही, उधर डॉ० मुंजे (मुस्लिम नेता) और एम० सी० राजा ने, जो केन्द्रीय विधान सभा में दलितों के प्रतिनिधि थे, मिलकर संयुक्त चुनाव तथा सुरक्षित सीटों के आधार पर एक समझौता कर लिया जो डॉ० साहब के लिए एक नया सिर दर्द बन गया। याद रहे, राजा ने भारत से लंदन को डॉ० साहब के समर्थन में तार भेजे और गांधीजी का विरोध किया था। निःसंदेह राजा और उनके समर्थक संयुक्त चुनाव और सुरक्षित सीटों के पक्ष में थे, हालांकि डॉ० साहब के समर्थन में पृथक् चुनाव का पहले समर्थन किया था। संभवतः राजा को, चूंकि गोलमेज परिषद् में आमंत्रित नहीं किया गया था और उधर गांधीजी के अछूत नेता के रूप में उभरने से, वह क्रुद्ध थे और इसी कारण, उन्होंने अपना स्वतंत्र बखेड़ा खड़ा कर दिया। लेकिन मद्रास में दक्षिण दलित जाति की संस्थाओं ने डॉ० अम्बेडकर का स्वागत किया और पृथक् प्रतिनिधित्व का समर्थन किया। राजा मुंजे के समझौते की कड़ी निन्दा की। डॉ० साहब ने भी कहा कि वह अपनी न्यायोचित मांगों के लिए सबल संघर्ष करते रहेंगे और अपने कार्य से जरा भी विचलित नहीं होंगे, भले ही उनके मार्ग में बाधाएं क्यों न आएं।

26 मई 1932 को डॉ० अम्बेडकर लन्दन रवाना हो गए ताकि साम्प्रदायिक निर्णय के पूर्व वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा मंत्री-मण्डल के अन्य सदस्यों से मिल सकें। इस मुलाकात को सबसे छिपा कर रखा गया ताकि विरोधी लोग कोई बखेड़ा खड़ा न कर दें। डॉ० साहब वहां सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिले जिनके समक्ष उन्होंने अछूतों के लिए, पृथक् प्रतिनिधित्व की जोरदार वकालात की। 17 अगस्त को डॉ० अम्बेडकर भारत वापस लौट आए और उधर 20 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री के साम्प्रदायिक निर्णय 'कम्यूनल एवार्ड' की घोषणा हुई। इस निर्णय में दलितों को पृथक् निर्वाचन मिला, प्रान्तीय विधान सभाओं में सुरक्षित सीटें स्वीकृत हुई और यह अधिकार भी मिला कि दलित स्वतंत्रतापूर्वक कहीं भी चुनाव में उम्मीदवार बन सकते हैं। पृथक् निर्वाचन के

अनुसार, दलितों को 'डबल वोट' देने का अधिकार मिला अर्थात् अपने प्रतिनिधियों को स्वयं के मतों से चुनना तथा अन्य प्रतिनिधियों के चुनाव में भी वोट देना। यह डॉ० अम्बेडकर की बड़ी भारी जीत थी। इस निर्णय में मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों तथा यूरोपियन्स को भी पृथक् चुनाव स्वीकृत हुआ था।

यह कम्यूनल एवार्ड एक बहुत बड़े राजनीतिक संकट में परिणत हो गया, जिसमें अम्बेडकर और गांधी बुरी तरह उलझ गए। जब गांधी गोलमेज परिषद् में होकर भारत आए तब उन्हें 4 जनवरी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और उन्हें यर्वदा जेल (पूना) में रखा गया था। गांधीजी को जब यह सब कुछ पता लगा तो उन्होंने जेल से ही ब्रिटिश प्रधान-मंत्री को सूचित किया कि वह 20 सितम्बर 1932 को अछूतों के दिए गये पृथक् प्रतिनिधित्व के विरुद्ध आमरण अनशन (उपवास) प्रारम्भ कर देंगे। वह चाहते हैं कि अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् न रखा जाए। वह हिन्दू समाज के आवश्यक अग हैं। साम्प्रदायिक निर्णय हिन्दू-धर्म तथा समाज को सदैव के लिए विभाजित कर देगा। अतः अछूतों का पृथक् चुनाव, जो स्वीकृत हुआ, उसे शीघ्र ही रद्द किया जाए अन्यथा वह अपनी जान की आहुति दे देंगे; लेकिन डॉ० साहब ने स्पष्ट कर दिया था कि पृथक् निर्वाचन का यह अर्थ कतई नहीं है कि अछूत हिन्दू-समाज या धर्म से भी पृथक् हो रहे हैं।

डॉ० अम्बेडकर को सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि गांधी ने ईसाइयों और मुसलमानों को उसी साम्प्रदायिक निर्णय में स्वीकृत 'पृथक् प्रतिनिधित्व' के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा और अछूतों को प्राप्त उसी अधिकार के विरुद्ध प्राण देने के लिए उतारू हो गए। दूसरे गांधी ने उस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर भी किए थे जिसमें ब्रिटिश प्रधानमंत्री को इस निर्णय का अधिकार सौंपा था और जिसे वह मानने के लिए बाध्य थे। लेकिन राजनीतिक दृष्टि से हताश होकर, महात्माजी आमरण उपवास के लिए तैयार हो गए। इससे सारे देश में चिन्ता और क्षोभ फैल गया। राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण में उत्तेजना आ गई। गांधीजी में निहित राजनीतिज्ञ, हिन्दुओं से अब यह आग्रह कर रहा था कि वे राष्ट्रवाद तथा देशभक्ति के नाम पर सङ्गठित हो जाएँ। निःसन्देह सारा देश एक सकट में पड़ गया कि महात्माजी की जान किस प्रकार बचाई जाए। बड़े-बड़े नेताओं की भाग-दौड़ शुरू हो गई और उन्होंने बम्बई में 19 सितम्बर को ही एक सभा बुलाई जिसमें पं० मालवीय, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, अणे, मुंजे, ठक्कर, सर चिमनलाल सीतलवाड, एम० सी० राजा, डॉ० सोलंकी, डॉ० अम्बेडकर आदि नेता शामिल होने को थे। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि हिन्दूधर्म के सामने कसौटी का समय आ गया है और गांधी पहले कह चुके थे कि "डॉ० अम्बेडकर हिन्दूधर्म के लिए, एक चुनौती है।" डॉ० अम्बेडकर यह जानते थे कि गांधी ने एक ख़तरनाक चाल चली है जिसे नाकाम करने के लिए, वह भी दृढ़-प्रतिज्ञ थे। डॉ० साहब ने एक विज्ञप्ति में यह स्पष्ट लिख दिया: "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं किसी भी विषय पर विचार-विमर्श के लिए तैयार हूँ; परन्तु दलितों के अधिकारों में किसी भी प्रकार

को कमी करने के लिए मैं कतई तैयार नहीं हूं। यह सभा, किसी ठोस सुझाव के अभाव में, निरर्थक है। उन्होंने आगे लिखा कि "यदि गांधी देश की आज़ादी के लिए इस प्रकार का पग उठाते तो यह बहुत अच्छा होता। यह बड़े दुःख की बात है कि महात्माजी केवल अछूतों के ही पृथक् चुनाव के विरुद्ध आत्म-दाह करना चाहते हैं, जब कि साम्प्रदायिक निर्णय में ईसाइयों, मुसलमानों, सिक्खों, एंग्लो-इण्डियन तथा यूरोपियन्स को भी पृथक् प्रतिनिधित्व स्वीकार हुआ है।" अपनी विज्ञप्ति के अन्त में, उन्होंने लिखा, "महात्माजी कोई अमर व्यक्ति तो नहीं है, न ही कांग्रेस अमर है। यह मानते हुए कि वह सर्व-दयालु शक्ति नहीं है और न ही उनका अस्तित्व सर्वत्र है। भारत में, बहुत से महात्मा हुए हैं जिनका प्रमुख लक्ष्य छुआछूत मिटाना और अछूतों को हिन्दू समाज में मिलाना था; परन्तु उनमें से प्रत्येक अपने मिशन में असफल रहा। महात्मा लोग आए हैं और गए भी हैं। लेकिन अछूत सदैव अछूत ही रहे।"

19 सितम्बर, 1932 के दिन आखिर हिन्दू नेताओं की बंबई में सभा हुई जिसमें सभी बड़े-बड़े नेता शामिल हुए। सभी नेताओं ने सर्वप्रथम डॉ० साहब से आग्रह किया कि वह बोलें। शान्त एवं गम्भीर स्वर में, विद्वान डॉक्टर ने कहा कि महात्माजी को अछूतों के पृथक् चुनाव के प्रति ऐसा दुराग्रह नहीं दिखाना चाहिए। यह तो हर व्यक्ति समझता है कि गांधीजी का जीवन बचाया जाए; लेकिन किसी ठोस सुझाव के अभाव में क्या समझौता संभव हो सकता है? डॉ० साहब ने सभी नेताओं से कहा कि वे गांधीजी के विकल्प को जानने का प्रयास करें ताकि ठोस विचार हो सके। लेकिन अम्बेडकर ने यह स्पष्ट कहा, "एक बात निश्चित है, गांधीजी का जीवन बचाने के लिए, मैं दलितों के हितों के विरुद्ध किसी प्रस्ताव के पक्ष में नहीं होऊंगा।" जब यह सब कुछ गांधीजी को सुनाया गया तब वह चुप रह गए और आखिर 20 सितम्बर, 1932 को अपना आमरण उपवास प्रारम्भ कर दिया जिससे सारे क्षेत्रों में एक तहलका मच गया जिसकी प्रतिक्रियाओं ने डॉ० अम्बेडकर को एक बड़े संकट में डाल दिया।

हिन्दू नेताओं की बंबई में सभा 22 सितम्बर तक चली। एक तरफ गांधी ने पूना की यरवदा जेल में आमरण उपवास प्रारम्भ कर दिया था और दूसरी ओर बंबई में विचार-विमर्श हो रहे थे। सभा में, गांधीजी के विचार स्पष्ट किए गए कि उन्हें दलित जाति को सुरक्षित सीटें देने में आपत्ति नहीं है। वह पृथक् चुनाव के विरुद्ध हैं। अन्त में, डॉ० अम्बेडकर ने भी यह कह दिया, "इस संदर्भ में, खलनायक होना मेरे भाग्य में बदा है। लेकिन जिसे मैं पवित्र कर्तव्य मानता हूं, उससे मैं विचलित नहीं होऊंगा। मैं अपने लोगों के प्रति विश्वासघात नहीं करूंगा, भले ही आप मुझे किसी निकट के बिजली के खम्भे पर फांसी चढ़ा दें।" डॉ० अम्बेडकर ने गुस्से में उन एकत्रित हिन्दू नेताओं की ओर देखकर कहा, "तुम कोरे सिद्धान्तवादी, पण्डित और देशभक्त, यदि तुम हमें अपना नहीं मान सकते, तो तुम्हें हम पर संयुक्त निर्वाचन थोपने का कोई अधिकार नहीं है अथवा अपने धर्म से हमें चिपकाए रखने का भी हक नहीं है।" हिन्दू नेताओं ने जब डॉ० अम्बेडकर से

यह आग्रह किया कि वह गांधीजी से जेल में मुलाकात अवश्य करें तो वह राजी हो गए।

21 सितम्बर, 1932 की शाम को, डॉ० अम्बेडकर, सप्रू, मालवीय, जयकर, बिड़ला, चुन्नीलाल मेहता और राजागोपालाचारी सहित, गांधी से मिलने पूना गए जहाँ उन्हें एक गम्भीर राजनीतिक संकट का निदान करना था। जब ये लोग यर्वदा जेल के अहाते के अन्दर गए तो गांधी एक लोहे की चारपाई पर एक घने आम के पेड़ के नीचे लेटे हुए थे। सरदार पटेल और सरोजिनी नायडू पास में बैठे थे। पास में पानी, सोडा तथा नमक रखे थे। ऐसा चित्र दिख रहा था मानो किसी चीज के खो जाने पर मातम मना रहे हों। जब डॉ० अम्बेडकर उनकी चारपाई के निकट पहुँचे तो वातावरण और भी शान्त हो गया। साथ के लोग सोच रहे थे डॉ० अम्बेडकर महात्मा से मिलते ही पिघल जायेंगे, लेकिन डॉ० दलितों को हृदय से प्रेम करते थे। उनका अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं था। अत: वह निर्भीक एवं साहसी थे। गांधी बहुत कमजोर स्थिति में अपनी चारपाई पर पड़े हुए थे। वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। सप्रू ने सारा किस्सा गांधी को कह सुनाया। मालवीय ने अपना हिन्दू दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् डॉ० अम्बेडकर धीमे स्वर में बोले –

"महात्माजी, आपने हमारे साथ बड़ा पक्षपात किया है।"

गांधी—"यह तो मेरा सदैव भाग्य ही रहा कि मैं पक्षपाती प्रतीत होता हूँ। मैं ऐसा होने से नहीं रोक सकता।"

तब डॉ० अम्बेडकर ने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। प्रभावशाली भाषा में अपने तर्कों को इस ढंग से डॉ० साहब ने दलितों के हितों की रक्षा हेतु रखा कि गांधी यह मान गए कि उनकी मांगें न्यायोचित हैं। अन्त में गांधीजी ने उत्तर दिया;

"मेरी पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। बहुत से मामलों में, जिन्हें आप मानते हैं, मैं आपके साथ हूँ, डॉक्टर! लेकिन आप कहते हैं, आपकी रुचि मुझे बचाने में है।

अम्बेडकर—"जी हाँ, महात्माजी, इस आशा के साथ कि यदि आप अपना सारा समय मेरे लोगों के उत्थान में लगाएँ, तो आप हमारे भी नायक बन सकते हो।"

गांधी—"अच्छा, यदि ऐसा है तो आप जानते हो मेरे जीवन को बचाने के लिए, आपको क्या करना चाहिए? उसे करो और मेरे जीवन को बचाओ। मैं जानता हूँ तुम उसे त्यागना नहीं चाहते जो तुम्हारे लोगों को साम्प्रदायिक निर्णय के अन्तर्गत मिला है। मैं आपकी चयनक व्यवस्था (पेनल सिस्टम) को स्वीकार करता हूँ, पर उसमें से एक दोष निकाल दो। तुम्हें चयनक व्यवस्था को सारी सीटों पर लागू करना चाहिए। आप जन्म से अछूत हैं और मैं अपने हृदय से। हमें एक तथा अविभाज्य

होना चाहिए। हिन्दू समाज को विघटन से बचाने के लिए, मैं अपने प्राण तक देने तैयार हूं।"

डॉ० अम्बेडकर ने गांधीजी के सुझाव को स्वीकार कर लिया और वह मुलाक़ात समाप्त हो गई। अन्य बातों को निश्चित करने के लिए, कुछ नेता लोग जुट गए। घण्टों तक विचार-विमर्श होता रहा। इसी बीच यह समाचार फैल गया कि महात्मा जी का स्वास्थ्य एक दम गिर गया और उनका शरीर बहुत कमजोर होता जा रहा है। गांधीजी का पुत्र, देवदास गांधी, आंखों में आँसू भरे, डॉ० अम्बेडकर से मिला और अपने पिता की करुणामय कहानी सुनाई। यह आग्रह भी किया कि वह जनमत की अवधि को लेकर हठ न करें। आखिर मामला गांधीजी के समक्ष फिर पेश किया गया। वह सुरक्षित सीटों तथा संयुक्त चुनाव को मान गए, पर इन की अवधि क्या हो अथवा जनमत द्वारा कितने समय बाद यह तय हो कि आरक्षण व्यवस्था कब समाप्त हो, ऐसा गतिरोध पैदा हो गया। डॉ० अम्बेडकर 15-20 वर्ष की अवधि पर और गांधी 5 वर्ष की अवधि पर डटे हुए थे। एक ओर सारे भारत से डॉ० अम्बेडकर को धमकी भरे पत्र, तार, आदि प्राप्त हो रहे थे और स्वयं उन्हें मारने की धमकी दी गई, और दूसरी ओर महात्मा गांधी ने यह अन्तिम निर्णय दे दिया कि "पांच वर्ष की अवधि अथवा मेरे प्राणों का अन्त।"

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर एक बड़े भारी धर्म-संकट में पड़ गए। दलितों के हितों की रक्षा करें अथवा महात्मा के प्राण बचाएं। अन्त में, राजागोपालाचारी तथा अन्य नेताओं की सहायता से यह निर्णय हुआ कि किसी जनमत के बिना सुरक्षित सीटों तथा संयुक्त निर्वाचन की अवधि दस साल रख दी जाए और अछूतों के पृथक् निर्वाचन का भी अन्त हो जाए। इधर डॉ० अम्बेडकर सहमत हो गए और जब गांधीजी को जेल में यह समझौता बतलाया तो वह बोले कि यह तो बड़ा अच्छा है। शीघ्र ही, उन्होंने अपनी अनुमति दे दी। फिर क्या था ? समझौते का प्रारूप तैयार कर लिया गया और 24 सितम्बर 1932 को यर्वदा करार (पूना पैक्ट) पर नेताओं ने हस्ताक्षर किए। दलित वर्गों की ओर से, डॉ० अम्बेडकर ने हस्ताक्षर किए, सवर्ण हिन्दुओं की ओर से, पं० मदनमोहन मालवीय ने। पैक्ट पर अन्य लोगों ने जैसे जयकर, सप्रू, जी० डी० बिड़ला, राजागोपालाचारी, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, रायबहादुर श्रीनिवासन, एम० सी० राजा, देवदास गांधी, बिसवास, राजभोज, पी० बालू, गवई, ठक्कर, सोलंकी, सी० बी० मेहता, बाखले तथा कामत ने भी हस्ताक्षर किए। राजागोपालाचारी तो इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने डा० अम्बेडकर से कलमों की अदला-बदली करके हस्ताक्षर किए।

इस समझौते की सूचना शीघ्र ही ब्रिटिश प्रधान-मंत्री को दे दी गई। बम्बई में एक आम सभा 25 सितम्बर, 1932 को हुई जिसमें मालवीयजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में यह निवेदन किया कि अब किसी को जन्म से अछूत नहीं समझा जाना चाहिए और देश में छुआछूत का अन्त होना चाहिए। वक्ताओं ने डा० अम्बेडकर को बधाइयाँ दीं। डा० साहब ने भी यह कहा, "मुझे दुःख

केवल इस का है कि महात्माजी ने यह दृष्टिकोण गोलमेज परिषद् में क्यों नहीं अपनाया ? यदि उस समय उन्होंने मेरे दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया होता, तो आज उनके लिए यह कष्ट भुगतना आवश्यक न होता।" पूना पैक्ट-की राजनीति एक विकट राजनीति थी जिससे कई बातें बाद में सामने उभर कर आईं।

प्रथम, पूना-पैक्ट ने सारे देश का ध्यानाकर्षित किया। इससे यह सिद्ध हो गया कि गांधी, कांग्रेस तथा कट्टर सवर्ण हिन्दू जो अभी तक डॉ० अम्बेडकर को दलित वर्गों का नेता स्वीकार नहीं करते थे, अब उन्हें अछूतों का प्रतिष्ठित नेता माना और गांधी जी के प्राण बचाने का श्रेय डॉ० साहब को ही दिया। द्वितीय, दोनों पक्षों को कुछ न कुछ खोना पड़ा। 71 सीटों के बजाय सवर्ण हिन्दुओं को अछूतों के लिए 148 सीटें देनी पड़ीं और उधर दलित वर्गों को अपने प्रतिनिधियों को अपने द्वारा चुने जाने का अवसर छोड़ना पड़ा। सवर्ण हिन्दू भी दलित प्रतिनिधियों के चुनाव में वोट देंगे। तृतीय, जब कभी भी गांधी जी में राजनीतिज्ञ की प्रेरणा जाग्रत हुई, उसने सरल चीजों को जटिल बना दिया। यर्वदा जेल में गांधी में राजनीतिज्ञ तो सफल हुआ, पर गांधी में महात्मा का रूप असफल रहा। पूना पैक्ट का चौथा परिणाम यह हुआ कि अछूतों की समस्या देशव्यापी स्तर पर ठोस ढंग से उभर कर आई और सवर्ण हिन्दू नैतिक दृष्टि से छुआछूत मिटाने और अछूतों की प्रगति के द्वार खोलने के लिए मजबूर हो गए। इस प्रकार गांधी ने न केवल कांग्रेस को बचाया, बल्कि हिन्दू धर्म तथा समाज को भी सदैव के लिए विघटित होने से बचा लिया जैसी कि उन्हें कम्यूनवल एवार्ड से आशंका थी।

25 सितम्बर, 1932 की बम्बई की सभा में हिन्दू नेताओं ने छुआछूत निवारण का एक प्रस्ताव पास किया जिसके फलस्वरूप 'छुआछूत-निवारण सघ' की स्थापना हुई जो आगे चलकर 'हरिजन सेवक सघ' कहलाया। संघ के अध्यक्ष जी० डी० बिड़ला और मंत्री अमृतलाल ठक्कर को बनाया गया। संघ के केन्द्रीय बोर्ड में आठ सदस्य थे जिनमें से तीन दलित जाति के डॉ० अम्बेडकर, एम० सी० राजा और रायबहादुर श्रीनिवासन थे। संघ ने यह निश्चय किया कि शान्तिपूर्ण ढंग से उन सामाजिक तथा धार्मिक बुराइयों का अन्त किया जाए जिनसे अछूत लोग पीड़ित हैं। संघ के अध्यक्ष बिड़ला तथा मंत्री ठक्कर ने संयुक्त वक्तव्य में कहा, "समझदार सनातनी हिन्दू छुआछूत-निवारण के उतने विरोधी नहीं है, जितने कि अन्तरजातीय रोटी-बेटी-व्यवहार के विरोधी हैं। इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि सङ्घ का उद्देश्य केवल अछूतों के शैक्षणिक, आर्थिक तथा सामाजिक उत्थान के लिए, रचनात्मक कार्य करना है। ऐसे कार्य में कट्टर सनातनी की भी सहानुभूति होगी। अन्तरजातीय रोटी-बेटी व्यवहार की बातें सङ्घ के कार्य क्षेत्र से बाहर हैं।" स्पष्टतः सवर्ण हिन्दुओं को खुश करने के लिए बिड़ला ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया था।

मन्दिर-प्रवेश का निषेध :

पूना-पैक्ट के पश्चात् सवर्ण हिन्दुओं में थोड़ा परिवर्तन आया और वे अछूतों

द्वारा मन्दिर प्रवेश के आन्दोलन की ओर ध्यान देने लगे। गांधी जी पहले मन्दिर-प्रवेश और अन्तर-जातीय खान-पान के विरुद्ध थे, पर पैक्ट के बाद वह भी इस ओर झुके। डॉ० अम्बेडकर, जिन्होंने नासिक धर्म सत्याग्रह का नेतृत्व किया था, अब दूसरी दिशा में दलितों को मोड़ना चाहते थे। 28 सितम्बर, 1932 को बंबई की एक सभा में डॉ० साहब ने दलितों से कहा—"मंदिर प्रवेश आंदोलन का उद्देश्य तो अच्छा है, परन्तु तुम्हें आध्यात्मिक उत्थान की अपेक्षा भौतिक उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। धन के अभाव में खाने को भोजन, पहनने को वस्त्र, अपने बच्चों को पढ़ाने के अवसर और दवा-दारू के लिए कोई सहायता नहीं मिलती इसलिए तुम्हें राजनीतिक लाभों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। तुम्हें अपनी शक्ति और सङ्घर्ष को सुदृढ़ बनाना चाहिए ताकि जीवन में भौतिक उन्नति भी हो।" इसी अवसर पर उन्होंने दलितों से निवेदन किया कि वे आंदोलन का केन्द्रीय सचिवालय बनाने के लिए धन एकत्र करें।

इसी प्रकार के विचार बेलासिस रोड, बंबई की एक और सभा में 1? अक्टूबर, 193? को डॉ० साहब ने व्यक्त किए "तुम्हारे गले में पड़ी तुलसी की माला तुम्हें सूदखोरों के चंगुल से नहीं बचा पाएगी। चूँकि तुम राम के गीत गाते हो, भूमिपतियों से तुम्हें कोई कन्सेशन नहीं मिलेगा। चूँकि आप लोग पण्ढरपुर तीर्थयात्रा करने जाते हो इसलिए तुम्हें महीने के अंत में वेतन नहीं मिलेगा। चूँकि समाज के अधिसंख्यक लोग जीवन की इन निरर्थक रहस्यमयी बातों, रहस्यवाद तथा अंध विश्वासों में आस्था रखते हैं, इसलिए चालाक एवं स्वार्थी लोगों को समाज-विरोधी क्रियाओं के ढेर सारे अवसर प्राप्त होते हैं। अतः मैं आपको सलाह देता हूँ कि जो थोड़ी बहुत राजनीतिक शक्ति आपके हाथों में आ रही है आप उसका लाभ उठाएँ। यदि तुम लोग अपने दुःख-दर्दों की ओर ध्यान नहीं देते हो तो उनका अन्त नहीं हो पाएगा। ऐसा लगता है कि वह दासता जिसके विरुद्ध हम संघर्ष कर रहे हैं, कहीं दोबारा न हमको दबा बैठे। क्या हम लोगों की जागृति अल्प समय की ही रहेगी?"

28 अक्टूबर, 1932 को जहाँगीर हॉल, बम्बई में एक और सभा हुई, जिसमें डॉ० अम्बेडकर को रूसी समाज द्वारा मान-पत्र भेंट किया गया। डॉ० अम्बेडकर ने वहाँ दलितों को एक बार और सचेत किया कि वे कहीं मन्दिर प्रवेश और अन्तर-जातीय आन्दोलन में ही न खो जाएँ। उससे रोटी-पानी की समस्या का कोई समाधान नहीं मिलेगा। आगे उन्होंने कहा—'जितना शीघ्र आप इस मूर्खतापूर्ण विश्वास को त्याग दो कि आपके दुःख-दर्द पूर्व निर्धारित हैं उतना ही अच्छा हो। यह विचार कि आपकी गरीबी एक अनिवार्यता है, जन्मजात एवं अपृथक् है, पूर्णतः गलत है। अपने को दास मानने की विचारधारा को एकदम तिलाञ्जलि दे दो।" इस प्रकार दलितों में एक नए दृष्टिकोण का सञ्चार कर डॉ० अम्बेडकर 7 नवम्बर, 1932 को तृतीय गोलमेज परिषद् में भाग लेने लंदन रवाना हो गए। पोर्ट सय्यद से डॉ० साहब ने छुआछूत-निवारक संघ के मन्त्री के नाम 14 नवम्बर, 1932 को एक पत्र प्रेषित किया, जिसमें उन्होंने लिखा :

"छूत तथा अछूत को किसी कानून द्वारा एक दूसरे के समीप नहीं लाया

जा सकता, निश्चित् रूप से किसी चुनाव कानून के द्वारा भी नहीं, भले ही पृथक् चुनाव के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन कर दिया जाए। केवल एक ही बात जो उन्हें एकत्र कर सकती है, वह प्रेम है।....अछूतों के नागरिक अधिकारों के लिए, एक व्यापक आन्दोलन छेड़ा जाना चाहिए। निःसन्देह ऐसा करने से कुछ सामाजिक परिवर्तन होगा और हिंसात्मक संघर्ष भी सम्भवतः उठ खड़ा हो। संघ का उद्देश्य केवल कुछ अछूतों की सहायता करना नहीं है, वल्कि सारे दलित समाज के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। इसके लिए संघ को सीधी कार्यवाही करनी होगी क्योंकि इसके विना सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं होगा। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कुछ कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ताओं की टोली वनानी चाहिए।"

छुआछूत-निवारक संघ ने डॉ० अम्वेडकर के इन सुझावों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप, उन्होंने संघ से स्तीफा दे दिया। उनके अलग होते ही संघ के दो दलित जाति के सदस्य, एम०सी० राजा और श्रीनिवासन भी संघ के केन्द्रीय वोर्ड से हट गए। वैसे डॉ० साहव ने अपने पत्र में अन्तर-जातीय रोटी-वेटी व्यवहार की कोई वात नहीं लिखी; किन्तु वे इन सदस्यों के साथ समायोजित नहीं हो सकते थे क्योंकि दोनों का वर्ग-चरित्र अलग-अलग था। इनके वाद संघ के केन्द्रीय वोर्ड में किसी दलित नेता को शामिल नहीं किया। जव कुछ समझदार लोगों ने इसकी मांग की तो गांधी ने कहा—"छुआछूत के पाप का प्रायश्चित करने के लिए अछूतोद्धार का काम हिन्दुओं को ही करना चाहिए। हिन्दुओं के धन से ही संघ का काम चल रहा है। अतः उसका सञ्चालन हिन्दुओं को ही करना है। अछूतों की यह माँग कि उनको संघ के केन्द्रीय बोर्ड में स्थान मिलना चाहिए, न तो नीति की दृष्टि से उचित है और न ही अधिकार की दृष्टि से।" यह उत्तर कहां तक उचित था ? इसका निर्णय स्वयं पाठक ही करें।

17 नवम्वर 1932 को तृतीय गोलमेज परिषद् प्रारम्भ हो गई। इस वार परिषद् में प्रतिनिधियों की भीड़ कम थी क्योंकि परिषद् का काम केवल इतना ही था कि पूर्व परिषदों के कामों की अधूरी वातों का विस्तृत व्योरा तैयार किया जाए। केन्द्रीय सरकार के गठन पर भी विचार होना था। इस परिषद् में, मुस्लिम प्रतिनिधियों का रुख दलित वर्गों की समस्याओं के प्रति कुछ कठोर रहा और भीमराव को उपेक्षा की दृष्टि से उन्होंने देखा। अतः भीमराव को यह कहना पड़ा कि कट्टर हिन्दुओं के समान, मुसलमान भी अजीव लोग हैं। मुस्लिम प्रतिनिधि विलकुल एक पृथक् ग्रुप के रूप में व्यवहार कर रहे थे जो संगठित भारत के लिए एक स्पष्ट खतरा था। 24 दिसम्वर 1932 को परिषद् का काम समाप्त हो गया और भीमराव 23 जनवरी 1933 को वम्वई वापस लौट आए। यहां आकर देखा तो उन्हें राजनीतिक तनाव के साथ सामाजिक तनाव भी मिला क्योंकि अछूतों के मानवी अधिकारों का संघर्ष जारी था।

इसी वीच गांधी का यर्वदा जेल से अम्वेडकर को एक तार मिला कि वह

उनसे मिलना चाहते हैं। अतः डॉ० साहब, शिवतारकर, डोलस, उपाराम, कांवले, घोरपाडे तथा जेढ़े सहित, 4 फरवरी 1933 को मिलने गए। गांधी ने उन सबका स्वागत किया। थोड़ी देर में, मन्दिर प्रवेश के प्रश्न को लेकर वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। महात्मा जी ने डॉ० साहब से आग्रह किया कि वह डॉ० सुब्बारायण तथा रंगा अय्यर के बिलों का समर्थन करें जो मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध में क्रमशः मद्रास विधानसभा और केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्तुत हो चुके थे। डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्टतः इन्कार कर दिया क्योंकि उन बिलों में छुआछूत की, एक कलंक के रूप में, कोई निन्दा नहीं की गई थी। उन बिलों में केवल इतना ही था कि यदि जनमत पक्ष में हो तो दलित वर्गों के लिए मन्दिरों के द्वार खोल दिए जाएं। अछूत देवी-देवताओं की पूजा भी कर सकते हैं, ऐसा उसमें कुछ नहीं था। डॉ० साहब ने गांधीजी से यह और कहा कि दलित वर्ग जाति व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र वर्ण के रूप में कतई रहना नहीं चाहते और ईमानदारी से, वह (अम्बेडकर) अपने को हिन्दू ही नहीं कह सकते। उस धर्म का गौरव कैसे महसूस हो जो उन्हें अवनति की स्थिति में डालता है? जब तक जाति-व्यवस्था रहती हो तब तक मन्दिर प्रवेश का कोई लाभ नहीं है।

गांधी ने कहा कि उनके अनुसार जाति-व्यवस्था कोई बुरी व्यवस्था नहीं है। आगे यह भी उपदेश दिया—"सवर्ण हिन्दुओं को ऐसे अवसर मिलें कि वे अपने पापों का स्वयं प्रायश्चित करके हिन्दू धर्म को शुद्ध बनाएं। इस प्रश्न (मन्दिर प्रवेश) के प्रति उपेक्षा का भाव मत दिखाओ। सनातनी लोग तथा सरकार इससे लाभान्वित होंगे। यदि यह सुधार हो जाता है तो अछूत लोग समाज में उत्थान करेंगे।" अम्बेडकर इससे सहमत नहीं हुए और कहा कि यदि दलित वर्ग, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में प्रगति करते हैं तो स्वभावतः मंदिर-प्रवेश का प्रश्न हल हो जाएगा। जब तक हिन्दू धर्म से जाति-व्यवस्था का अन्त नहीं होता, तब तक हिन्दू धर्म शुद्ध नहीं होगा और उसमें रहने वाले अछूतों का सामाजिक कल्याण सम्भव नहीं होगा। इस विचार-विमर्श के पश्चात्, उनकी मुलाकात समाप्त हो गई और डॉ० साहब बम्बई लौट आए।

पूना से लौटने के बाद, डॉ० अम्बेडकर ने बम्बई विधान परिषद् के वाद-विवादों में भाग लिया। उस समय विलेज पंचायत बिल' प्रस्तुत हो रहा था। उसमें दलित वर्ग के प्रतिनिधियों को नामजद करने का कोई प्रावधान नहीं था। अतः भीमराव ने बिल की आलोचना करते हुए यह निवेदन किया—"श्रीमन्, भारत यूरोप नहीं है। इंग्लैण्ड भारत नहीं है। इंग्लैण्ड जाति-व्यवस्था से अपरिचित है। हम जानते हैं। इसलिए, जो राजनीतिक व्यवस्था इंग्लैण्ड में उपयुक्त हो, हमारे लिए उपयुक्त नहीं हो सकती। हमें तथ्य को स्वीकार करना चाहिए। मैं एक ऐसी व्यवस्था चाहता हूँ जिसमें मुझे ही वोट देने का अधिकार न हो, बल्कि ऐसी संस्था हो जिसमें मेरे लोगों का प्रतिनिधित्व हो, जो न केवल विचार-विमर्श करें, वरन् निर्णायक पहलुओं में भी भाग लें। इसलिए मैं कहता हूँ कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व कोई बुरी बात नहीं है; वह कोई जहर नहीं है। देश के विभिन्न वर्गों के

हितों की रक्षा हेतु एक उत्तम प्रबंध है। मैं उसे संविधान की विकृति नहीं मानता।" इस प्रकार समाज तथा सरकार दोनों में, डॉ० अम्बेडकर ने दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

12 जनवरी 1933 को डॉ० अम्बेडकर ने मन्दिर-प्रवेश बिलों एवं आन्दोलन से सम्बन्धित अपना प्रसिद्ध वक्तव्य पत्रों में प्रकाशित करवाया, जिसकी एक कापी यर्वदा जेल में बंद महात्मा गांधी को भी भेजी। रंगा अय्यर के बिल के संदर्भ में डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि अछूत लोग उस बिल का समर्थन नहीं करेंगे क्योंकि वह बहुमत की मान्यता पर आधारित है, न कि छुआछूत को एक पाप के रूप में मानने पर। निश्चित रूप से, हिन्दुओं का बहुमत मंदिर-प्रवेश के विरुद्ध है। डॉ० साहब ने कहा—

> "पाप और अनैतिकता दोनों को इसलिए सहन नहीं किया जा सकता कि बहुमत उनका आदी है और उनका व्यवहार करता है। यदि छुआछूत पापमय तथा अनैतिक रिवाज है तो दलित वर्गों की दृष्टि से, उसे बिना किसी हिचक के नष्ट किया जाना चाहिए, भले ही बहुमत उसे मानता हो। न्यायालयों में भी इसी प्रकार के रिवाजों को परखा जाता है। यदि वह अनैतिक है और जन-नीति के विरुद्ध है तो उनका तिरस्कार आवश्यक समझा जाता है।"

दलितों की भौतिक (आर्थिक एवं सामाजिक) समस्या को देखते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने यह कहा कि "उनकी मुक्ति का उत्तम मार्ग उच्च शिक्षा, उच्च रोजगार और जीविका कमाने के उत्तम ढंगो में निहित है। यदि एक बार वे सामाजिक जीवन के स्तर पर अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो उनका सम्मान भी होगा और एक बार यदि वे सम्मानजनक बन जाते हैं, तो कट्टर हिन्दुओं के उनके प्रति दृष्टिकोण में अवश्य परिवर्तन होगा और यदि ऐसा नहीं भी होता है तो दलितों के भौतिक हितों को कोई हानि नहीं होगी।" जिस प्रकार यूरोपियन्स के क्लबों में हिन्दुओं को प्रवेश नहीं मिलता और यह लिखा रहता है—"कुत्तों और भारतीयों का प्रवेश वर्जित है।" उसी प्रकार हिन्दुओं ने कर रखा है और मन्दिरों पर बोर्ड लगा रखे हैं—"सभी हिन्दू और जानवर, कुत्ते भी प्रवेश कर सकते हैं; केवल अछूतों के लिए प्रवेश वर्जित है।" अतः डॉ० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट कह दिया—"मन्दिरों के द्वार अछूतों के लिए खोलना हिन्दुओं के द्वारा विचार का प्रश्न है, मेरे द्वारा आन्दोलन का नहीं। यदि हिन्दू लोग सोचते हैं कि मानव व्यक्तित्व की पवित्रता का आदर न करना बुरी बात है तो मन्दिर प्रवेश होने दीजिए और एक सज्जन पुरुष बनिए। यदि आप एक सज्जन पुरुष के बजाय हिन्दू ही रहना पसन्द करते हैं तो फिर अपने दरवाजे बंद कर लो और भाड़ में पड़ो। मुझे मन्दिर-प्रवेश की कोई चिन्ता नहीं है।"

डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि मन्दिर-प्रवेश दलितों का कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं है। वह तो सामाजिक समानता की दिशा में, एक संघर्ष था; लेकिन अछूत लोग उस धर्म को कतई सहन नहीं करेंगे जो असमानता पर आधारित है। यदि हिन्दू

धर्म को उनका धर्म होना है, तो उसे सामाजिक समानता पर आधारित होना होगा। हिन्दूधर्म में से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को निकाल फेंकना चाहिए क्यों कि वही तो असमानता की जड़ है। जाति एवं छुआछूत दोनों असमानता के अन्य रूप हैं। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक दलित वर्ग न केवल मन्दिर-प्रवेश का तिरस्कार करेंगे, बल्कि हिन्दूधर्म का भी। मात्र मन्दिर प्रवेश से ही संतुष्ट हो जाना, बुराई के साथ समझौता करना है, और मानव व्यक्तित्व की पवित्रता का, जो उनमें है, विनिमय करना है।" अपने वक्तव्य के अन्त में, डॉ० साहब ने गांधीजी से एक प्रश्न पूछा; "यदि अब मैं मन्दिर-प्रवेश को स्वीकार करूँ और चातुर्वर्ण्य तथा जाति व्यवस्था की समाप्ति के लिए बाद में आन्दोलन करूँ, तो गांधीजी किस ओर होंगे? यदि वह विरोधी खेमे में होंगे, तो मैं अब उनके साथ नहीं रहूँगा। लगभग सभी दलित नेताओं ने डॉ० अम्बेडकर के इन विचारों का समर्थन किया।

गांधीजी डॉ० साहब के इन विचारों से कतई सहमत नहीं हुए। उन्होंने अपना अलग वक्तव्य प्रकाशित किया; "मैं एक हिन्दू हूँ, केवल इसलिए नहीं कि मैं हिन्दूधर्म में जन्मा हूँ, बल्कि अपने विश्वास और चुनाव से भी हिन्दू हूँ। मेरी धारणा के हिन्दूधर्म में कोई ऊँच-नीच नहीं है। लेकिन जब डॉ० अम्बेडकर स्वत: वर्णाश्रमधर्म का प्रतिरोध करते हैं, तो मैं उनके खेमें में नहीं हो सकता क्यों कि मैं वर्णाश्रम को हिन्दूधर्म का अभिन्न अङ्ग मानता हूँ।" इस प्रकार महात्माजी ने असमानता के बुनियादी आधार को सुरक्षित रखने की प्रतिज्ञा की जिसे डॉ० अम्बेडकर समाप्त करना चाहते थे। अत: दोनों महान् पुरुषों का संघर्ष मात्र राजनीतिक एवं सामाजिक ही नहीं था, बल्कि धार्मिक भी था। स्वभावत: हिन्दुओं द्वारा नियंत्रित प्रेस ने डॉ० अम्बेडकर की बड़ी आलोचना की और उन्हें हिन्दूधर्म के विनाशक की संज्ञा दी; लेकिन डॉ० साहब के नेतृत्व में दलितों के प्रतिरोध के कारण रङ्गा अय्यर के बिल में आवश्यक संशोधन किए गए। 24 मार्च, 1933 को अय्यर का बिल केन्द्रीय असेम्बली में पेश हुआ; परन्तु कट्टर हिन्दू नेताओं की मिलीभगत के कारण, वह बिल सदैव के लिए दफना दिया गया।

मन्दिर-प्रवेश के बिल पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने दलितों को सचेत किया कि वे अध्यात्मिकता की धर्मान्ध बातों में न फंसें क्यों कि उन्हीं के कारण वे बर्बाद हुए हैं और उन्हें शोषित तथा पतित बनाया गया है। कसारा की एक कान्फ्रेंस में उन्होंने दलितों से कहा; "उनके लिए रोटी-पानी का प्रश्न ईश्वर की पूजा से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम हिन्दूधर्म में समानता चाहते हैं और चातुर्वर्ण्य को समूल नष्ट करना चाहते हैं।....आपने जो कुछ खोया है, उसे दूसरों ने लूटा है। आपके कष्ट तथा कठिनाइयां इसलिए नहीं हैं कि वे पूर्व निर्धारित हैं, बल्कि अन्य लोगों द्वारा अन्याय एवं शोषण के कारण हैं। अत: भाग्य में विश्वास मत करो, बल्कि अपनी शक्ति में विश्वास करो।" मेजगांव, बंबई, की एक और सभा में, डॉ० साहब ने दलितों से कहा कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष जारी रखें और उन बुराइयों का त्याग करदें जिनसे वे बर्बाद हुए हैं, जिनके कारण, अन्य चालाक लोग उन्हें ठगते हैं और पतनावस्था में ढकेल देते हैं। एक

अन्य सभा में, डॉ० अम्बेडकर ने यह सुझाया; "तुम्हें अपनी दासता स्वयं मिटानी है। उसके अन्त के लिए, ईश्वर या अतिमानव पर निर्भर मत होओ। आपकी मुक्ति राजनीतिक शक्तियों में निहित है, न कि तीर्थस्थानों और उपवासों में। शास्त्रों में विश्वास करने से, तुम्हें दासता, अभाव और गरीबी से छुटकारा नहीं मिलेगा।.... तुम्हारे धार्मिक उपवास, तपस्या और प्रायश्चित, तुम्हें भुखमरी से नहीं बचा पाए हैं।........इसलिए, तुम्हारा यह कर्तव्य है तुम अपने ध्यान को उपवास, पूजा एवं प्रायश्चित से हटाकर, कानून बनाने की शक्ति के स्थानों पर केन्द्रित करो ताकि तुम स्वयं अपने भले के लिए कानून बना सको।"

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने दलितों को यह आदेश दिया कि वे मन्दिर-प्रवेश, तीर्थ-स्थान, उपवास, पूजा, आदि में अपना समय नष्ट न करें और अपने को सङ्गठित करके, राजनैतिक शक्ति प्राप्त करें ताकि निर्णय प्रक्रिया में उनका व्यवहारिक योगदान हो। राजनैतिक सत्ता समाज परिवर्तन का एक प्रभावशाली माध्यम है जिसे प्राप्त करने के लिए, अछूतों को निरन्तर संघर्ष करना चाहिए और साथ ही, अवसरवादी एवं स्वार्थी राजनीति तथा राजनीतिज्ञों से उन्हें सचेत और सावधान रहना चाहिए।

स्मृति-धर्म पर प्रहार :

महाड के जल सत्याग्रह के दौरान, डॉ० अम्बेडकर ने एक सभा में यह कहा था : "हिन्दू समाज को दो प्रमुख सिद्धान्तों के आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए—समानता और जातिवाद का अभाव।" उसी सभा में यह प्रस्ताव पास हुआ कि हमें मानवी अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष करना चाहिए। भारत की उस समय स्थिति दयनीय थी और हिन्दू समाज में व्याप्त अन्याय, धार्मिक जड़ता, राजनीतिक पिछड़ापन तथा आर्थिक अभाव ने राष्ट्र को पतनावस्था में ला पटका था। सभा ने यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि 'सभी मानव प्राणी समान पैदा होते हैं और मृत्यु तक समान ही रहते हैं।" इसलिए वहाँ सभी वक्ताओं ने उन सभी प्राचीन एवं आधुनिक धर्मशास्त्रों की निन्दा की जो सामाजिक असमानता के सिद्धांत का पोषण करते हैं। उनको वर्तमान समाज पर लागू करने का वे विरोध करते हैं। श्री शिवतारकर ने यह प्रस्ताव पेश किया जिसका अनुमोदन बाबूराव गायकवाड़, एन० टी० जाधव और श्रीमती गंगूबाई सावन्त ने किया था।

तत्पश्चात् सभा के अन्तर्गत, वक्ताओं ने 'मनु-स्मृति' पर प्रहार किए क्योंकि उसी में यह आदेश है कि यदि अछूत वेद-मन्त्र सुने तो उसके कानों में रांग पिघला कर डाल दिया जाए और उसी ने शूद्रों की स्थिति को निम्न स्तर पर ला पटका, उसके मान-सम्मान को समाप्त किया और उसे सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दासता में जकड़वा दिया। यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि सार्वजनिक रूप से मनु-स्मृति को जलाया जाए। इस प्रकार एक ओर सवर्ण हिन्दू जिस ग्रन्थ को पूज्य एवं पवित्र मानते थे, तो दूसरी ओर अछूत घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसी सभा में, मनु-स्मृति को जलाने का प्रयास किया गया। वास्तव में, मनु-स्मृति हिन्दुओं के

जीवन और कानून का आधार है। वैसे उसे हज़ारों वर्ष पूर्व लिखा गया था; पर कट्टर हिन्दू तो उसे अब भी सर्वश्रेष्ठ धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं और वही उसके नियमों का घोर उल्लङ्घन भी करते हैं। उसमें ब्राह्मणों पर यह प्रतिबन्ध है कि रासायनिक, तरल वस्तुओं, वस्त्र, फल-फूल, अस्त्र आदि का व्यापार नहीं कर सकते। आज ब्राह्मण लोग ही इन चीजों के व्यापार में अधिकतर पाए जाते हैं। यदि सवर्ण हिन्दू मनु-स्मृति के नियमों का उल्लङ्घन करते हैं तो उन्हीं नियमों को अछूतों तथा शूद्रों पर लागू करने का उन्हें क्या अधिकार है? यहां तक कि तिलक, जिन्होंने एक कपड़े मिल की स्थापना की, नहीं चाहते थे कि गैर-ब्राह्मणों के समक्ष वेद-मन्त्रों का उच्चारण हो अथवा वे वेदों का अध्ययन करें।

मनु-स्मृति को जलाने का प्रस्ताव, सहर्षबुद्धये ने प्रस्तुत किया था। धार्मिक ग्रंथों की कड़ी आलोचना करते हुए, उन्होंने कहा कि मनु-स्मृति असमानता, निर्दयता तथा अन्याय का प्रतीक है। सभी वक्ताओं ने मनु-स्मृति की निंदा की जिसमें शूद्रों को सदैव को दफनाए जाने के लिए कब्र खोद रखी थी। वक्ताओं ने मात्र उसकी निंदा ही नहीं की, वल्कि रात्रि के नौ बजे उसे एक विशेष अर्थी पर रखा और पण्डाल के सामने खोदे गए एक खड्ड में उसे रखा गया। फिर अछूत साधुओं के हाथों से उसका अग्निदाह किया गया। भारत के कोने-कोने में तहलका मच गया और सवर्ण हिन्दुओं ने उस कार्य को अशोभनीय करार दिया। बीसवीं सदी के महान् मूर्तिभञ्जक, डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म के झूठे देवी-देवताओं और धर्म-ग्रंथों की बड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि 25 दिसम्बर 1927 भारत के इतिहास में स्मरणीय रहेगा क्योंकि उस दिन असमानता के पुतले का अग्निदाह किया गया। उन्हीं की देख-रेख में यह अद्वितीय घटना घटी। उन्होंने मांग की कि मनु-स्मृति के स्थान पर, हिन्दुओं की एक नई आचार-संहिता तैयार हो जिसमें सबको समान अधिकार प्राप्त हों। इस प्रकार महाड भारत का विहिन वर्ग बन गया। यहीं से डॉ० अम्बेडकर के मन में धर्मान्तरण का एक विचार विकसित हुआ जो आगे चलकर सन् 1956 में साकार हुआ।

मनु-स्मृति के उत्सवाग्नि के संदर्भ में, डॉ० अम्बेडकर की क्या प्रतिक्रिया थी, यह देखना यहां आवश्यक है। विद्वान् डॉक्टर ने कहा कि मनु-स्मृति को मात्र घृणा के भाव से नहीं जलाया गया। उसमें कुछ ऐसे सिद्धांत हैं जो घोर असमानता पर आधारित हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मनु-स्मृति, वास्तव में, सवर्ण हिंदुओं के लिए अधिकारों का एक चार्ट है जबकि अछूतों के लिए, वह दासता की एक बाइबिल है। इसी घटना के संबंध में, डॉ० अम्बेडकर ने, टी० वी० पारवते द्वारा एक साक्षात्कार में, सन् 1738 में यह व्यक्त किया—"मनु-स्मृति का उत्सवाग्नि बिलकुल किसी मन्तव्य से किया गया था। यह बहुत ही मार्मिक एवं गम्भीर पग था; परन्तु यह काम सवर्ण हिन्दुओं के ध्यानाकर्षण के लिए किया गया था। समय-समय पर ऐसे गम्भीर कार्य आवश्यक हैं। यदि आप दरवाजे को नहीं खटखटाते तो कोई किवाड़ नहीं खोलेगा। ऐसा नहीं है कि मनु-स्मृति के सभी भाग घृणास्पद हैं अथवा उसमें अच्छे सिद्धांत नहीं है अथवा मनु स्वतः एक समाजशास्त्री नहीं था

और मात्र एक मूर्ख था। हमने उसका उत्सवाग्नि इसलिए किया कि हम उसे अन्याय का प्रतीक मानते हैं जो हमें सदियों तक कुचलता गया। चूंकि उसकी शिक्षाओं के कारण हमें निकृष्ट निर्धनता में रखा गया, इसलिए हमने शीघ्रता की। सब कुछ बाज़ी पर लगा दिया। हमने अपनी जान को हाथों पर रखकर, उस कार्य को सम्पन्न किया।"

सन् 1906 में सावरकर ने भी तो विदेशी वस्त्रों का अग्निदाह किया था क्योंकि वे विदेशी राज्य तथा शोषण के प्रतीक समझे गए। डॉ० अम्बेडकर का उद्देश्य भी कुछ ऐसा ही था अर्थात छुआछूत एवं दासता के प्रतीक ग्रंथ के प्रति अपना असंतोष प्रकट करना। उन्होंने मनु-स्मृति पर सोच-समझकर प्रहार किया, क्योंकि वह अन्यायपूर्ण सामाजिक कानूनों का प्रतीक है। यह रोचक बात है कि सावरकर तथा अम्बेडकर दोनों बुद्धिवादी नेता थे जिन्होंने महाराष्ट्र में हिंदू ग्रंथों को लेकर एक तहलका मचा दिया था। दोनों ही समाज क्रांतिकारी थे। दोनों ही बुद्धिवादी, मूर्तिभञ्जक थे; लेकिन शास्त्रों के प्रति उनके दृष्टिकोण में थोड़ा सा अंतर था। मनु-स्मृति के उत्सवाग्नि ने सवर्ण हिंदुओं को उत्तेजित कर दिया था। उधार सावरकर के लेखों ने हिंदुओं से आग्रह किया कि वे अपने पवित्र ग्रंथों की समीक्षा करें और कहा कि राष्ट्र सकट के दौरान यदि गो-मांस खाया जाए तो कोई बुरी बात नहीं है। मनु-स्मृति का अग्निदाह तथा गोमांस खाने का आग्रह दोनों ही कट्टर तथा सनातनी हिंदुओं पर कड़े प्रहार थे; लेकिन अंतर यह था कि सावरकर ने हिंदुओं से कहा कि वे धर्म ग्रंथों की समीक्षा करें. विज्ञान के आधार पर उनकी परीक्षा करें और जो कुछ मानवता के लिए अच्छा है उसे ग्रहण करें और जो कुछ प्रगति में बाधक है उसका परित्याग करें। निस्संदेह वह मनु के नियमों को अब शूद्रों तथा स्त्रियों पर लागू करने के पक्ष में नहीं थे। डॉ० अम्बेडकर का रुख उनसे कहीं अधिक तीखा था क्योंकि वे हिन्दू व्यवस्था की यातनाओं से भलीभांति परिचित थे। सावरकर हिन्दू धर्म के पक्षधर थे तो अम्बेडकर उसके कट्टर विरोधी थे और उनके मन में तो धर्मान्तरण का विचार-मंथन चल रहा था।

यह समाचार उस समय फैल भी गया जब अक्टूबर 1 35 में येवला सम्मेलन होने जा रहा था। यह सही भी था। डॉ० अम्बेडकर उस सम्मेलन में धर्मान्तरण की घोषणा करने की तैयारी में थे। चारों ओर सनसनी फैल गई और उनके मित्रों तथा साथियों ने इस बात की पूछताछ भी आरम्भ कर दी कि धर्मान्तरण की घोषणा का समाचार क्या सही है? कई सवर्ण हिंदू नेताओं ने डॉ० साहब से कहा कि वह इस प्रकार की घोषणा अभी न करें। हिंदुओं को हृदय परिवर्तन का कुछ समय और दें। इस प्रकार का सुझाव सर्वश्री केलकर, भोपटाकर तथा मेता ने रखा जिन्होंने समाज सुधार के क्षेत्र में कुछ कार्य किए थे। निस्संदेह डॉ० अम्बेडकर पिछले दस वर्षों से भारी प्रयास तथा संघर्ष कर रहे थे कि अछूतों को हिन्दू समाज में सम्मानजनक स्थान मिले। उन्हें सार्वजनिक स्थानों में अछूतों द्वारा पानी लेने, मंदिरों में प्रवेश, अच्छे वस्त्र पहनने, धातु

के बर्तन प्रयोग करने, स्कूलों में शिक्षा आदि के लिए संघर्ष करना पड़ा। महाड सत्याग्रह के शीघ्र बाद ही उन्हें यह महसूस होने लगा था कि हिन्दू धर्म का परित्याग किया जाए। जब महाड तालाब का मुकदमा चल रहा था तब उन्हें आए दिन पैरवी करने महाड आना पड़ता था। एक बार वर्षा का समय था। एक नदी में बाढ़ आने से, डॉ० साहब को मार्ग में दो दिन तक ठहरना पड़ा। जहाँ मोटर रुकी वहाँ कोई अछूत बस्ती नहीं थी। किसी ने न तो उन्हें शरण दी और न ही भोजन। अतएव दो दिन उन्हें भूखा ही रहना पड़ा। जब वह घर आए तो गुस्से में कई दिन तक अपने कमरे में ही पड़े रहे। फिर मित्रों एवं साथियों ने उन्हें शान्त किया। सन् 1929 में ही, उन्होंने अछूतों की एक जलगांव की सभा में यह कह दिया था कि यदि अछूत भाई यह चाहते हैं कि वे मानव प्राणियों की तरह रहें, मनुष्य की तरह खाएँ-पिएँ बैठें-उठें, तो उन्हें किसी धर्म में चले जाना चाहिए। फलतः बहुत से दलितों ने इस्लाम को ग्रहण कर लिया और कुछ ईसाई-धर्म में भी जा रहे थे।

बड़ी निष्ठा से डॉ० अम्बेडकर ने मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन छेड़ा था, पर सवर्ण हिन्दुओं ने कोई दया नहीं दिखाई। सवर्ण हिन्दू नेताओं ने कोई ठोस कार्य नहीं किया। केवल दो-चार सहानुभूति के शब्दों के सिवाय उनके पास अछूतों के लिए कुछ भी नहीं था। जब डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन की बात गोलमेज परिषद् में की तो उसका भी विरोध गांधी जैसे नेताओं ने किया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व दिया, पर गांधी ने उसके विरुद्ध आमरण अनशन कर दिया। पूना-पेक्ट के समय बंबई के हिन्दू नेताओं ने छुआछूत निवारण सभा बुलाई, सक्रिय आन्दोलन करने की घोषणा की और अस्पृश्यता-निवारक संघ, जो आगे चलकर हरिजन सेवकसंघ कहलाया, की स्थापना की। इससे कोई ठोस परिणाम नहीं निकले। अछूतों को केवल भ्रमात्मक स्थिति में ही रखा। जितना ही डॉ० अम्बेडकर ने सवर्ण हिन्दुओं से आग्रह किया कि वे उदारता का बर्ताव करें और अपनी संस्थाओं का अछूतों को प्रयोग करने दें, वे उतना ही कठोर एवं कट्टर होते चले गए। जब उन्होंने जातिवाद तथा वर्णवाद का विरोध किया तब सवर्ण हिन्दू विद्वानों एवं नेताओं ने उन्हें सर्वोच्च सामाजिक आदर्श कहना आरम्भ कर दिया। अतएव डॉ० साहब ने यह अनुभव किया कि सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन असंभव है। जितना ही हिन्दुओं से आग्रह किया जाए कि वे अछूतों को समानता का स्तर दें उतना ही वे कट्टर तथा हठधर्मी बनते चले जाते हैं।

आखिर मेवेला कान्फ्रेंस 13 अक्टूबर 1935 के दिन हुई जिसमें लगभग दस हजार अछूत स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। स्वागत समिति के अध्यक्ष, रणखाम्बे ने डॉ० साहब का स्वागत करते हुए कहा कि "पतित हिन्दूधर्म को सही अर्थ में ब्राह्मणवाद कहना उचित है क्योंकि उससे केवल ब्राह्मणों को, एक उच्च वर्ग के रूप में, लाभ होता है।" डॉ० अम्बेडकर ने लगभग दो घण्टे तक भाषण दिया जिसमें उन्होंने अछूतों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक पीड़ाओं

का विवरण पेश किया । उन्होंने महाड तथा नासिक सत्याग्रहों का जिक्र भी किया जहां अछूत स्त्री-पुरुषों, यहां तक उनके बच्चों के साथ भी अमानुषिक व्यवहार किया गया । जितना धन और समय अछूतों ने अपने अधिकार तथा सम्मान के लिए खर्च किया, सवर्ण हिंदुओं ने उसकी कोई परवाह नहीं की और अपने दुराग्रह पर अड़े रहे । फिर डॉ० साहब ने एकत्र अछूतों के जनसमूह से कहा कि वे हिन्दू-धर्म से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें ताकि उन्हें किसी अन्य धर्म में जाकर संतोष एवं सम्मान मिल सके । लेकिन साथ ही, उन्होंने चेतावनी दी कि उनको बड़े सोच-विचार से अपने नए धर्म का चुनाव करना चाहिए । इस संदर्भ में अपने वैयक्तिक निर्णय को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि "दुर्भाग्य से मैं हिन्दूधर्म में पैदा हुआ था । यह मेरे बस की बात नहीं थी । लेकिन अपमानजनक स्थिति में रहने से इन्कार करना मेरी शक्ति की सीमा में है । मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं मरते समय तक हिन्दू नहीं रहूंगा ।" अन्त में, धर्मान्तरण के प्रस्ताव का सभी नर-नारियों ने सर्वसम्मति से अनुमोदन किया ।

धर्मान्तरण की इस घोषणा ने सभी क्षेत्रों, राजनीतिक दलों और सामाजिक संस्थाओं में सनसनी फैला दी । ईसाई धर्म, इस्लाम तथा सिक्ख-धर्म के नेताओं ने डॉ० अम्बेडकर को तारों तथा पत्रों द्वारा सूचित किया कि वे अछूतों का अपने-अपने धर्म में स्वागत करने के लिए तैयार हैं । महाबोधि सोसाइटी (बनारस) के महामंत्री से भी डॉ० साहब को तार मिला कि यदि दलित भाई बौद्धधर्म का स्वागत करें तो उनका हृदय से स्वागत है । तार में कहा गया कि बौद्धों में किसी प्रकार की धार्मिक या सामाजिक अयोग्यताएं नहीं हैं । सभी नवबौद्धों को समानता का स्तर मिलेगा । बौद्धधर्म में कोई जातिवाद नहीं है । अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए, गांधीजी ने कहा—"यह एक दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय है, विशेषकर उस समय, जबकि छुआछूत अपनी अंतिम अवस्था में है । मैं डॉ० अम्बेडकर जैसे महान् व्यक्ति के क्रोध का अर्थ जानता हूं; पर धर्म ऐसा कोई घर या आवरण नहीं है जिसे इच्छानुसार जब चाहे बदला जा सके । वह तो देह से कहीं अधिक आत्मा का अङ्ग है ।" उधर वीर सावरकर और कांग्रेस के अध्यक्ष, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने भी धर्मान्तर की घोषणा पर दुःख प्रकट किया । कुछ दलित नेताओं ने भी जैसे देवरूखकर तथा कजरोलकर ने आश्चर्य की भावनाएं प्रदर्शित कीं और डॉ० साहब के साथी, डॉ० सोलंकी ने तो कहा कि अछूत नवयुवकों को हिन्दू धर्म में ही रहकर उसमें सुधार लाने का प्रयास करना चाहिए । इसी प्रकार का विचार उनके एक और साथी, जो गोलमेज सभा में उनके सहयोगी थे, श्रीनिवास, ने भी प्रस्तुत किया । उन्होंने कहा कि धर्मान्तरण से दलित वर्गों की संख्यात्मक शक्ति कमजोर हो जाएगी । उन्हें चाहिए कि वे अपनी पूरी शक्ति से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करें । धर्मान्तरण के प्रश्न पर एक विकट समस्या उठ खड़ी हुई ।

अखबारों ने धर्मान्तरण की घोषणा का काफी प्रचार किया । इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अछूतों पर हो रहे अत्याचारों, अन्यायों तथा दमनों से अधिक से अधिक भारतवासी परिचित हुए । डॉ० साहब अपने निर्णय पर अडिग

थे और उन्होंने हिन्दू समाज तथा धर्म पर कड़े से कड़े प्रहार किए क्योंकि अछूत होने के नाते वह अछूतों की पीड़ाओं को भलीभांति जानते थे। निस्संदेह उनका यह कथन सही था कि हिंदूसमाज का मूलाधार असमानता है। गांधीजी की प्रतिक्रिया को समझते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि जीवन में धर्म तो आवश्यक है; पर उस धर्म में चिपके रहना कहां की बुद्धिमता है जिसमें कुछ लोगों पर धर्म के नाम पर अन्याय एवं अत्याचार किए जाते हैं और जिन्हें पशु-स्तर पर रखने का ग्रंथों में प्रावधान है। डॉ० साहब ने कहा कि वह तो अपने निर्णय पर अडिग हैं। यदि लोगों को अच्छा लगे तो वे उनका अनुसरण करें अन्यथा वे अपने पुराने धर्म में ही बने रहने के लिए स्वतंत्र हैं। धर्मान्तरण स्वेच्छा तथा विवेक के साथ होना चाहिए।

येवला से लौटते हुए, डॉ० अम्बेडकर डॉ० सदानन्द गालवंकर के साथ ठहरे जहां एक हिन्दू मिशनरी नेता, मसूरकर महाराज उनसे मिले। मसूरकर ने, जिन्होंने गोवा के दस हजार ईसाइयों को हिन्दू-धर्म में शुद्धि के पश्चात् मिलाया था, तीन घण्टे तक बातचीत की। उन्होंने डॉ० साहब को बहुत समझाने का प्रयास किया कि सवर्ण हिंदुओं के हृदयों में अवश्य परिवर्तन होगा। उन्हें धर्मान्तरण का प्रोग्राम रद्द कर देना चाहिए; लेकिन डॉ० साहब ने कहा कि वास्तव में धर्मान्तरण की घटना को रोकना हिन्दुओं के हाथों में है, हालांकि हिन्दुओं के हृदय-परिवर्तन की बात खोखली है। सवर्ण हिन्दुओं के हृदय-परिवर्तन की बात को आगे बढ़ाते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने मसूरकर से कहा—"महाराष्ट्र के ब्राह्मणों द्वारा हमारे एक कार्यकर्ता, श्री के० के० सकट, को शंकराचार्य की गद्दी पर एक वर्ष बिठाया जाए और चितपावन ब्राह्मणों के सौ परिवार अपने नये शंकराचार्य को, हृदय-परिवर्तन तथा समानता के प्रमाण के रूप में, साष्टांग प्रणाम करें, तो मैं समझूंगा कि सवर्ण हिन्दू परिवर्तित हो सकते हैं।" क्या ऐसा करवाना सम्भव था? कतई नहीं। डॉ० अम्बेडकर भी यह अच्छी तरह जानते थे कि चितपावन ब्राह्मण ऐसा किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते थे। बिचारे मसूरकर उनके तर्कों से शान्त हो गए।

न केवल सवर्ण हिन्दुओं ने डॉ० अम्बेडकर द्वारा धर्मान्तरण की घोषणा की निन्दा तथा विरोध किया, बल्कि कुछ दलित नेताओं ने भी उसे अच्छा नहीं समझा। बाबू जगजीवनराम भी धर्मान्तरण के विरुद्ध थे क्योंकि वह स्वयं कांग्रेस में थे और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जैसे हिन्दू नेताओं के वह अधिक प्रभाव में थे। धर्मान्तरण की घोषणा का इतना विरोध हुआ कि बहुत से अछूत भाई भी डॉ० अम्बेडकर के आन्दोलन से दूर हो गए; लेकिन डॉ० साहब का निर्णय अडिग था क्योंकि ऐसा उन्होंने बड़ा सोच-समझकर किया था। वे निरन्तर अपने धर्मान्तरण का औचित्य स्थापित करते रहे। पूना में 12-13 जनवरी 1936 के दिन प्रोफेसर एन० शिवराज की अध्यक्षता में महाराष्ट्र अस्पृश्य युवक परिषद् हुई जिसमें डॉ० साहब ने स्पष्टत: कहा—"यदि सभी हिन्दू देवी-देवता भी साक्षात् आकर कहें कि हिन्दू-धर्म का परित्याग मत करो, तो मैं उनकी बात भी नहीं मानूंगा।"

डॉ० अम्बेडकर ने दलितों को यह चेतावनी भी दी कि धर्मान्तरण के संदर्भ में यह गलत धारणा त्याग देनी चाहिए कि ऐसा करने से नारकीय स्थितियों से फौरन छुटकारा मिल जाएगा और समानता की दुनियाँ में वे प्रवेश कर जायेंगे। वे किसी भी धर्म में पदार्पण करें, उन्हें स्वतन्त्रता तथा समानता के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। इस तथ्य से हम अच्छी तरह अवगत हैं कि हम कहीं भी जाने की इच्छा करते हों, चाहे इस्लाम में, अथवा सिक्ख या ईसाई धर्म में, हमें अपने कल्याण के लिए, भारी प्रयास करना पड़ेगा। यह सोचना बिल्कुल मूर्खता होगी कि यदि हम इस्लाम को स्वीकार कर लें तो हम में से प्रत्येक नवाब बन जाएगा अथवा ईसाई-धर्म में चले जाएँ तो प्रत्येक अछूत पोप बन जाएगा। आप कहीं भी जाएँ संघर्ष करना तो हमारे लिए अनिवार्य होगा।" समानता प्राप्त करने की अभिलाषा हिन्दू समाज एवं धर्म में रहते हुए, कभी पूरी नहीं होगी क्यों वे मनुस्मृति पर आधारित हैं जो असमानता तथा दासता का प्रतीक है। हमारे सामने केवल रोटी रोजी का ही प्रश्न नहीं है। धर्मान्तरण के पीछे कोई और पवित्र ध्येय है जो दलितों को आत्म-सम्मान, आत्म-शक्ति और आत्म-सङ्गठन प्रदान करेगा। यह थी उनकी भीम-प्रतिज्ञा, जो 14 अक्टूबर, 1926 के दिन नागपुर में साकार हुई। वस्तुतः उनके द्वारा धर्मान्तरण दलितों की आध्यात्मिक-शक्ति बढ़ाने का एक प्रयास था, न कि अपनी किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए कोई पग। उनके धर्म-परिवर्तन में वैयक्तिक एव सामाजिक दोनों ही पक्ष निहित थे जिनसे न केवल आध्यात्मिक संतुष्टि मिलती है, बल्कि मानवीय सङ्गठन भी सुदृढ़ बनता है।

श्रमिक नेता एवं सदस्य :

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट 1935 के मातहत, सन् 1937 में प्रान्तीय स्वायत्तता शासन-प्रणाली प्रचलित होने जा रही थी और उधर भारत में नए चुनावों की सरगर्मियाँ प्रारम्भ हो गईं थीं। प्रत्येक दल चुनाव लड़ने की तैयारी में लीन हो गया। डॉ० अम्बेडकर ने, अपने साथियों के सहयोग से, अगस्त 1936 में स्वतंत्र मज़दूर दल (इण्डिपेन्डेण्ट लेबर पार्टी) की स्थापना की और ऐसे कार्यक्रम की विस्तृत योजना प्रस्तुत की जिसमें भूमिहीनों, गरीब किसानों तथा मज़दूरों की तात्कालिक समस्याओं का विवेचन एवं समाधान था। इस दल का दृष्टिकोण केवल अछूतों तक सीमित नहीं था, बल्कि समस्त किसान-मज़दूर वर्ग तक व्यापक था, हालांकि उसका कार्य क्षेत्र बंबई प्रान्त ही था। दल ने यह लक्ष्य निर्धारित किया कि वह जनसमूहों को जनतंत्र की पद्धतियों की शिक्षा देगा, उनके समक्ष सही विचार-धारा प्रस्तुत करेगा और विधायनी प्रक्रिया के माध्यम से राजनीतिक कार्यों के लिए उन्हें सङ्गठित करेगा। डॉ० अम्बेडकर का मज़दूर दल स्पष्टतः प्रतिक्रियावाद, पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, सामन्तवाद, धर्मान्धवाद आदि का घोर विरोधी था और वह चाहता था कि देश में ऐसी उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जो मज़दूर वर्ग के हितों की रक्षा करने में सहयोग दे।

चुनाव की प्रारम्भिक तैयारियों के पश्चात्, डॉ० अम्बेडकर वायु-परिवर्तन की दृष्टि से, 12 नवम्बर 1936 को जेनेवा के लिए रवाना हो गए। बाद में

लन्दन गए और 14 जनवरी 1936 को भारत वापस लौट आए। कहा जाता है कि डॉ० साहब की यात्रा विशेषकर लन्दन जाने की थी, जहाँ वह ब्रिटिश अधिकारियों से यह विचार करके आए कि दलित वर्गों द्वारा सिक्ख धर्म अपनाने के बाद, क्या उनके राजनीतिक हित नए संविधान में सुरक्षित रहेंगे ? जब वह वापस आए तो यह अफवाह उड़ गई कि वह किसी यूरोपियन लेडी से विवाह कर लाए हैं; परन्तु जब भीड़ ने, जो उनके अभिनन्दन के लिए आई थी, बाबा साहब को अकेले देखा तो आश्चर्य में पड़ गए। बाबा ने इस अफवाह का खण्डन किया कि विवाह करने का उनका कोई इरादा है। शीघ्र ही उन्होंने चुनाव आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया और सारे बंबई प्रान्त का दौरा किया। 175 सीटें बंबई काउंसिल में थीं जिनमें से 15 दलितों के लिए सुरक्षित थीं। स्वतंत्र मजदूर दल के 17 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा। उनमें से 15 उम्मीदवार चुने गए। पहली बार इतना बड़ा चुनाव लड़ा गया था। इसलिए इस सफलता पर महाराष्ट्र के दलितों में खुशी की लहरें दौड़ गईं। दलितों के लिए सुरक्षित सीटों में से कांग्रेस केवल दो सीटें जीत पाई। राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार का तहलका मच गया, क्योंकि काउन्सिल में डॉ० अम्बेडकर का होना कांग्रेस दल के लिए एक चुनौती थी। वे कांग्रेस के कट्टर आलोचक थे और कांग्रेस की राजनीतिक चालों को भली भांति जानते थे।

19 जुलाई 1936 को बंबई प्रांत में काग्रेस द्वारा मंत्रि-मण्डल गठित किया गया जिस पर डॉ० साहब ने कहा कि किस प्रकार ब्राह्मणवाद सरकार पर छा गया है क्योंकि अधिकतर मंत्रीगण ब्राह्मण थे। उनमें से कोई भी दलित वर्ग से नहीं लिया गया था। काउन्सिल में एक सरकारी बिल पेश किया गया जिसके द्वारा अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द के प्रयोग की सिफारिश की गई। डॉ० अम्बेडकर, दादा साहेब गायकवाड़ तथा अन्य सदस्यों ने इस शब्द का कड़ा विरोध किया; परन्तु बहुमत होने के कारण, कांग्रेस ने वह शब्द अछूतों के मत्थे मढ़ दिया। दादा साहेब ने यह पूछा भी कि यदि अछूत लोग 'हरिजन'—ईश्वर के लोग हैं, तो क्या सवर्ण हिन्दू किसी दानव से सम्बन्धित हैं ? डॉ० साहब ने भी कड़ा विरोध किया और कहा कि हम बाद में मिलकर किसी अच्छे शब्द का चुनाव करके बतला देंगे, क्योंकि 'हरिजन' शब्द में पाखण्ड की बू आती है। जब डॉ० अम्बेडकर के निवेदन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया तब उनके दल के सभी सदस्य, विरोध प्रकट करने की दृष्टि से, हॉल के बाहर चले गए अर्थात् उन्होंने विरोध में 'वॉक-आउट' किया। 'हरिजन' वास्तव में हरि का भक्त ही होता है जो राम तथा रामायण में अटूट आस्था रखता है। सभी दलितों को 'हरिजन' नाम देना एक प्रकार का थोपा हुआ अन्याय था जिसे आज भी दलित पसन्द नहीं करते।

महाराष्ट्र में, महार लोग गांवों में अधिकतर चौकीदारी का काम करते थे जिसके बदले में उन्हें 'वतनी' भूमि मिली थी; लेकिन उस पर उनका कोई अधिकार नहीं था। भारत में डॉ० अम्बेडकर प्रथम विधायक थे जिन्होंने वतनी-व्यवस्था को समाप्त कर जोतने वालों का भूमि पर अधिकार हो, इस आशय का बिल

प्रान्तीय कौंसिल में पेश किया; परन्तु सरकार का रुख पक्ष में न होने के कारण, वह पास न हो सका। कोंकण की खोती-प्रथा, जो जमींदार प्रथा जैसी थी, समाप्त करने के लिए भी, डॉ० अम्बेडकर ने एक बिल प्रस्तुत किया था जिसके समर्थन में, वे कई जिलों के किसान-मज़दूरों को कौंसिल हॉल के समक्ष लाए थे; परन्तु कांग्रेस सरकार नहीं चाहती थी डॉ० साहब का कोई कार्य-क्रम सफल हो। फलत: वह बिल भी पास न हो सका।

30 दिसम्बर, 1937 को डॉ० अम्बेडकर, दलित वर्ग शोलापुर जिला कान्फ्रेंस में भाग लेने पण्ढरपुर गए जहाँ उन्होंने बतलाया कि दलितों के समक्ष तीन प्रमुख समस्याएं हैं; प्रथम, क्या कभी हिन्दू समाज में दलितों को समानता का स्तर प्राप्त होगा; द्वितीय, क्या उन्हें राष्ट्रीय सम्पत्ति में से न्यायोचित हिस्सा मिलेगा; और तृतीय, क्या आत्म-सम्मान तथा आत्म-सहायता का आन्दोलन सफल होगा? प्रथम के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि जब तक जाति व्यवस्था है, उन्हें समानता का स्तर नहीं मिल पाएगा। द्वितीय के सम्बन्ध में, कांग्रेस का व्यवहार बड़ा खेदजनक है क्यों कि वह अछूतों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए न तो कोई कदम उठाती है और न ही उठाए गए कदमों का समर्थन करती है। कांग्रेस तो पूंजीपतियों का सङ्गठन है। अत: जब तक कांग्रेस पर पूंजीपतियों का आधिपत्य है और वह सरकार में है, दलितों को अपने आर्थिक उत्थान की कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए। आवश्यकता है कि इन पूंजीपतियों के विरुद्ध संगठित हुआ जाए और स्वतंत्रता-पूर्वक आर्थिक प्रगति की ओर ध्यान दिया जाए। तृतीय समस्या को लेकर उन्होंने कहा कि उस आन्दोलन से उन्हें कुछ प्राप्त ही होगा, खोयेंगे नहीं। वहाँ से वह मातंग क़ान्फ्रेंस में गए जहाँ उन्होंने कहा कि लोगों को एक दल के प्रति भक्ति-भावना का त्याग होना चाहिए, अन्यथा यहाँ जनतंत्र का गला घुट जायगा।

औद्योगिक-विवाद बिल के अन्तर्गत, मज़दूरों के हड़ताल करने के अधिकार को कुछ विशेष परिस्थितियों में अवैध घोषित करने का अधिकार सरकार को मिला था, जिसका विरोध डॉ० साहब ने किया और उसके विरोध में उनके मज़दूर दल तथा प्रान्तीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने 7 नवम्बर, 1938 को बबई की मिलों और कारखानों में, तथा अन्य नगरों की मिलों और कारखानों में, एक दिन हड़ताल करने की घोषणा की। डॉ० अम्बेडकर तथा अन्य मजदूर नेताओं ने स्वयं लाउड-स्पीकरों से प्रचार किया। सरकारी विरोध के बावजूद भी, वह हड़ताल सफल रही जिसका भारी श्रेय डॉ० अम्बेडकर और उनके स्वतंत्र मज़दूर दल को मिला। डॉ० अम्बेडकर वैसे दीन हीनों के मसीहा तो थे ही, पर मजदूरों की कुछ हड़तालों का सफलतापूर्वक संचालक करने के पश्चात् वह मज़दूर नेता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। मज़दूर आन्दोलन को लेकर, वह साम्यवादियों से भी भिड़ गए क्यों कि वे मज़दूरों के जीवन के व्यावहारिक पक्ष की उपेक्षा कर, उन्हें हड़तालों में ढकेलकर, साम्यवाद का प्रचार करते हैं। डॉ० साहब ने श्रमिकों से कहा कि दुनिया में दो वर्ग मुख्य हैं—धनी और निर्धन, शोषक एवं शोषित। मध्यम वर्ग, वह तो एक छोटा सा वर्ग है। अत: मज़दूरों को सोचना चाहिए कि उनके निर्धन होने का क्या

कारण है ? उनकी गरीबी का मुख्य कारण शोषकों की धनिकता में है। उनका काम है कि बिना किसी भेदभाव के, वे मजदूर-मोर्चा तैयार करें और उन्हीं प्रतिनिधियों को चुनें जो उनके हितों की सच्ची सुरक्षा कर सकें। यदि वे इतना करलें, तो सभवत: कोई भी मजदूर रोटी, कपड़ा और मकान के अभाव में मृत्यु को प्राप्त न हो। डॉ० अम्बेडकर के तर्कों की शक्ति एवं तीक्ष्णता को देखकर कम्यूनिस्ट नेता भी आश्चर्य में पड़ गए और उनके विरोधी भी यह सोचने लगे कि डॉ० अम्बेडकर भूमिहीन मजदूरों, श्रमिकों किसानों के एक प्रभावशाली नेता के रूप में उभर रहा है।

बंबई में मिलों के बुनाई जैसे कुछ विभागों में अछूतों को नौकरी नहीं दी जाती थी क्यों कि वहाँ धागे को मुँह से काटना पड़ता था, जिसको छूने से सवर्ण हिन्दू मजदूरों को पाप लग जाता था। उधर रेलवे विभाग में भी पोर्टर तक की नौकरी अछूतों को नहीं दी जाती थी क्यों कि पोर्टरों से स्टेशन मास्टर घरेलू काम करवाते थे और इसलिए उनका सवर्ण हिन्दू होना आवश्यक समझा जाता था। डॉ० अम्बेडकर ने इन अन्यायों के प्रति बार-बार आवाज बुलंद की और मनमाड रेलवे के अछूत मजदूरों की सभा में, उन्होंने कहा : "ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद ये दो, श्रमिकों के शत्रु हैं क्यों कि दोनों ही समता, स्वतंत्रता और भ्रातृ-भाव के प्रतिकूल हैं।" इस प्रकार हर जगह डॉ० साहब ने मजदूरों को अन्याय के प्रति संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की जिसके अभाव में वे अपने अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते।

बंबई के मजदूर आन्दोलन तथा हड़तालों से कम से कम दो बातें उभर कर सामने आईं। प्रथम, यह सिद्ध हो गया कि डॉ० अम्बेडकर श्रमिक मोर्चा पर भी सफल हो सकते हैं। उनके संगठन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और मजदूरों के सच्चे हितों की रक्षा में योगदान किया। एक मजदूर नेता के रूप में, उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गई और अखिल भारतीय श्रमिक समस्याओं के क्षेत्र में उनको स्वीकार किया जाने लगा। द्वितीय, डॉ० साहब ने अपने मजदूर आन्दोलन को कम्यूनिस्टों से बिलकुल अलग रखा क्यों कि उनका यह स्पष्ट मत था कि कम्यूनिस्ट लोग, अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए, मजदूरों का शोषण करते हैं और उनका सही मार्ग-दर्शन नहीं करते। डॉ० साहब इतने प्रभावशाली नेता हो गए कि उत्तर प्रदेश के किसान-मजदूर नेता, स्वामी स जानन्द, उनसे बंबई में मिले और आग्रह किया कि वह साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए, कांग्रेस में शामिल हो जायें; लेकिन विद्वान् डॉक्टर ने कहा कि कांग्रेस स्वत: पूंजीवाद तथा ब्राह्मणवाद का शिकार है। वह साम्राज्यवाद का क्या मुकाबला करेगी ? कांग्रेस तो संवैधानिक मशीनरी को, किसान-मजदूरों के हितों का बलिदान कर, पूंजीपतियों के हितों तथा निहित-स्वार्थों की पूर्ति में प्रयोग कर रही है। अतएव उन्होंने कांग्रेस में शामिल होना कतई स्वीकार नहीं किया। स्वामीजी उनके तर्कों के समक्ष बिलकुल चुप हो गए।

डॉ० अम्बेडकर ने बंबई के गवर्नर को महार बटालियन की स्थापना का

सुझाव दिया जिसे गवर्नर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जैसे ही अपने नेता से महारों को आदेश मिला, वे सेना में भरती हो गए और इस प्रकार एक अच्छी बटालियन की स्थापना हो गई। उधर वाइसराय ने डॉ० अम्बेडकर को 'सुरक्षा सलाहकार समिति' का सदस्य मनोनीत कर दिया। एम० सी० राजा भी इस समिति के सदस्य बनाए गए थे। डॉ० अम्बेडकर ने ब्रिटेन के भारत-मंत्री से इस बात की शिकायत की कि कार्यकारिणी में दलितों का कोई प्रतिनिधि नहीं लिया गया जिसका फल आगे चलकर अच्छा ही निकला। उधर मार्च, 1942 में, सर स्टेफर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार की ओर से एक योजना लेकर भारत आए जिसमें भारतीय संघ के प्रांतों को संघ से पृथक् होने का अधिकार (आत्म-निर्णय) दिया गया था। किसी भी दल ने उसे स्वीकार नहीं किया, क्यों कि उसमें विभाजन सिद्धान्त निहित था। उसमें दलितों की तो बिल्कुल ही उपेक्षा की गई थी। इसलिए डॉ० साहब ने क्रिप्स योजना को दलितों के साथ विश्वासघात कहा।

डॉ० अम्बेडकर की योग्यता तथा सेवाओं को देखते हुए, भारत के वाइसराय ने 2 जुलाई, 1942 को उन्हें अपनी कार्यकारिणी समिति (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) में एक सदस्य के रूप में नियुक्त किया और उन्हें, उनकी श्रम-समस्याओं में रुचि देखकर श्रमविभाग सौंपा गया इस प्रकार उन्होंने श्रम-मंत्री के पद को सुशोभित किया। भारत के राजनीतिक इतिहास में, यह एक अपूर्व घटना थी। उससे समूचे दलित समाज में उत्साह एवं उल्लास का वातावरण पैदा हुआ। जब डॉ० अम्बेडकर 18 जुलाई को नागपुर पहुँचे तो उनका भव्य स्वागत हुआ। उसी दिन एक सभा में उहोंने गोलमेज परिषद् से लेकर दलितों की राजनीतिक प्रगति का ब्योरा बतलाते हुए कहा, "सरकार की परिवर्तित नीति अछूतों के विरुद्ध है। क्रिप्स योजना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह योजना अछूतों के साथ एक विश्वासघात है। उधार मुस्लिम लीग की नीति में भी परिवर्तन हुआ है। मुसलमान पहले अपने को अल्पसंख्यक मानते थे; परन्तु अब वे अपने को 'राष्ट्र' मानते हैं। गैर-मुसलमानों में, ये मुस्लिम नेता कोई भेदभाव नहीं करते। भारत के राजनीतिक जीवन में हम अपना स्वतत्र अस्तित्व चाहते हैं। दलित समाज हिन्दू समाज का का अंग नहीं है, बल्कि वह स्वतंत्र समाज है और इसलिए उसको राजनीतिक अधिकार चाहिए। यही मेरा दृढ़ विचार है। आज हमारे स्वतंत्र अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। इसलिए, हमें अधिक संगठित एवं सतर्क रहने की आवश्यकता है हमारा संघर्ष न्याय एवं मानवता के लिए है। वह पूर्णतः न्यायोचित है।" अन्त में, डॉ० अम्बेडकर ने दलित जाति के एकत्र नर-नारियों से कहा; "हमारा संघर्ष सत्ता या सम्पत्ति के लिए नहीं--बल्कि स्वतंत्रता के लिए है। अतएव पढ़ो, संगठित बनो और संघर्ष करो।" इसी सभा में ऑल इण्डिया शैड्युल्ड कास्ट्स फेडरेशन की स्थापना भी हुई जिसका महामंत्री पी० एन० राजभोज को बनाया गया। एक प्रस्ताव में सरकार से मांग की गई; कि अछूतों को सभी दृष्टि से पृथक् माना जाता है, इसलिए उनके लिए पृथक् बस्तियों का निर्माण हो और इसके लिए एक सेटलमेण्ट कमीशन नियुक्त किया जाये।

डॉ० अम्बेडकर ने, श्रम-मंत्री की हैसियत से, जो कुछ संभव था, वह दलितों की भलाई के लिए किया। सरकारी पद पर होते हुए भी वे दबी जबान से कभी नहीं बोले और दलितों के हितों की सुरक्षा के लिए, वे सदैव काम करते रहे। नागपुर में एक सभा में, डॉ० अम्बेडकर ने बतलाया: "एक बार मैं लार्ड लिनलिथगो के पास गया और उनसे मैंने खुले दिल से शिक्षा सम्बन्धी खर्चों पर बातें कीं। मैंने उनसे कहा कि यदि आपको गुस्सा न आए तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, "हाँ, अवश्य पूछिए।" "क्या यह सच नहीं है कि मैं अकेला 500 ग्रेजुएटों के बराबर हूँ?" डॉक्टर साहब ने पूछा। "हाँ में मानता हूँ।" लार्ड लिनलिथगो ने स्वीकार किया। फिर डॉ० साहब ने पूछा कि इसका कारण क्या है? उन्होंने कहा कि वह नहीं जानते। इस पर डा० अम्बेडकर ने उन्हें समझाया कि अपनी मेहनत से प्राप्त की हुई विद्वत्ता इतनी है कि शासन के किसी पद पर बैठकर वह उसे संभाल सकते हैं। मुझे ऐसे ही विद्वान चाहिए जो शासन में रहकर दलितों की अच्छी देखभाल कर सकें। यदि आप चाहते हैं तो ऐसे को पैदा करना होगा। केवल क्लर्क पैदा करने से काम नहीं चलेगा। लार्ड लिनलिथगो ने डा० साहब के तर्कों को माना और उसी वर्ष 10 दलित विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए, विलायत भेजा। डा० अम्बेडकर ने ही अन्य सभी सरकारी सेवाओं में दलितों को सुरक्षित स्थान प्राप्त करवाए। उनके केन्द्रीय कार्यकारिणी में होने से समस्त दलित समाज का सम्मान बढ़ा और केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल में दलितों का स्थान सुरक्षित सा हो गया। दलितों की संख्या देखते हुए, डा० साहब ने कार्यकारिणी में तीन सदस्यों की मांग की थी।

इसी बीच देश की राजनीतिक स्थिति गम्भीर हो गई। अपने रायगढ़ (1940) के वार्षिक अधिवेशन में, कांग्रेस ने भारत को विभाजित करने के किसी भी प्रयास की निन्दा की। उसी वर्ष मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास करके मुसलमानों के लिए पृथक् स्थान अर्थात् स्वतंत्र पाकिस्तान की मांग पेश कर दी थी। एक ओर सभी लोग प्रयास कर रहे थे कि भारत की एकता बनी रहे; परन्तु दूसरी ओर जिन्ना भारत को विभाजित करने पर तुल गए थे। डॉ० अम्बेडकर इन घटनाओं को बड़ी सावधानी से देख रहे थे। भारत में साम्प्रदायिक दंगे भी प्रारम्भ होने लगे। इसी वर्ष डॉ० साहब का ग्रंथ 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने, मानव संहार रोकने के लिए, भारत को हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में विभाजित करने के पक्ष में तर्क दिए। डॉ० साहब ने बड़े ही ठोस तथ्यों के आधार पर, इस विभाजन का समर्थन किया था। उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं की आलोचना की; पर मुसलमानों की मनोवृत्ति तथा समाज-पद्धति की भी बहुत ही कटु आलोचना की है। मुसलमानों ने, अपने राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, जो मार्ग अपनाया था, उसको डॉ० अम्बेडकर ने लुटेरों का ढंग कहा है।

उधर कांग्रेस का मशहूर 'भारत छोड़ो'—अगस्त 194 का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप कांग्रेस के सभी बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए।

इससे जनता में उत्तेजना फैल गई और कई प्रांतों में हिंसात्मक कार्यवाहियां सरकार के विरोध में शुरू हो गई। कई सप्ताह देश में अव्यवस्था बनी रहीं। सरकार ने अपने दमन-चक्र को चलाकर हिंसक आन्दोलन को दबा दिया। अपनी असफलता को महसूस करते हुए गांधी ने 10 फरवरी 1943 में आगाखाँ महल (पूना) में 21 दिन का उपवास प्रारम्भ कर दिया जिससे सारे देश में चिन्ता का वातावरण पैदा हो गया। गांधीजी के प्रति सहानुभूति दिखाने की दृष्टि से, बापूजी अणे, सर मोदी और नलिनीरंजन सरकार ने वाइसराय की काउंसिल से स्तीफा दे दिया; परन्तु डॉ० अम्बेडकर ने नहीं दिया क्योंकि वह जानते थे कि ऐसा करने से कोई लाभ नहीं होगा। राजनीतिक गतिरोध सरकार ने नहीं, वरन् हिन्दू-मुस्लिम विरोध ने पैदा किया था और हिन्दू-मुस्लिम एकता ऐसी स्थिति में सम्भव नहीं थी क्योंकि जिन्ना साहब मुसलमानों को एक पृथक् राष्ट्र घोषित कर चुके थे। स्वास्थ्य कारणों से, गांधीजी को आगाखाँ महल से रिहा कर दिया गया। पूना से वे पञ्चगनी चले गए। गांधी का आशीर्वाद प्राप्त करके अप्रैल, 1944 में, श्री राजगोपालाचारी ने एक पाकिस्तानी योजना जिन्ना के सामने रखी जिसके अन्तर्गत यह कहा गया था कि विश्व-युद्ध के पश्चात् एक कमीशन नियुक्त किया जाएगा जो उत्तर-पश्चिम एवं पूर्व भारत के जिलों का दौरा करके जनसाधारण के मतों के आधार पर इस बात का निर्णय करेगा कि बहुमत पृथक् होने के पक्ष में है अथवा नहीं। यदि बहुमत पृथक् होने के पक्ष में होगा तो उसे कार्य रूप दिया जाएगा। इसी योजना के संदर्भ में गांधी बम्बई जिन्ना से मिलने गए और 21 दिन लगातार मुलाकातें होती रहीं; पर गांधी हिन्दू-मुस्लिम एकता लाने में बिलकुल असफल रहे।

इन्हीं दिनों डॉ० अम्बेडकर ने गांधी को एक पत्र लिखकर, यह इच्छा प्रकट की कि वह दलितों की कुछ समस्याओं को लेकर कोई समझौता करना चाहते है क्योंकि वह जिस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील हैं उसी प्रकार उन्हें छूत-अछूत एकता का भी यत्न करना चाहिए; लेकिन गांधी ने 6 अगस्त 1944 के अपने पत्र में उन्हें उत्तर दिया कि अछूतों की समस्या पर हम दोनों के मौलिक मतभेद हैं। अम्बेडकर वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोधी थे, जब कि वे उसके कट्टर समर्थक थे। गांधी चाहते थे कि अछूत हिन्दू धर्म में ही जहां हैं वहां रहें, हालांकि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए; परन्तु अम्बेडकर दलितों को स्वतन्त्र तथा सबके समान देखना चाहते थे। निश्चय ही, अम्बेडकर वर्णाश्रम व्यवस्था के विरुद्ध थे; पर हिन्दू-धर्म का भी उन्हें गांधी द्वारा विरोधी माना जाना एक भूल थी। क्रिप्स योजना के अन्तर्गत, मुस्लिम लीग की मांग के अनुसार, भारत के विभाजन का सिद्धान्त विद्यमान था, इसलिए वह राजाजी की पाकिस्तानी योजना के आधार पर जिन्ना से समझौता करने के लिए बम्बई गए और कई सप्ताह बातें करते रहे; लेकिन चूंकि क्रिप्स योजना में अछूतों की राजनीतिक मांगों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया था, इसलिए गांधी ने अम्बेडकर की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया, हालांकि वे समझौते के लिए बड़े उत्सुक थे। बलवान् के सामने झुकना, नम्रता दिखाना, और सीधे-सादे पर अकड़ना, राजनीति की एक कहावत है। अतएव, राजनीतिज्ञ

के रूप में, गांधी कोई अपवाद नहीं थे। गांधी जिन्ना जैसे मुस्लिम नेता के सामने अपनी दुम हिलाते डोलते थे, जबकि अपने ही धर्म भाई अम्बेडकर को आंखें दिखाते और दलित-समस्याओं के सम्बन्ध में टालमटोल नीति का अनुसरण करते। गांधी तथा कांग्रेसी नेताओं ने ही अपनी नीतियों से मुसलमानों को मजबूर कर दिया था कि वे हिन्दुओं से पृथक् होने की मांग रखें। फलतः भारत का विभाजन सदैव के लिए हो गया।

संविधान के जनक :

अब यह निश्चित हो गया है कि डॉ० अम्बेडकर भारतीय सविधान के मुख्य निर्माता थे। आज बीसवीं सदी का उन्हें बहुत बड़ा स्मृतिकार माना जाता है। कौन सी परिस्थितियां उन्हें ऐसे उच्च शिखर पर ले गईं, यह देखना आवश्यक है। अतएव संविधान-सभा में प्रवेश करने के पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र यहां करना आवश्यक है।

जून 1945 में, डॉ० अम्बेडकर का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया ?' प्रकाशित हुआ, जो कांग्रेस, गांधी तथा गांधीवाद की समीक्षा का एक प्रामाणिक विवेचन है। डॉ० साहब का मुख्य विचार यह था कि कांग्रेस पार्टी ने सन् 1917 में एक प्रस्ताव पास कर जो अछूतों की समस्या को स्वीकार किया, वह एक दिखावा अधिक था। गांधी और कांग्रेस ने दलितों को राष्ट्रीय जीवन में एक स्वतन्त्र तत्व के रूप में उभरने से रोका और उनकी अयोग्यताओं तथा पीड़ाओं की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। डॉ० अम्बेडकर ने गांधीवाद का प्रबल खण्डन किया और लिखा कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से, गांधीवाद एक प्रतिक्रियावादी विचारधारा है जो दलितों के लिए बड़ी ख़तरनाक है। वह दोषपूर्ण विश्वासों तथा सुरक्षाओं से दूषित है। अतएव डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों को चेतावनी दी कि वे गांधीवाद से सावधान रहें।

भारतीय राजनीति में क्रिप्स योजना तथा राजाजी योजना के बाद हिन्दू-मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व की बातें प्रारम्भ हो गईं और समान प्रतिनिधित्व के विषय में समझौता हुआ जिसके अनुसार, वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में बराबर स्थान मिलना निश्चित हुआ। इस समझौते का एक और उद्देश्य यह भी था कि कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों को रिहा किया जाए। यह योजना वाइसराय लार्ड वेवल के पास पहुँची जिसके आधार पर वेवल योजना का निर्माण हुआ। 2 जून 1945 को, लार्ड साहब ने अपने ब्राडकास्ट भाषण में कहा — "प्रस्तावित नई काउंसिल प्रमुख जातियों का प्रतिनिधित्व करेगी और इसमें सवर्ण हिन्दू तथा मुसलमानों की संख्या समान होगी।" इसके बाद शिमला कान्फ्रेंस हुई जिसमें जिन्ना इस बात पर अड़ गए कि सभी मुस्लिम सदस्यों का निर्वाचन करने का अधिकार मुस्लिम लीग को ही मिलना चाहिए। उधर कांग्रेस ने पांच मुस्लिम सदस्यों में से कम से कम एक कांग्रेसी मुस्लिम सदस्य पर बल दिया; परन्तु जिन्ना न माने और शिमला कान्फ्रेंस असफल हो गई। इसी बीच लार्ड वेवल अगस्त 1945 में लन्दन कुछ सलाह करने गए और लौटकर सितम्बर में आम चुनावों की

घोषणा की। फलत: सभी दलों ने चुनाव तैयारियां आरम्भ कर दीं।

कांग्रेस के पास अधिक धन था। उसकी चुनाव मशीनरी भी सुदृढ़ थी। अत: उसने 'भारत छोड़ो' नारे के साथ चुनाव अभियान शुरू कर दिया। उधार जिन्ना ने 'पाकिस्तान या नष्ट हो जाओ' का नारा लगाया जिसकी पूर्ति के लिए, मुस्लिम समाज ने बहुत पैसा दिया। शैडयूल्ड कास्ट फेडरेशन के पास न तो धन था और न ही कोई मशीनरी; परन्तु फिर भी डॉ० साहब ने पूना की एक सभा से चुनाव अभिमान शुरू कर दिया। वे जहां कहीं भी गए, उन्होंने दलितों से यही अपील की कि वे स्वयं संगठित हों और राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष करें। उन्हें शासक जाति बनकर अपने अधिकारों की स्वयं रक्षा करनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि फिलहाल ही में संविधान-सभा का निर्माण होगा जिसमें अपने प्रतिनिधियों का होना आवश्यक है। अपने चुनाव भाषणों में डॉ० साहब ने कांग्रेस तथा गांधीजी की कड़ी आलोचना की क्योंकि वे अछूतों के हितों की सुरक्षा की ओर उपेक्षा-भाव रखते हैं, जबकि मुस्लिम मांगों की ओर वे बड़े उदार हैं। इस पर सरदार पटेल ने कहा कि कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों का प्रथम कार्य यह होगा कि छुआछूत का कानूनन खात्मा किया जाए। पटेल ने आगे कहा कि अपने समाज के लिए डॉ० अम्बेडकर की आकांक्षाएं तो न्यायोचित हैं; पर उनके तरीके गलत हैं। वैसे अछूतों को पूना-पैक्ट में काफी लाभ हुए हैं; फिर भी डॉ० अम्बेडकर गांधी और कांग्रेस की तीखी आलोचना में व्यस्त हैं। अन्त में, कांग्रेस की लोकप्रियता के सामने डॉ० साहब की फेडरेशन की पराजय हुई जो दलित जाति के लिए, एक राजनीतिक आघात था।

चुनाव के पश्चात्, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने 16 मार्च 1946 को घोषणा की कि "हम अल्पसंख्यक दलों को बहुसंख्यकों की प्रगति में बाधक नहीं बनने देंगे। यह देखते ही डॉ० अम्बेडकर बहुत सचेत तथा सतर्क हो गए और काफी जगहों का दौरा करके अछूतों को भी सावधान किया। उधर 24 मार्च 1946 को केबिनेट-मिशन भारत आया जिसने भारत के प्रमुख नेताओं से मुलाकातें कीं। अल्पसंख्यकों के दो प्रमुख नेताओं से भी 5 अप्रेल 1946 को मिशन ने मुलाकात की। ये दो नेता डॉ० अम्बेडकर और मास्टर तारासिंह थे। डॉ० अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक् चुनाव, पृथक् आवास और नये संविधान में उनके हितों की सुरक्षा की मांगें प्रस्तुत कीं। चूंकि डॉ० अम्बेडकर की स्थिति चुनाव में हार के कारण कुछ डावांडोल हो गई थी, इसलिए उनकी मांगों की ओर पूर्णत: ध्यान नहीं दिया गया। 16 मार्च 1946 को केबिनेट मिशन ने संविधान सभा तथा अन्त:कालीन सरकार की रूपरेखा सम्बन्धी योजना की घोषणा की जिसमें दलित जाति फेडरेशन की मांगों की उपेक्षा की गई। फलत: फेडरेशन के कार्यकर्ताओं ने संगठित होकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सवर्ण हिन्दुओं तथा अछूतों में मनमुटाव पैदा हो गया। दोनों के बीच कटुता तथा उग्रता आ गई। सवर्ण हिन्दू इतने उत्तेजित हो गए कि उन्होंने डॉ० अम्बेडकर के भारत-भूषण प्रेस को, जिसके सञ्चालक उनके पुत्र यशवंतराव अम्बेडकर थे, बम्बई में जला दिया।

इसी बीच डॉ० अम्बेडकर को दिल्ली आना पड़ा क्यों कि वाइसराय को कामचलाऊ सरकार की घोषणा करनी थी। अतएव कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों ने जून, 1946 के तीसरे सप्ताह में सदैव के लिए विदाई ली। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि डॉ० अम्बेडकर एक कुशल एवं सार्थक सदस्य सिद्ध हुए। जब से डॉ० साहब सदस्य बने थे, उनकी यह इच्छा थी कि अछूतों की शिक्षा के लिए कोई शैक्षणिक संस्था स्थापित हो और वह स्वप्न उस समय पूरा हुआ जब उन्होंने पीपुल्स एडचूकेशन सोसाइटी की स्थापना की जिसने अपना प्रथम कालेज 20 जून, 1946 को प्रारम्भ किया। आज यह संस्था महाराष्ट्र में डॉ० अम्बेडकर द्वारा स्थापित कई कॉलेजों तथा होस्टलों का सञ्चालन कर रही है। इनमें सिद्धार्थ कालेज, बम्बई, मिलिन्द कालेज, औरङ्गाबाद प्रमुख हैं। औरङ्गाबाद में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का मूल श्रेय डॉ० साहब को ही दिया जाता है।

केबिनेट'मिशन ने 16 जून, 1946 को हिन्दू-मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व के आधार पर अन्त:कालीन सरकार सम्बन्धी योजना की घोषणा की, जिसमें 14 सदस्य थे—5 कांग्रेसी सवर्ण हिन्दू, 1 कांग्रेसी हरिजन, 5 मुस्लिम लीगी और पारसी, सिख तथा ईसाई, इनका एक-एक प्रतिनिधि; लेकिन हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों के कारण, कांग्रेस लीग ने अन्त:कालीन सरकार सम्बन्धी योजना को स्वीकार नहीं किया था; परन्तु वाइसराय ने 29 जून 1946 को 80 फीसदी गोरों की कामचलाऊ सरकार की घोषणा कर दी। उधर डॉ० अम्बेडकर 25 जून को देहली से बम्बई आ चुके थे। वहाँ उन्होंने घोषणा की कि "दलित समाज के साथ जो अन्याय हुआ है, उसके विरुद्ध अछूतों को अहिंसात्मक संघर्ष करना चाहिए।" डॉ० साहब को अब महसूस हुआ कि पूना पैक्ट एक बहुत बड़ी चाल थी क्यों कि संयुक्त निर्वाचन से दलितों के असली प्रतिनिधि चुनकर नहीं आ सके और कांग्रेसी-पिट्ठू प्रान्तों में चुन लिए गए। अतएव डॉ० अम्बेडकर ने पूना से अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया ताकि सरकार को पता लगे कि उनका विरोध केबिनेट-मिशन योजना के प्रति है जिसमें अछूतों के हितों की पूर्णतया उपेक्षा की गई है। 7 जुलाई, 1946 को मिशन योजना के प्रति विरोध प्रदर्शन बम्बई में किया गया और भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय के समक्ष भी प्रदर्शनकारियों ने नारे लगाए। जब उनसे यह कहा गया कि कल गांधी जी अछूत नेताओं से मिलेंगे, तब उनका जुलूस पास के एक मैदान में सभा में बदल गया। जहाँ दादा साहब गायकवाड़, बापू साहब राजभोज आदि नेताओं ने अपने भाषणों में मिशन-योजना, कांग्रेस नीति तथा सरकार द्वारा अछूतों की उपेक्षा की आलोचना की। दलित फेडरेशन के आदेशानुसार अन्य प्रान्तों में भी आन्दोलन, प्रदर्शन तथा सत्याग्रह किए गए। केवल बम्बई प्रान्त में 1150 सत्याग्रही गिरफ्तार हुए जिनमें 128 महिलाएँ थीं। उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में भी हजारों सत्याग्रही गिरफ्तार हुए। कांग्रेसी हरिजन नेता, जिन्होंने डॉ० अम्बेडकर के श्रम और संघर्ष का सदैव लाभ उठाया, उनके आन्दोलन के खिलाफ बोलने लगे और उन्होंने उनका समर्थन किया जो अछूतों की बुनियादी मांगों की आलोचना करते थे। बाबू जगजीवनराम, डॉ० अम्बेडकर के विरोधियों में प्रमुख थे जो सदैव कांग्रेसी-राजनीति के पिट्ठू बने रहे।

जिन्ना नहीं चाहते थे कि हिन्दुओं के साथ किसी बात पर गठबन्धन किया जाए। अतएव मुस्लिम लीग ने 29 जुलाई, 1946 को केबिनेट-मिशन के दीर्घकालीन तथा अन्तःकालीन दोनों प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया और पृथक् पूर्ण पाकिस्तान की मांग की। इसी मांग के अनुसार मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त, 1946 को 'खुला संघर्ष दिवस' मनाकर हिन्दुओं तथा कांग्रेसी सरकार के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। कलकत्ता तथा नौआखाली में मुसलमानों ने छूत तथा अछूत हिन्दुओं पर पाशविक अत्याचार किए। भारत के अन्य क्षेत्रों में भी अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए जिनके कारण हजारों स्त्री-पुरुष तथा बच्चे मारे गए। जब लीग ने मिशन योजना को अस्वीकृत कर दिया तब वाइसराय ने कांग्रेस को अंतरिम सरकार गठित करने के लिए, बिना शर्त निमन्त्रित किया। 24 अगस्त को सरकार के 14 सदस्यों के नामों की घोषणा की गई जिनमें दलित जाति के सदस्य के रूप में जगजीवनराम जी का नाम भी था। उस समय डॉ० अम्बेडकर फेडरेशन की पूजा में हो रही बैठक में थे। उन्होंने शीघ्र ही ब्रिटिश प्रधानमन्त्री इटली को तार दिया कि केन्द्रीय सरकार में कम से कम दो सीटें अछूतों को मिलनी चाहिए। कांग्रेस ने हिन्दू-मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व स्वीकार करके मुसलमानों को संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व दिया था; परन्तु इस बात को कोई ध्यान नहीं रखा कि अछूतों को भी उनकी संख्यानुसार प्रतिनिधित्व मिले। निश्चय ही गांधी तथा कांग्रेस ने अछूतोद्धार की अपेक्षा मुस्लिमोद्धार का ध्यान अधिक रखा और परिणाम यह निकला कि लार्ड माउण्ट बैटन ने राजनीतिक स्थिति का अध्ययन कर, 3 जून, 1946 को दो केन्द्रीय सरकारों और दो संविधान-सभाओं की घोषणा की। नेहरू तथा गांधी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति पर दबाव डाला कि वह भारत के विभाजन को स्वीकार करले। महात्मा गाँधी ने, जो पाकिस्तान की माँग को एक पाप मानते थे और विभाजन के समर्थकों से यह कहते थे कि 'भारत के टुकड़े करने से पहले मेरे टुकड़े कर दो।' अपने अन्दर के राजनीतिज्ञ की प्रेरणा से ओतप्रोत होकर भारत के विभाजन को स्वीकार कर लिया। सत्ता की भूख ने नेताओं के दबोच रखा था। इसलिए जो कुछ मिले उसे शीघ्र लिया जाए की नीति ने देश का विभाजन करवा दिया।

इस प्रकार 2 जुलाई, 1947 को माउण्ट बैटन योजना के अन्तर्गत भारत के दो टुकड़े हो गए, भारतीय संघ और पाकिस्तान। 15 अगस्त, 1947 के दिन ये दोनों राज्य स्वतन्त्र हो गए। बड़े संघर्ष के पश्चात् भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता तो मिली, पर दुःखान्त की स्थिति में। इस विभाजन की राजनीति में अछूतों को कुछ भी नहीं मिल पाया था। इसलिए डॉ० अम्बेडकर बड़े चिंतित थे। उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया और दलितों ने बड़ी कुर्बानियाँ कीं, अपनी जानें दीं. पर अंत में कोई ठोस फल नहीं मिला। अतएव अपने अन्तिम प्रयास की दिशा में, डॉ० अम्बेडकर 5 अक्टूबर, 1946 को लंदन पहुँच गए थे। वहाँ वह मंत्रियों राजनीतिज्ञों और विशेषज्ञों से मिले ताकि अछूतों के हितों की अच्छी सुरक्षा का मार्ग निकल सके। लगभग सभी ने यह सलाह दी कि वह दलितों के अधिकारों

के लिए संविधान-सभा में ही संघर्ष करें क्योंकि शीघ्र ही भारतीय अपने भाग्य के विधाता बनने वाले है। डॉ० अम्बेडकर चाहते थे कि दलितों को जनसंख्या के आधार पर प्रांतीय तथा केंद्रीय असेम्बलियों तथा मंत्रि मण्डलों में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। वे लंदन के वार्तालापों से समझ गए कि अब अछूतों के हितों का निर्णय भारतीयों के ही हाथ में हैं। वे भारत लौट आए और दलितों की स्थिति पर गम्भीर चिंतन करने लगे।

मुस्लिम लीग ने यद्यपि संविधान-सभा का बॉयकाट किया, पर संविधान-सभा का अधिवेशन 9 सितम्बर, 1946 को डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। सर्वसम्मति से डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को संविधान-सभा का स्थाई अध्यक्ष 11 दिसम्बर को चुना गया। इस संविधान-सभा में देश के सभी गणमान्य राजनीतिज्ञ, नेता, बद्वान् और वकील लोग चुनकर आ गए थे। डॉ० अम्बेडकर संविधान-सभा में सीधे मार्ग से न आ सके। वे बंगाल विधान-सभा से दलितों के प्रतिनिधि के रूप में मुस्लिम लीग की सहायता से निर्वाचित होकर आए। इस प्रकार संविधान-सभा में देश के महापुरुषों का संगम हो गया। 13 दिसम्बर को जवाहरलाल नेहरू ने एक प्रस्ताव पेश करके भारत के ध्येय की घोषणा संविधान-सभा में की जिसमें भारत को 'स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता-प्राप्त प्रजातंत्र' कहा गया। नेहरू ने बड़ी ही विद्वत्ता से प्रस्ताव पेश किया था, पर कानून के मर्मज्ञ ने डॉ० एम० आर० जयकर ने प्रस्ताव पेशकर यह कहा कि नेहरू के प्रस्ताव को उस समय तक स्थगित कर दिया जाए जब तक कि मुस्लिम लीग और भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि सभा में न आ जाएं। इस पर कांग्रेस के बॉस बिगड़ गए; परन्तु शीघ्र ही अध्यक्ष ने अन्य सदस्यों से पूछा कि कोई कुछ कहना चाहता है? तब केवल डॉ० अम्बेडकर ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जमकर के संशोधन प्रस्ताव का समर्थन किया। सारा सदन उस समय देखता रह गया जब डॉ० साहब ने कांग्रेस सहित नेहरू प्रस्ताव की आलोचनात्मक समीक्षा की। उन्होंने कहा कि नेहरू का प्रस्ताव अपूर्ण है जिसमें बहुत सी कमियां हैं। जब संविधान-सभा में देश के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं तो उसे यहां लाना जल्दबाजी होगा। अपने मुस्लिम भाइयों को यहां लाने का पुन: प्रयास किया जाए और यह भी प्रयास किया जाए कि प्रस्ताव में अन्य बातों के अलावा, उन दीन-हीनों के लिए भी कुछ संकेत किया जाए जो भारत के मूल-निवासी हैं और जिन्होंने सदियों से यातनाओं के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखा है। डॉ० साहब द्वारा आलोचना के बाद, उस प्रस्ताव को अगले अधिवेशन तक स्थगित कर दिया गया। संविधान-सभा का अगला अधिवेशन जनवरी, 1947 में हुआ और तब जाकर नेहरू प्रस्ताव 20 जनवरी को पास घोषित किया गया।

डॉ० अम्बेडकर को यह अहसास कतई नहीं हुआ कि संविधान-सभा में उन्हें महत्त्वपूर्ण पदों का कार्यभार संभालना पड़ेगा क्योंकि वह गांधी और कांग्रेस दोनों के कट्टर आलोचक थे और कांग्रेसी सदस्यों का सभा में बहुमत था। अतएव उन्होंने अपने उन विचारों को, जिन्हें दलितों के हितों की सुरक्षा की दृष्टि से अच्छा मानते

थे, एक स्मरण-पत्र के रूप (स्टेट्स एण्ड मायनॉरटीज) में प्रकाशित करवाया जिसे वे संविधान-सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत करना चाहते थे। यह एक प्रकार से भारतीय संघ के लिए एक छोटा सा संविधान ही था जिसमें उनके राजनीति-दर्शन का विश्लेषण है। इसमें कहा गया है कि दलितों के केवल उन क्षेत्रों में, जिनमें सीटें सुरक्षित हैं, पृथक् चुनाव का अधिकार मिलना चाहिए, अन्य क्षेत्रों में वे संयुक्त चुनाव में शामिल हों। इसके अतिरिक्त नागरिकों के भी अधिकारों का विवेचन है और किसी राजनीतिक व्यवस्था विशेष में सामाजिक तथा आर्थिक ढांचा कैसा हो, यह भी उसमें उल्लिखित है। डा० साहब ने राज्य-समाजवाद की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है और यह तर्क दिया है कि समाजवाद को संविधान का अंग बनाया जाए ताकि सामान्य कानून से उसे सरलता से न बदला जा सके। यदि जनतन्त्र को 'एक मनुष्य, एक मूल्य', के सिद्धांत तक जीवित रखना है, तो संविधान को न केवल राजनीतिक ढांचे का निर्धारण करना चाहिए, बल्कि आर्थिक ढांचे का स्वरूप भी निर्धारित होना चाहिए।

29 अप्रेल 1947 के दिन संविधान-सभा ने सरदार पटेल द्वारा प्रस्तावित उस धारा को पास किया जिसमें यह ऐतिहासिक घोषणा हुई—"किसी भी रूप में छुआछूत समाप्त है और छुआछूत के कारण किसी पर अयोग्यता थोपना दण्डनीय अपराध होगा।" सरदार पटेल द्वारा इस प्रस्ताव को पेश करना तो सौभाग्य की बात थी ही, बल्कि समस्त भारत के लिए यह स्मरणीय दिवस था क्योंकि सदियों से चला आ रहा छुआछूत का हिन्दुओं पर लगा कलंक साफ हुआ, हालांकि व्यवहार में, अब भी बहुत से कट्टर हिन्दू छुआछूत से ऊपर नहीं उठ पाए हैं। इस सन्दर्भ में, कांग्रेस एवं गांधी की प्रशंसा तो अखबार वालों ने की; पर डा० अम्बेडकर, महात्मा फूले, स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी अछूतानन्द, वीर सावरकर जैसे सुधारकों का नाम तक नहीं लिया जिन्होंने इस कलंक के प्रतिरोध में संघर्ष किया था।

डॉ० अम्बेडकर संविधान-सभा की 'झण्डा-समिति' में थे। इसलिए बंबई के कुछ हिन्दू महासभा के नेता उनसे मिले और निवेदन किया कि भारत के नए राष्ट्रीय-ध्वज में गेरुआ रंग अवश्य आना चाहिए। डॉ० साहब ने पूरा-पूरा आश्वासन दिया कि वह ऐसा प्रयत्न अवश्य करेंगे। डॉ० साहब 10 जुलाई, 1947 को दिल्ली आ गए। उधर संविधान-सभा ने 22 जुलाई को, कुछ वाद-विवाद के पश्चात्, अशोक चक्र सहित राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि डॉ० अम्बेडकर ने गेरुआ रंग को ही स्वीकार नहीं करवाया, बल्कि अशोक चक्र अपनाए जाने का श्रेय भी उन्हीं को है। उन्होंने ही ये दो प्रस्ताव पास करवाए। उधर कुछ कांग्रेसी नेताओं तथा वीर सावरकर ने 'झण्डा-समिति' के अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद से अपील की कि अशोक चक्र के स्थान पर गांधीजी का चर्खा राष्ट्रीय ध्वज में होना चाहिए; परन्तु कुछ न हुआ। चर्खा के स्थान पर अशोक चक्र को स्वीकार किए जाने से गांधीजी को बड़ा दुःख हुआ क्योंकि वे यह घोषित कर चुके थे कि उनका उस ध्वज से कोई नाता नहीं होगा जिसका मूल स्वरूप

खादी एवं चर्खा से पृथक् हो; लेकिन संविधान-सभा में डा० अम्बेडकर के ही विचार का अनुमोदन हुआ।

15 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद ने 'एक्ट आफ इण्डियन इण्डिपेण्डेंस' पास किया, जिसके फलस्वरूप संविधान-सभा पूर्ण सत्ता-प्राप्त संगठन बन गई। मूलतः वह सम्पूर्ण भारत के लिए थी; परन्तु अब वह विभाजित भारत के लिए ही रह गई। बंगाल का भी विभाजन हो गया। इसलिए, संविधान-सभा के बहुत से सदस्यों को अपनी सीटें खोनी पड़ीं। डा० अम्बेडकर भी अपनी सीट खो बैठे। उधर चूंकि डा० एम० आर० जयकर ने त्याग-पत्र दे दिया था, इसलिए बम्बई से उनकी सीट को भरने के लिए; बम्बई लेजिस्लेटिव कांग्रेस पार्टी ने संविधान-सभा के लिए डा० अम्बेडकर को चुना और इस प्रकार वह पुनः निर्वाचित होकर आए अन्यथा जो कुछ दलितों को प्राप्त हुआ है वह कतई नहीं हो पाता।

जुलाई के अन्त में, स्वतन्त्र भारत के नए मन्त्रि-मण्डल का गठन होने जा रहा था। नेहरू के नेतृत्व में मन्त्रि-मण्डल बनना था। उस समय डा० अम्बेडकर दिल्ली में ही थे। उनके नाम की भी अफवाह उड़ रही थी। पण्डित नेहरू ने डा० अम्बेडकर को अपने चेम्बर में आमन्त्रित करके यह पूछा—"क्या आप स्वतन्त्र भारत के प्रथम मन्त्रि-मण्डल में कानून मन्त्री बनना स्वीकार करेंगे ?" डा० अम्बेडकर ने प्रस्ताव को स्वीकार किया। नेहरू ने उन्हें आश्वासन दिया था कि बाद में उन्हें 'नियोजन या विकास' विभाग दे दिया जाएगा, हालांकि पण्डित जी ने ऐसा नहीं किया। नेहरू जी मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों की लिस्ट लेकर भंगी कालोनी गांधीजी से मिले और उनकी अनुमति प्राप्त की। कांग्रेस तथा गांधी, जो अम्बेडकर के कट्टर आलोचक थे, अब डा० साहब के साथ कुछ सुलहनामा की ओर झुक रहे थे। अभी तक उन्होंने डा० साहब की उपेक्षा की थी; परन्तु अब वे उनकी योग्यता एवं अनुभव का स्वतन्त्र भारत के निर्माण में उपयोग चाहते थे और उधर डा० अम्बेडकर ने भी अपनी ओर से उन भूतकालीन कटुताओं एवं विरोधों को भुला दिया था जिनसे उनके बीच निरन्तर तनाव बना रहता था।

29 अगस्त, 1947 को, संविधान-सभा ने संविधान-प्रारूप समिति की नियुक्ति की जिसमें डा० अम्बेडकर को भी मनोनीत किया गया। डा० साहब को कुछ आश्चर्य तो अवश्य हुआ; परन्तु उस समय उन्हें और भी आश्चर्य हुआ जब उन्हें प्रारूप-समिति का अध्यक्ष भी चुना गया। निस्सन्देह जिस अछूत को जीवनभर कष्टों, कठिनाइयों एवं अपमानों का सामना करना पड़ा, आज उसको संविधान निर्माण की प्रक्रिया में सर्वोच्च स्थान मिला। भारतीय इतिहास में, एक दलित के लिए यह न केवल आश्चर्यजनक, बल्कि बहुत बड़ी उपलब्धि थी। भारत ने अपना कानून-वेत्ता नया मनु तथा नया स्मृतिकार, उस जाति में से चुना जिसे सदियों से कुचला एवं शोषित किया गया। नये स्वतंत्र भारत ने कानून बनाने का कार्यभार एक ऐसे महापुरुष को सौंपा जिसने कुछ ही वर्ष पूर्व मनु-स्मृति, हिन्दुओं

की संहिता का अग्निदाह किया था।

एक ओर डॉ० अम्बेडकर को नया उत्तरदायित्व मिला, तो दूसरी ओर वह सिद्धार्थ कालेज (बंम्बई) की देखभाल भी कर रहे थे, ताकि वह निरन्तर विकास करता रहे। संविधान-प्रारूप समिति का ही इतना कार्य था कि डॉ० साहब को बहुत परिश्रम करना पड़ा। उस स्थिति में, जब कि उनका स्वास्थ्य काफी गिर चुका था। उनकी टांगों में दर्द रहता था और वह मधुमेह रोग से पीड़ित थे। उनको यह भी चिन्ता थी कि पाकिस्तान में जो दलित जाति के स्त्री-पुरुष हैं, उनका क्या होगा ? उन्होंने उन्हें उत्साहित किया था कि वे इस्लाम को जबरन कबूल न करें। उनको शीघ्र ही भारत वापस बुलाने का कार्यक्रम बनाया जाएगा। डॉ० साहब ने नेहरू जी से भी अपील की कि पाकिस्तान में रहने वाले सभी दलितों को यहाँ लाने के लिए शीघ्र पग उठाए जाएँ। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर अनेक प्रकार के कार्यों में व्यस्त रह कर नए संविधान के निर्माण में जुटे हुए थे।

उनके कंधों पर संविधान-प्रारूप समिति का कितना भार था, यह टी०टी० कृष्णामाचारी के 5 नवम्बर, 1948 के उस भाषण से स्पष्ट है जो उन्होंने संविधान-सभा में दिया था—'सदन सम्भवतः इस बात से अवगत है कि आपके द्वारा सात मनोनीत सदस्यों में से एक ने स्तीफा दे दिया था, उसकी पूर्ति की गई। एक सदस्य की मृत्यु हो गई, पर उसके स्थान की पूर्ति नहीं हुई। एक दूर अमेरिका में हैं और उनका स्थान भी नहीं भरा गया। एक सदस्य राजकीय मामलों में व्यस्त हैं, अतएव उनका स्थान भी उस सीमा तक खाली रहता है। स्वस्थ कारणों से एक या दो सदस्य दिल्ली से दूर हैं और वे भी अपना काम नहीं सम्भाल पाते। इसलिए कुल मिलाकर संविधान के प्रारूप को तैयार करने का सारा उत्तरदायित्व डॉ० अम्बेडकर पर ही आ गिरा और मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि हम उनके प्रति बड़े आभारी हैं, उस काम को ऐसी स्थिति में पूर्ण करने के लिए, जो प्रशंसनीय है।" अधिकतर डॉ० अम्बेडकर और उनके सचिव ने ही सारा काम सम्भाला और वह ऐतिहासिक कार्य लगभग पूरा हो चला था।

संविधान अभी तक तैयार नहीं हुआ था कि देश में राजनीति उथल-पुथल मच गई क्योंकि लोग भारत के विभाजन की पीड़ा को शांत नहीं कर पाए थे। नेहरू ने यह स्वीकार किया कि विभाजन से देश में काफी खून-खराबा हुआ। लोगों का गांधीवाद से विश्वास उठने लगा। कांग्रेसी नेताओं के मन की शांति भी भंग हो गई। राजऋषि टण्डन ने तो एक मीटिंग में यहाँ तक कह दिया कि भारत के विभाजन के लिए गांधी जी का निरपेक्ष अहिंसा का सिद्धांत अधिकांशतः उत्तरदायी है। भारत के स्वतंत्र होने के 24 घण्टे पूर्व लोगों ने गांधी जी के कलकत्ता निवास स्थान पर पथराव किया। उधर गांधी जी ने 13 जनवरी, 1948 को अपना प्रसिद्ध उपवास प्रारम्भ कर दिया, इसलिए कि साम्प्रदायिक दंगे में उजड़े मुसलमानों को पुनः दिल्ली के उनके घरों मे बसाया जाए, टूटी मस्जिदों की मरम्मत कराई जाए और उन्हें मुसलमानों को ही सौंपा जाए। इन दबावों के कारण भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपयों की अदायगी करनी पड़ी, हालांकि इसके

विरोध में काफी प्रदर्शन हुए। इस प्रकार के उलझन तथा हताशा से परिपूर्ण वरण में नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी की 30 जनवरी, 1948 के दिन हत्या कर दी।

ऐसे तनावपूर्ण वातावरण में, फरवरी के अन्तिम सप्ताह में, डॉ० अम्बेडकर ने संविधान का प्रारूप तैयार करके संविधान-सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत कर दिया, जिसे डॉ० साहब ने 16 नवम्बर, 1948 को संविधान-सभा के समक्ष पेश किया। उसमें 8 सूचियां और 315 धाराएं थीं। अधिकांश सदस्यों ने डॉ० अम्बेडकर की विद्वता, परिश्रम और कर्त्तव्यनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की। प्रारूप के तीसरे वाचन के समय डॉ० अम्बेडकर ने 5 नवम्बर, 1948 को सभा में कहा—"संविधान-सभा में मैं क्यों आया? केवल दलित वर्गों के हितों की रक्षा करने के लिए। इससे अधिक और मेरी कोई आकांक्षा नहीं थी। यहां आने पर मुझे इतनी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी जाएगी इसकी मुझे कोई कल्पना तक नहीं थी। संविधान-सभा ने जब मुझे प्रारूप समिति में नियुक्त किया, तब मुझे आश्चर्य हुआ ही; परन्तु जब प्रारूप-समिति ने मुझे अपना अध्यक्ष चुना, तो मुझे आश्चर्य का धक्का सा लगा। संविधान सभा और प्रारूप समिति ने मुझ पर इतना विश्वास करके मुझसे यह काम सम्पन्न करवाया, उसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।" उन्होंने आगे कहा कि संविधान कितना ही अच्छा हो, यदि उसको व्यवहार में लाने वाले लोग अच्छे न हों, तो संविधान निश्चय ही बुरा साबित होगा। अच्छे लोगों के हाथों में बुरा संविधान भी अच्छा साबित होते सम्भावना बनी रहती है। भारत के लोग भविष्य में कैसा व्यवहार करेंगे, यह कौन जान सकता है? डॉ० साहब ने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में, यह और कहा :

> "मुझे चिंता इस बात की बड़ी है कि भारत ने पहले अपनी स्वतंत्रता ही केवल नहीं खोई, बल्कि वह अपने ही लोगों के विश्वासघात और बदमाशी से खोई गई थी। देश एक समय स्वतन्त्र था; परन्तु जो देश एक बार अपनी स्वतंत्रता खो बैठा, दूसरी बार भी खो सकता है।..........क्या इतिहास अपने को दोहराएगा? इस बात से मेरा मन चिन्ताग्रस्त है। जातियों और पंथों के रूप में अपने पुराने शत्रुओं के अलावा हमारे देश में अनेक दल हैं जो विरोधी विचारों तथा मार्गों का पोषण करते हैं। इसलिए संकुचित पंथ या पक्ष को प्रधानता दी गई तो देश फिर एक बार मुसीबतों में फंस जाएगा। अत: हमें दृढ़तापूर्वक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा रक्त की अन्तिम बूंद तक करनी चाहिए।
>
> यदि हम लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहते हैं, तो हमें अपने सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति संवैधानिक ढंग से करनी चाहिए, अन्य हिंसात्मक तरीकों से नहीं। इस देश की राजनीति में जितनी भक्ति और नायक-पूजा है, उतनी अन्य किसी देश में नहीं है। धर्म में भक्ति मार्ग आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकता है; परन्तु राजनीति में भक्ति तथा नायक-पूजा अधोगति का, और अन्त में, अधिनायकत्व का मार्ग है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृभाव के आधार पर अधिष्ठित सामाजिक जीवन ही लोकतन्त्र कहलाता है। समानता के बिना, स्वतन्त्रता का अर्थ बहुसंख्यकों के द्वारा अल्पसंख्यकों पर प्रभुत्व का होना है। 26 जनवरी 1950 को, हमें राजनीति में समानता मिलेगी; पर सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमानता रहेगी। भारतीय समाज में समानता का अभाव है। हमें इस विषमता का शीघ्रता से अन्त करना चाहिए अन्यथा विषमता से बुरी तरह पीड़ित लोग, इस संविधान-सभा द्वारा बड़े परिश्रम से खड़े किए गए लोकतन्त्र के महल को मिट्टी में मिला देंगे।"

अन्त में, डॉ० अम्बेडकर ने सभी भारतीयों से अपील की कि वे सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक अर्थ में एक राष्ट्र बनें और जातियों का निषेध करें जिनके कारण हम अवनति की स्थिति में आ गिरे। परस्पर जातिगत भेदभावों को भुलाकर हमें संगठित रहना चाहिए। जिस संविधान में हमने "जनता के लिए, जनता का और जनता द्वारा राज्य-तत्त्व अन्तर्भूत किया है, वह संविधान दीर्घकाल तक बना रहे, ऐसा यदि हम सब चाहते हैं तो हमें देश के सामने संकटों को समझने में और उनका निराकरण करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। सभी नागरिकों को देश की सेवा करने का यही मार्ग अपनाना चाहिए।"

डॉ० अम्बेडकर के इन शब्दों की बड़ी प्रशंसा की गई। उनमें उनकी देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम की अभिव्यक्ति थी। सभी सदस्य शान्तचित्त उनके भाषण को सुनते रहे और 26 नवम्बर 1949 के दिन, संविधान-सभा ने नए संविधान को स्वीकार कर लिया। अन्त में, संविधान-सभा के अध्यक्ष, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, *"सभापति के आसन पर बैठकर, मैं प्रतिदिन की कार्यवाही को ध्यानपूर्वक देखता* रहा और इसलिए, प्रारूप-समिति के सदस्यों, विशेषकर उसके अध्यक्ष, डॉ०अम्बेडकर ने कितनी निष्ठा और उत्साह से अपना कार्य पूरा किया, इसकी कल्पना औरों की अपेक्षा मुझे अधिक है। डॉ० अम्बेडकर को प्रारूप-समिति में शामिल करने और उसका अध्यक्ष नियुक्त करने से बढ़कर कोई और अच्छा हम दूसरा काम न कर सके। उन्होंने अपने चुनाव को न केवल न्यायोचित ठहराया है, बल्कि उस काम में क्रान्ति का योगदान किया जिसे उन्होंने सम्पन्न किया।" डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के भाषण के बीच में कई बार डॉ० अम्बेडकर तथा उनके साथियों का करतल-ध्वनि से स्वागत किया गया।

स्वतंत्र भारत के संविधान के प्रमुख निर्माता को विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की संज्ञाएँ दीं और जगह-जगह उनका अभिनंदन किया गया। गांधी विचारधारा के एक साप्ताहिक पत्र ने डॉ० अम्बेडकर को उपाली के समान बतलाया जिसको बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात्, बौद्धों के दीक्षा समारोह में विनय के पूर्वाभिनय के लिए चुना गया था। एक विद्वान् ने उन्हें 'आधुनिक मनु' कहा, तो दूसरे ने उन्हें 'बीसवीं सदी का महान् स्मृतिकार' की संज्ञा दी। 11 जनवरी 1950 को बम्बई दलित जाति फेडरेशन ने डॉ० अम्बेडकर को स्वर्ण पात्र में भारतीय संविधान की प्रति भेंट करके, भारी सम्मान किया। इस अवसर पर बोलते हुए

डॉ० साहब ने कहा कि पिछले 20 सालों से सवर्ण हिन्दुओं तथा कांग्रेसी नेताओं ने मुझे मुस्लिम-समर्थक तथा ब्रिटिश-समर्थक, हिन्दूधर्म-विनाशक एवं स्वतंत्रता-विरोधी नेता कहकर निंदित किया। अब मुझे आशा है कि जो काम मैंने विधान के निर्माण में किया है उससे मुझे वे सही रूप में समझ सकने में समर्थ होंगे और उन झूठे आरोपों को तिलाञ्जलि दे देंगे जिन्हें वे मुझ पर लगाते आए हैं। संविधानिक विशेषज्ञ होने के कारण, कोलम्बिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) ने 5 जून 1958 को विधान-विशेषज्ञ डॉ० अम्बेडकर को एल० एल० डी० की डिग्री से विभूषित किया जो समस्त दलित समाज तथा भारत के लिए गौरव की बात थी।

मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र :

यह बात सही थी कि डॉ० अम्बेडकर संविधान-सभा और नेहरू मन्त्रिमण्डल में अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कतई शामिल नहीं हुए। वह दलित वर्गों के हितों की रक्षा हेतु और अपने कुछ विचारों को संविधान में समावेश करवाने की दृष्टि से गए थे; लेकिन कुछेक घटनाएं ऐसी घटीं जिनके कारण नेहरू तथा अम्बेडकर के बीच भारी मनमुटाव हो गया, हालांकि नेहरू ने डॉ० साहब की योग्यता बुद्धि एवं व्यक्तित्व की सदैव प्रशंसा की और उनका परिचय यह कहकर वह विदेशियों को दिया करते थे कि 'ही इज द ज्वेल ऑफ माइ केबिनेट' अर्थात् डॉ० अम्बेडकर मेरे मन्त्रिमण्डल के हीरा हैं। डॉ० अम्बेडकर एक स्वतत्र एव निर्भीक नेता थे। वे दलितों के हितों में आने वाले हर विचार को कहीं न कहीं व्यक्त करते थे, भले ही वह किसी को कटु लगे अथवा उसके कुछ भी परिणाम हों। एक बार डॉ० साहब ने 25 अप्रेल, 1948 को, उत्तरप्रदेश दलित जाति सम्मेलन (लखनऊ) के समक्ष भाषण दिया जिसके कारण नेहरू तथा पटेल दोनों बड़े नाराज हुए। उस भाषण में उन्होंने सरकार की आलोचना की थी और यह कहा था कि यदि दलित वर्ग संगठित हो जाए तो नेहरू, पटेल जैसी सरकार बना सकते हैं।

26 अप्रेल को बम्बई से लौटने के पश्चात् नेहरू ने सरदार पटेल को एक पत्र लिखा कि "यहाँ मुझे कुछ कठिन समस्याओं का सामना करना है। उनमें से एक तो नई समस्या है। वह फिलहाल में डॉ० अम्बेडकर द्वारा लखनऊ में दिया जाना वाला भाषण है। मैं नहीं समझ पाता कि इस भाषण के पश्चात् अम्बेडकर किस प्रकार हमारे मन्त्रिमण्डल में रह सकते हैं। मैं उनके लिए, एक पत्र लिख रहा हूँ, जिसकी एक प्रतिलिपि इस पत्र के साथ संलग्न है।" नेहरू जी ने अपने पत्र में यह लिखा था कि "आपके भाषण में व्यक्तियों के साथ-साथ कांग्रेस पार्टी पर भी प्रहार है और कांग्रेस में फूट डालने की अपील भी है।...... साम्प्रदायिक राज-नीतिक सङ्गठन पर भी बल दिया गया है और कहा है कि नेहरू, पटेल की सरकार को उखाड़ फेंकना चाहिए। आपके द्वारा विश्वासघाती व्यक्ति की ओर संकेत में संभवत हमारे साथी जगजीवनराम की ओर भी संकेत है। यदि मंत्री लोग इस प्रकार भाषण देंगे तो मन्त्रि-परिषद् का उत्तरदायित्व क्या होगा? प्रधानमन्त्री को तो अपनी दुकान

ही बन्द कर देनी चाहिए।"

अखबार वालों ने डॉ० अम्बेडकर को गलत ढंग से उद्धृत किया था; परन्तु उन्होंने नेहरू जी को उनके पत्र का उत्तर दिया और लिखा : "यह बात सही है कि मैं कांग्रेस का आलोचक रहा हूँ; लेकिन मैं विरोध के लिए विरोध में विश्वास नहीं करता। सहयोग की भावना, यदि उससे लाभ होता है, तो अवश्य होनी चाहिए।...... इसलिए, मैंने सहयोग करने का निश्चय किया और उससे हमें कुछ वे सुरक्षाएँ संविधान में प्राप्त हुईं जो अन्यथा नहीं मिल पातीं।" वस्तुतः डॉ० साहब ने दलितों को संगठित होने का आदेश दिया ताकि वे कांग्रेस से स्वतंत्र एक नये राजनीतिक सङ्गठन का विकास कर सकें। जिसका गलत अर्थ लगाया गया। उन्होंने पत्र में आगे लिखा - "किसी लोकप्रिय जनतन्त्र में कोई भी सरकार स्थायी नहीं होती और यहाँ तक दो महान् पुरुषों, पण्डित नेहरू तथा सरदार पटेल द्वारा स्थापित सरकार भी स्थायी नहीं है।...... यदि आप लोग (दलितवर्ग) संगठित हो जाओ तो उनकी सरकार भी आपके हाथों में आ सकती है।" उनके भाषण का यही तात्पर्य था। फिर भी डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि यदि मेरे भाषण से नेहरू जी को अधिक आपत्ति है तो वह त्यागपत्र दे सकते हैं। अपने एक और पत्र में, डॉ० साहब ने लिखा : "संभवतः आप भलीभांति जानते हो कि राजनीति मेरे लिए कोई खेल नहीं है। वह एक मिशन है। मैंने अपने समस्त जीवन को दलितों की सेवा में व्यतीत किया है। मैं आपके प्रति बड़ा आभारी हूँ कि आपने मुझे मन्त्रि-मण्डल में आमंत्रित किया, जिसकी स्वीकृति के साथ कुछ सीमाएँ हैं; लेकिन सीमाएँ कुछ भी हों, मैं अपने लोगों को सलाह देने के उस अधिकार का बलिदान नहीं कर सकता जिसके मातहत मैं उनके उत्तम मार्ग की बात करता हूँ।"

एक और घटना जिसने नेहरू तथा अम्बेडकर के बीच भारी मतभेद उत्पन्न किया, वह 'हिन्दू कोडबिल' था। नेहरू के आश्वासन पर अम्बेडकर ने 5 फरवरी, 1951 को, कानून मन्त्री की हैसियत से हिन्दू कोड बिल संसद में पेश किया था। बिल में उत्तराधिकार, गुजारा, भरण-पोषण, विवाह, तलाक, गोद लेना, नाबालिग-यत और अभिभावकता के कानून पर हिन्दुत्व की एकता तथा प्रगतिशीलता की दृष्टि से विचार किया गया था। बिल का औचित्य बतलाते हुए अम्बेडकर ने संसद में कहा—"यदि आप हिन्दू व्यवस्था, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते हैं तो उनमें जो दोष पैदा हो गए हैं, उनको सुधारने में आपको तनिक भी झिझक नहीं होनी चाहिए। हिन्दू कोडबिल हिन्दू व्यवस्था के केवल उन्हीं अंशों का सुधार चाहता है जो विकृत हो गए हैं। उनसे अधिक कुछ नहीं। अतएव आप उसका समर्थन अवश्य करें।" समर्थन के स्थान पर इस बिल को लेकर जनता तथा नेताओं में इतना अधिक प्रचण्ड विवाद तथा विरोध फैल गया कि नेहरू को आवेश में आकर यह कहना पड़ा कि यदि वह बिल पास न हुआ तो उनकी सरकार त्याग-पत्र दे देगी। विरोध इतना अधिक था कि नेहरू जी की धमकी का कट्टर हिन्दू कांग्रेसियों पर कोई प्रभाव न पड़ा। संसद में दो प्रबल पक्ष हो गए। एक ओर कट्टरपंथी तत्त्व और दूसरी ओर प्रगतिवादी तत्त्व, जिनमें बड़ा भारी वाक्युद्ध हुआ।

इसी बीच डॉ० अम्बेडकर ने 14 अप्रैल 1951 को दिल्ली में 'अम्बेडकर भवन' का शिलान्यास करते समय केन्द्रीय सरकार की कटु आलोचना की, क्योंकि सरकार दलितों के हितों एवं अधिकारों के प्रति बड़ी उदासीन थी। निश्चित ही, यह कांग्रेस सरकार की ही आलोचना थी। चूंकि डॉ० साहब निर्भीक वक्ता थे, इसलिए दलितों के हित में जो कुछ उन्होंने कहा वह सही था; पर वे भी मन्त्री थे। अतएव उनके द्वारा की गई सरकार की कटु आलोचना नीति के विरुद्ध समझी गई और नेहरू तथा कांग्रेसियों ने बड़ी भारी आपत्ति की; पर मामला शान्त हो गया। इसके बाद डॉ० अम्बेडकर ने, बुद्ध जयन्ती के शुभावसर पर, अपने भाषण में हिन्दूधर्म एवं समाज की आलोचना की और गम्भीर आक्षेप लगाए। निस्सदेह डॉ० साहब की आलोचना न्यायोचित थी; पर चूंकि हिन्दू कोडबिल संसद के समक्ष विचाराधीन था, जिसके प्रति वातावरण पहले से ही गरम था, इसलिए उनके द्वारा आलोचना ने उस वातावरण को उनके और प्रतिकूल बना दिया।

ऐसी स्थिति में, डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू कोडबिल को पुनः संसद में 17 सितम्बर 1951 को पेश किया। संसद के सभी कांग्रेसियों को स्वतन्त्रता दे दी गई कि वे जो चाहें पक्ष लें। फिर क्या था? कांग्रेसी तथा गैर-कांग्रेसी सदस्यों ने बिल की कटु आलोचना की। कांग्रेसी सदस्यों पर चूंकि कोई दबाव नहीं था, इसलिए बिल पर घण्टों तक खुली बहस होती रही। वे नहीं चाहते थे कि बिल पास हो। एक ओर जब डॉ० साहब ने, विवाह तथा तलाक के सन्दर्भ में, राम-सीता की कहानी सुनाई तो संसद के सारे कट्टर हिन्दू सदस्य उनसे नाराज हो गए और दूसरी ओर, भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्वयं बिल के विरुद्ध थे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में, नेहरू ने जवाब दे दिया कि डॉ० राजेन्द्र प्रसाद एक प्रतिक्रियावादी व्यक्ति हैं और चूंकि उनके साथ बहुत कांग्रेसी सदस्य थे, इसलिए वे कुछ कर नहीं पाएंगे। नेहरू जी अपना सारा प्रभाव खो बैठे। हताश होकर उन्होंने डॉ० अम्बेडकर से निवेदन किया कि वह बिल को स्थगित कर दें। बाद में, थोड़ा-थोड़ा करके उसकी धाराओं को पास करवा दिया जाएगा। अन्ततोगत्वा, बिल पास हुए बिना रह गया अर्थात् उसकी हत्या कर दी गई। किसी ने उसकी मृत्यु पर आंसू नहीं बहाए। डॉ० अम्बेडकर को उसकी तैयारी में जो परिश्रम करना पड़ा था, जब कि वे बीमार रहते थे, उससे उन्हें ही बड़ा दुःख हुआ। वे कांग्रेसियों की नकारात्मक प्रवृत्ति से बड़े खिन्न हुए।

नेहरू के विचित्र रुख एवं व्यवहार को देखकर, अम्बेडकर ने, कानून-मन्त्री के पद से, 27 सितम्बर 1951 को त्यागपत्र दे दिया और कहा कि नेहरू जी ने, विरोध के समक्ष उत्साह से काम नहीं लिया। नेहरू देव की भांति तो खड़े हुए; पर भीरू की तरह बोले। अतः वे परिस्थितियों पर काबू न पा सके। इसलिए मैंने यह समझा कि नेहरू, यद्यपि निष्ठावान् थे; पर हिन्दू कोडबिल के प्रति पैदा विरोध को शान्त करने के लिए, उनमें लगनशीलता तथा दृढ़ता की कमी थी अन्यथा उत्तम सुधार पर आधारित बिल पास क्यों न होता? बिल के सम्बन्ध में, डॉ० अम्बेडकर ने कहा—"हिन्दू कोडबिल इस देश में विधान सभा द्वारा हाथ

में लिया गया सबसे महत्त्वपूर्ण समाज सुधार है। कोई भी कानून जो इस देश में पास हुआ अथवा जो सम्भवतः पास होगा, महत्त्व की दृष्टि से, हिन्दू कोडबिल की तुलना में कहीं नहीं ठहरता। वर्ग-वर्ग, लिंग-लिंग के बीच असमानता की उपेक्षा करके, जो हिन्दू समाज का मूलाधार है; आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में कानून बनाया जाना, हमारे संविधान का उपहास और गोबर के ढेर पर महल बनाने के समान है। हिन्दू कोडबिल का इतना महत्त्व है जिसे मैं उसके साथ जोड़ता हूँ। इसी बिल की खातिर, मतभेद होते हुए भी, मैं मन्त्रि-मण्डल में बना रहा। अतएव यदि मैंने कोई गलती की है तो इस आशा से कि कोई शुभ परिणाम निकले।" डॉ० साहब ने अपने त्यागपत्र की पृष्ठभूमि में पांच कारण प्रस्तुत किए—

1 सरकार अछूतोद्धार के प्रति उदासीन थी।
2 नेहरू ने जो योजना-विभाग डा० साहब को सौंप देने का आश्वासन दिया था, वह पूरा नहीं किया।
3 काश्मीर का सही हल उसका विभाजन करना था जिस पर नेहरू-अम्बेडकर के मतभेद थे।
4 गलत विदेश-नीति के कारण, भारत के मित्रों की अपेक्षा, शत्रुओं की संख्या बढ़ी; और
5 नेहरू जी ने 'हिन्दू कोड बिल' के सम्बन्ध में लगन एवं दृढ़ता से काम नहीं लिया।

डा० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट कहा कि उनका मन्त्रि मण्डल से त्यागपत्र अत्यन्त निराशा का परिणाम है। बीमारी के कारण उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने यह भी कहा कि नेहरू जितनी रुचि मुसलमानों की समस्याओं में लेते हैं, उतनी ईसाई या अछूतों की समस्याओं में नहीं। नेहरू-नीतियों ने ही भारत में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है।

उधर सन् 1952 के आम चुनाव निकट आ गए। डा० अम्बेडकर ने दिल्ली से बम्बई आकर चुनाव अभियान प्रारम्भ कर दिया। चुनाव के समय शैडयूल्ड कास्टस् फेडरेशन का समाजवादी पार्टी से गठबन्धन हुआ। डा० साहब लोक सभा के लिए चुनाव में खड़े हुए। यद्यपि वह फेडरेशन के सर्वेसर्वा थे, पर वह अधिकतर दिल्ली में ही अपने सरकारी काम-काजों में उलझे रहते थे। चुनाव की दृष्टि से, उनके लिए यह अलाभकर सिद्ध हुआ। उन्होंने काफी दौड़-धूप की और अनेक सभाओं में भाषण भी दिए। उनके विरुद्ध कांग्रेस ने अपना उम्मीदवार, एन० एस० कजरोलकर, को खड़ा किया जो डा० अम्बेडकर की तुलना में कहीं नहीं ठहरता था; परन्तु दोषपूर्ण चुनाव व्यवस्था के कारण, जनवरी 1952 में वह चुनाव हार गए। उन्होंने चुनाव कमिश्नर से शिकायत भी की पर कांग्रेसी सरकार के समक्ष, जो पुनः डॉ० साहब की शत्रु बन गई, उनकी कुछ न चली। संविधान के मुख्य निर्माता की हार से, सारा राजनीतिक वातावरण आश्चर्यचकित रह गया। उनके साथी भी क्षुब्ध रह गए। जयप्रकाश नारायण ने भी अपने वक्तव्य में कहा कि बम्बई के सारे

समाजवादियों का डॉ० अम्बेडकर को समर्थन प्राप्त था। उनकी हार क्यों हुई ? यह चुनाव-व्यवस्था का ही दोष है। उनके दो साथी, पी० एन० राजभोज तथा वी० सी० काम्बले, चुनकर अवश्य आए। उनकी हार के कई कारण हो सकते थे; पर यदि सारा हिन्दू समाज, कांग्रेस दल उनके विरुद्ध हो तो वे अकेले क्या करते ? उनके पास न तो धन था और न ही शिक्षित कार्यकर्ता। मार्च 1952 में, डॉ० अम्बेडकर राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित होकर संसद में आ गए। निश्चित रूप से ऐसे महान् संसदीय मामलों के विशेषज्ञ को संसद में होना चाहिए। वे मई, 1954 में भण्डारा क्षेत्र से एक उप-चुनाव भी लड़े, पर वहाँ भी हार गए। यद्यपि कांग्रेस ने आचार्य कृपलानी तथा अशोक मेहता जैसे विरोधी पक्ष के नेताओं के विरुद्ध कांग्रेसी उम्मीदवार खड़ा न करके उदारता का परिचय दिया था; किन्तु कांग्रेसी नेता डॉ० अम्बेडकर के प्रति तनिक भी उदारता नहीं दिखा सके और उनको हराने के लिए सभी प्रकार के हथकण्डे उन्होंने अपनाए जो उनके लिए शर्म की बात थी।

इन हारों से डॉ० अम्बेडकर कतई हताश नहीं हुए बल्कि अपने द्वारा स्थापित सिद्धार्थ कालेज (बम्बई) तथा मिलिन्द कॉलेज (औरङ्गाबाद) की प्रगति में जुट गए। जब वे कानून मन्त्री थे तब उन्होंने 12 लाख रुपये भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से उधार लिए थे। जब उपप्रधानमन्त्री, सरदार पटेल को मालूम हुआ तो वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने उस मन्त्रालय के सचिव को बुलाकर यह पूछा कि इतनी बड़ी रकम डॉ० अम्बेडकर को क्यों दी ? सचिव एक आई०सी०एस० अफसर था। उसने निर्भीकता से कहा कि सरकारी प्राविधान के अनुसार शैक्षणिक संस्थाओं की प्रगति के लिए धन दिया जा सकता है। पटेल निरुत्तर थे। फिर भी पटेल ने कहा कि मुझसे पूछे बिना फिर कोई धन राशि स्वीकार मत करना। शिक्षा जगत में, विशेषकर महाराष्ट्र में डॉ० अम्बेडकर की सेवाएँ ठोस थीं। उनकी योग्यताओं तथा उपलब्धियों की दृष्टि से उस्मानियाँ यूनिवर्सिटी, हैदराबाद ने उन्हें 12 जनवरी, 1953 को डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया। केवल यही एक ऐसा भारतीय विश्वविद्यालय था जिसने भारत के संविधान के मुख्य निर्माता का इतना उपयुक्त सम्मान किया।

नेहरू मंत्रि-मण्डल से त्यागपत्र देने के बाद ही, डॉ० अम्बेडकर ने दलित जाति फेडरेशन के सङ्गठन और सिद्धान्त की ओर ध्यान दिया। उनके मन में बौद्ध-धर्म के प्रति जो प्रगाढ़ श्रद्धा थी, उभरकर आ रही थी। वे कई बौद्ध देशों में भी गए। फरवरी 1953 में इन्डो-जापानीज सांस्कृतिक संस्थान के तत्त्वावधान में बोलते हुए, उन्होंने कहा कि अन्ततोगत्वा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों को भगवान् बुद्ध और कार्ल मार्क्स के मार्ग के बीच चुनाव करना पड़ेगा। आज पश्चिम की अपेक्षा पूर्व कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। मई 1953 के, एक और भाषण में डॉ० साहब ने कहा कि यदि देश का वर्तमान सामाजिक ढांचा न बदला गया तो राजनीतिक व्यवस्था नष्ट हो जायगी, और एक विकल्प के रूप में, जनतंत्र सफल नहीं हुआ तो एक प्रकार के साम्यवाद का यहां

प्रभुत्व हो जायेगा। वे सामाजिक तथा धार्मिक मामलों में गहरी रुचि ले रहे थे। राजनीतिक क्षेत्र में भी जागृति पैदा कर रहे थे। उन्होंने दलितों को भूमि दिलाने हेतु, महाराष्ट्र सरकार के विरुद्ध नवम्बर 1953 में प्रान्तव्यापी सत्याग्रह शुरु किया जिसके फलस्वरूप, अछूतों को बजर भूमि मिली।

उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा था; लेकिन विभिन्न कार्य-क्रमों के प्रति, वे कभी उदासीन नहीं रहे। 4 जनवरी, 1954 को उन्होंने, पी० के० आत्रे द्वारा बनाई फिल्म 'महात्मा फूले' का उद्घाटन किया और कहा, "आज हर व्यक्ति राजनीतिक एवं फिल्मों के पीछे पड़ा है, लेकिन समाज सेवा का मूल्य इनसे अधिक है क्यों कि उससे चरित्र का निर्माण होता है। आत्रेजी की फिल्म महात्मा फूले का स्मरण करायेगी जो हमारे महान् समाज सुधारकों में से एक थे।" इसके पूर्व डॉ० अम्बेडकर ने, अखिल भारतीय साईं-भक्तों के समारोह का उद्घाटन 28 दिसम्बर, 1953 को बंबई में किया था। उस समारोह में, उन्होंने कहा; "आज हमारे धर्म में न तो ईश्वर का महत्त्व है और न ही नैतिकता का। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं लगता कि मानव मन की यह बड़ी ही अवनति की स्थिति है; और यह भावी पीढ़ी का कर्त्तव्य है कि वह धर्म की उसके विशुद्ध एवं सुन्दर रूप में पुन: प्रतिस्थापना करे। मेरे युग के भारत में मूर्तियों की पूजा, चाहे वे साधुओं की हों, सन्तों अथवा चमत्कार दिखाने वालों की, के सिवाय और कोई धर्म नहीं था। अपने मूल रूप में धर्म मनुष्य की आत्मा की वैयक्तिक मुक्ति का मामला है और उसकी द्वितीय अवस्था में, मनुष्य उन व्यक्तियों की पूजा करते हैं जो उनके जीवन की चिन्ताओं को शान्त करते हैं; और अन्तिम अवस्था में, लोग उस व्यक्ति की पूजा करते हैं जो चमत्कार दिखाता है। साधु-सन्तों के नाम में जो धन इकट्ठा किया जाता है उसे अस्पताल, शिक्षा, असहायों के लिए लघु-उद्योगों की स्थापना; और विधवाओं की सेवा में खर्च किया जाना चाहिए। मैं सांई बाबा का भक्त नहीं हूँ, और न ही मुझे उनसे कभी मिलने का अवसर ही प्राप्त हुआ।" इस प्रकार विभिन्न कार्य-क्रमों में वे भाग लेकर अपने सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विचारों को दलितों के हित में व्यक्त करते रहे।

मार्च 1954 में, डॉ० अम्बेडकर बंबई से दिल्ली गए। वहां जाकर उन्होंने राज्य-सभा के अधिवेशन में भाग लिया जिसमें उन्होंने नेहरू सरकार की कटु आलोचना की क्यों कि नेहरू की आन्तरिक तथा विदेशी दोनों नीतियों ने देश को संकट में डाल रखा था। मई 1954 में, वे बुद्ध जयन्ती समारोह में भाग लेने रंगून (बर्मा) गए जहाँ से भगवान् बुद्ध में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा को और सुदृढ़ बनाकर लौटे। धर्म में रुचि के साथ-साथ, वे राजनीतिक मंच पर भी कार्य कर रहे थे। 1 जुलाई, 1954 को, वे दलित जाति फेडरेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और जनवरी 1955 में, फेडरेशन का एक नया विधान प्रकाशित करवाया ताकि सन् 1956 में, होने वाले आम-चुनाओं को कुछ ठोस आधारों पर लड़ा जा सके। इसी बीच कांग्रेस के तो वे और कटु आलोचक बन गए क्यों कि वह दलितों को गुमराह करने के सिवाय और कुछ नहीं कर रही थी। अत: उन्होंने सदैव दलितों को

संगठित होकर स्वतंत्र मंच बनाने की प्रेरणा दी ताकि वे अपने पर हो रहे अत्या-चारों तथा अन्यायों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द कर सकें। दूसरों के मंच पर तो पिछलग्गू होकर रहना पड़ेगा जो स्वतंत्र प्रगति एवं विचार के लिए घातक है।

निःसन्देह कांग्रेस तथा नेहरू की ढिलमिल नीति के कारण, हिन्दू कोड बिल पास न हो सका जिसकी वजह से अम्बेडकर को मंत्रि-मण्डल से त्यागपत्र देना पड़ा; परन्तु उसी बिल को कुछ अंशों में विभक्त किया गया। एक-एक करके उसकी धाराएं बिलों के रूप में भारतीय संसद में पेश की गई और उन्हें उन्हीं कांग्रेसी सदस्यों ने पास किया जिन्होंने डॉ० साहब के समय उनका विरोध किया था। 18 मई, 1955 को 'हिन्दू विवाह विधेयक', 17 जून, 1956 को 'हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक', 25 अगस्त, 1956 को 'हिन्दू अल्पवयस्कता और संरक्षक विधेयक' और 14 दिसम्बर, 1956 को 'हिन्दू दत्तक-ग्रहण और निर्वाह विधेयक' पास हुए। इन विचारों को कानूनी आधार देकर, डॉ० अम्बेडकर हिन्दू समाज में क्रांति लाना चाहते थे, हालांकि कांग्रेसी हिन्दुओं ने उनको संसद में सहयोग नहीं दिया; परन्तु फिर भी हिन्दू समाज-क्रान्ति की रचनात्मक भूमिका तैयार करने में हिन्दू कोडबिल के जन्मदाता डॉ० अम्बेडकर ने सबसे अधिक परिश्रम किया और सदियों से गिरे हिन्दू-समाज को नई दिशा प्रदान की, हालांकि अन्त में वे बौद्ध हो गए। इस प्रकार समस्त भारतीय संस्कृति के उत्थान में डॉ० अम्बेडकर की गहरी रुचि थी जो विभिन्न रूपों में समय-समय पर अभिव्यक्त हुई।

यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि वर्तमान सरकार जो भी नीतियां लागू कर रही है, उन सब में डा० अम्बेडकर की विचारधारा, जो उनके कृतित्व के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई, स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। आरक्षण द्वारा दलितों के उत्थान की प्रक्रिया, अल्प संरक्षकों के प्रति समानता तथा आत्मीयता, पिछड़े एवं निर्धन वर्गों की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के साधन, भाषिक समाधान, न्यायपालिका सम्बन्धी प्रशासनिक दृष्टिकोण अर्थात् स्वतंत्र न्यायपालिका, नवीन प्रशासनिक मापदण्डों की प्रतिष्ठापना, प्रजातान्त्रिक मूल्यों एवं आदर्शों की व्यावहारिकता, केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन, कृषि तथा उद्योग पर राज्य का नियन्त्रण, बीमा कम्पनियों एवं बैंकों का राष्ट्रीयकरण, औद्योगीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता, संघात्मक ढांचे को सशक्त बनाना, सभी में डॉ० अम्बेडकर की दूरदर्शिता और बौद्धिकता प्रतिबिम्बित होती है। वे सच्चे अर्थों में एक क्रान्ति-कारी तथा युग निर्माता थे। उनके कृतित्व का मूल्यांकन तथा अनुकरण भारत की भावी सन्तानें करेंगी, तब जाति-विहीन समाज की स्थापना का उनका स्वप्न पूर्णतः साकार हो जाएगा।

☐

अध्याय—४

दर्शन

प्रत्येक युग में कोई दार्शनिक समाज से जो कुछ ग्रहण करता है; उसे अपने दृष्टिकोण से समाज को ही पुनः अर्पित कर देता है। प्रारम्भ में, वह एक प्रकार का भिखारी होता है; परन्तु अन्त में, वह एक दाता बन जाता है। वह युग-द्रष्टा का रूप धारण कर लेता है। निस्सन्देह दार्शनिक अपने समय की विद्यमान समस्याओं, प्रगतियों तथा परिवर्तनों पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है और फिर वह समाज को अपने व्यक्तित्व, कृतित्व एवं साहित्य के माध्यम से नई दिशाएँ, नये आयाम प्रदान करता है ताकि समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आएँ।

आधुनिक भारत के समाज-सुधारकों तथा दार्शनिकों में डॉ० अम्बेडकर का विशेष स्थान है। अन्यों की भांति उनके साहित्य में अमूल्य दार्शनिक विचार हैं; परन्तु उनके साहित्य में जो जीवन-दर्शन निहित है, वह उनके पूर्ववर्ती समाज-सुधारकों तथा दार्शनिकों से भिन्न है। कारण डॉ० साहब की मान्यताएँ और विचार-धाराएँ कुछ विशेष परिस्थितियों की उपज हैं। उन पर सामयिक स्थितियों का बड़ा प्रभाव था। जिसके कारण उनके दर्शन की विविध अभिव्यक्तियां भारतीय क्षितिज पर सामने आईं।

वर्णवाद के प्रति विद्रोह :

बीसवीं सदी के भारत में अनेक समाज-सुधारक तथा दार्शनिक हुए। उनमें दो मुख्य विचारधाराएँ विकसित हो गईं। एक समूह उन समाज-सुधारकों तथा विद्वानों का था जो वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध कुछ न कहते हुए कई प्रकार के सुधारों के पक्ष में था, जैसे विधवा-विवाह तथा बाल-विवाह। दूसरा समूह उन समाज-सुधारकों तथा विद्वानों का था जो मूलतः वर्णाश्रम-धर्म के ही विरुद्ध था और वे उसे उखाड़ फेंककर मौलिक सुधारों के पक्ष में थे क्यों कि वर्णवाद (जातिवाद) को वे विभिन्न सामाजिक बुराइयों की जड़ मानते थे। डॉ० अम्बेडकर का नाम द्वितीय श्रेणी में आता है क्यों कि उन्होंने वर्णवाद के प्रतिरोध में जो अकाट्य तर्क दिए संभवतः किसी अन्य समाज-सुधारक ने नहीं दिए। वर्णवाद क्या होता है, उसकी तीव्रता कैसी होती है और उसके व्यवहार में क्या पीड़ा निहित है? यह एक अछूत ही अच्छी तरह जान सकता है। डॉ० अम्बेडकर ने केवल वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त का ही गम्भीरता से अध्ययन नहीं किया, बल्कि उसके व्यवहार का शिकार भी उन्हें होना पड़ा। इस प्रकार सिद्धांत और व्यवहार की कसौटी पर कस कर डॉ० अम्बेड-कर ने वर्णवाद को देखा। ऐसी स्थिति में, यदि उन्होंने वर्णवाद का विरोध किया तो यह न्यायोचित ही था।

हिन्दूधर्म ग्रन्थ यह मानते हैं कि वर्ण-व्यवस्था ईश्वरकृत है। प्रजापति के मुख, बाहू, जंघा और पांव से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उत्पन्न हुए। यह वैदिक रूपक ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त में मिलता है। यही चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कहलाती है। कहा जाता है कि यह वैदिक वर्ण व्यवस्था गुणकर्मानुसार थी और चारों वर्णों में रोटी-बेटी का व्यवहार होता था। ब्राह्मणों का काम शिक्षा-दीक्षा देना था। उन्हें ही वेदमन्त्रों का स्वामी माना जाता था। क्षत्रियों का काम समाज में शान्ति-व्यवस्था कायम करना था। वे ही देश की रक्षा का भार संभालते थे। वैश्यों का काम व्यापार तथा कृषि को संभालना था। शूद्रों का काम इन वर्णों की सेवा करना था। वर्ण व्यवस्था में अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है। महिलाओं के बारे में वर्ण-व्यवस्था ने कोई विभाजन नहीं किया। ब्राह्मण चारों वर्णों की महिलाओं से शादी कर सकता था; क्षत्रिय अपने तथा निम्न दो वर्णों की महिलाओं से, वैश्य अपने तथा शूद्र वर्णों की महिलाओं से विवाह कर सकता था; लेकिन शूद्र अपने ही वर्ण की महिला के साथ विवाह का अधिकारी था। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दो हीं वर्णों को श्रेष्ठ कोटि में रखा गया। इन दोनों में भी ब्राह्मणों के विशेषाधिकार बहुत थे।

वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक रूप कुछ भी हो, कालान्तर में वह जन्म पर आधारित हो गई। जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ग की श्रेष्ठता तथा शूद्र वर्ग की हीनता पर अत्यधिक बल दिया गया। ब्राह्मण को भूदेव कहा गया तो शूद्र को चाण्डाल, पतित तथा नीच की संज्ञा दी गई। हिन्दूधर्म ग्रन्थों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्व को अधिकार था कि वे शूद्र से किसी भी प्रकार की सेवा करवा सकते थे। साथ ही साथ शूद्रों को विद्याध्ययन, हथियार रखने तथा व्यापार करने का कोई अधिकार नहीं था। वेदमन्त्रों का सुनना तो उनके लिए अभिशाप था। ब्राह्मणों को अधिकार था कि वे शूद्र की धन-सम्पत्ति छीन ले और तीनों वर्णों के लोगों को यह भी अधिकार था कि वे शूद्र को जितना चाहें मारें-पीटें। मनुस्मृति में कहा गया है कि "समर्थ होने पर भी शूद्र धन संग्रह न करे क्यों कि धन इकट्ठा होने पर वह ब्राह्मणों को तङ्ग करेगा।" उधर गौतम धर्मसूत्र में यह लिखा है कि "शूद्र यदि वेद सुने, तो उसके कान में शीशे का एवं लाख का पिघला हुआ गरम रस डाला जाए। यदि शूद्र वेद का उच्चारण करे तो उसकी जीभ काट दो। यदि शूद्र वेदाध्ययन करके वेदज्ञ बने, तो उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो।" धर्मशास्त्रों ने शूद्रों के लिए केवल जूठन खाने की व्यवस्था रखी। वे केवल फटे-पुराने कपड़े ही पहन सकते थे। ब्राह्मण मूर्ख हो तो भी कोई दोष नहीं; परन्तु शूद्र ज्ञानी हो तो भी पूज्य नहीं। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिख दिया : "पूजिये विप्र शील गुण हीना, नहीं शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना।"

हिन्दुओं में लोकप्रिय भागवत् गीता ने भी वर्ण व्यवस्था की पुष्टि एवं पोषण किया। गीता के चौथे अध्याय का तेरहवां श्लोक भी यह कहता है : "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः। तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्॥" अर्थात् "चारों वर्णों की व्यवस्था गुण और कर्म के भेद से मैंने निर्मित की है।

उसका कर्ता होते हुए भी मुझ अविनाशी को अकर्ता जान।" गीता ने इसी व्यवस्था को स्वधर्म कहा और यह निर्धारित किया कि उसमें जिस व्यक्ति की आस्था नहीं होगी, वह ईश्वर-भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। गीता के विद्वानों ने, इस ग्रन्थ का सहारा लेकर हिन्दू परम्परावादी समाज व्यवस्था को, जिसमें ऊँच-नीच की भावनाएँ समवेत हो गईं, न्यायोचित ठहराया। गीता के अतिरिक्त सभी हिन्दूधर्म ग्रन्थों ने वर्णवाद की वकालत की और जितने भी हिन्दू साधु-सन्त, ऋषि-मुनि, पण्डित-ज्ञानी आए, सभी ने वर्णाश्रम को आदर्श व्यवस्था मानकर, जाति एवं छुआछूत की निन्दा की। डॉ० अम्बेडकर ने यही अन्तर्विरोध पकड़ा और कहा कि वर्ण व्यवस्था ही तो जाति एवं छुआछूत, ऊँच एवं नीच, भेद-भाव, आदि का मूलाधार है। उसको उखाड़े बिना, उसका विनाश किए बिना, समाज-सुधार का कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। डॉ० साहब का यह निश्चित मत था कि वर्ण व्यवस्था को नष्ट किए बिना, जातिवाद तथा छुआछूत मिटाने का आन्दोलन एक छल-कपट के सिवाय और कुछ नहीं है क्यों कि तीनों ही एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं।

डॉ० अम्बेडकर ने, अपनी एक छोटी सी, किन्तु सारगर्भित पुस्तक में वर्णवाद का खण्डन किया है और साथ ही जाति एवं छुआछूत के उन्मूलन के उपाय सुझाए हैं। उन्होंने लिखा है कि "वर्णभेद ने सार्वजनिक भावना को मार डाला है। वर्णभेद ने सद्गुण को जात-पांत के नीचे दबा दिया है और सदाचार को जात-पांत में जकड़ दिया है।" यह ठीक भी है कि वर्णवाद हिन्दू समाज में इतना छा गया कि हिन्दूधर्म में निहित कुछ सद्गुणों का भी लोप हो गया। जब तक यह व्यवस्था हिन्दुओं के मन में है तब तक उनका समाज-सुधार, धर्म-प्रचार और शुद्धि-आन्दोलन निरर्थक है। उनसे कोई ठोस परिणाम निकलने वाले नहीं हैं। निश्चय ही डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि "जब तक वर्ण व्यवस्था है, तब तक कोई सङ्गठन नहीं हो सकता और जब तक सङ्गठन नहीं, तब तक हिन्दू लोग दुर्बल और दब्बू ही बने रहेंगे।" उनमें आत्म-शक्ति और सामाजिक समता का विकास नहीं हो पायेगा।

हिन्दू समाज में बड़े-बड़े समाज-सुधारक तथा आन्दोलन-कर्त्ता आए पर क्रांति नहीं आ पाई। प्रश्न है; भारत में सामाजिक क्रान्ति क्यों नहीं हुई? "यह एक ऐसा प्रश्न है जो मुझे निरन्तर पीड़ित करता रहता है। मेरे पास इसका केवल एक ही उत्तर है और वह यह है कि इस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ने हिन्दुओं की नीची जातियों को कोई क्रान्ति करने के योग्य नहीं होने दिया। उनको हथियार धारण करने का कोई अधिकार नहीं दिया और चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के नियमों के अनुसार, वे विद्या प्राप्त नहीं कर सकते थे। उल्टे उन्हें कलंकित करके नीच ठहरा दिया गया। वे अपनी मुक्ति का उपाय न सोच पाए, न जान पाए।" वस्तुतः किसी समाज का पीड़ित तथा शोषित वर्ग ही क्रान्ति ला पाता है, पर हिन्दू समाज में ऐसा नहीं हो पाया, क्यों कि कानून, धर्म तथा राज्य की सहायता से उच्च वर्गों ने उन्हें सदैव अज्ञान, अन्धकार तथा निर्धनता में ही डाले रखा। फलतः उनकी सारी शक्ति,

सूझ-बूझ, भावना, आदि यों ही नष्ट हो गई। अतएव उच्च वर्गों ने न केवल इन वर्गों के साथ अन्याय, अत्याचार तथा अनाचार किया, बल्कि समूचे देश को गलत मार्ग पर ला पटका और उसका परिणाम क्या हुआ, यह किसी की आँखों से छिपा हुआ नहीं है।

डॉ० अम्बेडकर ने गीता द्वारा जन्मजात गुणों के आधार पर प्रतिपादित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का भी खण्डन किया, हालांकि गीता ने यह दार्शनिक आधार सांख्य-दर्शन से ग्रहण किया। सांख्य दर्शन में यह माना गया है कि मनुष्य जाति के सभी मानसिक एवं शरीरिक गुण मूलतः तीन गुणों सत्व, रज, तम की अभिव्यक्तियां हैं। इन तीनों गुणों में निरन्तर परस्पर संघर्ष एवं परिवर्तन होता रहता है ताकि एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर ले। इस प्रकार आदमी के स्वभाव में, जो प्रकृति का ही अंगमात्र है, निरन्तर परिवर्तन की संभावना है। इसलिय डॉ० अम्बेडकर ने यह तर्क दिया कि यदि मनुष्य में तीन गुणों की प्रधानता है जिनमें प्रभुत्व के लिए संघर्ष होता है तो यह कैसे मान लिया जाये कि एक व्यक्ति में जो गुण जन्म के समय प्रधान थे, वही गुण मृत्यु तक प्रधान बने रहेंगे? एक व्यक्ति में एक ही स्वरूप में कोई गुण बना रहेगा इसकी क्या गारण्टी है? डॉ० साहब ने कहा कि सांख्य दर्शन या गीता में या अनुभव में, ऐसा कुछ नहीं मिलता कि व्यक्ति विशेष में जन्म से लेकर मृत्यु तक एक सी अवस्था में गुण बने रहेंगे। चूँकि प्रकृति में परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए मनुष्य के स्वभाव में भी परिवर्तन अनिवार्य है और इस प्रकार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का मूलाधार ही गलत है।

विद्वान् डॉ० की दृष्टि से, व्यक्ति का स्वभाव क्षण-क्षण में बदलता रहता है। उसी प्रकार समय एवं परिस्थिति के अनुसार, प्रत्येक गुण भी बदलता है। अतएव यदि सभी गुण परस्पर बदलते रहते हैं तो मानव प्राणियों को वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत चार स्थायी वर्गों में विभाजित करना न्यायोचित नहीं है। यही कारण है कि वर्ण व्यवस्था प्रामाणिक नहीं है और ईश्वरकृत भी नहीं है। यह मात्र ब्राह्मणों की चाल है; लेकिन हिन्दू लोग फिर भी वर्ण व्यवस्था से इतने अभीभूत हैं कि उससे चिपके बैठे हैं। स्तरीय असमानता को उसका मूलाधार बना लिया है। अतएव वर्ण व्यवस्था में स्वतंत्रता एवं समानता के लिए कोई स्थान नहीं है, जो संगठित जीवन तथा सभ्य समाज की आधारशिला है। इन दोषों के अलावा, वर्ण व्यवस्था में और भी ऐसे दोष हैं जिनके कारण, उसकी निरन्तरता आज कतई न्यायोचित नहीं मानी जा सकती है।

कहा जाता है कि वर्ण व्यवस्था, अपने विशिष्ट आर्थिक संगठन द्वारा, सामाजिक संतुलन तथा संगठन पैदा करती है। यह भी माना जाता है कि वर्ण व्यवस्था 'श्रम-विभाजन' पर आधारित है और श्रम-विभाजन आधुनिक समाज का अनिवार्य अंग है। इसलिए सवर्ण हिन्दुओं की दृष्टि में, वर्ण व्यवस्था न्यायोचित है और उसमें कोई दोष प्रतीत नहीं होता। डॉ० अम्बेडकर ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वर्ण व्यवस्था में न केवल श्रम-विभाजन मिलता है, वरन् श्रमिकों का विभाजन भी उसमें स्पष्ट है। निस्सन्देह आधुनिक समाज में श्रम-विभाजन होना

आवश्यक है, पर किसी भी आधुनिक समाज में श्रमिकों को चार ही स्थायी वर्गों में नहीं बाँटा गया है। वर्ण-व्यवस्था में तो श्रमिकों को ऊँच-नीच की श्रेणियों में विभक्त किया गया है। क्या यह न्यायोचित श्रम-विभाजन है? इसके अतिरिक्त, उसमें अधिसंख्यक लोगों को अपनी रुचि के अनुसार काम नहीं मिलता और जन्म के आधार पर, उन पर कुछ पेशे थोप दिए जाते हैं जिनमें उनका दिल और मन दोनों नहीं लगते। ऐसी स्थिति में क्या आर्थिक कुशलता आ सकती है? यह भी एक दुर्भाग्यपूर्ण मान्यता है कि काम-धन्धों के आधार पर ऊँच-नीच का भेदभाव बर्ता जाता है। डॉ० साहब ने यह भी कहा कि उद्योग सदैव परिवर्तन-शील अवस्था में होता है अतएव व्यक्ति को भी वह स्वतंत्रता हो कि जो काम उसे पसन्द हो, जहां उसका समझौता हो जाए, उसे करने में वह स्वतंत्र होना चाहिए। औद्योगिक स्वतन्त्रता के बिना, आर्थिक कुशलता संभव नहीं हो सकती। इसलिए, आर्थिक संगठन के रूप में यह वर्ण व्यवस्था, डॉ० साहब की दृष्टि से, बिल्कुल हानिकारक है।

कुछ हिन्दू विद्वानों ने वर्ण व्यवस्था को जैविक आधार प्रदान करने का प्रयास किया और कहा कि यह व्यवस्था जाति शुद्धता तथा रक्त-शुद्धता को कायम रखने का एक उत्तम ढंग है। डॉ० अम्बेडकर ने इस मान्यता को भी अस्वीकार कर दिया क्यों कि दुनिया भर में ऐसी कोई जाति नहीं है जो बिल्कुल विशुद्ध हो। उसी प्रकार भारत में ऐसा कोई वर्ग नहीं है जिसे जाति या रक्त की दृष्टि से विशुद्ध कहा जा सके। यह तो राधाकृष्णन् भी मानते हैं कि हिन्दू जाति में विदेशियों का रक्त-मिश्रण मिलता है और स्वत: देश में, एक वर्ग का रक्त दूसरे वर्ग में मिश्रित हुआ है रक्त की दृष्टि से चारों वर्ण के स्त्री-पुरुषों में नितान्त अलगाव रहा हो, ऐसा कभी संभव नहीं हुआ। चारों वर्णों के स्त्री-पुरुषों के बीच योनि-सम्बन्ध रहे हैं और आज भी हैं। धर्मशास्त्रों ने चाहे कितने ही प्रतिबन्ध लगाए हों, पर काम वासना अन्धी होती है तो सारे धर्मशास्त्रीय नियम अलग रह जाते हैं। अत: जाति एवं रक्त की शुद्धता को प्रमाणिक मानना एक मूर्खता के सिवाय और कुछ नहीं। वर्ण व्यवस्था को घोषित करने की आड़ में, गलत धारणाओं को मानना न्यायोचित नहीं है।

कभी-कभी वर्ण व्यवस्था की प्लेटो के वर्ग विभाजन से तुलना की जाती है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, प्लेटो ने मानव प्राणियों का जो तीन वर्गों— शासक, रक्षक एवं श्रमिक में विभाजन किया, वह बिल्कुल मानव स्वभाव के प्रतिकूल है। प्लेटो को सम्भवत: व्यक्ति की विलक्षणता का ज्ञान नहीं था। व्यक्ति के स्वभाव में इतने विभिन्न गुण होते हैं कि उन्हें केवल तीन श्रेणियों में समेटना एक खोखलापन है। यह तो मनुष्य के स्वभाव की गलत धारणा बनाना है। यही कारण है कि प्लेटो का सामाजिक वर्गीकरण व्यावहारिक नहीं बन पाया। इसी प्रकार, चूंकि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भी गलत धारणाओं पर आश्रित थी, वह कभी भी व्यावहारिक नहीं बन पाई, हालांकि उसके आधार पर छुआछूत, ऊँच-नीच, जात-पांत जैसी बुराइयों का विकास हुआ जिन्होंने आज हिन्दू समाज को अधोगति में ला पटका है।

आर्यसमाजियों तथा कुछ विद्वानों का मत है कि देश की समस्त जातियों को चार विशुद्ध वर्णों में पुनः संगठित किया जाए। डॉ० अम्बेडकर ने इस विचार को बिल्कुल ही अव्यावहारिक बतलाया क्योंकि आज हिन्दू समाज में कई हजार जातियां एवं उप-जातियां हैं। जातिगत भावनाएं, वर्णाधारित भावनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक हैं। ये जातियां जन्म पर आधारित हैं, जबकि वर्ण व्यवस्था को गुणकर्मानुसार कहा गया है। गुणकर्मानुसार इन जातियों को, जो जन्म से ऊंच या नीच हैं, किस प्रकार नियोजित करेंगे, यह एक गम्भीर तथा कठिन प्रश्न है। एक व्यक्ति, जो जन्म से ऊंच है, गुण-कर्म से नीच है कैसे इस परिवर्तन को स्वीकार करेगा, यह समझ में नहीं आता। चार वर्णों की पुनः स्थापना का विचार ही मूलतः गलत है। डॉ० अम्बेडकर ने यह कहा कि यदि मनुष्य को गुणकर्मानुसार ही मूल्यांकित करना है तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का लेबिल क्यों लगाया जाए? ये नाम तो निश्चित ही ऊंच-नीच भावनाओं के साथ जुड़े हुए हैं। जब तब ये लेबिल प्रचलित रहेंगे, हिन्दू इस जन्ममूलक ऊंच-नीच, भेदभाव को मानते और उनके अनुसार आचरण करते रहेंगे। इन परम्परावादी नामों को बनाए रखना और सुधार की बात करना, विरोधाभास है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने कहा—"चातुर्वर्ण्य को गुण-कर्ममूलक बताकर उस पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के दुर्गन्ध से युक्त लेबिल लगाना एक प्रकार का भारत में पाखण्डी जाल फैलाना है।"

वर्ण व्यवस्था के पक्ष में कितने ही तर्क दिए जाएं, चाहे वह व्यवस्था गांधी, गीता तथा आर्यसमाज द्वारा विवेचित हो, वह मूलतः गलत सामाजिक वर्गीकरण पर आश्रित है। डॉ० अम्बेडकर की वर्ण-विरोधी विचारधार युक्तियुक्त है; किन्तु प्राचीन परम्परा, संस्कृति तथा धर्म के बोझ से दबे, सवर्ण हिन्दू यह स्वीकार नहीं करते कि वर्ण व्यवस्था आज निरर्थक है तथा हानिकारक संस्था है। डॉ० साहब का यह दृढ़ मत था कि जाति एवं छुआछूत की जननी यही वर्ण व्यवस्था है। अतः यदि इनका अन्त करना है तो वर्ण का अन्त करना आवश्यक है। वर्णवाद तथा जातिभेद के उन्मूलन के लिए, डॉ० अम्बेडकर ने दो उपायों पर अधिक जोर दिया। आपने यह लिखा "मेरा विश्वास है कि वास्तविक उपाय अन्तर-जातीय विवाह हैं। केवल रक्त का मिश्रण ही स्वजन तथा मित्र होने की भावना उत्पन्न कर सकता है।" परन्तु डॉ० साहब का यह उपाय उनके दूसरे उपाय से सम्बन्धित है। उन्होंने कहा कि हिन्दू जातिभेद को इसलिए नहीं मानते हैं कि वे क्रूर हैं या इनके मस्तिष्क में कुछ विचार हैं। वे जातिभेद के साथ इसलिए अनुबन्धित हैं कि उनको धर्म प्राणों से भी अधिक प्रिय है। जातिभेद को मानने में हिन्दुओं की भूल नहीं है। भूल उन ग्रंथों की है जिन्होंने यह भावना उनमें उत्पन्न की है। इसलिए यदि आप जातिभेद को मिटाना चाहते हैं तो आपके लिए वेद और स्मृति धर्म को नष्ट कर देना आवश्यक है। अन्य किसी बात से लाभ नहीं होगा। हिन्दू स्त्री-पुरुषों में धर्म-ग्रंथों का जो भय बैठा है, वह यदि समाप्त हो जाता है तो निश्चित रूप से वे स्वतः अन्तर-जातीय विवाह करने में कतई नहीं हिचकिचाहट प्रदर्शित करेंगे।

अतः अन्तर-जातीय विवाह को उसी समय निर्द्वन्द्व स्वीकार किया जाएगा, जब हिन्दुओं में धर्मान्धता का विनाश होगा।

इसके साथ-साथ, डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दूधर्म सुधार के लिए, कुछ सुझावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया—(1) हिन्दूधर्म का एक और केवल एक ही प्रामाणिक ग्रंथ हो जिसे सब हिन्दू-छूत तथा अछूत, स्वीकार करें; (2) पुरोहित का पेशा परम्परागत न होकर, योग्यता पर आधारित हो अर्थात् सभी वर्गों के लोगों को पुरोहित बनने का अधिकार होना चाहिए। यह कानून भी बने कि कोई हिन्दू तब तक पुरोहित नहीं बन सकेगा, जब तक वह राज्य द्वारा निर्धारित परीक्षा पास नहीं कर लेता और वह पुरोहिताई करने की सनद सरकार से प्राप्त नहीं कर लेता; और (3) जिस पुरोहित के पास राज्य का प्रमाण-पत्र न हो, उसके द्वारा करवाया गया कोई संस्कार मान्य न हो और जिस व्यक्ति के पास सनद न हो उसके द्वारा पुरोहिताई के काम को दण्डनीय माना जाए। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने वर्णवाद-जातिभेद एवं छुआछूत के प्रति अपना विरोध ही प्रकट नहीं किया, बल्कि ठोस सुझाव भी प्रस्तुत किए जिन पर चलकर हिन्दू समाज एवं धम में मौलिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। संक्षेप में, हिन्दुओं को अपने धर्मग्रंथों के प्रति दृष्टिकोण और अपने ही हिन्दू भाइयों के प्रति व्यवहार को समय तथा परिस्थिति के अनुकूल बदलना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर द्वारा वर्णवाद के प्रति विद्रोह की भावना का यही अर्थ है। उनका विद्रोह निश्चय ही विध्वंसात्मक न होकर, रचनात्मक एवं सार्थक था जिसे मानववादी दृष्टिकोण से ही भलीभांति समझा जा सकता है।

ब्राह्मणवाद का विरोध :

यह विश्लेषित किया जा चुका है कि डॉ० अम्बेडकर वर्णवाद के विरोधी थे क्योंकि उसने भारतीय समाज में जातिभेद तथा छुआछूत जैसी बुराइयों को जन्म दिया। उनके अनुसार, स्वतः वर्णवाद किसी अन्य वाद की अभिव्यक्ति है जो हिन्दूधर्म ग्रंथों में मूलतः सन्निहित है। वह वाद 'ब्राह्मणवाद' है। इसलिए डॉ० साहब ने न केवल वर्णवाद का, बल्कि ब्राह्मणवाद का प्रतिरोध भी किया। वर्ण-वाद तथा ब्राह्मणवाद एक दूसरे पर आश्रित तथा एक दूसरे के पोषक हैं। दोनों का मूलाधार असमानता है जिसके प्रति ही उनका विद्रोह था। डॉ० साहब की दृष्टि से ब्राह्मणवाद क्या है ? यह समझ लेना आवश्यक है। उन्होंने कहा—

> "ब्राह्मणवाद से मेरा तात्पर्य ब्राह्मणों की उस शक्ति, विशेषाधिकारों तथा हितों से नहीं है जो उन्हें एक समुदाय के रूप में मिले हुए हैं। मैं इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। ब्राह्मणवाद से मेरा मतलब स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव के निषेध से है। इस अर्थ में वह सभी वर्गों में विद्यमान है, केवल ब्राह्मणों तक ही वह सीमित नहीं है, हालांकि वे ही इसके जन्मदाता रहे हैं। ब्राह्मणवाद का प्रभाव केवल सामाजिक अधिकारों जैसे अन्तर-जातीय खान-पान तथा अन्तर-जातीय विवाह तक ही सीमित नहीं है। ब्राह्मणवाद नागरिक अधिकारों का भी निषेध करता

है। यहां ब्राह्मणवाद इतना व्यापक है कि वह आर्थिक अवसरों के क्षेत्र को भी प्रभावित करता है।"

स्पष्टतः डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से ब्राह्मणवाद असमानता का दूसरा नाम है। वही जातिभेद, छुआछूत तथा ऊँच-नीच का पोषक है। इसी आधार को लेकर डॉ० साहब ने अछूत श्रमिकों से पूछा कि वे अपनी आर्थिक स्थिति के अवसरों की सवर्ण हिन्दू श्रमिकों से तुलना करें, उन्हें बड़ा अन्तर मिलेगा। ऐसे बहुत से विभाग हैं जहां अछूतों की नियुक्ति केवल इसलिए नहीं होती कि वे अछूत हैं। अछूतों को मिलों के बुनाई विभाग में नहीं लगाते क्योंकि मुँह से धागा काटना पड़ता है, जिसे छूकर सवर्ण हिन्दू श्रमिक अपवित्र हो जाएंगे। रेलवे में उन्हें कुली की जगह नहीं लगाया जाता क्योंकि कुलियों से स्टेशन मास्टर घरेलू काम-काज करवाते थे। इस प्रकार के आज भी उदाहरण हैं जहां अछूतों या दलितों को नौकरी पर इसलिए नहीं लिया जाता कि वे अछूत हैं। अतः डॉ० अम्बेडकर ने अपने आलोचकों से कहा था कि जब तक वे ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियो के विरुद्ध संघर्ष नहीं करेंगे जब तक वे श्रमिकों को संगठित नहीं कर सकते। आर्थिक अवसरों के क्षेत्र में असमानता के रहते हुए, संगठन का सिद्धांत फलीभूत नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में, डॉ० अम्बेडकर ने श्रमिकों को यह सलाह दी कि वे अपने अन्दर से जातिभेद का अन्त करें और असमानता की जड़, ब्राह्मणवाद को उखाड़ फेंकें अन्यथा श्रमिक एकता का नारा अधूरा पड़ा रहेगा।

डॉ० अम्बेडकर ने ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणवाद में स्पष्ट भेद रखा ताकि ब्राह्मण लोग यह न समझ बैठें कि वह ब्राह्मणों के विरोधी थे। उन्होंने कहा कि यह मानना कि सभी ब्राह्मण अछूतों के शत्रु हैं, बिल्कुल गलत है। वह तो उन्हीं लोगों से घृणा करते हैं जिनमें ब्राह्मणवाद की भावना, ऊँच-नीच, जातिभेद है क्योंकि ऐसी ही बातें सामाजिक अन्याय तथा असमानता को बढ़ावा देती हैं। अतएव उनकी दृष्टि में, एक गैर-ब्राह्मण, यदि उसमें ऊँच-नीच की भावनाएँ हैं, तो उतना ही घृणित है जितना कि कोई ब्राह्मण, जिसके व्यवहार में भी कोई ऊँच-नीच की भावना है। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में, ब्राह्मण तथा गैर-ब्राह्मण का भेद नहीं था बल्कि जिसमें ब्राह्मणवाद की भावना तथा व्यवहार है, वही समाज का शत्रु है, भले ही वह कोई दलित क्यों न हो। एक और दृष्टि से, डॉ० साहब ने कहा कि ब्राह्मणवाद समाजवाद तथा जनतन्त्र का घोर शत्रु है क्योंकि ऊँच-नीच की भावना जहां हो वहां समाजवादी समाज की स्थापना करना असम्भव है। ब्राह्मणवाद न केवल सामाजिक अधिकारों का निषेध करता है, बल्कि समान आर्थिक अवसरों का भी निषेध करता है। इसलिए ब्राह्मणवाद, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अवांछनीय विचारधारा है।

इन आधारों के अतिरिक्त, दो अन्य ठोस कारण हैं जिनकी वजह से डॉ० साहब ने ब्राह्मणवाद का विरोध किया। ये दो कारण हैं कि ब्राह्मणवाद ने 'शूद्र' तथा 'स्त्री' जाति के प्रति जो अन्याय किया है, वह कहीं भी इतिहास में नहीं मिलता। ब्राह्मणवाद ने इन दोनों ही वर्गों को क्यों इतना दबाया और उन्हीं को

क्यों मानवी अधिकारों से वंचित रखा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

लगभग सभी हिन्दू धर्म ग्रंथों में, शूद्र वर्ग की हीनता पर अत्यधिक बल दिया गया है। शूद्र को तो सदैव ताड़ना का पात्र माना गया। शूद्र तथा स्त्री को पशु की पंक्ति में बिठाना, यह ब्राह्मणवाद की ही करामात है। यज्ञ में विभिन्न पशुओं का बलिदान होता था। मृत पति की चिता पर जीवित स्त्री को जलाया जाता था और हिन्दू समाज में शूद्र की निरन्तर शोषण की स्थिति का अनुमोदन यह ब्राह्मणवाद ही करता रहा। हिन्दू समाज में यदि स्त्री को घर की चार दीवारों में बन्दी बनाए रखा तो शूद्रों को उच्च तीन वर्णों की सेवा में अर्पित कर दिया। ब्राह्मण-धर्म के नाम पर, उनको अपवित्र, नीच आदि माना गया। क्यों ? क्या वे मानव प्राणी नहीं थे ? आखिर इन्हीं दो वर्गों को ब्राह्मणवाद ने क्यों इतना दबाया ? डॉ० साहब ने ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए।

मनु-विधान के अनुसार, स्त्री, चाहे वह बालिका हो, युवती अथवा वृद्धा, अपने घर में भी कोई काम स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर सकती। बाल्यावस्था में उसे पिता के, यौवन काल में पति के और पति के न रहने पर उसे अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। स्त्रियां स्वभाव से ही दुर्गुणी होती हैं। मनु के विधान में स्त्री को निम्नतम स्थान प्रदान किया गया है। पुरुष की तुलना में, स्त्री को कोई अधिकार ही नहीं मिले। उसे पुरुष पर जितना आश्रित हमारे समाज में बनाया गया उतना कहीं अन्यत्र नहीं देखा गया। डॉ० साहब ने यह पूछा कि मनुस्मृति में आखिर स्त्रियों तथा शूद्रों पर इतनी अयोग्यताएँ क्यों थोपी गईं ? इस का प्रमुख कारण यह है कि बौद्धकाल में समाज के दो वर्ग (स्त्रियां एवं शूद्र) ही बुद्धधर्म को ग्रहण कर रहे थे, जिसके कारण वर्णवाद तथा ब्राह्मणवाद की नींव ही हिली जा रही थी। चूँकि मनु-स्मृति की रचना भगवान् बुद्ध के बाद हुई, इसलिए इन दोनों वर्गों को नाकाम करने के लिए, उनपर अनेक पाबन्दियां तथा अयोग्यताएँ थोप दी गईं ताकि ये बुद्ध-धर्म की ओर अधिक न झुकें। शूद्रों को तो इसलिए भी दबाया गया कि वे ब्राह्मणवादी समाज के प्रति कहीं विद्रोह न कर बैठें। सामाजिक क्रान्ति के साधनों के द्वार तो उनके लिए सदैव बन्द रखे गए जैसे ज्ञानार्जन, हथियार तथा व्यापार-धन। शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं था और न ही वे कोई धन-सम्पत्ति इकट्ठी कर सकते थे। शस्त्रादि तक तो उनकी कोई पहुँच नहीं थी। उन्हें उन सभी साधनों से वंचित रखा गया जिनके द्वारा वे कोई विरोध तथा विद्रोह करते। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने ब्राह्मण धर्म और ब्राह्मणवाद का सबल विरोध किया।

बुद्ध के पश्चात् जितने भी हिन्दूधर्म ग्रन्थ लिखे गए, उनमें स्त्रियों तथा शूद्रों पर जितनी अयोग्यताएं लादी गईं उतनी उनके पूर्व हिन्दूधर्म ग्रन्थों में नहीं थीं। हालाँकि ये अयोग्यताएँ एकदम नई नहीं थीं। डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि ये सब ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणवाद की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। मनु-स्मृति के पूर्व ये सब विचार, सामाजिक मान्यताओं के रूप में, विद्यमान थे। मनु-

स्मृति ने तो उन मान्यताओं को, धर्मशास्त्र तथा राज-विधान में स्थान देकर, ब्राह्मणवाद, को सुदृढ़ बनाया। डॉ० अम्बेडकर ने एक ही पंक्ति में आने वाले ब्राह्मणधर्म, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, छुआछूत, ऊँच-नीच, आदि का घोर विरोध किया और कहा :

"जिस धर्म में एक वर्ग विद्याध्ययन करे, दूसरा शस्त्र धारण करे, तीसरा व्यापार करे और चौथा सिर्फ सेवा करे ऐसा कहा गया है, वह धर्म मुझे स्वीकार नहीं है। जो एक को विज्ञ बनाए रखने के लिए, दूसरों को अज्ञ बनाए रखता है, वह धर्म नहीं है, बल्कि लोगों को बौद्धिक गुलामी में रखने का षड्यन्त्र है। जो धर्म एक के हाथ में शस्त्र देकर, दूसरे को नि:शस्त्र करता है, वह धर्म नहीं है, बल्कि एक के द्वारा दूसरे को पराधीनता में रखने की चालाकी है। जो धर्म कुछ लोगों को धन-सम्पत्ति रखने का अधिकार देता है और शेष लोगों को जीवन निर्वाह के लिए, अन्यों पर आश्रित रहने के लिए कहता है, वह धर्म नहीं, बल्कि स्वार्थ-परायणता है। हिन्दू धर्म का चातुर्वर्ण्य ऐसा है।"

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, यही ब्राह्मणवाद का असली रूप है जो असमानता तथा पराधीनता के विचारों का पोषण करता है। अतः ब्राह्मण-धर्म में अछूतों की उन्नति कदापि नहीं हो सकती। डॉ० साहब की दृष्टि से, व्यक्ति को आत्मोन्नति के लिए, अन्य बातों के अतिरिक्त, तीन बातों की अति आवश्यकता होती है—सहानुभूति, समता और स्वतंत्रता। ब्राह्मण-धर्म में, इन तीनों ही बातों का अभाव है। अत: डॉ० साहब ने, अपने दलित भाइयों की उन्नति के लिए, बुद्ध-मार्ग सुझाया जिसमें सहानुभूति, समता तथा स्वतंत्रता के मूल्य कूट-कूट कर भरे पड़े हैं। उन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की :

"जिस ब्राह्मण-धर्म में मनुष्य को मनुष्यता से व्यवहार करना मना है, वह धर्म नहीं है, उद्दण्डता का प्रदर्शन है। जिस धर्म में मानव की मानवता को पहिचानना अधर्म माना जाता है, वह धर्म नहीं, बल्कि एक रोग है। जिस धर्म में पशु को छूत और मनुष्य को अछूत समझा जाता है, वह धर्म नहीं है, एक पागलपन है। जो धर्म एक ही वर्ग से यह कहे कि वह विद्याध्ययन न करे, धन-संग्रह न करे और शस्त्र धारण न करे, वह धर्म नहीं, मानव जीवन के साथ खिलवाड़ है। वह धर्म जो अशिक्षितों से कहे अशिक्षित रहो; निर्धनों से कहे; निर्धन रहो; वह धर्म नहीं, वरन् सजा है।"

इस प्रकार, जिस ब्राह्मणवाद, ब्राह्मण-धर्म या वर्णाश्रम-धर्म में, स्त्री और शूद्र दोनों को दासी तथा दास माना गया, दोनों को विद्या पढ़ने, वेदशास्त्र सुनने और धार्मिक कर्मकाण्ड करने का अधिकार नहीं दिया गया, उसका प्रतिरोध डॉ० अम्बेडकर जैसे मनीषी द्वारा न होता, कल्पना नहीं की जा सकती। उन्हें धनार्जन करके स्वतंत्र जीवन निर्वाह करने, और अपना अनाश्रित अस्तित्व कायम रखने की आज्ञा नहीं देकर, ब्राह्मण-धर्म ने इनकी जो अधोगति की, वह कल्पना के बाहर है। यही कारण है कि डॉ० अम्बेडकर ने इन दो वर्गों को उन्नति के पथ

पर लाने के लिए जीवन-भर संघर्ष किया। ब्राह्मणवादी विचारधाराओं का तो उन्हें विरोध करना ही था, क्यों कि उनका जीवन-दर्शन मूलतः असमानता, अन्याय तथा शोषण के प्रति एक विद्रोह है जो आज भी उतना ही सजीव है जितना पहले था।

संविधान के मुख्य निर्माता के रूप में, डॉ० अम्बेडकर ने उन मानवी अधिकारों को दलितों तथा शूद्रों के लिए सुलभ बनवाया जिनका उनके लिए, ब्राह्मणवाद ने निषेध कर रखा था। उन नागरिक अधिकारों को स्वीकृत करवाया जिन्हें सदियों से अछूत वर्गों से छीन लिया गया था। स्त्री-शूद्र के प्रति जो स्मृति-धर्म में अन्यायपूर्ण विधान था उसको धराशायी किया। इसी प्रकार डॉ० अम्बेडकर महिला-वर्ग के प्रति हो रहे अन्याय के विरुद्ध, हिन्दू कोड बिल द्वारा मौलिक सुधार लाना चाहते थे। अपनी हठधर्मिता के कारण, यद्यपि सवर्ण हिन्दुओं ने, उनके मंत्री-काल में, उसे पास नहीं होने दिया; परन्तु बाद में उस बिल की मुख्य धाराएं किसी न किसी रूप में पास कर दी गई हैं। कुछ भी हो, महिला-वर्ग के प्रति न्याय, उत्थान तथा समानता की प्रेरणा तो डॉ० अम्बेडकर ने ही दी। वह समान अधिकार, समान अवसर, स्वतंत्र आजीविका, स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा सामाजिक बन्धुत्व जैसे विचारों के समर्थक एवं पोषक थे। ये ही मूल्य उनके समाज-दर्शन के मौलिक तत्त्व हैं जो सिद्धान्ततः नकारात्मक दृष्टि से ब्राह्मण-धर्म, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, छुआछूत, ऊँच नीचवाद, अन्याय तथा शोषण के कट्टर विरोधी हैं।

गांधीवाद की समीक्षा :

प्रारम्भ से ही, डॉ० अम्बेडकर गांधीजी के साथ संघर्ष में उलझ गए। उन्होंने महात्माजी के लगभग सभी विचारों के साथ असहमति प्रकट की और फिर गांधीवाद की समीक्षा तो स्वाभाविक थी। गांधीवाद जनता का कल्याण सामंत-कालीन घरेलू उद्योग-धन्धों और स्वामी-सेवक के सम्बन्ध की पुनः स्थापना में समझता है जिन्हें बहुत पहले ही स्वयं जनता ने धराशायी कर दिया था। गांधीवाद में अनेक ऐसे विचार हैं जो मुर्दावस्था में हीं नहीं, बल्कि समाज की दृष्टि से भी हानिकारक है। यही कारण है कि अम्बेडकर ने गांधी के सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण को, वर्त्तमान मानव सम्बन्धों तथा परिस्थितियों के प्रतिकूल बतला कर उसकी कटु आलोचना की और ऐसी ठोस युक्तियां भी दी हैं जिनके समक्ष गांधीवाद का खरा उतरना संभव नहीं लगता।

सर्वप्रथम गांधीवाद के राजनीतिक दृष्टिकोण को ही लिया जाए। गांधीवाद एक प्रकार के पूंजीवाद का पोषक है क्यों कि वह आर्थिक क्षेत्र में ट्रस्टीशिप का समर्थन करता है और मानता है कि पूंजीपतियों को अपने पास अपार धन को अपना निजी नहीं समझना चाहिए, बल्कि जनता का वह धन ट्रस्टियों के रूप में उनके पास जमा है, जिसे उन्हें जनता के हित में खर्च करना चाहिए। मूलतः यह विचार पूंजीवादी जनतान्त्रिक व्यवस्था का द्योतक है। यह समाजवादी व्यवस्था के विरुद्ध है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, भारत के गांधीवादी लोग, वास्तव में, समाजवादी व्यवस्था के विरोधी हैं। राजनीतिक क्षेत्र तो निश्चित रूप से, जन-

तंत्र होना चाहिए, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में नितांत जनतंत्र पूंजीवादी व्यवस्था के सिवाय और कुछ नहीं है। डॉ० साहब ने इसीलिए गांधीवादी नीति के स्थान पर समाजवादी नीति को प्रश्रय दिया। उनका कहना है कि यदि भारत को समुन्नत देश बनाना है तो राजनीतिक जनतंत्र की पुष्टि आर्थिक समृद्धि एवं समानता से की जानी चाहिए अन्यथा सदियों से शोषित चला आ रहा जनसमुदाय उस जनतांत्रिक व्यवस्था के महल को मिट्टी में मिला देगा जिसे बड़े परिश्रम से बनाया गया है।

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, गांधीवाद ठेठ प्राकृतिक जीवन की ओर मुड़ने का एक सन्देश है। वह मशीन युग का विरोधी है। वह बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण तथा कृषि-फार्मों का कट्टर आलोचक है। गांधीवाद आर्थिक क्षेत्र में घोर उदारवाद का पोषक है। गांधीवाद में चूंकि आर्थिक समानता के लिए, कोई प्रेरणा नहीं है, इसलिए सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टि से, प्रतिक्रियावादी दर्शन है जो पुरातनवाद का समर्थक है। यदि दुनिया में कोई वाद है जिसने झूठे वायदों तथा विश्वासों से लोगों को चुप किया है, वह गांधीवाद है। ऐसा डॉ० अम्बेडकर ने अपनी गांधीवाद की समीक्षा में निष्कर्ष निकाला। चर्खा तथा ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके, गांधीवाद ने आर्थिक व्यक्तिवाद का समर्थन किया, जो भारतीय समाज में कतई उपयुक्त नहीं बैठता।

गांधी तथा कांग्रेस ने मिलकर यह दावा किया कि वे ही अछूतों के सच्चे उद्धारक हैं। यह दावा गांधीजी ने गोलमेज परिषद् में किया जिसके पीछे यह भावना भी छिपी थी कि डॉ० अम्बेडकर अछूतों के सच्चे नेता नहीं हैं। डॉ० अम्बेडकर ने इसे सबसे बड़ा झूठ कहा और यह स्पष्ट कह दिया कि अछूतोद्धार आन्दोलन गांधी के लिए, एक मंच था, न कि कोई ठोस कार्यक्रम, क्यों कि गांधी तथा कांग्रेस ने अछूतों को अपने साथ इसलिए लेने का प्रयास किया कि उन्हें *राजनीतिक समर्थन प्राप्त हो और मत संख्या में वृद्धि हो।* गांधी ने अछूतों की उन सभी मौलिक मांगों का विरोध किया जिन्हें डॉ० अम्बेडकर ने गोलमेज परिषद् तथा भारत में समयानुसार अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत किया था। यहाँ तक कि गांधी ने अछूतों की मांगों के विरुद्ध आमरण-अनशन किया जिसका परिणाम पूना-पैक्ट हुआ जो अछूतों की वास्तविक मांगों पर एक कुठाराघात सिद्ध हुआ। पूना-पैक्ट के अन्तर्गत पृथक् चुनाव के स्थान पर, अछूतों को संयुक्त निर्वाचन स्वीकार करना पड़ा जिससे ठोस लाभ केवल कांग्रेस पार्टी को हुआ और अछूत जनसमुदाय जहाँ था वहीं रहा। इसीलिए डॉ० साहब ने कहा कि गांधी को अछूतों का उद्धारक कहना न्यायोचित नहीं। अछूतों को तो गांधी तथा गांधीवाद से सावधान रहना चाहिए क्यों कि दोनों ही गाय की खाल मे छिपे शेर के समान हैं।

गांधी और अम्बेडकर के बीच सबसे मौलिक मतभेद सामाजिक क्षेत्र में था। दोनों एक दूसरे को स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। गांधी जी वर्णाश्रम धर्म के कट्टर समर्थक थे जब कि डॉ० अम्बेडकर उसके कट्टर आलोचक जैसा कि पूर्व पृष्ठों में विवेचित किया जा चुका है। एक ऐसा भी समय था जब गांधीजी ने

जातिभेद का गुणगान किया और अछूतों द्वारा मन्दिर प्रवेश के प्रति विरोध भी प्रकट किया। उसी समय डॉ० अम्बेडकर ने दलितों को सचेत किया कि गांधीवाद में उनका कल्याण कभी भी संभव नहीं होगा। गांधीवाद वर्णधर्म के कट्टर समर्थक थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, क्योंकि महात्माजी ने स्वयं कहा :

> "हिन्दूधर्म का सच्चा नाम 'वर्णाश्रम' धर्म है। हिन्दू नाम विदेशियों द्वारा दिया गया जान पड़ता है और उसका सम्बन्ध भूगोल के साथ है। हमने जो धर्म पोषित किया है, उसे यदि कोई अर्थपूर्ण नाम दिया जा सकता है, तो अवश्य वह नाम वर्णाश्रम-धर्म है।
>
> वर्ण यानी मनुष्य के धन्धे के चुनाव का पहले से किया हुआ निर्णय है। आदमी अपनी जीविका कमाने के लिए बाप-दादों का ही पेशा करे, इसका नाम ही वर्णधर्म है।"

गांधीजी की यह भी मान्यता थी कि जाति तथा छुआछूत का वर्णधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो कुछ बाह्य विकृतियाँ हैं जिन्हें दूर करने के लिए वर्णाश्रम को नष्ट करने की आवश्यकता कतई नहीं है; लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने इसे स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि जाति एवं छुआछूत, ऊँच-नीच की जननी वर्ण व्यवस्था है जिसे नष्ट किए बिना ये सामाजिक बुराइयाँ कतई दूर नहीं हो सकतीं। वर्ण विभाजन में ही तो भेदभाव निहित है। उसमें स्तरीय असमानता है जो ऊँच-नीच की भावनाएँ उत्पन्न करती है। उसमें कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का भेदभावपूर्ण विभाजन है। क्यों एक ही वर्ग के विद्याध्ययन, ज्ञानार्जन, शस्त्र-धारण और धनार्जन का निषेध किया गया ? क्यों ब्राह्मण को देवतुल्य माना, भले ही वह मूर्ख हो ? क्यों शूद्र को नीच या निकृष्ट ही समझा जाए, भले ही वह ज्ञानी हो ? इन प्रश्नों का उत्तर गांधीवाद में कहीं नहीं मिलता और गांधीजी को भी उनका उत्तर देना कठिन प्रतीत हुआ क्यों कि जन्मानुसार वर्ण-व्यवस्था मानने के इतने दुष्परिणाम आँखों के सामने आए हैं कि उसकी पुनः स्थापना एक खोखला कार्यक्रम सिद्ध होगा।

प्रारम्भ में, डॉ० अम्बेडकर ने मन्दिर-प्रवेश का समर्थन ही नहीं, बल्कि उसके लिए संघर्ष भी किया था। बाद में, उन्होंने अछूतों से अपील की कि वे मात्र आध्यात्मिक तथा धार्मिक कार्यों की ओर न दौड़ें, अपितु अपने भौतिक उत्थान का भी ध्यान करें। केवल मन्दिर-प्रवेश अछूतों की स्थिति नहीं सुधार सकता। हिन्दू-धर्म में मौलिक परिवर्तन होना अनिवार्य है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने कहा :

> "यदि हिन्दू धर्म अछूतों का धर्म है तो उसको सामाजिक समानता का धर्म बनना होगा। केवल मन्दिर-प्रवेश का संशोधन करने से, हिन्दूधर्म सामाजिक समानता का धर्म नहीं बन सकता। इसके लिए चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत को, जो जातिभेद तथा छुआछूत का जनक है, नष्ट करना होगा। यदि चातुर्वर्ण्य को नष्ट नहीं किया जाता तो अछूत मन्दिर-प्रवेश तथा हिन्दू-धर्म दोनों को तिलाञ्जलि दे देंगे। चातुर्वर्ण्य तथा जातिभेद दोनों अछूतों के आत्म-सम्मान के विरुद्ध हैं। जब तक चातुर्वर्ण्य तथा जातिभेद समाज

के आधारभूत सिद्धांत माने जाते रहेंगे, तब तक दलितों को नीची निगाह से देखना जारी रहेगा। अछूत अपने को तभी हिन्दू मान सकते हैं, जबकि चातुर्वर्ण्य तथा जातिभेद की विचारधारा नष्ट कर दी जाए और हिन्दू-शास्त्रों से भी उनके नामोनिशान को मिटा दिया जाए। क्या महात्मा गांधी और हिन्दू सुधारक इस ध्येय को स्वीकार करेंगे ? क्या इसके लिए, सक्रिय आन्दोलन का शुभारम्भ करेंगे ?"

स्पष्टतः गांधी जी यह कतई स्वीकार नहीं करते कि वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध किसी प्रकार का आन्दोलन छेड़ा जाता क्योंकि उन्होंने वर्ण व्यवस्था को प्रकृति के एक सर्वोत्तम नियम के रूप में स्वीकार किया। क्या ऐसी स्थिति में डॉ० अम्बेडकर गांधीवाद के साथ समझौता करते जब कि वे उनकी मौलिक सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध थे ?

यह बात तो सही है कि जाति एवं छुआछूत का सम्बन्ध वर्ण-व्यवस्था से है, भले ही आज विद्वान् लोग उन्हें वर्ण धर्म की विकृतियाँ कहें। डॉ० अम्बेडकर की यह दूरदर्शिता थी कि उन्होंने बुराई की जड़ को पहिचान कर आत्म विश्वास के साथ उसको उजागर किया। बाबा साहब जैसा आत्माभिमानी विद्वान् बुराई को पहिचान कर उस पर प्रहार न करता और गांधीवाद जैसी प्रतिक्रियावादी विचारधारा को किसी प्रलोभनवश मान लेता तो यह दलित समाज के प्रति एक और अन्याय होता। चातुर्वर्ण्य को मानने वाले गांधी को अम्बेडकर का विवेचन एटम विस्फोट की तरह लगा, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि छुआछूत-निवारण की दृष्टि से अम्बेडकर का विचार न्यायसंगत था। आज भी यह बात सही है कि स्वतन्त्र भारत में कानून द्वारा छुआछूत खत्म होने पर भी दलितों के साथ सवर्ण हिन्दू दुर्व्यवहार करते हैं। गांधीजी बार-बार यह कहते रहे कि जन्मना चातुर्वर्ण्य में ऊँच-नीच का भाव नहीं है; पर यह उनकी कल्पना मात्र थी, जो सदियों के अनुभवों के बिल्कुल विरुद्ध थी। केवल अछूतों का अनुभव ही नहीं, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं का हृदय भी यह जानता है कि जन्मना चातुर्वर्ण्य में क्या कटुताएँ तथा पीड़ाएँ निहित हैं ? चूँकि अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था के आलोचक थे, इसलिए गांधी ने उन्हें जवाब दे दिया :

"यदि डॉ० अम्बेडकर वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध लड़ना चाहते हैं, तो मैं उनके पक्ष में नहीं हो सकता क्योंकि मैं मानता हूँ कि वर्णाश्रम हिन्दूधर्म का अभिन्न अङ्ग है।"

वर्णाश्रम धर्म के विषय में वाद-विवाद को लेकर, ये दोनों महापुरुष एक दूसरे से अलग हो गए। निःसन्देह गांधी जी ने रोग को पहिचानने का प्रयास किया, पर अपनी प्रतिष्ठा हिन्दुओं में बनाए रखने के लिए, उसकी रक्षा की जबकि डॉ० अम्बेडकर ने रोग को समझ कर उसके विनाश पर बल दिया। पूना-पैक्ट के समय और उसके बाद, लोगों को कुछ भरोसा हुआ कि गांधीजी अछूतोद्धार आन्दोलन को कोई नई दिशा देंगे, पर उनकी वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था ने छुआछूत-निवारण को प्रायः ठप्प कर दिया। दलितों की स्थिति देखते हुए गांधी

की विचारधारा उपयुक्त नहीं थी। इसलिए अम्बेडकर ने गांधीवाद का प्रबल खण्डन किया।

गांधी ने भारतीय राजनीति को आध्यात्मिक तथा धार्मिक क्षेत्र से इस प्रकार जोड़ दिया कि मानो गांधीवाद एक वेदवाक्य था। उन्होंने अहिंसा, सत्य, सत्याग्रह आदि को राजनीति के साथ ऐसे अनुबन्धित किया कि देश की राजनीति, विशेषकर कांग्रेसी दल की राजनीति खोखली प्रतीत होने लगी। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने गांधीवाद का व्यावहारिक एवं बौद्धिक आधारों पर विरोध किया। जब एक अमेरिकन गांधीवाद की प्रशंसा में डूबता ही जा रहा था, तब डॉ० अम्बेडकर ने उसे सचेत किया कि वह या तो झूठी प्रशंसा कर रहा है अथवा वह कोई पागल है और पूछा कि अमेरिकन लोग क्यों अपनी फौज का विस्तार बन्द नहीं कर देते। क्यों मशीनी संस्कृति को बढ़ा रहे हैं? क्यों बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण कर रखा है? यदि अमेरिकन लोगों को गांधीवाद से इतना मोह है, तो क्यों वे चर्खा से रूई कातकर कपड़े नहीं बनाते और क्यों प्राचीन युग की सभ्यता को पुनः स्थापित नहीं करते? वह अमेरिकन चुप हो गया और उसे उन्होंने बतलाया कि मेरे जैसे लोग गांधी तथा गांधीवाद को कतई नहीं मानते क्यों कि गांधीवाद ठोस विचारधारा नहीं है, बल्कि उसमें पाखण्ड एवं आदर्शवादिता अधिक है। भारत में गांधीवाद व्यवहारतः कहीं नहीं मिलेगा। राजनीति तथा अहिंसा, सत्य या ईश्वरीय प्रेरणा का तो कोई तालमेल ही नहीं है।

इसी प्रकार अम्बेडकर ने गांधी की हृदय-परिवर्तन की नीति, विज्ञान विरोधी मान्यताओं, पुरातनवादी विश्वासों आदि सभी को सामाजिक विकास की दौड़ में प्रतिक्रियावादी संस्कृति का प्रतीक, पिछड़ा हुआ और समाज को, विशेषकर दलित समाज को, प्रगति की ओर ले जाने में असमर्थ घोषित किया। अछूतों के प्रति उदार व्यवहार के लिए, जब गांधी ने वकालत की तो डॉ० अम्बेडकर ने पूछा कि इसका प्रमाण क्या हो कि सवर्ण हिन्दुओं का हृदय-परिवर्तन हो गया है अथवा निकट भविष्य में हो सकेगा? डॉ० साहब ने कहा कि यदि किसी अछूत विद्वान् को शंकराचार्य की गद्दी पर बिठा दिया जाए और महाराष्ट्र के चित्तपावन ब्राह्मण उसका चरणस्पर्श करें और उसके समक्ष दण्डवत् करें, तब कहीं जाकर समझा जाए कि सवर्ण हिन्दुओं में हृदय-परिवर्तन सम्भव है अथवा हो सकेगा; लेकिन गांधी के लिए ऐसा करवाना सम्भव नहीं था। अम्बेडकर जानते थे कि महात्मा जी में इतनी शक्ति नहीं है कि वे कट्टर सवर्ण हिन्दुओं का इस प्रकार हृदय-परिवर्तन करवा सकें। इसीलिए डॉ० साहब ने कहा कि गांधीवाद दलितों के लिए एक धोखे के सिवाय और कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त गांधी तो केवल इतना चाहते थे कि हिन्दुओं का दलितों के प्रति उदारवादी रुख हो जाए और अछूतों को शूद्र वर्ण में ही बनाए रखा जाए। इस प्रकार की गांधीवादी विचारधारा अम्बेडकर जैसे बुद्धिजीवी तथा स्मृतिकार को कभी मान्य नहीं थी।

अम्बेडकर ने अछूतों की समस्या को गांधीवादी दृष्टि के स्थान पर अपनी दृष्टि से देखा और यह निष्कर्ष निकाला कि दलितों को अपने दुःख-दर्दों को स्वयं

समझकर, उनका निराकरण करना चाहिए। उनकी मुक्ति; उनकी सामाजिक स्वतन्त्रता में है। दलितों को किसी कीमत पर गांधी के कहे अनुसार शूद्र वर्ण में तो कतई नहीं रहना चाहिए। जब तक यह वर्ण व्यवस्था रहेगी, तब तक हिन्दू समाज में रहने वाले अछूतों या शूद्रों के साथ जातिभेद का व्यवहार किया जाएगा। गांधीवाद दलितों की सामाजिक स्वतन्त्रता अर्थात् शूद्र वर्ण से पृथक् होने की भावना का विरोध करता है और वर्णभेद में ही उन्हें बनाए रखना चाहता है, इसलिए वह सामाजिक असमानता का ही समर्थन करता है। अम्बेडकर का विचार है कि दलितों को शूद्र वर्ण में अर्थात् समाज के निम्न स्तर पर रखना शोषणवादी तथा सामन्तवादी प्रणाली का अवशेष है। इस पुरानी व्यवस्था पर गांधी जी द्वारा अड़ना समाज को पुरानी व्यवस्था में बांधे रखने का बहाना है। दूसरे शब्दों में, दलितों को दासता तथा निर्धनता के शिकंजे में जकड़े रखना है। उन्हें मुक्त करना नहीं है, अपितु फँसाए रखना है।

अतः अम्बेडकर के अनुसार, समाज का आधार समानता तथा बन्धुत्व होना चाहिए ताकि सभी नागरिकों को समानता का स्तर प्राप्त हो और वे अपने को स्वतंत्र समझें। यदि मनुष्य, समाज में स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व जैसे मूल्यों का पोषण नहीं करेगा तो उसका पतन और विनाश होगा। शोषित तथा पीड़ित लोगों को उठाना, उनमें उत्साह पैदा करना, उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य को बढ़ाना ही सामाजिक रूप से उनका विकास है। यह ज्ञान-विज्ञान की बढ़ती हुई शक्ति, समता पर आधारित मानव-सम्बन्ध पर ही निर्भर है। इसके लिए पुरातनवादी दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आना आवश्यक है। डॉ० अम्बेडकर का कहना है कि यदि गांधीवाद इसका विरोध करता है या इसे धर्मोल्लङ्घन का प्रतीक मानता है तो वह पूंजीवादी, परम्परावादी तथा प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का ही समर्थन करता है।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अम्बेडकर का गांधीवाद से सैद्धांतिक विरोध था। चूँकि गांधीवाद राजनीतिक क्षेत्र में कुछ अव्यावहारिक आदर्शों का समर्थन करता है, इसलिए वे उसकी नीतियों की कटु आलोचना करते थे। गांधीवाद क्योंकि जीवन के हर क्षेत्र में आध्यात्मिक सत्ता, अहिंसा पर बल देता है इस लिए डॉ० साहब की दृष्टि में वह मनुष्य को निष्क्रिय बना देता है जो आधुनिक समाज के लिए हानिकारक है। गांधीवाद मनुष्य को सभ्यता के अगले चरण पर ले जाने की बजाए, पिछली पुरातनवादी अवस्था की ओर घसीटता है और विशेषकर दलितों को वही हजारों वर्ष पुरानी सामाजिक परम्परा में आबद्ध करना चाहता है जिसके कारण उनकी अधोगति हुई। इसलिए वह समाज को परिवर्तित विचारधारा के साथ समायोजन करने में बिल्कुल असमर्थ रहा है और इन्हीं कारणों को लेकर डॉ० अम्बेडकर ने गांधीवाद का प्रबल खण्डन किया। गांधी-दर्शन में प्रगतिवादी तत्त्वों का पूर्ण अभाव है। गांधीवाद को कोई भी क्रान्तिकारी मानने के लिए तैयार नहीं होगा। आज जो राजनीतिज्ञ गांधीवाद की दुहाई देते हैं वे समाजवादी तथा समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में बहुत बड़ा

गतिरोध पैदा कर रहे हैं, भले ही उन्हें थोड़ा सा तात्कालिक राजनीतिक लाभ हो जाए। संक्षेप में, विभिन्न राजनीतिज्ञ, गांधीवाद रूपी तुरही बजाकर सामान्य जन-समुदायों को भ्रमित कर रहे हैं, जिसके प्रतिकूल परिणाम समस्त राष्ट्र के लिए, अहितकर सिद्ध होंगे। डॉ० अम्बेडकर ने ऐसी ही स्थिति आने के प्रति हमें आगाह किया था।

मार्क्सवाद का खण्डन :

डॉ० अम्बेडकर की जीवन-दृष्टि मूलतः मार्क्सवादी दर्शन के अनुकूल है, हालांकि कुछेक मार्क्सवादी विचारों का उन्होंने समर्थन भी किया है। मार्क्सवाद समाज में समता लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है। यह गरीबों के प्रति एक आन्दोलन है जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश निहित है; लेकिन फिर भी अम्बेडकर तथा मार्क्सवाद के बीच मौलिक मतभेद हैं और इसलिए, उन्होंने मार्क्सवादी जीवन पद्धति के प्रति अपनी स्पष्ट असहमति प्रकट की।

उनकी असहमति एक मौलिक विचार पर आधारित है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, अतीत के ज्ञान, अनुभव तथा चिंतन की दृष्टि से बने सिद्धान्त, विकास की तेज दौड़ में रूढ़ि का रूप धारण कर लेते हैं। इसलिए यह उचित नहीं है कि मार्क्सवाद में कुछ उपयोगी विचार होते हुए, उसे पूर्णतः स्वीकार किया जाए और सम्पूर्ण समर्थन दिया जाए, बल्कि चिन्तन की स्वतन्त्रता के अधिकार के लिए, किसी भी 'वाद' में आदमी को जकड़ा न जाए। स्वतंत्र चिंतन को रोकने के लिए, यदि किसी 'वाद' के द्वारा अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं, भले ही वह आम जनता का हितैषी हो, तो वह डॉ० अम्बेडकर के लिए कतई मान्य नहीं था। उनकी जीवन-दृष्टि में यह मान्यता है कि परिस्थितियों और सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार, स्वतन्त्र चिंतन की प्रेरणा पर रोक लगाना, आदमी के व्यक्तित्व की हत्या करने के समान है। इस प्रकार वैयक्तिक स्वतंत्रता की दृष्टि से, डॉ० अम्बेडकर ने मार्क्सवादी जीवन-पद्धति को स्वीकार नहीं किया।

यह बात सही है कि किसी विचारधारा को क्रियात्मक रूप में परिणत करते समय उसमें अनेक परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में, समय, स्थान, परिस्थिति और समुदाय विशेष के अनुसार पद्धति में परिवर्तन की सम्भावना बनी रहती है। उनकी राय मे, किसी भी समझ-दार व्यक्ति या निष्पक्ष बुद्धिजीवी को चाहिए कि वह मार्क्सवाद, गांधीवाद या किसी अन्य सिद्धांत के महत्त्व को मानव-समाज के हित और विकास की दृष्टि से ही परखे। अतः डॉ० अम्बेडकर चाहते थे कि किसी 'वाद' को कार्यरूप देते समय, उसे व्यवहार में परिणत करते समय, परिस्थिति तथा समाज का महत्त्व स्वीकार किया जाना आवश्यक है क्योंकि हर बात, हर समय और सभी परिस्थितियों में समान रूप से लागू नहीं हो सकती। इसलिए किसी भी विचारधारा का पूर्व-मूल्यांकन करना अनिवार्य है।

डॉ० अम्बेडकर यह मानते थे कि भारत में बहुत गरीबी है; पर उसका

एकमात्र उपचार मार्क्सवाद नहीं है। भारत जैसे देश में जहां की समाज-व्यवस्था रूस तथा चीन से भिन्न हो, वहां मार्क्सवाद को व्यवहार में, परिणत करना सम्भव नहीं। भारत में मार्क्सवादी नेतागण लगभग ऊँची या ब्राह्मण जाति से हैं, जिन्होंने यहां की सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप मार्क्सवाद की कभी व्याख्या नहीं की। डॉ० साहब ने कहा कि यदि कार्ल मार्क्स भारत में बैठकर 'डॉस कैपिटल' ग्रंथ की रचना करता तो वह उसे दूसरे ढंग का लिखता। इस देश में सामाजिक अनेकता है। यहां की समाज व्यवस्था चार वर्णों अथवा हजारों जातियों में विभक्त है। प्रत्येक जाति अपने को उच्च और दूसरी को नीच मानती है। एक जाति दूसरी जाति से नफरत करती है। इस देश की समाज-व्यवस्था जाति-पांति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि का शिकार है। अज्ञान, दरिद्रता तथा वर्गभेद से पीड़ित है। अत: यहां के मार्क्सवादी भी इन्हीं बुराइयों से ग्रस्त हैं और जन्मना जातिभेद से अभिभूत हैं। इसलिए, जैसा कि डॉ० साहब का विश्वास था, यहां रूस या चीन की भांति कभी क्रान्ति नहीं आ सकती। यहां के मार्क्सवादी, भारतीय समाज-व्यवस्था पर विचार किए बिना ही, साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो उनकी विचार प्रणाली का गम्भीर दोष है।

भारत में, जैसा कि डॉ० अम्बेडकर ने कहा, मार्क्सवादी नेताओं की बहुसंख्या कथित ब्राह्मणों या सवर्ण हिन्दुओं की है। वे यहां की सामाजिक समस्या पर विचार नहीं करते क्योंकि उनका सामाजिक स्तर दूसरे लोगों से ऊँचा माना गया है। यहां के समाज का रोग, सामाजिक विषमता है, जिसका मूल कारण वर्ण-व्यवस्था या जातिभेद है। एक गरीब ब्राह्मण इसलिए प्रसन्न है कि वह सबसे ऊँचा है। यही भावना भारत के समस्त वर्णों या जातियों में काम कर रही है। एक शूद्र या अछूत, भले ही ज्ञानी हो अथवा धनी हो, जन्म से नीच माना जाता है। इस तथ्य की ओर मार्क्सवादियों का ध्यान कभी नहीं जाता। वे वर्ण-व्यवस्था और जाति-पांति, ऊँच-नीचता के बने महल पर तो गोलाबारी नहीं करते और न ही यहां के विषमता से भरे धर्म पर कोई प्रहार करते, केवल दौलत के बँटवारे पर अधिक बल देते हैं। केवल पेट भर रोटी मिल जाने से मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता। उसे सामाजिक एकता तथा समता भी चाहिए ताकि वह अन्य मानव प्राणियों की भांति रह सके। यहां की समाज-व्यवस्था में, चमार-कुम्हार भले ही लखपति हो, उसे नीच माना जाता है, उस दरिद्र ब्राह्मण की तुलना में, जो मूर्ख भी है।

डॉ० अम्बेडकर का एक और मौलिक मतभेद मार्क्सवादियों के साथ है। उन्हें तानाशाही कतई पसन्द नहीं थी, क्योंकि तानाशाही में सामान्य जनता का विकास रुक जाता है। उन्हें खाने के लिए रोटी और रहने के लिए मकान तो मिल सकता है; पर जनसाधारण को स्वतंत्र सोचने, समझने और उसकी अभिव्यक्ति करने पर कड़ा प्रतिबन्ध लग जाता है। मानव प्राणियों में, जो बौद्धिक अंग है, उसका विकास रुक जाता है। पिंजरे में बन्द होने के बजाय, धन के अभाव में स्वतन्त्रतापूर्वक रहना डॉ अम्बेडकर को कहीं अधिक पसन्द था। मार्क्सवादी व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति ऐसा स्वतन्त्र चिन्तन नहीं कर सकता जो साम्यवादी नीति के

विरुद्ध अथवा उसकी आलोचना करने वाला हो। "मैं ऐसी व्यवस्था में जी नहीं सकता। रोटी खाकर जीना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य नहीं है। मैं 'पिग-फिलॉस्फी' में विश्वास नहीं रखता कि खाओ, पिओ और पशुओं की भांति इन्द्रिय तृप्ति करके मर जाओ। मैं मानव प्राणी को मननशील अर्थात् सोचने समझने वाला प्राणी समझता हूँ। गरीबी और अमीरी के भेद को मैं प्रजातांत्रिक ढंग से दूर करना चाहता हूँ। संसार की सबसे बेहतर राज-पद्धति प्रजातांत्रिक प्रणाली है। मेरा इसलिए ही मम्युनिस्टों से यह बड़ा भारी मतभेद है।"

स्पष्टतः डॉ० अम्बेडकर का राजनीतिक खूनी क्रांति या विप्लव में विश्वास नहीं था। वे प्रजातांत्रिक राज्य प्रणाली से ही राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुधार के पक्षपाती थे, जबकि मार्क्सवादी लोग मूलतः राजनीतिक क्रांति को लेकर ही चलते हैं। अतः मार्क्सवाद तथा डॉ० अम्बेडकर के बीच राजनीतिक परिवर्तन को लेकर भी गम्भीर मतभेद था। डॉ० साहब की यह मान्यता थी कि यदि भारत में, कभी कम्युनिस्ट लोग क्रांति द्वारा सत्ता हथियाने में सफल हो गए तो दलितों को क्या मिलेगा? उन्हें तो जहां वे हैं, वहीं रहना पड़ेगा। उनके द्वारा सफल क्रांति के बाद तीन बातों की आवश्यकता पड़ेगी—प्रशासनिक मशीनरी, सेना तथा श्रमिकों की शक्ति। क्रांति के बाद ऐसा तो सम्भव नहीं होगा कि वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था को हटा दिया अथवा सेना में भारी अदल-बदल हो जाए। प्रशासन तथा सेना अधिकारियों से जब यह पूछा जाएगा कि वे सरकार में रहना चाहेंगे अथवा नहीं, तो उनका उत्तर होगा कि वे साम्यवादी सरकार का समर्थन ही करेंगे। फलतः सारा सरकारी ढांचा उन्हीं सवर्ण हिन्दुओं या ठाकुरशाही लोगों के ही हाथ में रहेगा जिनके हाथों में आज है। जहां तक श्रमिकों का सम्बन्ध है, जिनमें अछूत तथा दलित भी शामिल हैं, वे जहां हैं वहीं काम करते रहेंगे। ये लोग, विशेषकर दलित, जो सड़कें साफ करते हैं, गन्दगी उठाते हैं, खेतों में मज़दूरों के रूप में काम करते हैं, छोटी-मोटी दस्तकारी करते हैं तथा कल-कारखानों में कड़ा परिश्रम करते हैं, इन्हीं काम-काजों में उलझे रहेंगे। निस्सन्देह इन लोगों को अच्छी मज़दूरी मिलेगी, रोटी, मकान और कपड़ा भी मिलेगा, उनकी आर्थिक दशाओं में कुछ सुधार आएगा; पर ये लोग आज जो धन्धे करते हैं, वे ही करते रहेंगे। आगे चलकर प्रशासन अथवा सेना में स्थान पाने का अधिकार मांगेंगे तो उन्हें दबाया जाएगा यह कहकर कि तुम्हें रोटी, कपड़ा तथा मकान प्राप्त है और क्या चाहिए? इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने कहा—

> "इसका परिणाम यह होगा कि आज का अछूत और पिछड़ा वर्ग समाज में तीसरे दर्जे पर ही रहेगा और वर्ण-व्यवस्था के अनुयायी सवर्ण लोगों के हाथों में ही शासनाधिकार सत्ता बनी रहेगी। भले ही कम्युनिस्ट राज में इस तीसरी श्रेणी वालों से छुआछूत न रहे; किन्तु इन्हे समाज की सीढ़ी के सबसे निचले डण्डे पर ही रहना पड़ेगा और ऊपर वाले डण्डे पुराने सवर्णों के कदमों के नीचे होंगे।"

मूल साम्यवाद में जो गुण हैं, उनकी प्रशंसा डॉ० अम्बेडकर ने की; परन्तु

भारतीय परिस्थिति में साम्यवाद को पूर्णतः स्थापित करना संभव नहीं हो पाएगा, क्योंकि कम्युनिस्ट नेता यहाँ की समाज व्यवस्था को नजर-अन्दाज करते हैं। वह इसलिए कि वे अधिकतर जन्मजात उच्च जातियों में पैदा हुए हैं। डॉ० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट कहा कि जिन जातियों को नीच माना गया है उनका अनादर तथा *अपमान केवल इसलिए ही होता है कि वे निन्दित परिवारों में जन्मे हैं। भारतीय* साम्यवादी नेता अपने पितरों का तर्पण करते हैं। श्राद्ध में विश्वास रखते हैं। माथे पर धार्मिक तिलक या चिह्न लगाते हैं और उपनाम के रूप में जातिगत पदों का प्रयोग करते हैं। ये सभी बातें मूल मार्क्सवाद के विरुद्ध हैं। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही, डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि "हिन्दुस्तान के प्राचीन साम्राज्य-वाद अर्थात् चातुर्वर्ण्य पर प्रहार करना तो वह जानते ही नहीं और न ही करना चाहते हैं। रूस तथा चीन में साम्यवाद की सफलता का सबसे बड़ा कारण उन देशों में सामाजिक या धार्मिक विषमता का न होना है। केवल आर्थिक विषमता के ही वे लोग शिकार थे। इसीलिए साम्यवाद वहाँ सफलता पा सका; किन्तु इस देश में एक ब्राह्मण भूख तो सहन कर सकता है; किन्तु ब्राह्मणपन के जन्मजात अभिमान को कभी भी त्यागना पसन्द नहीं करेगा। वह दरिद्र होता हुआ भी इस बात पर संतुष्ट है कि वह पृथ्वी पर आदरणीय या पूजनीय प्राणी है। वह चारों वर्णों में शिरोमणि है। उसे ब्राह्मण जन्म उसके पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण मिला। वह भूख-प्यास सहकर भी केवल ब्राह्मणपन से ही संतुष्ट है। वह यदि एक दरिद्र भङ्गी चमार के साथ मिलकर भूख मिटाने के लिए संघर्ष भी करेगा तो भी संघर्ष समाप्ति के पश्चात् हाथ आए धन के बँटवारे के पश्चात् अपने आप को भङ्गी, चमार से श्रेष्ठ ही मानेगा और इनके साथ रोटी, बेटी सम्बन्ध कायम करने के लिए तैयार नहीं होगा।"

इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने भारतीय परिस्थिति में मार्क्सवाद को उतना उपयुक्त नहीं समझा जितना कि साम्यवादी नेता मानते हैं और यदि भारत में रूस जैसा मार्क्सवाद आता है तो डॉ० साहब को कोई विशेष आपत्ति नहीं थी; लेकिन उन्होंने यह सुझाया कि "साम्यवादियों को क्रान्ति लाने के लिए पहला प्रबल प्रहार वर्ण व्यवस्था, जात-पाँत के पोषक धर्म ग्रन्थों पर करना चाहिए ताकि सारे भारत से ऊँच-नीच का प्रतीक जातिभेद समाप्त हो जाए। तब सब एक समान अधिकार प्राप्त लोगों को साम्यवादी नेता आर्थिक-राजनीतिक सत्ता हथियाने में आह्वान कर सकते हैं और उन्हें सफलता भी मिल सकती है; किन्तु वे ऐसा करना नहीं चाहते।" इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने सामाजिक समीक्षा के आधार पर मार्क्सवाद का खंडन किया और कहा कि मार्क्सवाद देशकाल के अनुसार ही उपयोगी हो सकता है। वह कोई सार्वभौमिक उपाय नहीं है जो सब परिस्थितियों में अपने आप लागू हो जाए।

धर्म के उपयोग को लेकर भी डॉ० अम्बेडकर का मार्क्सवाद के साथ गहरा मतभेद था। मार्क्सवादी जीवन पद्धति में धर्म का कोई स्थान नहीं है। धर्म एक ऐसी आध्यात्मिक सुगन्धि है जिसमें मस्त होकर आदमी अपने वास्तविक अस्तित्व को भूल जाता है। धर्म आदमी को कल्पनालोक में ले जाता है, जहाँ आदर्शवादिता के

सिवाय और कुछ नहीं है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण धर्म को एक अफीम की संज्ञा देता है जो मनुष्य को वास्तविकता से पृथक् कर देती है। धर्म जीवन में अनावश्यक है क्योंकि वह शोषणवादी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। धर्म के प्रति ऐसा ही मार्क्सवादी दृष्टिकोण है जिसे डॉ० अम्बेडकर ने कतई स्वीकार नहीं किया।

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, धर्म मानव जीवन का एक अङ्ग है। वह सामाजिक प्रतिष्ठा तथा वैयक्तिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म मानव व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। धर्म सामाजिक सङ्गठन का प्रतीक है। मनुष्य केवल रोटी खाकर ही नहीं जीता। उसके बुद्धि भी है जिसे आध्यात्मिक खुराक की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति धर्म द्वारा होती है। डॉ० साहब की दृष्टि से, सच्चा धर्म मानव-मानव के बीच स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुत्व के आधार पर शुभ सम्बन्ध स्थापित करता है। ध्यान रहे, वे धर्म के नाम पर पाखण्ड तथा अन्धविश्वास को कतई पसन्द नहीं करते थे। उनके धर्म की धारणा ईश्वरवादी नहीं है, बल्कि मानववादी है, जिसकी प्रमुख भूमिका सामाजिक स्तर पर ही सम्भव है। धर्म चूँकि नैतिकता का ही दूसरा नाम है, इसलिए नरक-स्वर्ग आदि की धारणाओं से मुक्त है। डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में धर्म मनुष्य की सेवा के लिए है, न कि मनुष्य धर्म की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए। इस प्रकार की धर्म के प्रति अपनी आस्था के लिए डॉ० साहब मार्क्सवाद की ओर क्यों जाते? उन जैसे बुद्धिजीवी के लिए जिस 'वाद' में न स्वतंत्रता हो, न धर्म, तो वह उनकी दृष्टि से भारतीय परिस्थिति में कतई उपयोगी सिद्ध नहीं होगा।

डॉ० अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि मार्क्सवाद तथा साम्यवाद ने समस्त देशों की धार्मिक व्यवस्थाओं को हिला दिया है। फिर भी दुनिया में ऐसे धर्म मौजूद हैं जो उनका मुकाबला कर सकने के लिए सक्षम हैं। उन्होंने कहा कि बौद्ध-धर्म मार्क्स तथा उसके साम्यवाद के लिए एक पूर्ण उत्तर है। उनके अनुसार, "बौद्ध देश जो साम्यवादी खेमे में चले गए हैं, यह नहीं समझते कि साम्यवाद क्या है? रूसी प्रकार का साम्यवाद खूनी क्रांति का प्रतीक है; परन्तु वही परिवर्तन बुद्धवादी-साम्यवाद के द्वारा रक्तहीन क्रान्ति से आ सकता है। इसलिए दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों को रूसी जाल में कूदने से सावधान रहना चाहिए। उनके लिए जो इस समय आवश्यक है वह यह है कि वे बुद्ध की शिक्षाओं को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करें। दुनिया में गरीबी है और सदैव रहेगी। रूस में भी गरीबी है; लेकिन गरीबी मिटाने के लिए मानव स्वतंत्रता का बलिदान कहाँ तक ठीक है? एक बार यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि बौद्ध-धर्म एक सामाजिक दर्शन है, तो उसका पुनर्जागरण एक स्थाई घटना होगी।" जहाँ तक सम्पत्ति के अधिकार का प्रश्न है, मार्क्सवाद उसे राज्य के कानून द्वारा समाप्त करना चाहता है क्योंकि निजी सम्पत्ति सामाजिक तथा आर्थिक शोषण का कारण है; परन्तु बौद्धधर्म में जैसा कि डॉ० अम्बेडकर ने कहा, निजी-सम्पत्ति को सामाजिक बुराई माना है, पर बुद्ध ने निजी-सम्पत्ति न रखने के अधिकार को केवल भिक्षु-संघ तक ही सीमित रखा और यदि कोई व्यक्ति, सामाजिक उत्थान के हेतु अपनी धन-सम्पत्ति का बलिदान करता है, तो बौद्ध-धर्म

उसके मार्ग में किसी प्रकार की बाधा बनकर सामने नहीं आता। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने मार्क्सवाद की तुलना में बुद्धवादी जीवन-पद्धति को दलितों के लिए कहीं अधिक अच्छा समझा। बुद्धमार्ग में न केवल समता तथा बन्धुत्व है, बल्कि स्वतन्त्रता भी है जो मार्क्सवादी जीवन-पद्धति में नहीं मिलती।

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि डॉ० अम्बेडकर ने राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचारों को स्वीकार नहीं किया। उनके कथनानुसार भारत का राजनीतिक बहुमत समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार करते हुए भी, श्रमिकों द्वारा सशस्त्र शक्ति से क्रान्ति लाना कतई पसन्द नहीं करेगा। डॉ० साहब देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार, किसी भी विचारधारा में पुनर्विचार तथा संशोधन को अनिवार्य समझते हैं। उनका विचार है कि मार्क्स ने जो कुछ अपने समय में कहा था, वह आज शत प्रतिशत सही उतरे यह आवश्यक नहीं। उसकी बहुत सी बातें गलत सिद्ध हो चुकी हैं और इसलिए लेनिन तथा माओ ने अपने देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुकूल मार्क्सवादी विचारधारा में अपना क्रांतिकारी योगदान किया। अतएव यह कहा जा सकता है कि अम्बेडकर ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण की अपने विचार से समीक्षा कर भारतीय समाज में मार्क्सवाद को अनुपयुक्त पाया, विशेषकर उन नेताओं के हाथों में जिनमें अब भी ब्राह्मणी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं और जो मठाधीशों के रूप में ही हर जगह बने रहना चाहते हैं।

धर्मान्तरण का लक्ष्य :

डॉ० अम्बेडकर का वर्णाश्रम-धर्म के प्रति मौलिक विरोध था। वह किसी भी कीमत पर वर्णवाद तथा ब्राह्मणवाद के साथ कोई समझौता नहीं चाहते थे। गांधी ने इसका उल्टा अर्थ ग्रहण किया और कहा कि "डॉ० अम्बेडकर हिन्दूधर्म के लिए एक चुनौती हैं।" अछूतोद्धार आंदोलन के महान् नेता कहे जाने वाले महात्मा गांधी ने वर्ण-व्यवस्था को जन्म के आधार पर प्रतिष्ठापित करना प्रारम्भ कर दिया; परन्तु जब डॉ० साहब ने इसका कड़ा विरोध किया, तो इस आवाज को गांधी ने हिन्दूधर्म के विरुद्ध माना। इस प्रतिक्रिया तथा अन्य घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने, 13 अक्टूबर 1935 को येवला कांफ्रेंस में, बहुत ही सोच विचार के पश्चात्, धर्मान्तर की घोषणा की और कहा—"दुर्भाग्य से मैं हिन्दू-समाज में एक अछूत के रूप में पैदा हुआ हूँ। यह मेरे वस की बात नहीं थी; लेकिन हिन्दू-समाज में बने रहने से इन्कार करना मेरे नियंत्रण में है और मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं मरते समय हिन्दू नहीं रहूँगा।"

आखिर उन्होंने यह घोषणा क्यों की ?

इसका सरल उत्तर यही है कि उन्होंने, अपने साथियों सहित हिन्दू-समाज में समता तथा सम्मान प्राप्त करने के लिए, अनिवार्य सुधार के लिए, भारी प्रयत्न किए जिनकी वजह से, उन्हें कटु अनुभवों तथा पीड़ाओं का सामना करना पड़ा; परंतु फिर भी सवर्ण हिन्दुओं का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ। उल्टे गलत अर्थ

लगाकर उन्हें निंदित किया गया और अम्बेडकर को हिन्दूधर्म-विनाशक की संज्ञा दी। इसलिए अम्बेडकर ने कहा—"हमने हिंदू-समाज में समानता का स्तर प्राप्त करने के लिए, हर तरह के प्रयत्न और सत्याग्रह किए; परंतु सब निरर्थक सिद्ध हुए। हिंदू-समाज में समानता के लिए कोई स्थान नहीं है। हिंदूधर्म का परित्याग करने से ही हमारी स्थिति में सुधार हो सकेगा। धर्मान्तर के सिवाय, हमारे उद्धार के लिए, और कोई दूसरा मार्ग नहीं दीखता है।" निश्चय ही, इस घोषणा से हिंदू-समाज में एक सनसनी-सी फैल गई; पर डॉ० अम्बेडकर का यह विचार तथा पग ठीक ही था। क्योंकि जहाँ अनादर तथा अपमान हो उस स्थान को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करना, उनके नीति-दर्शन का एक मौलिक आदर्श है। अतः धर्मान्तर का निर्णय, उनके ही विचारानुकूल था।

यह विवेचित करने के पूर्व कि डॉ० अम्बेडकर के धर्मान्तर का लक्ष्य क्या था, उनके कुछ उन कथनों को समझ लेना आवश्यक है, जो उन्होंने उस समय कहे थे। उन्होंने दलितों से स्पष्ट कहा था –"हिंदूधर्म मेरी बुद्धि को जँचता नहीं, स्वाभिमान को भाता नहीं। मनुष्य धर्म के लिए नहीं है, बल्कि धर्म मनुष्य के लिए है। जो धर्म तुम्हारी मनुष्यता का कुछ भी मूल्य नहीं मानता, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हें पानी तक नहीं मिलने देता, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हें शिक्षा प्राप्त नहीं करने देता, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो? जो धर्म तुम्हारी नौकरी में बाधक बनता है, उसमें क्यों रहते हो? जो धर्म बात-बात में तुम्हें अपमानित करता है, उस धर्म में तुम क्यों रहते हो?" इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि डॉ० साहब ने धर्म-परिवर्तन कुछ मौलिक सिद्धांतों को लेकर किया। उनकी जीवन-दृष्टि में जो मान्यताएँ तथा मूल्य निहित हो गए, उनके अनुरूप, हिंदूधर्म एवं दर्शन में कोई तालमेल नहीं था।

जब धर्म-परिवर्तन का विचार चारों ओर फैल गया, तब लगभग सभी धर्मों के आचार्य डॉ० अम्बेडकर से मिले और दलितों को अपने-अपने धर्म में शामिल करने के पक्ष में तर्क दिए, जिन्हें विद्वान् डॉक्टर ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक सुना। सम्भवतः ये आचार्य समझ रहे थे कि वे किसी प्रलोभन में आ जाएँगे; परंतु ऐसी कोई बात नहीं थी। वैसे अम्बेडकर हिंदू-समाज तथा धर्म के कट्टर आलोचक थे; फिर भी वह हिंदुओं तथा देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझते थे। बदले की भावना उनमें नहीं थी और न ही किसी खूनी क्रांति का विचार उनके मन में था। स्वभाव से, एक सज्जन पुरुष; किंतु बुद्धि से तर्कशास्त्री और परिस्थिति से आलोचक थे। अन्य धर्मों के आचार्य इस बात के लिए लालायित थे; पर हिंदू नेता एवं विद्वान् केवल दुःख प्रकट कर रहे थे। उन्होंने धर्मान्तर को रोकने के लिए, कोई ठोस उपाय नहीं सोचे अन्यथा ऐसी स्थिति नहीं आती जैसी कि धर्मान्तर की घोषणा से पैदा हो गई थी। डॉ० अम्बेडकर नए धर्म की स्थापना में कोई रुचि नहीं रखते थे। नए धर्मों की स्थापना का जमाना भी नहीं रहा। उनके सामने केवल यही विकल्प था कि वर्तमान धर्मों में से किस को चुना जाए?

सर्वप्रथम उनका झुकाव सिख-धर्म की ओर था क्योंकि इसमें सैद्धांतिक तौर पर वर्णभेद नहीं है। सिख-बन्धुत्व की भावना भी अच्छी है। डॉ० साहब ऐसा धर्म चाहते थे जो न केवल भारतीय हो, बल्कि वर्ण-व्यवस्था से भी मुक्त हो। यही कारण था कि वे सिख-धर्म की ओर आकर्षित हुए। सिख मिशन से उनकी काफी बातें भी हुईं जिनका परिणाम यह हुआ कि कुछ अछूत सिख-धर्म का अध्ययन करने के लिए अमृतसर गए; लेकिन कुछ समय बाद, डॉ० साहब की अनुमति के बिना ही वे सिख हो गए और उधर सिख-मिशन ने जल्दी में दलितों की पढ़ाई के लिए, बम्बई में एक खालसा कॉलेज बनवा दिया। चूंकि डॉ० अम्बेडकर को निर्णय का कोई विशेष अवसर नहीं दिया, उन्होंने सिख-धर्म स्वीकार करने का विचार त्याग दिया। अन्य शब्दों में, वैसे सिख धर्म में सिद्धांततः वर्णभेद नहीं है; पर व्यवहार में सिख-समाज के अन्तर्गत जातिभेद पाया जाता है। दुर्भाग्यवश सिखों में भी अछूत जातियां हैं। यह तथ्य इस बात से विदित है कि भारत सरकार के 1956 के परिगणित जाति के विधेयक में सिख अछूत जातियां भी सम्मिलित हैं और आज उन्हें नौकरियों तथा शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण प्राप्त है।

डॉ० अम्बेडकर इस्लाम या ईसाई धर्म को दलितों के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे क्योंकि इन धर्मों को अपनाने से उनकी राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की ओर संदेह की दृष्टि से देखा जा सकता था। "यदि वे इस्लाम को स्वीकार करते हैं तो मुसलमानों की संख्या इस देश में दूनी हो जाएगी और मुस्लिम प्रभुत्व का खतरा भी पैदा हो जाएगा। यदि वे ईसाई-धर्म को स्वीकार करते हैं, तो ईसाइयों की संख्या अधिक बढ़ जाएगी और इससे भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व सुदृढ़ हो जाएगा।" इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अपने धर्मान्तर में राष्ट्रीय-भक्ति का परिचय दिया। दलित तो यहां के मूल-निवासी हैं और यदि वे इन धर्मों में से किसी को अपना लेते तो निश्चय ही वे अपने ही देश में विदेशी समझे जाते। डॉ० अम्बेडकर के मन में किसी आर्थिक लाभ के लिए, धर्मान्तर का विचार नहीं था, अन्यथा हैदराबाद के निजाम ने उन्हें करोड़ों रुपए देने का आश्वासन दिया था जिसे डॉ० साहब ने कतई स्वीकार नहीं किया। बड़े-बड़े ईसाई मिशनरी भी उनके पीछे पड़े कि ईसाई धर्म को अपनाने से दलितों को अनेक प्रकार की सुविधाएं मिल जाएंगी; पर आर्थिक प्रलोभन की ओर डॉ० साहब का कोई ध्यान ही नहीं गया। निस्संदेह वह चाहते थे कि दलितों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो; पर इस प्रकार पराए दान पर आश्रित होकर नहीं, बल्कि अपने परिश्रम एवं संगठन से उनकी स्थिति में सुधार हो तो उत्तम है।

वे किसी धर्म को स्वीकार करना चाहते थे जो भारतीय हो, जिसमें वर्ण-भेद तथा छुआछूत न हो, अंधविश्वास तथा पाखण्ड न हो, मानव-केन्द्रित तथा बुद्धि पर आश्रित हो, उसमें स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व भी हो। इस प्रकार के मूल्य उन्हें केवल बौद्धधर्म में ही मिले जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। वे चाहते थे कि धर्म ऐसा हो जो दलितों को समता प्रदान करे। डॉ० साहब ने मई, 1956 में बी० बी० सी० भेंट-वार्ता में इस विषय के अन्तर्गत कि 'मैं बौद्ध-

धर्म को क्यों पसन्द करता हूं और वर्तमान परिस्थितियों में वह दुनिया के लिए किस प्रकार उपयोगी है', यह स्पष्ट कहा—"मैं बौद्धधर्म को पसंद करता हूं क्योंकि उसमें तीन सिद्धांतों का समन्वित रूप मिलता है जो किसी अन्य धर्म में नहीं मिलता। बौद्धधर्म प्रज्ञा (अंधविश्वास तथा अतिप्रकृतिवाद के स्थान पर बुद्धि का प्रयोग), करुणा (प्रेम), और समता (समानता) की शिक्षा देता है। मनुष्य इन्हीं बातों को एक शुभ तथा आनंदित जीवन के लिए चाहता है। न तो देवता और न ही आत्मा समाज को बचा सकते हैं।" उनकी दृष्टि से, यही धर्म, जो समता और बंधुत्व पर आधारित है, दलितों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उन्हें एक संगठित समुदाय में एकत्र कर सकता है। बशर्ते कि बौद्धधर्म को एक समाज-व्यवस्था के रूप में स्वीकार करके प्रतिष्ठापित किया जाए जैसा कि अन्य धर्मों के साथ मिलता है।

धर्मान्तर का लक्ष्य धन-सम्पत्ति प्राप्त करना नहीं था, बल्कि दलितों के लिए, समता और सम्मान, संक्षेप में, मनुष्यत्व प्राप्त करना था जिसे वर्णवाद तथा ब्राह्मणवाद ने उनसे छीन लिया था। डॉ० अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि दलित लोग निर्धन तथा अशिक्षित हैं और वे कहां तक बौद्धधर्म को समझ पाएंगे, यह समय ही बतलाएगा। साथ ही, उन्होंने यह दृढ़तापूर्वक कहा कि वे, अपनी पुस्तकों तथा शिक्षाओं के माध्यम से, अपने लोगों को बौद्धधर्म के सिद्धांतों में दीक्षित करेंगे। इस नए धर्म को अपनाने से जो उत्तरदायित्व आएगा वह उसे निभाने का प्रयत्न करेंगे। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि दलित लोग रोटी की बजाय इज्जत को अधिक महत्त्वपूर्ण समझेंगे; परंतु स्वयं वे अपनी आर्थिक स्थितियों को सुधारने का प्रयत्न भी करेंगे क्योंकि धर्मान्तर से प्रत्येक दलित लखपति नहीं बनेगा, बल्कि अपनी उन्नति के लिए, नए उत्साह से आगे बढ़ेगा।

हिन्दू धर्म तथा समाज से, उन्हें अनेक शिकायतें थीं और वे उनके कटु आलोचक भी थे; परंतु डॉ० अम्बेडकर में प्रतिशोध की भावना नहीं थी और इसका कारण, उनका भारत-प्रेम था। उन्होंने कहा था कि "मैं नहीं चाहता कि भारत में देश के विध्वंसक के तौर पर मेरा नाम रहे।" धर्म-परिवर्तन जैसी नाजुक समस्या में भी, उन्होंने बड़ा ध्यान रखा कि देश की संस्कृति से वह कहीं वंचित न रह जाए। उन्होंने एक बार गांधीजी को यह बतलाया कि यद्यपि छुआछूत की समस्या को लेकर उनका महात्माजी से मतभेद है; परंतु जब समय आएगा, तब "मैं कम से कम हानिकारक मार्ग देश के लिए अपनाऊंगा और देश का यह सबसे हित है जो मैं बौद्धधर्म अपनाकर कर रहा हूं क्योंकि बौद्धधर्म भारतीय संस्कृति का ही अभिन्न अङ्ग है। मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि मेरा धर्म-परिवर्तन इस भूमि के इतिहास और संस्कृति की परम्परा को कोई हानि नहीं पहुंचाए।" बौद्धधर्म स्वीकार करते समय, डॉ० अम्बेडकर ने कहा—

"अपने प्राचीन धर्म का परित्याग करके जो असमानता तथा दमन का प्रतीक है, मैं आज पुनः पैदा हुआ हूं। अवतारवाद के दर्शन में, मेरी कोई आस्था नहीं है और यह कहना गलत एवं शरारतपूर्ण है कि भगवान्

बुद्ध विष्णु का अवतार थे। अब मैं किसी भी हिन्दू देवी-देवता का भक्त नहीं हूं। मैं श्राद्ध नहीं करूंगा। मैं नियमपूर्वक बुद्ध के अष्टांग-मार्ग का अनुसरण करूंगा। बौद्धधर्म ही सच्चा है और मैं इस प्रकार जीवन-यापन करूंगा जो ज्ञान, सम्यक् मार्ग और अनुभूति से अनुशासित थे।"

उनका धर्म-परिवर्तन आत्माभिमान तथा आत्म-सम्मान, समता एवं बंधुत्व के लिए था। डॉ० अम्बेडकर जितने सम्मान तथा मानवी अधिकारों के लिए लड़े, उतने किसी अन्य बात के लिए नहीं। उन्होंने कहा कि सम्मानपूर्वक रहना मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। इसके लिए जितना त्याग हो सके, हमें करना चाहिए। बौद्धधर्म ही दलितों में आत्माभिमान तथा आत्म-विश्वास पैदा कर सकता है क्यों कि वह स्वतंत्रता, समता तथा मानव-बन्धुत्व पर आधारित है। धर्मांतर के समय डॉ० अम्बेडकर ने कहा—"इस धर्मांतर से मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूं और प्रफुल्लित हो उठा हूं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं नरक से छुटकारा पा गया हूं।" बौद्धधर्म की समतावादी तथा मानववादी नीति की प्रशंसा करते हुए, उन्होंने कहा, "ईश्वर और आत्मा के लिए बौद्धधर्म में कोई स्थान नहीं है। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि संसार में सब जगह दुःख है। नब्बे प्रतिशत लोग दुःखी हैं, पीड़ित हैं। दुःख से पीड़ित लोगों का उद्धार करना ही बौद्धधर्म का मुख्य ध्येय है।" निस्सन्देह बौद्ध-धर्म एक समाज व्यवस्था का द्योतक है। डा० साहब ने उस पर करोड़ों अछूतों की दृष्टि से विचार किया था, केवल वैयक्तिक दृष्टि से ही नहीं। वह एक ओर दलितों को वर्णभेद तथा छुआछूत के शिकंजे से मुक्त करना चाहते थे और दूसरी ओर धर्म के अन्तर्गत ही उन्हें सङ्गठित तथा आत्मसम्मानित देखना चाहते थे। उनके धर्मांतर का लक्ष्य यह था कि भारत में एक सुसंगठित बौद्ध-समाज का विकास हो और दलितों का मान-सम्मान बढ़े।

धर्म का नया रूप :

डॉ० अम्बेडकर जन्मजात विद्रोही थे। यदि यह कहा जाए कि उनके समान विद्रोही व्यक्तित्व हिन्दू समाज में दूसरा नहीं हुआ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनका सारा व्यक्तित्व विद्रोह का ही साकार रूप था; लेकिन विद्रोही होते हुए भी, वे विध्वंसक नहीं थे। उनकी प्रवृत्ति विधायक थी। एक ओर उन्होंने धर्म की धज्जियाँ उड़ाईं तो दूसरी ओर उन्होंने मानव-जीवन में धर्म को आवश्यक बतलाया। धर्म रोटी से कहीं बढ़कर है क्योंकि वह सामाजिक सङ्गठन तथा सम्मान का प्रतीक है। भारतीय समाज में तो धर्म के साथ ही मनुष्य की मान-मर्यादा जुड़ी है। इस लिए डॉ० अम्बेडकर ने एक ओर धर्म का परित्याग किया तो दूसरी ओर धर्म को ही स्वीकार कर उसे जीवन की अमूल्य निधि बतलाया; परन्तु धर्म का स्वरूप क्या हो, उसका कार्य क्या हो और वह समाज में क्या भूमिका अदा करे? यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर डॉ० अम्बेडकर ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया। इसलिए, एक बार डॉ० साहब ने कहा—"जिससे सारी प्रजा का धारण होता है, उसे धर्म कहते हैं। यह व्याख्या मेरी नहीं है। यह व्याख्या है सनातन-धर्म के अग्रणी लोक-मान्य तिलक की। पर मैं इसे मानता हूं। जिन सामाजिक मूल्यों और रीति-रिवाजों

पर व्यवहार चलता है वही धर्म है। ये मूल्य और रीति-रिवाज ही वे बंधन हैं जो व्यक्ति को समाज से बांधे रखते हैं। इसलिए धर्म की व्याख्या से अधिक महत्त्वपूर्ण उन वन्धनों को जानना है, जो समाज का योग्य सञ्चालन करते हैं।"

विद्वान् डॉक्टर के कथनानुसार धर्म का मूलाधार वैयक्तिक न होकर सामाजिक होना चाहिए। धर्म समाज अथवा व्यावहारिक जीवन से अपृथक् होता है। धर्म का मूल्यांकन समाज व्यवस्था के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा—"धर्म का मूल्याङ्कन समाज की नैतिकता पर आधारित सामाजिक मानदण्डों द्वारा किया जाना चाहिए। यदि धर्म को जन-कल्याण का मार्ग बनाना है तो निश्चय ही और कोई मानदण्ड उपयुक्त नहीं हो सकता।" इस प्रकार अम्बेडकर ने धर्म को जन-उत्थान के साथ जोड़ा क्योंकि धर्म को परलोक पहुँचने का माध्यम बनाना, मानव-हितों के प्रति कुठाराघात करना है। उन्होंने कहा कि "धर्म मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य धर्म के लिए।" धर्म द्वारा मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो, ऐसा विचार डॉ० अम्बेडकर का नहीं था। मानव-जीवन में कुछ ऐसे भी मूल्य हैं जो आर्थिक आवश्यकताओं से ऊँचे हैं। "आर्थिक प्रेरणा ही मात्र प्रेरणा नहीं है, जिससे मनुष्य प्रेरित होता हो....आर्थिक शक्ति ही सबसे बड़ी शक्ति है, इसे मानव समाज का कोई भी विद्यार्थी मानने के लिए तैयार नहीं होगा। धर्म भी शक्ति का स्रोत है और यह बात इससे पुष्ट होती है कि भारत में किसी पुरोहित का लोगों पर जितना प्रभुत्व होता है, उतना अन्य किसी का नहीं।" इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से धर्म, सामाजिक स्तर तथा धन-सम्पत्ति सभी शक्ति के स्रोत हैं। इनमें धर्म का महत्त्व कहीं अधिक है।

डा० अम्बेडकर के धर्म की धारणा में एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि धर्म का आधार कुछ आदेश तथा निषेध नहीं होने चाहिए, बल्कि उसका मूलाधार ऐसे आध्यात्मिक सिद्धान्त हों जो सबके लिए समान हों और सर्वत्र लागू होते हों। डॉ० साहब उसे धर्म नहीं मानते जो "बलिदान समाज, राजनीति तथा सफाई से सम्बन्धित कुछ मिश्रित नियमों पर आधारित है।" जैसा कि हिन्दूधर्म में मिलता है। वह ऐसे धर्म को 'कानून' अथवा 'कानूनाधारित वर्ग-नैतिकता' मानते हैं। इस प्रकार का धर्म मानव जीवन को स्वेच्छा तथा स्वतंत्रता से वञ्चित कर देता है क्योंकि जीवन का हर क्षेत्र विभिन्न नियमों से अनुशासित होता है। नियमों के प्रति भक्ति दिखाई जाती है, भले ही समाज को हानि होती हो। कठोर नियमों पर आधारित धर्म, मानवता को पंगु बना देता है और मानव के स्वच्छन्द जीवन के मूल्य की हत्या कर देता है। वह अन्तःकरण की स्वतन्त्रता नष्ट कर देता है। अन्य शब्दों में डॉ० अम्बेडकर चाहते है कि सच्चा धर्म वह है जो 'आध्यात्मिक सिद्धान्तों' पर आधारित हो, न कि वह जो 'नियमों तथा कानूनों' पर आश्रित हो।

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार "नियम व्यावहारिक होते हैं, वे निर्धारित रूप से कार्य करने के ढंग हैं; किन्तु सिद्धान्त बौद्धिक होते हैं, वे कार्यों को मूल्याङ्कित करने के उपयोगी ढंग हैं। नियम यह निर्धारित करता है कि आदमी अमुक कार्य करे। सिद्धान्त कार्य की दिशा निर्धारित नहीं करता। नियम यह कहते

हैं कि अमुक कार्य कैसे किए जाएँ। कोई सिद्धान्त, जैसे कि न्याय का, आदमी की बुद्धि तथा समझ पर यह छोड़ देता है कि वह विचार-विमर्श के पश्चात् कार्य को सम्पन्न करे।" इस प्रकार नियम तथा सिद्धान्त दोनों के अन्तर्गत किए गए कार्यों में अन्तर अवश्य होगा। "कोई सिद्धान्त गलत हो सकता है, पर उसके आधार पर किए गए कार्य में सचेतता तथा उत्तरदायित्व होगा। कोई नियम सही हो सकता है; किन्तु उसके अनुकूल किया गया कार्य यांत्रिक होगा। कोई धार्मिक कृत्य भले ही सही न हो, पर कम से कम वह उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य तो होगा। उत्तरदायित्व को निभाने की दृष्टि से धर्म मुख्यतः केवल सिद्धान्तों का ही विषय होना चाहिए। वह नियमों का विषय नहीं हो सकता। जिस क्षण धर्म को नियमों का विषय बना दिया जाता है, वह उसी क्षण से धर्म नहीं रहता क्यों कि वह उस उत्तरदायित्व की भावना को मार देता है जो सच्चे धार्मिक कृत्य का सार है।" अतः डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में सिद्धान्तों पर आधा रित धर्म ही सच्चा आध्यात्मिक धर्म होने का दावा कर सकता है।

स्पष्टतः डॉ० अम्बेडकर आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित धर्म को अधिक महत्त्व देते हैं। वह धर्म को सामाजिक एवं आध्यात्मिक एकता का मूल स्रोत मानते हैं। सामाजिक एकता तथा संगठन केवल धर्म के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। एकता तथा संगठन केवल ऐसे स्त्री-पुरुष ही कायम रख सकते हैं जिनकी धर्म में अटूट आस्था हो। डॉ० साहब के अनुसार, सच्चे धर्म में चार विशेषताएँ होनी चाहिए – (1) धर्म को, नैतिकता के रूप में, मानव समाज का आधार होना चाहिए; (2) धर्म को विज्ञान अथवा बौद्धिक तत्त्व पर आधारित होना चाहिए; (3) धर्म को चाहिए कि वह न केवल नैतिक संहिता को स्वीकार करे बल्कि स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृ-भाव को सामाजिक जीवन को अनुशासित करने के लिए मौलिक सिद्धांत माने और (4) धर्म को निर्धनता की स्थिति का पवित्रीकरण नहीं करना चाहिए, भले ही कोई व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी धन-सम्पत्ति को समाज-कल्याण में अर्पित कर दे। जिस धर्म में ये चार विशेषताएँ होंगी, वह धर्म निश्चय ही जनतांत्रिक होगा, सर्वसत्तावादी नहीं। डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में, धर्म को जनतांत्रिक समाज-व्यवस्था की स्थापना में प्रमुख भूमिका अदा करनी चाहिए। ऐसी स्थिति में धर्म मानव जीवन का मार्ग-दर्शक बन सकता है।

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर के धर्म की धारणा का आधार परलोकवाद तथा ईश्वरवाद नहीं है। वह मानव-केन्द्रित धारणा है। धर्म का मनुष्य तथा समाज से अटूट संबंध है। वह धर्म जो समाज में विघटन तथा भेदभाव पैदा करता है, वह धर्म नहीं बल्कि संकुचित पंथ हो सकता है। सच्चा धर्म वह है जो बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक हो। जिस समाज के लोग बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक हैं, वहां अन्धविश्वास न होकर, समानता तथा बन्धुत्व होगा। उनका धार्मिक दृष्टिकोण मानववादी तथा व्यावहारिक होगा। डॉ० अम्बेडकर धम्म को सच्चा धर्म मानते हैं। परम्परागत दृष्टि से, धर्म जिसे कहा जाता है, वह ईश्वर, आत्मा, परलोक, नरक-स्वर्ग आदि बातों पर आधारित होता है। धम्म उससे भिन्न है। डॉ० साहब ने यह स्पष्ट लिखा—"धर्म (मजहब) वैयक्तिक होता है और वह व्यक्ति तक ही

सीमित है। आवश्यक नहीं कि वह उसकी भूमिका जन-जीवन में अदा करे। इसके विपरीत, धम्म सामाजिक है। धम्म अनिवार्यत: तथा मौलिक रूप से सामाजिक है।" उनके धर्म की धारणा सामाजिक, लौकिक तथा नैतिक है। अत: डॉ० अम्बेडकर ने कहा—"धम्म में तीर्थ-स्थान, प्रार्थना, कर्मकाण्ड, धर्मोत्सव अथवा बलिदानों के लिए, कोई स्थान नहीं है। नैतिकता धम्म का आधार है। नैतिकता के बिना धम्म संभव नहीं।"

धम्म क्या है? डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, "धम्म सदाचार है जिसका अर्थ है जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव-मानव के बीच शुभ संबंध।" शुभ संबंधों की स्थापना किन सिद्धान्तों पर हो? इसके लिए, जैसा कि कई स्थानों पर विवेचित हुआ है, डॉ० साहब ने स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव के सिद्धान्तों पर बल दिया। इन्हीं के आधार पर सामाजिक संबंध स्थापित किए जाएँ। इसका अर्थ होगा कि अकेले आदमी को धम्म की आवश्यकता नहीं होगी; "लेकिन जब दो आदमी एक दूसरे के समीप हैं तो उन्हें धम्म के लिए स्थान देना पड़ेगा, भले ही वे उसे पसन्द करें अथवा नहीं। उनमें से कोई धम्म से नहीं बच सकता। अन्य शब्दों में, समाज धम्म (अर्थात् शुभ संबंध) के बिना जीवित नहीं रह सकता।

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, धर्म मानव मन को शुद्ध बनाने का मार्ग है ताकि नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच अच्छे सम्बन्धों की स्थापना हो सके। वह जिस धम्म को सच्चा धर्म मानते हैं उसका मूलाधार नैतिकता है। उनकी दृष्टि में, "मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम से सीधे नैतिकता की आवश्यकता उत्पन्न होती है। उसके लिए, ईश्वर की मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए आदमी को नैतिक बनने की आवश्यकता नहीं। यह मनुष्य के हित में है कि वह मनुष्य को प्रेम करे।" इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर के धर्म की धारणा ईश्वर में विश्वास, नित्य आत्मा में आस्था, ईश्वर की पूजा, कर्मकाण्ड, दैविक शक्ति के लिए प्रार्थना, नरक-स्वर्ग की भावना, पापी आत्मा को विशुद्ध करना, बलिदान आदि का निषेध करती है। संक्षेप में, धर्म में नैतिकता, बौद्धिकता, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व आदि प्रधान तत्त्व होने चाहिए जिनके माध्यम से आदमी-आदमी के बीच मनुष्यत्व की स्थापना सम्भव हो सके। सुव्यवस्थिति-समाज का गठन करना, सच्चे धर्म का सर्वोत्तम लक्ष्य होना परमावश्यक है। अत: धर्म तथा समाज-व्यवस्था में अटूट सम्बन्ध है और इसलिए दलितों को सुसंगठित समाज में एकत्रित करने के लिए डॉ० अम्बेडकर ने बौद्धधर्म स्वीकार किया। भारत में, बौद्ध-समाज विकसित थे, ऐसी उनकी उत्कण्ठा एवं अभिलाषा थी।

सार्वभौमिक नैतिक आदर्श :

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, धर्म में नैतिकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी दृष्टि में, नैतिकता ही धर्म है और धर्म ही नैतिकता है। यह भी कहा जा सकता है कि यद्यपि उनके धर्म में ईश्वर के लिए, कोई स्थान नहीं है; परन्तु

फिर भी धर्म में नैतिकता का वही स्थान है जो मजहब (रिलीजन) में ईश्वर का होता है। धर्म में प्रार्थनाओं, तीर्थ-यात्राओं, कर्मकाण्डों, पुरातनवादी रीति-रिवाजों तथा बलि-कर्मों के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि इनका नैतिक व्यवस्था से विशेष सम्बन्ध नहीं है। डॉ० साहब तो नैतिकता को ही धर्म का सार मानते हैं। नैतिकता नहीं तो धर्म नहीं। मानव-केन्द्रित धर्म में नैतिक आदर्श ही प्रमुख हैं क्योंकि वे ही आदमी को आदमी के प्रति मैत्री के लिए, प्रेरित करते हैं। अब प्रश्न पैदा होता है कि नैतिक आदर्श वर्गाधारित हों अथवा सार्वभौमिक ? विद्वान् डॉक्टर ने 'सार्वभौमिक नैतिक आदर्शों' को स्वीकार करने पर बल दिया है।

यह एक बड़ा मौलिक प्रश्न है कि नैतिकता को सार्वभौमिक क्यों बनाया जाए ? डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में मानव समाज को कायम रखने के लिए, केवल सदाचार ही पर्याप्त नहीं है, सदाचार के सिद्धान्त पवित्र एवं व्यापक होने चाहिए। समाज चाहे प्राचीन हो अथवा आधुनिक, उसमें कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते हैं जो पवित्र माने जाते हैं। जब कोई विश्वास पवित्रता की सीमा में आ जाता है तो उसका सामाजिक स्तर निश्चय ही ऊँचा उठ जाता है। इसका अर्थ यह भी है कि उस विश्वास के विरुद्ध आचरण नहीं किया जा सकता। उसका उल्लंघन करने में कुछ भय प्रतीत होता है। ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है। इसके विपरीत जिस चीज या विश्वास को पवित्र नहीं माना जाता, उसके विरुद्ध आचरण किया जा सकता है अर्थात् आदमी बिना किसी भाव के अथवा आत्म-प्रताड़ना के, उस विषय में जैसा चाहे कर सकता है। पवित्रता में धार्मिकता का पुट होता है। अतः किसी पवित्र विश्वास के उल्लंघन का अर्थ होगा कि उसमें निहित धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना। प्रश्न है—किसी चीज को पवित्र क्यों बनाया जाता है ? अर्थात् नैतिकता को पवित्र एवं व्यापक (सार्वभौमिक) क्यों बनाया जाए ?

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार नैतिकता को पवित्र एवं व्यापक बनाए जाने में, तीन बातों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहली बात तो यह है कि समाज में जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से, उसे सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इस बात की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध है उस स्थिति से, जिसमें हम 'जीवन-संघर्ष' और उसमें 'योग्यतम को जीवित बने रहना' की कल्पना करते हैं। इस प्रश्न का सीधा सम्बन्ध विकासवाद के सिद्धान्त से है। हर कोई जानता है कि मानव-समाज में जो विकास हुआ है वह 'जीवन-संघर्ष' के कारण हुआ है। क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी जिसके बँटवारे में भयानक संघर्ष रहता था। वह ऐसी स्थिति थी जब प्रकृति के पञ्जे और दांत रक्तरंजित रहते थे। इस प्रकार के भयानक तथा रक्त-रंजित जीवन-संघर्ष में केवल 'योग्यतम' ही बचा रहता है क्योंकि वह शारीरिक दृष्टि से बलवान होता है। मानव समाज की मूल अवस्था ऐसी रही है। फिर भी बहुत प्राचीनकाल में किसी न किसी ने यह प्रश्न उठाया होगा कि क्या योग्यतम (अर्थात् सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न) ही श्रेष्ठतम भी माना जाना चाहिए ? क्या जो निर्बलतम है, उसे भी संरक्षण देकर बचाया जाए तो समाज की दृष्टि से यह अच्छा सिद्ध नहीं होगा ? क्या निर्बल लोग समाज की दृष्टि

से श्रेष्ठ नहीं हो सकते ? इसका स्वीकारात्मक उत्तर अवश्य मिला होगा। तब यह भी प्रश्न उठा होगा कि कमजोरों के संरक्षण का क्या उपाय है ? इसका एकमात्र उपाय यही था कि जो योग्यतम (शारीरिक दृष्टि से बलवान) है, उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए जाएँ ताकि वह कमजोर को भी जीने दे। कमजोर भी समाज का श्रेष्ठ नागरिक हो सकता है, भले ही वह शारीरिक दृष्टि से योग्यतम न हो। इसी स्थिति में नैतिकता का मूल और आवश्यकता छिपी हुई है। इसलिए नैतिक आदर्शों को पवित्र तथा व्यापक बनाया जाना आवश्यक था। नैतिक पाबन्दियाँ न केवल योग्यतम पर, बल्कि समाज के सभी नागरिकों पर होना जरूरी था। ऐसा करने से न केवल शारीरिक दृष्टि से बलवान अनुशासित होता है, अपितु कमजोर को भी संरक्षण मिलता है जो अन्यथा श्रेष्ठ हो सकता है।

डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से, नैतिकता को पवित्र तथा व्यापक बनाने में वर्ग-नैतिकता को समाप्त करने का ध्येय है। जहाँ ग्रुप-नैतिकता होती है, वह एक ओर अपने समूह का हित-साधन करती है और दूसरी ओर वह सामाजिक भी बन जाती है। इससे समाज में विचित्र स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसा नहीं है कि चोरों में अपनी कुछ नैतिकता न हो। व्यापारियों में भी नैतिकता पाई जाती है। एक जाति के लोगों में अपनी आन्तरिक नैतिकता होती है और डाकुओं के झुण्ड में भी अपनी भीतरी नैतिकता होती है। क्या इस प्रकार की विभिन्न नैतिकताएँ समाज की दृष्टि से लाभदायक हैं ? निश्चय ही नहीं। इस प्रकार की ग्रुप-नैतिकता में अलगाव की भावना छिपी होती है। इस नैतिकता में दूसरों के बहिष्कार की भावना निहित है। यह नैतिकता दल विशेष के स्वार्थों का संरक्षण करती है। इसलिए डॉ० साहब के अनुसार यह नैतिकता समाज- हित विरोधिनी है। यह इस प्रकार की नैतिकता की पार्थक्य और अपने में ही सीमित रहने की भावना ही है जिससे इसकी समाज हित विरोधिनी प्रवृत्ति को क्रियाशील होने का अवसर मिलता है। यही बात उस समय लागू होती है जब कोई भी एक दल अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिए, नैतिकता का आश्रय लेता है। इस दल-बन्दी नैतिकता का असर समाज में दूर-दूर तक पहुँचता है। यदि समाज में इस प्रकार के अ-सामाजिक दल बने रहेंगे, तो समाज सदैव असङ्गठित और टुकड़े-टुकड़े रहेगा। एक असंगठित और टुकड़े-टुकड़े समाज का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह कई तरह के जीवन-मापों और आदर्शों को जन्म दे देता है। जब तक लोगों के जीवन के माप-दण्ड समान न हों अथवा जब तक लोगों के जीवन-आदर्श समान न हों तब तक समाज परस्पर मिल-जुलकर रहने वाला समाज कतई नहीं बन सकता। जब इतनी तरह के जीवन के मापदण्ड रहेंगे और इतनी तरह के जीवन-आदर्श रहेंगे तो व्यक्ति के लिए शान्त-भाव बनाये रखना असंभव होगा। इस ग्रुप नैतिकता का प्रभाव यह भी होगा कि एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर अनुचित प्रभुत्व बना रहेगा जिसका परिणाम यह भी होगा कि परस्पर कलह बना रहेगा। कलह को रोकने का एक ही उपाय है कि सभी के लिए, नैतिकता के समान या सार्वभौमिक सिद्धान्त हों और सभी उन्हें पवित्र मानें।

डॉ० अम्बेडकर ने एक तीसरा कारण और प्रस्तुत किया कि नैतिकता पवित्र

एवं सर्वमान्य क्यों होनी चाहिए ? व्यक्ति की उन्नति के संरक्षण के हित में ऐसा होना चाहिए। यह एक सामान्य तथ्य है कि जहाँ जीवन-संघर्ष है अथवा जहाँ वर्ग -विशेष का शासन है, वहाँ व्यक्ति का हित सुरक्षित नहीं है। दलवन्दी व्यक्ति को चित्त की वह शान्त-भावना प्राप्त करने ही नहीं देती जो तभी संभव है जब समाज में समान 'जीवन-माप' हों और समान 'जीवन आदर्श' हों। दलवन्दी की स्थिति में, व्यक्ति के विचार बहक जाते हैं और वह मन की एकता प्राप्त नहीं कर पाता। दूसरे दलवन्दी में पक्षपात रहता है और न्याय की कोई आशा नजर नहीं आती। दलबन्दी से वर्ग जड़ीभूत हो जाते हैं। मालिक सदैव मालिक बने रहते हैं और गुलाम हमेशा गुलाम बने रहते हैं, उसी प्रकार मजदूर भी हमेशा मजदूर बने रहते हैं। विशिष्ट अधिकारी सदैव विशिष्ट अधिकारी बने रहते हैं, और दास हमेशा दास। इसका मतलब है कि कुछ लोगों के लिए तो स्वतंत्रता बनी रहती है, किन्तु सभी के लिए नहीं। इसका यह भी अर्थ है कि चन्द लोगों के लिए, समानता हो सकती है; किन्तु अधिकांश के लिए नहीं। कुछ वर्ग आर्थिक खुशहाली में जीते हैं, तो जन-समुदाय गरीबी में। यह अन्यायपूर्ण व्यवस्था हो रही। इसका क्या उपाय है ? एक ही उपाय है कि बन्धुत्व भावना को सार्वभौमिक और प्रभावशाली बनाया जाए। बन्धुत्व-भाव क्या है ? मनुष्य हर मनुष्य को अपना भाई समझे यही बन्धुत्व-भाव अर्थात् नैतिकता है। इसीलिए डॉ० अम्बेडकर ने भगवान् बुद्ध की इस बात को स्वीकार किया कि "धर्म नैतिकता है और जिस प्रकार धर्म पवित्र है उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है।"

स्पष्टतया डॉ० अम्बेडकर के नैतिक दर्शन का आधार सामाजिक है। समाज से पृथक् नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। उनका यह कहना है कि नैतिकता सामाजिक सम्बन्धों का ही परिणाम है। उसका विकास समाज में विभिन्न व्यक्तियों को, जीवन की आवश्यकताओं की दृष्टि से, अच्छे सम्बन्ध एवं अवसर प्रदान करने के लिए होता है। नैतिकता का परलोक तथा लौकिक धार्मिक कर्मकाण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक तथा पारलौकिक लक्ष्य में, यदि वे हैं, कोई साझीदार नहीं हो सकता। नैतिकता तो वर्त्तमान जगत् के पारस्परिक व्यवहारों की मान्यता होती है ताकि आदमी-आदमी के बीच शुभ सम्बन्धों का समुचित विकास हो। समाज में सांसारिक व्यवस्था तथा कल्याण की चिन्ता ही नैतिकता को जन्म देती है और मानवी संकट उसमें आवश्यक परिवर्तन के लिए योगदान करते हैं। इसलिए डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से, नैतिकता नितान्त मानव -केन्द्रित है और उसमें सामाजिक नियम तथा सम्बन्ध निहित हैं। उनके अनुसार, मानवी सम्बन्धों में विकृतियां मानसिक तथा नैतिक पतन का कारण हैं। इस अधोगति से बचने के लिए, यह आवश्यक है कि स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव पर आधारित मानवी सम्बन्ध निरन्तर बनाए रखे जाएँ। नैतिकता व्यापक स्तर पर काम आने वाली चीज है क्यों कि जन-सामान्य के व्यावहारिक सम्बन्ध नैतिक आदर्शों के अनुसार ही बनते-बिगड़ते हैं। अतः नैतिकता तथा समाज का अटूट सम्बन्ध है।

नवीन समाज व्यवस्था :

वर्ण तथा जाति पर आधारित समाज उन व्यवहारों को जन्म देता है, जो अम्बेडकर जैसे मानववादी चिंतक को कतई पसन्द नहीं थे। उसमें समानता तथा मनुष्यत्व का कोई स्थान नहीं है। अतएव डॉ० साहब ने इस समाज व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। उनके समाज-दर्शन का यह निषेधात्मक पक्ष है। सकारात्मक दृष्टि से, उन्होंने क्या प्रतिपादित किया ? "यदि आप मुझ से पूछते हैं तो मेरा आदर्श समाज वह होगा जो स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृभाव पर आधारित हो," डॉ० साहब ने यह उत्तर दिया।

ये वे शब्द हैं जिनमें मानवता की ध्वनि निहित है। ये डॉ० अम्बेडकर की नवीन समाज व्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं। उन्होंने इन पदों का अनुकरण फ्रांस की क्रांति से नहीं, वलिक भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से ग्रहण किया। "सकारात्मक दृष्टि से, मेरा समाज-दर्शन तीन शब्दों में अन्तर्निहित कहा जा सकता है—स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव। लेकिन किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मैंने अपने अपने दर्शन का अनुसरण फ्रांस की क्रान्ति से किया है। मेरे दर्शन की जड़ें धर्म में है, राजनीति-विज्ञान में नहीं। मैंने उनका अनुसरण अपने शिक्षक, बुद्ध, की शिक्षाओं से किया है।" वे ही सिद्धान्त डॉ० अम्बेडकर के नए सामाजिक ढांचे के मूल तत्व हैं। इन्हीं के आधार पर, उन्होंने अपने नैतिक आदर्श का प्रतिपादन किया, और चूंकि वह प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के कट्टर हिमायती थे, इसलिए, उनके राजनीति-दर्शन के भी ये आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों के स्वरूप को यहाँ समझ लेना आवश्यक है।

स्वतंत्रता—एक स्वतंत्र जनतांत्रिक समाज व्यवस्था को, जिसमें अम्बेडकर की अटूट आस्था थी, कायम रखने के लिए, स्वतंत्रता का होना अनिवार्य है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में, डॉ० साहब ने स्वतंत्रता के स्वरूप का विवेचन किया और यह कहा कि 'स्वतंत्र भ्रमण, जीवन और सम्पत्ति के अर्थ में, यहाँ स्वतंत्रता आवश्यक है।" उन्होंने निजी-सम्पति के अधिकार का विरोध नहीं किया, और इसलिए, उन्होंने जीवन तथा स्वास्थ्य को भलीभाँति रखने के लिए, सम्पत्ति तथा इसी प्रकार की अन्य वातों की स्वतंत्रता के अधिकार का समर्थन किया। स्वतंत्र तथा स्वस्थ जीवन उसी समय संभव हो सकता है जब कि व्यक्ति को अपने मनपसन्द धन्धा करने की स्वतंत्रता हो। न केवल इतना ही, वैयक्तिक स्वतन्त्रता सामाजिक-आर्थिक मशीन की कार्य-कुशलता को बढ़ाने में भी सहायक होती है। इसका अर्थ है कि डॉ० अम्बेडकर के नए समाज में, कुछ सीमा तक स्वतंत्र आर्थिक क्रियाओं का स्थान भी होगा। इस प्रकार, जैसा कि डॉ० अम्बेडकर सोचते हैं, "यदि व्यक्ति की शक्तियों को प्रभावशाली तथा योग्य ढंग से उपयोग में लाया जाए, तो निश्चय ही, स्वतन्त्रता का अधिकार लाभदायक होगा।"

डा० अम्बेडकर की दृष्टि से, व्यक्ति द्वारा अपने पेशे के स्वतन्त्र चुनाव के प्रति यदि कोई आपत्ति की जाती है, तो दासता की स्थिति को वनाए रखने का ही यह प्रयास होगा। दासता का मतलब केवल कानून द्वारा मंजूरी ही नहीं है,

इसका अर्थ "समाज की उस स्थिति से भी है जहाँ कुछ लोग दूसरों पर इस प्रकार प्रभुत्व जमा लेते हैं कि उनका आचरण ही नियंत्रित हो जाता है।" यह स्थिति जाति व्यवस्था के अन्तर्गत पाई जाती है जहाँ वैसे कानून दासता तथा बेगार की मंजूरी नहीं देता, पर कुछ लोगों से वे धन्धे जबरन कराये जाते हैं जो उनकी पसंद के नहीं होते। फलतः उनका आत्म-सम्मान गिर जाता है और न चाहने पर भी वे गन्दे धन्धों में फंसे रहते हैं। स्पष्टतः अम्बेडकर की स्वतन्त्रता की धारणा में इच्छा-स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण स्थान है क्यों कि आत्म-नियंत्रण अथवा आत्म-चुनाव मानवीय अस्तित्व का सार है।

अपने नए समाज में, डॉ० अम्बेडकर राजनीतिक स्वतन्त्रता पर भी बल देते हैं। यदि राजनीतिक दलों अथवा राजनीतिज्ञों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए, समुचित अवसर मिलता है, तो मुश्किल से ही, उन्हें हानिकारक कहा जा सकता है। चूँकि डॉ० साहब विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कट्टर समर्थक थे, इसलिए उन्होंने संसदात्मक पद्धति, स्वतन्त्र चुनाव, राजनीतिक दल, आदि का समर्थन किया। वे प्रतिनिधि सरकार को ही उत्तम मानते हैं क्यों कि उसमें सब व्यक्तियों को विचार एवं अभिव्यक्ति, भ्रमण तथा सङ्गठन, का अवसर मिलता है। न केवल राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता ही व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं, अपितु धार्मिक स्वतंत्रता भी, जैसा कि डॉ० साहब मानते हैं, मानव व्यक्तित्व की उन्नति के लिए अनिवार्य है। आदमी को यह स्वतन्त्रता हो कि वह अपनी बुद्धि तथा पसन्द के अनुसार धर्म को स्वीकार करे, उसका प्रचार-प्रसार करे। अतः यह राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने समस्त नागरिकों को अन्तःकरण तथा धर्म की विभिन्न बातों के अभिव्यक्ति के अधिकार प्रदान करे। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर के नये समाज में लगभग सभी तरह की स्वतंत्रताओं का प्रावधान है ताकि व्यक्ति और समाज का चहुँमुखी विकास हो सके। ध्यान रहे, स्वतंत्रता के विधायक स्वरूप का महत्त्व, नकारात्मक स्वरूप से, कहीं अधिक है।

समानता—डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, कई क्षेत्रों में समानता के आदर्श के प्रति आपत्तियाँ हो सकती हैं क्यों कि सभी मानव प्राणी समान नहीं हैं। उनमें अनेक प्रकार की भिन्नताएँ विद्यमान हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि समता का आदर्श निरर्थक है। समता भले ही एक कल्पना हो, पर जीवन को अनुशासित करने का उसे आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा। डॉ० साहब की दृष्टि से, मनुष्य की शक्ति तीन बातों पर आश्रित है; (1) शारीरिक पैतृकता, (2) सामाजिक धरोहर, इस रूप में कि व्यक्ति विशेष को पैतृक देखभाल, शिक्षा, ज्ञान, धन-सम्पत्ति, आदि कहां तक मिलती है; और (3) स्वयं के प्रयत्नों द्वारा भी शक्ति प्राप्त होती है। निस्सन्देह इन तीनों पक्षों में, सभी स्त्री-पुरुष असमान होते हैं, पर समानता का आदर्श ऐसा नहीं है जिसे निषेधित किया जा सके। यदि धन-सम्पत्ति, शारीरिक शक्ति तथा सामाजिक स्तर पर सब समान नहीं हो सकते तो इस आदर्श को मानवीय न्याय तथा व्यवहार का आदर्श बनाया जाना चाहिए। समता के आदर्श का मानवीय

आधार संभव है ताकि विभिन्न क्षेत्रों में सभी के हितों का ध्यान रखा जा सके।

वास्तव में, जैसा कि अम्बेडकर मानते हैं, आदमी वैयक्तिक तथा सामाजिक दृष्टि से असमान हैं। आदमी-आदमी में अनेक भिन्नताएँ हैं। लेकिन डॉ० साहब पूछते हैं; क्या, चूँकि मनुष्यों में भिन्नताएँ हैं, वे असमान हैं, हमें उनके साथ असमानता का व्यवहार करना चाहिए? क्या कुछ को नीच तथा अन्यों को ऊँच समझना चाहिए? समता की मांग की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति की दृष्टि से, यह संभव है। चूँकि व्यक्तियों के प्रयत्न तथा कर्म भिन्न होते हैं, इसलिए, उन्हें असमान माना जाए और उचित ही होगा, यदि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी बुद्धि एवं योग्यतानुसार, विकास का समुचित अवसर दिया जाए। लेकिन समानता का सिद्धान्त नियामक तथा मानवी आदर्श है। उसे मानवीय समाज का आधार स्वीकार किया जाना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर ने भौतिक दृष्टि से समानता के सिद्धान्त का समर्थन नहीं किया, बल्कि यह माना कि समता के आदर्श की स्वीकृति से न केवल व्यक्ति को लाभ है, अपितु समाज का न्यायोचित विकास भी संभव है।

भौतिक तथा सामाजिक दृष्टि से जो भिन्नताएँ मानव प्राणियों में पाई जाती हैं, यदि उनके अनुसार उनके साथ असमानता का व्यवहार किया जाए, तो फिर क्या स्थिति पैदा होगी? डॉ० अम्बेडकर कि दृष्टि से यदि उन लोगों के साथ असमानता का व्यवहार किया जाए जिनके पास कोई सुविधा न हो, तो ऐसे लोग जिनके पास जन्म, शिक्षा, परिवार, नाम, उद्योग, धन-सम्पति, आदि की सुविधाएँ हैं, तो वे ही दौड़ में आगे होंगे यह स्थिति बड़ी पक्षपातपूर्ण और जनतंत्र के विरुद्ध होगी। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने 'क्षतिपूर्ति की समानता के विचार' पर अधिक बल दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी आदमी को अन्यायपूर्ण ढंग से प्रभुत्व की वृद्धि के लिए अवसर नहीं मिलेंगे। क्षतिपूर्ति की समानता' के विचार में निष्पक्षता तथा न्याय के तत्त्व निहित हैं और उसमें समाज के निर्धन वर्गों के हितों की सुरक्षा भी अनिवार्य है। अतः यदि समाज चाहता है कि सभी नागरिक समुचित उन्नति करें, दौड़ के प्रारम्भ में सभी को समान अवसर प्राप्त हों और जो वर्ग निर्धन हैं उन्हें अन्यों के साथ स्पर्धा करने के लिए, कुछ विशेष सुविधाएँ मिलें तो समानता का आदर्श भलीभाँति व्यावहारिक बन सकता है। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने क्षतिपूर्ति की समानता के विचार को अवसर की समानता के साथ समन्वित किया।

डॉ० अम्बेडकर एक और दृष्टि से समानता के आदर्श की आवश्यकता पर बल देते हैं। राजनीतिक दृष्टि से, प्रत्येक राजनेता को यह आवश्यक है कि वह समानता द्वारा जीवन को अनुशासित करने का आदर्श मानकर चले। किसी राजनेता को अनेक प्रकार के कामों से वास्ता पड़ता है। वह हजारों नागरिकों के साथ अपना व्यवहार रखता है। उसके पास न तो इतना समय है और न ही ज्ञान है कि वह सभी नागरिकों के बारे में बड़ी बारीकी से छानबीन रखे ताकि वह उनकी आवश्यकता एवं योग्यता के अनुसार उनके साथ व्यवहार करे। यह सही है कि

जन-समुदाय का ठीक-ठीक वर्गीकरण सम्भव नहीं, भले ही नागरिकों के वर्गीकरण की आवश्यकता हो। इसलिए, राजनीतिज्ञ तथा राजनेता, विभिन्न प्रकार के झगड़ों से बचने के लिए, सभी नागरिकों के साथ व्यवहार करने के लिए, कुछ सामान्य माप बना लेते हैं। अतः वे मनुष्यों के साथ समानता का व्यवहार इसलिए नहीं करते कि वे समान हैं; अपितु इसलिए करते हैं कि प्रजातन्त्र में समानता के आदर्श को माने बिना, राजनीतिक व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल सकती। ऐसे ही व्यवहार से समानता के मापदण्ड, सामान्य मूल्य, विकसित हो जाते हैं जिनका कालान्तर में तिरस्कार करना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार, डॉ० अम्बेडकर के नए समाज का द्वितीय आदर्श, क्षतिपूर्ति की समानता, अवसर की समानता, व्यवहार की समानता का समर्थक है ताकि सभी नागरिक समाज संगठन में प्रभावशाली सहभागी हो सकें। ये ही बातें कानून की दृष्टि में, समानता की मांग करती हैं जिसे डॉ० अम्बेडकर ने देश की संविधानिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

भ्रातृत्व—डॉ० अम्बेडकर के नए समाज का तृतीय मौलिक आदर्श भ्रातृ-भाव है। इसका अर्थ है कि यदि समाज में स्वतन्त्रता एवं समता के आदर्श मान्य हैं तो परस्पर बन्धुत्व की भावना भी आवश्यक है। जहां बन्धुत्व की भावना है वहां समाज में परस्पर नागरिकों में गतिशीलता, विचारों का आदान-प्रदान भी होगा। यदि समाज का एक अंग किसी बात तथा विकास से प्रभावित होता है तो उसका अन्य भागों पर भी प्रभाव पड़ना चाहिए। इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि "आदर्श समाज के अन्तर्गत, अनेक प्रकार के ऐसे हित हों जिनका सचेततापूर्ण आदान-प्रदान हो और सभी नागरिक सहभागी हों। उनमें परस्पर मिलने के अनेक अवसर हों तथा संगठन के विविध प्रकार भी हों—संक्षेप में, उनके बीच सामाजिक अन्तःपरा-सरण होना चाहिए।" डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि में, भ्रातृ-भाव का दूसरा अर्थ 'जनतन्त्र' है और जनतन्त्र मात्र सरकार का ढांचा ही नहीं होता, वह परस्पर आदर-भाव तथा सम्मानपूर्वक रहने का एक ढंग भी है। अपने साथी नागरिकों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना ही भ्रातृ-भाव का आधार है। इस प्रकार डॉ० साहब के नए समाज का तृतीय आदर्श सेवा तथा बन्धुत्व-प्रेम पर अधिक बल देता है।

जनतान्त्रिक व्यवस्था—यह कहना उचित ही होगा कि डॉ० अम्बेडकर सामाजिक जनतन्त्र के उत्साही समर्थक थे। वे जातिविहीन समाज व्यवस्था की स्थापना को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। जनतान्त्रिक आदर्श को व्यावहारिक बनाने के लिए, उन्होंने संवैधानिक तन्त्र की सुदृढ़ता को आवश्यक माना ताकि सरकार एवं समाज में विद्यमान निहित स्वार्थों पर नियन्त्रण पाया जा सके। जनतान्त्रिक समाज की स्थापना मात्र आदर्श नहीं; अपितु उसे व्यावहारिक तथा वास्तविक बनाया जाना चाहिए। जनतन्त्र के यन्त्र में वैसे संवैधानिक नैतिकता, वयस्क मताधिकार, निष्पक्ष चुनाव आदि का महत्त्वपूर्व स्थान है; पर हमें यहीं तक सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि जनतन्त्र को जन-आदर्श बनाया जाना चाहिए ताकि वह कुछेक

व्यक्तियों के हितों का ही साधन न बना रहे। ऐसी ही स्थिति में, स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव पर आधारित मानवी सम्बन्धों को विकसित किया जा सकता है।

स्पष्टतया डॉ० अम्बेडकर के नए समाज के आवश्यक तत्त्व जनतंत्र, सामान्य शुभ, सहयोग, सहानुभूति, न्यायोचित व्यवहार, पेशे का स्वतंत्र चुनाव, क्षतिपूर्ति की समानता, समान अवसर, बन्धुत्व—संक्षेप में, स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृ-भाव में निहित हैं। समाज की वास्तविक स्थिति में सुधार लाने के लिए, डॉ० अम्बेडकर ने अपने नैतिक तथा दार्शनिक विचारों को समन्वित किया। उनके दार्शनिक, नैतिक, और राजनीतिक विचार ठीक आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल हैं। उन्होंने जीवन की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध करने वाले तत्त्वों का विरोध किया तथा नैतिकता एवं धर्म के नाम पर समाज में फैले अनाचार एवं अत्याचार की कड़ी आलोचना की। डॉ० साहब ने इस बात की ओर संकेत किया कि यद्यपि यह जीवन अनित्य है; परन्तु परम्परागत रूढ़िबद्ध मान्यताओं की आड़ में, यह जीवन अनुदार तथा धर्मान्धी नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रगतिवादी मान्यताओं एवं विश्वासों के आधार पर नवीन परिवर्तन की दिशा में, उसे तत्पर रहना चाहिए। उसे आधुनिक विकास की चुनौती को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि डॉ० अम्बेडकर ने मानववादी दर्शन को मूलतः स्वीकार किया है क्योंकि उसमें व्यक्ति, समाज और उसकी परिस्थितियों को विशेष महत्त्व दिया गया है। उनके दर्शन में वे मूल्य हैं जो आदमी एवं समाज की प्रगति के लिए आवश्यक हैं। अपने मानववादी दर्शन के आधार पर, युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल धर्म, न्याय एवं नैतिकता की धारणाओं को दृष्टि में रखकर ही डॉ० साहब ने विभिन्न विचारों का खण्डन-मण्डन किया है। इसका मूल सार तो यही है कि उनका दर्शन स्वीकृत मान्यताओं के शिकंजे में जकड़ा हुआ नहीं है। उसमें मनुष्यता की पूर्ण अभिव्यक्ति है और समयानुसार उसमें परिवर्तन करने की गुन्जाइश है। पुनः मूल्यांकन तथा पुनर्विचार का यह कट्टर समर्थक है। यही कारण है कि उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक विचार-धाराओं में समयानुकूल परिवर्तन आते गए जिनमें उनके आत्मविश्वास और दृढ़ता का समावेश है, तप का तेज और साधना का बल निहित है। संक्षेप में, उनके दार्शनिक चिन्तन में अ-प्राण तथा स-प्राण सभी वस्तुओं को संचालित एवं प्रेरित करने की क्षमता विद्यमान है और उसके उच्चारण में निर्बलों की उच्छ्वास गूंजती है जो नव-निर्माण की प्रक्रिया में पारस्परिक प्रेम, व्यावहारिक समानता, वैयक्तिक स्वतंत्रता, सामाजिक सम्मान, राष्ट्रीय एकता एवं मानव बन्धुत्व की द्योतक है।

□

साहित्य

19वीं शताब्दी से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में कुछ ऐसे महापुरुष थे जो न केवल महान् राजनीतिज्ञ बल्कि साथ ही साथ प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। उनकी राजनीति एवं विद्वत्ता एक दूसरे को निखारती थीं। इनमें कुछेक तो उच्च कोटि के लेखक एवं साहित्यकार भी थे। राजनीतिज्ञ और साथ ही विद्वान् होने की परम्परा अधिक दिनों तक चली; पर आज वह लुप्त होती जा रही है क्योंकि अब स्वार्थ एवं बेईमानी की राजनीति रह गई है। विद्वान्-राजनीतिज्ञों की श्रेणी में डॉ० अम्बेडकर अग्रणी थे। ऐसे महान् व्यक्तियों का साहित्य भी बड़ा उत्तेजनात्मक एवं प्रेरणात्मक था जिसने जन-समुदायों को बहुत सीमा तक प्रभावित किया। डॉ० साहब की कई जीवनियां हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशित हुई हैं; पर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को किसी में भी अभिव्यक्त नहीं किया गया। वह उच्च कोटि के वक्ता ही नहीं; परन्तु लेखक भी थे। अतः उनके साहित्यिक गुणों का यहां विश्लेषण प्रस्तुत है।

साहित्यकार के रूप में :

प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी साहित्यकार के रूप में डॉ० अम्बेडकर का स्थान महत्त्वपूर्ण था। उच्च कोटि के लेखक होने के लिए, डॉ० साहब को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उन्होंने जितनी श्रम-साधना की, पाठकों को उसका ज्ञान उनके जीवन एवं कृतित्व से हो गया होगा। वैसे बहुत से लोगों ने, उनके सम्बन्ध में कुछ इधर-उधर से सुन-सुनाकर धारणाएं बना ली थीं। न तो उनके साहित्य को पढ़ा और न ही कुछ गम्भीरता से जानने का प्रयास किया। जब तक कोई उनके साहित्य को भलीभांति नहीं पढ़ेगा, तब तक डॉ० साहब के विषय में समुचित निर्णय देना उसके लिए सम्भव नहीं होगा। उनकी कृतियों में जो जीवन-दर्शन अथवा विचारधारा सन्निहित है, उसे पाठक बिना पढ़े कैसे खोज पाएगा? जहां तक मैं समझ सका हूं डॉ० साहब की रचनाएं सामयिक परिस्थितियों की ठोस अभिव्यक्तियां हैं, उनके जीवन के अनुभवों एवं विचारों का संगम है। धनाभाव के कारण, उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ा यह तो सभी जानते हैं; पर उनकी प्रतिभा, परिश्रम एवं लक्ष्य ने निरन्तर उनको बोलने एवं लिखने के लिए प्रोत्साहित किया, यह उनके व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

डॉ० अम्बेडकर एक अभावपूर्ण स्तर से उठकर, असामान्य श्रेणी के व्यक्तियों में पहुंच गए। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कष्ट एवं वेदना की अग्नि में तप कर निखरा। उनको अपने जीवन में कटु से कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा।

उनका अछूत होना एक बड़ा अभिशाप था। छुआछूत एवं जातिवाद, ब्राह्मणवाद एवं हिन्दूवाद ने उनके जीवन को झकझोर दिया। वह वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण उन सुविधाओं से वंचित रहे जो किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय को मिल पाती थीं। इन सभी के प्रति उन्होंने विद्रोह किया। इस प्रकार उन्होंने विद्रोही एवं क्रान्तिकारी के साहस तथा निर्भीकता की नींव पर साहित्यिक भवन का निर्माण किया। इस दृष्टि से, डॉ० साहब का समस्त साहित्य एवं विद्रोही व्यक्तित्व परस्पर सम्बद्ध है। निश्चय ही वे कलम एवं कटार चलाने में बड़े माहिर थे। दोनों में, उन्हें प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई। अछूतोद्धार आन्दोलन प्रारम्भ करने के पश्चात्, उनकी कलम कभी नहीं रुकी और साथ ही, वे विद्रोह रूपी कटार भी चलाते रहे। जहां जिसकी उन्हें जरूरत पड़ी, वह उन्होंने चलाई और विरोधियों के छक्के छुड़ा दिए।

उनकी साहित्यिक प्रतिभा के प्रेरक तत्त्व कई थे। प्रारम्भिक जीवन में, डॉ० साहब की पढ़ाई-लिखाई में कोई विशेष रुचि नहीं थी। उनके पिता, रामजी सकपाल का, उनके साहित्यिक विकास में बड़ा भारी योगदान रहा, जो एक शिक्षक थे और उन्हें अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास था। अत: सकपाल जी ने बालक अम्बेडकर को अंग्रेजी भाषा की ग्रामर तथा शब्दों से अच्छा परिचय करवाया। डॉ० साहब को ऐसा पारिवारिक वातावरण मिला कि वह अपने पिता की सहायता से, अंग्रेजी भाषा में रुचि बढ़ाते चले गए और मराठी तो उनकी मातृभाषा थी ही, जिसमें वे बहुत अच्छा लिखते और बोलते थे। बम्बई के एल्फिस्टन स्कूल एवं कॉलेज में पढ़ने के बाद तो अंग्रेजी के प्रति, उनका मोह अधिक बढ़ गया और वे अंग्रेजी में बोलने के लिए प्रशंसित किए जाने लगे। दूसरे, वे अपने कोर्स के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का गम्भीरता से अध्ययन करते थे। फलत: उनमें लिखने की लालसा पैदा हो गई और वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक लिखते रहे।

आर्थिक विषमताओं में पोषित, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से पीड़ित होने पर भी डॉ० साहब ने पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति को अच्छी तरह विकसित किया। जब कभी भी वे किसी नई पुस्तक की मांग करते, तब रामजी सकपाल के सामने समस्या उठ खड़ी हो जाती। वे कहीं से उधार पैसा लेते अथवा कोई गहना गिरवी रखते और अम्बेडकर की इच्छा-पूर्ति करते। अम्बेडकर का साहित्यिक प्रतिभा का विकास वास्तव में अमेरिका में हुआ। सन् 1915 उनके लेखन का शुभारम्भ था। उसी वर्ष उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एम० ए० किया था। अगले वर्ष उन्होंने प्रोफेसर गोल्डनवीजर की मानव-शास्त्रीय गोष्ठी में 'भारत में जातियां' नामक लेख पढ़ा जो आगे चलकर 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' के मई 1917 के अंक में प्रकाशित हुआ। यह लेख डॉ० साहब की प्रथम पुस्तक बनी जिसकी समाजशास्त्र के क्षेत्र में बड़ी प्रशंसा हुई। उनमें आत्म-विश्वास बढ़ा और निरन्तर लेखन कार्य में वे लीन रहने लगे। अनेक विषम परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ा। अनेक विघ्न-बाधाएं उन्हें झेलनी पड़ीं; परन्तु उनकी साहित्यिक रुचि कभी क्षीण नहीं हुई। सुविधा एवं सम्पत्ति होने पर तो कोई भी व्यक्ति महान् बन सकता है; पर डॉ० अम्बेडकर तो केवल प्रतिभा एवं अथक परिश्रम

के बल पर ही, नेतृत्व एवं साहित्य की उच्च सीढ़ी पर पहुँच सके। यह उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का महान् गुण है।

विदेशों से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, अम्बेडकर के सामने मुख्य समस्या जीविकोपार्जन की थी क्योंकि पिता और बड़े भाई आनन्दराव की मृत्यु हो चुकी थी। डॉ० साहब को लिखने का शौक तो था ही, पर उससे वह अपना तथा परिवार का निर्वाह नहीं कर सकते थे। साहित्यिक प्रयास से जीविका कमाना उनके लिए असंभव था। वे उपन्यास आदि नहीं लिखते थे और न ही वे जनता के मनोरञ्जन के लिए ही ऐसा करते थे। अत: उन्होंने जीविकोपार्जन के लिए वकालत को उचित समझा। कुछ पार्ट-टाइम अध्यापन कार्य भी करने लगे थे। आर्थिक अभाव के बावजूद भी वे अपने पढ़ने-लिखने का कार्य निरन्तर करते रहे ताकि वैचारिक एवं साहित्यिक रुचि ज्यों की त्यों बनी रहे और अपने समाज को भी कोई ठोस चीज दे सकें।

डॉ० अम्बेडकर की साहित्यिक-सृष्टि का विवेचन करना बड़ा ही गूढ़ एवं गम्भीर विषय है क्योंकि उनके साहित्य के अनेकानेक पक्ष हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक ग्रन्थों की रचना करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। उनके साहित्य-सृजन का लक्ष्य, लेखन-प्रक्रिया शैली, रचनाओं का प्रेरणा-स्रोत आदि का समुचित विश्लेषण एक प्रकार की गवेषणा है क्योंकि वे साहित्यकार के रूप में सामने कभी नहीं आए; अपितु समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ, विधिवेत्ता आदि रूपों में कार्यरत रहे। फिर भी उनकी रचनाओं के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि वे अपनी अभिव्यक्तियों में कहीं रूखे और कड़वे हैं; पर कहीं मीठे एवं सरस भी हैं। कहीं कठोर, कहीं कोमल, तो कहीं गम्भीर भी हैं। तथ्यात्मक होते हुए भी, उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें नीरसता तथा शुष्कता नहीं है। यही कारण है कि पाठक तन्मय होकर उनके ग्रन्थों को पढ़ जाता है। वह कुछ समय के बाद फिर पढ़ने के लिए लालायित होता है। डॉ० साहब ने सीधी, सरल तथा सहज भाषा का प्रयोग करके, वास्तविकताओं को चित्रित किया है। इस प्रकार उनकी कुछ निजी विशेषताएँ अनायास ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में मानवता, आदर्शवादिता एवं यथार्थता का संगम समाहित है।

पत्रिकाओं में रुचि :

बचपन से ही, अम्बेडकर गरीबी की अवस्था में पले। धन-सम्पत्ति का कोई आधार नहीं था। शिक्षा-प्राप्ति के बाद उनकी आर्थिक स्थिति और शोचनीय हो चली थी; परन्तु उन्होंने दलितों के उत्थान को अपने जीवन का मूल उद्देश्य बना लिया जिसके कारण वे, हर मुसीबत का सामना आसानी से करने के लिए तैयार रहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए, डॉ० साहब ने पत्रिकाओं में अभिरुचि पैदा की और अपने साधनों के अनुसार तीन पत्रिकाओं का समयानुसार काम करना प्रारम्भ किया। जिसका परिणाम दलितों के हित में ही निकला।

महाराजा कोल्हापुर से कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करने के पश्चात्, अम्बेडकर ने सर्वप्रथम जनवरी 1920 में, 'मूकनायक' साप्ताहिक पत्र (मराठी) प्रारम्भ किया। अम्बेडकर मूकनायक के अधिकृत संपादक नहीं थे; पर वही पत्र की जान थे। पत्र उन्हीं की आवाज का दूसरा लिखित रूप था। सारा काम विभिन्न रूपों में उन्हीं के मिशन की पूर्ति के लिए होता था। आर्थिक अभाव में, पत्र का प्रकाशन कार्य कठिन था; परन्तु डॉ० साहब ने उसे आगे बढ़ाने में भारी योगदान किया। डॉ० साहब पत्रिका के प्रकाशन में इसलिए अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा दिखा सके कि इस कार्य से एक ओर उनकी सृजनवृत्ति चरितार्थ होती थी और दूसरी ओर उन्हें अपने विद्रोही एवं क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार का अवसर भी मिलता था। उसके माध्यम से अपने विरोधियों को वे उत्तर भी देते थे।

मूकनायक के प्रथम अंक में, डॉ० अम्बेडकर ने बड़ी विद्वत्तापूर्वक पत्र के उद्देश्य को सरल, स्पष्ट एवं प्रभावशाली भाषा में बतलाया। उन्होंने कहा कि भारत असमानता का घर है। हिन्दू-समाज एक ऐसी बहुमंजिली इमारत है जिसमें कोई प्रवेश-द्वार नहीं है और न ही एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए कोई पैड़ी है। जो व्यक्ति जिस मंजिल में पैदा हुआ उसी में उसे मरना है। हिन्दू-समाज में तीन प्रमुख भाग हैं—ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण और अछूत। डॉ० साहब ने उन विद्वानों पर दया दिखाई जो यह मानते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है। जो मानव-प्राणियों तथा पशुओं में समान रूप से है; पर वे अपने ही धर्म-भाइयों को अछूत मानते हैं। ब्राह्मणों का उद्देश्य ज्ञान का प्रसार एवं शिक्षा का प्रचार कभी नहीं रहा। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य संचय एवं एकाधिकार रहा है। गैर-ब्राह्मणों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण शिक्षा एवं शक्ति का अभाव था। दलित वर्गों की सुरक्षा के लिए, उन्हें दासता, गरीबी और अशिक्षा से बचाने के लिए, अथक प्रयत्न करना आवश्यक है। उनको उनकी अयोग्यताओं के बारे में सचेत करना परमावश्यक है ताकि उन्हें मुक्त किया जा सके। मूकनायक सभी प्रकार से मूक-दलितों की ही आवाज था।

मूकनायक के एक और लेख में, अम्बेडकर ने यह प्रतिपादित किया कि भारत को मात्र एक स्वतन्त्र देश ही नहीं होना चाहिए, बल्कि एक अच्छा राज्य भी बनना चाहिए ताकि यहाँ के सभी नागरिकों को धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों में समान अधिकार प्राप्त हों। सभी स्त्री-पुरुषों को प्रगति के समान अवसर मिलें। डॉ० साहब ने पत्रिका के माध्यम से लोगों का ध्यानाकर्षित किया और कहा यदि ब्राह्मणों को ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध है तो अछूतों को भी ब्राह्मणों के हाथों में शक्ति हस्तान्तरित करने के प्रति विरोध का अधिकार है। उनका विरोध न्यायोचित होगा। स्वतन्त्र भारत में, यदि अछूतों को कोई संरक्षण नहीं दिया गया तो उनको और कुचल दिया जायेगा। एक अन्य लेख में, डॉ० साहब ने जोरदार भाषा में कहा कि स्वराज में, यदि अछूतों को मौलिक अधिकार नहीं मिले तो वह उनके लिए, स्वराज नहीं होगा। उनके लिए वह दासता की एक नई अवस्था होगी।

इस प्रकार यदि डॉ० अम्बेडकर अपनी ओर से लेखादि के रूप में मूकनायक

के लिए निरन्तर सामग्री नहीं जुटाते तो संभवत: वह चल नहीं पाता। पत्रिका जीविका का साधन तो नहीं थी, पर डॉ० साहब ने उसके माध्यम से अपने जीवन की विचारधारा को स्पष्ट किया। दलितों में जागृति एवं विरोध की लहरें दौड़ा दीं। कई बार पत्र का अस्तित्व संकट में पड़ा, पर उनके सत्प्रयत्नों से पत्रिका बहुत दिनों तक चली। अन्त में, वह बन्द हो गयी क्यों कि भारी धनाभाव पैदा हो गया था।

जैसे ही डॉ० अम्बेडकर ने अपने विचारों को स्पष्ट किया, वैसे ही चारों ओर से उनकी आलोचनाएँ होने लगीं। अत: फिर से उन्होंने एक और पत्रिका की आवश्यकता महसूस की। अपने आन्दोलन के सही दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए, किसी पत्रिका को चलाना आवश्यक था अन्यथा भ्रान्तियों के बीच आन्दोलन ही ठप्प हो सकता था। डॉ० अम्बेडकर जैसे नेता के लिए तो पत्रिका और भी अनिवार्य थी क्यों कि वह विद्रोही एवं क्रांतिकारी थे। कोई नेता, अपनी पत्रिका के बिना, पंखविहीन चिड़िया के समान है जो किसी दिशा में अपनी उड़ान नहीं भर सकती। अत: अपनी पाक्षिक पत्रिका 'बहिष्कृत भारत' (मराठी) 3 अप्रेल, 1927 को उन्होंने बॉम्बे में प्रारम्भ की। पत्रिका का उद्देश्य बतलाते हुए उन्होंने कहा कि वह वकालत के पेशे को अच्छा समझते हैं क्यों कि दलितों के कल्याण के लिए पत्र-पत्रिका चलाना किसी स्वतन्त्र जीविकोपार्जन के पेशे के साथ ही संभव हो सकता है। सरकारी नौकरी इस मार्ग में बड़ी बाधा है। यही कारण है कि उन्होंने डिस्ट्रिक्ट जज की अपनी नियुक्ति को कतई पसन्द नहीं किया था। बहुत पहले ही, उन्होंने अनुभव कर लिया था कि आर्थिक स्वतन्त्रता किसी जन-सेवी के कार्य को सुगम बना देती है। यह बात सही है कि भारत में अच्छी आर्थिक स्थिति के बिना पत्र-पत्रिका चलाना उन दिनों बड़ा कठिन था और आज भी उतना ही कठिन है। केवल धनाढ्य लोग ही पत्रिकाओं का भलीभांति प्रबन्ध कर सकते हैं।

पत्रिका के औचित्य को स्थापित करते हुए, डॉ० साहब ने कहा कि देश में विविध प्रकार के राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। सन् 1930 तक उन्हें आशा थी कि भारत में बड़े-बड़े राजनीतिक सुधार होंगे। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि अछूतों को उनकी जन-संख्या के अनुसार, अधिकार मिलें अर्थात् उनकी राजनीतिक सुरक्षा के समुचित प्रबन्ध हों। अतएव समस्त अछूत समुदाय को इन सब बातों से अवगत कराए रखना परमावश्यक था। उन्हें यह पता होना चाहिए कि उनकी क्या तकलीफें हैं। उनके राजनीतिक सुधारों के प्रति क्या विचार या प्रतिक्रियाएँ हैं ताकि उन्हें सही रूप में सरकार के समक्ष रखा जा सके। इसी उद्देश्य को लेकर डॉ० साहब ने 'बहिष्कृत भारत' को प्रारम्भ किया। डॉ० साहब ही उसके सम्पादक थे। उन्होंने अपनी नई पत्रिका के माध्यम से अपने आन्दोलन के आलोचकों को उत्तर देना आरम्भ किया। एक सम्पादकीय के बाद दूसरे सम्पादकीय में, डॉ० साहब ने वकालत की कि सभी तालाब और मन्दिर अछूतों के लिए खुले होने चाहिए क्यों कि वे भी हिन्दू हैं। अपनी तीखी एवं निर्भीक भाषा में, उन्होंने बॉम्बे सरकार से आग्रह किया कि वह 'बोले प्रस्ताव' को व्यवहार में

लागू करे जिसके अन्तर्गत सभी तालाबों को अछूतों के लिए खोला गया था ताकि वे भी उनमें से पानी पी सकें। उन्होंने अपनी पत्रिका के माध्यम से सरकार से यह भी आग्रह किया कि उस प्रस्ताव का विरोध करने वालों को दण्डित किया जाए। उन्हें कानून के उल्लंघन का सबक सिखाया जाए।

जब डॉ० अम्बेडकर ने 'बहिष्कृत भारत' के माध्यम से अपने विचारों को स्पष्ट किया तो हिन्दू पत्र-पत्रिकाएँ उनकी आलोचना में जुट गए। उन्होंने लिखा कि डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों की समस्याओं को लेकर एक सैनिकवादी नीति अपना रखी है। वह ऐसी स्थिति में क्या करते जब अछूतों का सम्मान और अधिकार दिन प्रति दिन पैरों तले रौंदे जा रहे थे? यदि तिलक अछूतों के बीच पैदा हुए होते तो वह यह नारा नहीं लगाते कि "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" वह यह कहते कि "छुआछूत का उन्मूलन मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इस प्रकार डॉ० साहब ने अपने एक संपादकीय में तर्क प्रस्तुत किया तो चारों ओर तहलका मच गया। अछूतों में जागृति की लहर दौड़ गई। उन्होंने दलितों से आगे बढ़ने के लिए प्रभावशाली ढंग से अपील की ताकि वे सवर्ण हिन्दुओं को यह दिखला दें कि छुआ-छूत करना उतना ही खतरनाक है जितना कि जीव पर जलता हुआ कोयला रखना। निरन्तर संघर्ष करते रहना उनके सामाजिक जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए।

पत्रिका के माध्यम से डॉ० अम्बेडकर का नाम चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। जनता से भी काफी सम्पर्क स्थापित हो गया। उनके आन्दोलन को चलाने के लिए, उनके शिष्यों एवं भक्तों ने अच्छा धन इकट्ठा कर लिया। उन्होंने यह कहा कि अब 'बहिष्कृत भारत' के स्थान पर 'जनता' नाम की साप्ताहिक पत्रिका निकाली जाए। अत: उनके दो साथियों, देवराव नाइक तथा कदरेकर की सहायता से दिसम्बर, 1930 में 'जनता' पत्रिका का शुभारम्भ हो गया। निश्चय ही यदि डॉ० अम्बेडकर उस समय आर्थिक परेशानियों से परास्त होकर किसी अन्य व्यवसाय या सरकारी विभाग में नौकरी करके जीविका के लिए प्रयत्न करते तो उनकी साहि-त्यिक प्रतिभा ऑफिस की चारदीवारी में बन्द होकर केवल सरकारी कागजों में उलझ गयी होती।

पत्रिकाओं के माध्यम से, डॉ० अम्बेडकर ने सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में जो जन-जागृति की, उसका एक निश्चित रूप से विकास हुआ। उन्होंने अपनी प्रथम पत्रिका का नाम 'मूक नायक', गूंगे वर्गों का नेता, दूसरी का नाम 'बहिष्कृत भारत' रखा। डॉ० अम्बेडकर ने अपने तीसरी पत्रिका का नाम 'इक्वेलिटी' और चौथी का नाम 'जनता' रखा। मूकनायक ने समस्त दलितों के दु:ख-दर्दों को उजागर किया और हिन्दू समाज में तहलका मचा दिया। तीसरी पत्रिका 'इक्वेलिटी' ने दलितों की समानता की इच्छा का प्रदर्शन किया ताकि उनके साथ अन्य मानव प्राणियों की भांति समानता का व्यवहार हो। चौथी पत्रिका के माध्यम से, अम्बेडकर ने दलितों की उस अभिलाषा का विश्लेषण किया जिसके अन्तर्गत वे हिन्दू समाज में ही, समानता, स्वतन्त्रता एवं भ्रातृत्व के सिद्धान्तों के आधार पर रहना पसन्द करेंगे। इन पत्रिकाओं में 'विद्रोह' या 'क्रांति' से अभि-

प्राय समाज में आवश्यक परिवर्तन लाना तो था परन्तु शस्त्रों की शक्ति द्वारा कदापि नहीं, अपितु आवश्यक सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के लिए विचारधारा और मनोवृत्ति उत्पन्न करना था। फलतः समयानुसार उपरोक्त सभी पत्रिकाएं जनप्रिय हो गईं। अपनी विचारधारा तथा परिस्थितियों के अनुकूल; पत्रिकाओं के नाम डॉ० साहब बदलते रहे। कालान्तर में उन पत्रिकाओं के प्रकाशन विशेष कठिनाइयों के कारण बन्द होते चले गये। जैसा कि आज भी दलितों की अनेक पत्रिकाएं प्रारम्भ होने के थोड़े समय पश्चात् ही बन्द हो जाती हैं।

साहित्य-सृजन का लक्ष्य :

प्रत्येक लेखक या साहित्यकार के व्यक्तित्व की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं, जिन्हें समझना उसके व्यक्तित्व को ही समझने के बराबर है। उनका वर्णन करना आवश्यक है। ये प्रमुख विशेषताएं, डॉ० साहब के साहित्य-सृजन का उद्देश्य, उनकी लेखन-शैली तथा उनकी विचारधारा के प्रेरणा-स्रोत आदि हैं। सर्वप्रथम यह देखा जाये कि बाबा साहेब के साहित्य-सृजन का लक्ष्य क्या था ?

जब भी कोई लेखक लिखता है तब कई प्रश्न सामने आते हैं, जैसे, वह क्यों लिखता है अर्थात् उसके साहित्य का उद्देश्य क्या है ? सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने जीवन-निर्वाह के लिए लिखता है, या फिर अपनी आत्म-संतुष्टि के लिए रचना करता है अथवा समाज तक अपनी विचारधारा को पहुँचाने के लिए वह लिखता है ताकि सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों को वह प्रभावित कर सके। अपने साहित्य से समाज में क्रांति ला सके। ऐसे कुछ विचार प्रत्येक लेखक या साहित्यकार के मन में होते हैं जिन्हें वह प्रकाशन के माध्यम से ही प्रदर्शित कर सकता है। अतः लक्ष्य के अभाव में किसी का भी साहित्य अधूरा होता है।

जीवन-निर्वाह करना प्रत्येक व्यक्ति की समस्या है जिसे सुलझाना परमावश्यक होता है। डा. साहब ने इसे स्वीकार किया कि लेखक जीविकोपार्जन के लिए लिखता है। यदि किसी लेखक के पास और कोई योग्यता या पेशा न हो तो वह लेखन के द्वारा ही जीविका कमाने का प्रयास करता है। इसमें कोई बुराई भी नहीं है कि व्यक्ति जीने के लिए लिखता है। वह चाहे तो ऐसी स्थिति में साहित्य द्वारा समाज का पथ-प्रदर्शन कर सकता है। यह उसकी व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर है। डॉ० अम्बेडकर ने जीविकोपार्जन के लिए नहीं लिखा क्योंकि वह बैरिस्टर भी थे और कुछ ही दिनों में उनकी अच्छी वकालत चल गई थी। यदि वह जीविका-निर्वाह के लिए लिखते भी तो संभवतः सफल नहीं हो पाते क्योंकि वह एक अछूत परिवार में जन्मे थे। उनका साहित्य बाजार में कैसे बिकता ? वकालत के पेशे में ही उनके सामने अनेक बाधाएं उत्पन्न की गईं। परन्तु वह तो अपने आत्म-विश्वास तथा साहस के साथ काम करते रहे और अन्त में सफल हुए।

अपने 65 वर्ष के जीवन-काल में डॉ० अम्बेडकर ने लगभग दो दर्जन महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की जो प्रत्येक दृष्टि से आज उतने ही सजीव तथा सशक्त हैं जितने कि वे उनके समय में थे। उनमें विषय की व्यापकता, गम्भीरता

तथा रोचकता समाहित है। उनमें अपने निर्धारित लक्ष्य की धारा सदैव बहती रहती है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके बहुत से लेख हैं जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। मराठी भाषा में तो उनके मौलिक विचार पहले भी पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हुए जिन्हें पढ़कर कोई डा० अम्बेडकर के लेखन क्षेत्र तथा साहित्यिक अभिरुचि का पता आसानी से लगा सकता है।

डॉ० अम्बेडकर ने धन कमाने के लक्ष्य से अपनी रचनाएं नहीं लिखीं, हालांकि उन्हें अपनी पुस्तकों से अच्छी आमदनी हो गई थी। उनके सामने मौजूदा समाज में दलितों की समस्याएं प्रमुख थी जिन पर वह अपनी किशोरावस्था से ही चिन्तन करते चले आ रहे थे। डॉ० साहब के समक्ष व्यवसाय के लिए लिखने की कोई समस्या नहीं थी, हालांकि लेखकों को जीविकोपार्जन के लिए भी लिखना पड़ जाता है। बाबा साहब ने तो अपनी कलम को दलितों के प्रति हो रहे अन्यायों एवं अत्याचारों के विरुद्ध उठाया। समाज-उत्थान की प्रवृत्ति उस कलम में निहित थी। उन्होंने जो भी साहित्यिक-सृजन किया, उसमें दलित, दीन-हीन, स्त्री-पुरुषों की दर्दनाक घटनाएं हैं। उनके हितों की रक्षा की प्रभावशाली वकालत है। उनका साहित्य आमोद-प्रमोद का साधन नहीं है। उसमें गहनतम विचार हैं जिन्हें पढ़कर कोई भी व्यक्ति आन्दोलित हो उठता है, उनके पक्ष में या फिर उनके विरोध में। पाठक उनकी रचनाओं के अध्ययन के पश्चात् शान्त, चुपचाप, नहीं बैठ सकता है क्योंकि उनमें उल्लेखित विचार वर्तमान व्यवस्था, अन्याय, शोषण एवं दमन पर कड़ा प्रहार हैं जिसे निरन्तर बनाये रखना समाज के हित में है।

बाबा साहब की रचनाओं का लक्ष्य न केवल सामाजिक तथा राजनीतिक, बल्कि नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक भी था। उनकी सबसे बड़ी सफलता इस बात में थी कि उन्होंने अपनी अनुभूति को गहराई एवं स्पष्टता से अभिव्यक्त किया। बड़ी निर्भीकता से वह आगे बढ़े। उन्हें किसी का भी भय नहीं था। भय की स्वीकार की गई कला कभी भी प्रगतिशील एव प्रभावशाली नहीं हो सकती। डॉ० साहब के सामने, दलितों के उत्थान के सिवाय और कोई लक्ष्य नहीं था। अपने साहित्य-सृजन में उनका अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं था अन्यथा उनकी रचनाओं में वह प्रभावशीलता नहीं आ पाती जो अब है। इससे डॉ० साहब के साहित्यिक व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। अनेक कठिनाइयों का सामना करने के बाद, हिन्दू समाज में गालियों की बौछार सहने के पश्चात् भी उनकी साहित्य-साधना अनवरत चलती रही जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता मिली। उन्होंने जो ठोस सुझाव अपनी रचनाओं के माध्यम से सरकार या समाज को दिये, उनका परिपालन या तो सरकार या समाज ने स्वत: किया या उन्हें विवश होकर मानना पड़ा। उनके साहित्य में जो प्रभावशीलता अथवा सउद्देश्यता थी, उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता था और आज भी उनका साहित्य उतना ही सजीव तथा प्रेरणास्पद है, जितना पहले था।

अपने परिवार की आर्थिक समस्या हल करने के बाद, डा० साहब ने अपना सारा समय समाज-सुधार, राजनीतिक जाग्रति तथा साहित्य-सृजन में ही लगाया।

अपने इन कामों में, बाबा साहब ने आत्म-संतोष का गहरा अनुभव किया। उन्हें अपनी प्रकाशित रचनाओं को देखकर एक प्रकार की प्रसन्नता होती, क्योंकि जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद, वे एकाग्रचित्त होकर उसी दिशा में लीन हो जाते थे। उनका मन पढ़ने-लिखने में रम जाता था। यही कारण है कि बाबा साहब को अपने साहित्य से पूर्ण संतुष्टि प्राप्त होती थी। पुस्तकें लिखने में, उन्हें जीवन के लिए चिंतन और प्रयत्न की इच्छा को अभिव्यक्ति दे सकने का संतोष अनुभव होता था। डॉ० साहब बहुत वृद्ध हो चले थे। मधुमेह के रोग से निरन्तर पीड़ित भी रहते थे। चलने-फिरने से मजबूर हो गये थे परन्तु साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति को वे रोक नहीं पाए। अपने अदम्य साहस के साथ, वे लिखते रहे, न केवल आत्म-संतोष की अनुभूति के लिए, अपितु दलितों तथा अन्य प्रगतिशील व्यक्तियों तथा समाजों को नई दिशा प्रदान करने के लिए। वे कलम के धनी तो थे ही, उनके पास भौतिक धन-सम्पत्ति भी बहुत कुछ हो गई थी और उनको प्रसिद्धि भी व्यापक रूप से मिल चुकी थी। पर वह वैभव उनकी कलम पर हावी नहीं हो पाया। वे निरन्तर सामाजिक-दार्शनिक साहित्य-जगत् को कुछ न कुछ देने में ही शान्ति एवं संतुष्टि अनुभव किया करते थे। जिस रात को उनका देहावसान हुआ, उस रात को सोने से पूर्व अपने महान् ग्रन्थ "भगवान बुद्ध और उनका धम्म" की भूमिका लिखी और उसे टाइप करवा कर अपनी टेबिल पर रखा। ऐसी गहन उनकी अभिरुचि थी साहित्य-सृजन में।

डॉ० अम्बेडकर का अपना एक सिद्धान्त था कि जिस प्रकार आप जीना चाहते हो उसी प्रकार अन्य लोगों को भी जीवन-निर्वाह करने दो अर्थात् भ्रातृत्व सिद्धान्त की भावना से ओतप्रोत सभी लोग एक दूसरे के प्रति आचरण करें। डॉ० साहब निरन्तर समाज में होने वाले परिवर्तनों को भलीभाँति अनुभव करते रहते। वे अपने व्याख्यानों एवं लेखों द्वारा दलितों को विश्लेषित करते थे, ताकि उनमें जाग्रति एवं प्रगति के विचारों का संचार होता रहे। जिन कष्ट, अनुभवों को उन्होंने सहन किया, जो कुछ भी उचित-अनुचित देखा, अपनी कलम की शक्ति से वह समाज को बतलाते रहे और इस प्रकार वे दलित समाज के जितने निकट पहुँच सके शायद ही कोई दूसरा पहुँचा हो। उन्होंने अपनी लेखनी से दलितों के बिगड़े भाग्य को संभाला और उसे उत्साहपूर्ण जीवन के मार्ग पर ला रखा। बाबा ने दलितों का साथ जीवनभर दिया। उनकी कठिनाइयों को सही रूप से समझने के बाद, उनका बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिनिधित्व भी किया। वैसे डॉ० साहब एक ऐसी वैभवशाली स्थिति में पहुँच गए थे जहाँ से दलित उनकी दृष्टि से ओझल हो सकते थे, पर वे अपने विचारों और अनुभूतियों को उनके उत्थान हेतु अर्पित करते रहे। उनकी साहित्य-साधना निरन्तर बनी रही।

साहित्य रचना के दौरान, डॉ० अम्बेडकर अपने पवित्र ध्येय के प्रति सदैव अडिग बने रहे। वे जहाँ कहीं भी रहे, जो कुछ भी उन्होंने लिखा और पढ़ा, उनको दलितों का ध्यान निरन्तर बना रहा, उसी प्रकार जिस प्रकार माँ को अपने बच्चों का। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, उन्होंने धन, वैभव, पद तथा गौरव

की कभी पर्वाह नहीं की। वे सस्ती लोकप्रियता से दूर रहे और स्वार्थपूर्ण आलोचना को तुच्छ समझते रहे। अपने सम्पूर्ण साहित्य में, उन्होंने यही प्रतिपादित किया कि "अपने अधिकारों के लिए झगड़ो। अधिक से अधिक त्याग करो, और मुसीबतों की परवाह किए बिना, सतत संघर्ष करते रहो।" जैसा बाबा साहब का जीवन तथा दर्शन रहा, वैसा ही उनका साहित्य रहा। उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य में जो साम्य है वह मुश्किल से कुछेक महान् व्यक्तियों में ही मिल पाता है। उनके आचार-विचार तथा साहित्य में पूर्ण समरूपता मिलती है जो उनके व्यक्तित्व की गम्भीर विशेषता थी।

जहां तक मैंने डॉ० साहब के साहित्य का अध्ययन किया है, मैं समझ पाया हूं कि उनके साहित्य में उनका महान् विद्रोही व्यक्तित्व ही झलकता है। वे जन्मजात विद्रोही थे। उनका समस्त साहित्य विद्रोह का ही साकार रूप है। उसकी पंक्ति पंक्ति में विद्रोह एवं क्रान्ति का रक्त प्रवाहित है। हिन्दू-समाज एवं धर्म के वर्ण-भेद, जातिवाद, छुआछूत, पाखण्ड, आडम्बर और मिथ्याचार के प्रति उनके ग्रन्थों में तीव्र विद्रोह की भावना मिलती है। वे सदैव साहित्य रूपी बाण अन्याय एवं अत्याचार के प्रति चलाते रहे। उनकी कलम बलवान् थी, उनका आक्रोश न्यायोचित था। उनकी कलम और वाणी की तीक्ष्णता तथा उग्रता बड़ी स्वाभाविक थी क्योंकि उन्होंने असमानता पर आधारित समाज का विरोध किया। उनके साहित्य में, दलितों के उत्थान हेतु, हिन्दूवाद, गांधीवाद, कांग्रेस आदि के प्रति बगावत मिलती है। बगावत एवं विद्रोह के बावजूद भी, उनके साहित्य में विध्वंसक प्रवृत्ति नहीं मिलती। उनका रुख विधायक है और सारी रचनाएं एक नए निर्माण की ओर प्रेरित करती हैं।

इसलिए साहित्य-सृजन के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए, डॉ० अम्बेडकर ने साहित्यकारों को सम्बोधित करते हुए कहा—"हम अपने जीवन की ओर, अपने कर्त्तव्यों की ओर तथा अपनी संस्कृति की तरफ ध्यान नहीं देते हैं। थोड़ा सा इनकी ओर ध्यान करें तो हमें पता चलेगा कि हमारे जीवन-मूल्य और हमारे सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार नष्ट-विनष्ट किए जा रहे हैं। कारण कुछ भी हों; पर यह सच है कि हम अधःपतन और अवनति के मार्ग पर बढ़ रहे हैं। इसलिए साहित्यकारों का कर्त्तव्य है कि वे तत्परता से और सावधानीपूर्वक इन जीवन-मूल्यों की रक्षा करें, उनमें तेज पैदा करें; उनका विकास करें....मुझे साहित्यकारों से अपनी सारी शक्ति लगाकर कहना है कि आप अपने साहित्य-निर्माण द्वारा उदात्त जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक-मूल्यों को विकसित करें। अपने विचार संकुचित और सीमित न रखें, उन्हें विशाल बनाएं। अपनी वाणी को चारदीवारी से बाहर निकलने दें। अपनी लेखनी का प्रकाश अपने आंगन में ही न रोक लें, उसका तेज गांव-गांव के गहन अन्धकार को दूर करने के लिए फैलने दें। यह भूल न जाएं कि अपने इस देश में उपेक्षितों, दलितों और दुःखियों का अपना अलग संसार है। उनके दुःख, उनकी व्यथा, समझें और अपनी सृजन-शक्ति उनके जीवन को उन्नत करने के लिए होम दें। यही सच्ची मानवता होगी।"

लेखन-प्रक्रिया एवं शैली :

प्रत्येक लेखक अपनी विलक्षणता के लिए प्रसिद्ध होता है अथवा हर एक साहित्यकार की कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य सामान्य लोगों से अलग होता है। वैसे अम्बेडकर सामान्य लोगों में ही रहे। वे अपने को उनसे बिल्कुल पृथक् नहीं कर पाए। फिर भी उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे महान् नेता बन गए; किन्तु उनको जहां कहीं, जब कभी भी, समय मिला, लिखने-पढ़ने में लीन रहे। उनके लिखने का कोई नियत स्थान नहीं था, कोई विशेष समय भी निश्चित नहीं था। साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति, उनके व्यक्तित्व का एक अङ्ग बन गई थी। निरन्तर पढ़ते-लिखते रहना ही, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की विलक्षणता थी।

वैसे वे समय मिलने पर लिखते-पढ़ते रहते थे; पर उनका अपना एक ढंग था। डॉ० साहब एक ही साथ, कई पुस्तकों की रचना करने में व्यस्त रहते थे। उनकी कोठी में कई स्थानों पर अच्छी-अच्छी मेजें रखी रहती थीं जो नवीन पुस्तकों से लदी रहती थीं। जब डॉ० साहब चाहते किसी मेज पर बैठ जाते और उस मेज पर रखे अधूरे अध्याय को पूरा करने में लग जाते। यदि वहां से ऊब जाते तो किसी अन्य मेज़ पर बैठ जाते और फिर वहां लिखने-पढ़ने लग जाते। खूब देर तक पढ़ते-लिखते रहते। थकने पर चाय पीते। रात को थकने पर वे कॉफी का घूँट पीते थे जो उनकी मेज़ पर थरमस में भरी रहती थी। उनकी मेज़ पर मिठाई की तश्तरी भी रखी रहती और यदि वे थक जाते या नींद आती तब उसमें से चखकर स्फूर्ति प्राप्त करते। अच्छी तरह थकने के बाद ही वे लिखने-पढ़ने का काम छोड़ते थे, उससे पहले कतई नहीं।

डॉ० अम्बेडकर दिन-रात अपने अध्ययन-कक्ष में जमे रहते थे। उनके पास मिलने वाले भी बहुत आते थे, जिनसे मिलना वे आवश्यक समझते थे। लेखन-कार्य करते समय भी यदि मिलने वाले मेहमान आते तो वे उनका सहर्ष स्वागत करते और फिर लेखन-कार्य में लीन हो जाते। आगन्तुकों का आगमन उनकी लेखन-क्रिया में बाधक सिद्ध नहीं होता था। उल्टे वे लोग तो उनके मनोरञ्जन का काम करते थे। वे उनसे बातचीत भी करते जाते और बीच-बीच में, अपनी पुस्तकों में निगाहें दौड़ाते रहते थे। उनकी एक और विशेषता थी कि यदि विशेष मेहमान आते तो उनसे खूब बातचीत करते रहते और उनके जाने के बाद वे अपना काम वहीं से प्रारम्भ करते जहां से छोड़ा था। जब वे किसी को मिलने का समय निश्चित कर देते तब उसके न आने पर उसका थोड़ा इन्तजार करते और घर में बार-बार पूछते कि वह आए नहीं क्या। यह एक ऐसा समय होता जब उन्हें सुस्ता लेने का अवसर मिल जाता था।

यह बात सही है कि डॉ० साहब का लिखने-पढ़ने का निश्चित समय नहीं था। जब वे वाइसराय की काउंसिल में, और उसके बाद जब वे नेहरू मन्त्रि-मण्डल में कानून-मन्त्री बने, तब उन्हें दिन में समय कम मिलता था। अतः वे रात में

अधिक काम करते थे। उनकी यह आदत अमेरिका और लन्दन में अध्ययन के समय से ही बन गई थी। वे लम्बे-लम्बे नोट्स तैयार करते जिन्हें वे परीक्षा में काम लेते थे। लन्दन में तो साथी सो जाते और वे रात भर लिखते-पढ़ते रहते थे। उनकी वहीं ऐसी आदत बन गई थी जो जीवन भर उनके साथ चलती रही। विद्यार्थी-जीवन में तो प्रायः सभी अपने ही हाथों से लिखते हैं; पर धन-सम्पत्ति प्राप्त करने के बाद वे 'स्टेनो' द्वारा अपना सारा काम करते हैं। डॉ० साहब चाहते तो अच्छे से अच्छा 'स्टेनो' रख सकते थे; परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें अपने हाथों से लिखने पर ही आनन्द आता था। लिखते समय, वे अपार संतुष्टि की अनुभूति करते थे। महीने दो महीने की तो बात ही क्या, उन्होंने 'भगवान् बुद्ध और उनका धम्म' लिखने में, कहते हैं, कई वर्ष लगा दिए। बार-बार लिखना, काटना उनका क्रम था ताकि रचना सब दृष्टि से उत्तम सिद्ध हो और निश्चय ही, उनकी किसी रचना को जैसे ही पढ़ना प्रारम्भ कर दिया जाए वैसे ही शीघ्र छोड़ना मुश्किल होता है। डॉ० अम्बेडकर की विशेषता यह थी कि वे भावावेश या आक्रोश में नहीं लिखते थे। वे एक बैरिस्टर थे। फलतः यों ही लिखना उनका शौक नहीं था। उनकी हर रचना में तार्किक संगति है और तथ्यों की भरमार होती है। विचारों का आधारभूत लक्ष्य उनके पास हर समय विद्यमान रहता था। उनके साथ मूड, भावावेश या उत्तेजना की समस्या नहीं थी। भावनात्मकता की अपेक्षा उनमें विचारों का संचय, उद्देश्यशीलता अधिक थी। उनकी लेखन-क्रिया, दलितों की समस्या में लीन होती थी।

वे अपने विचारों का संकलन अपने ही ढंग से किया करते थे। सर्वप्रथम यदि दलितों के हितों का कोई प्रश्न आता तो उनके मन रूपी सागर में भरे पड़े विचार उमड़ पड़ते थे। उन्हें अधिक सोचने-समझने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। अपने कटु अनुभवों तथा यातनाओं से उनके विचार मँज गए थे। दलितों के हितों की रक्षा करना उनकी कलम का लक्ष्य था और उनकी कलम ने अछूतोद्धार के आन्दोलन में जो सफलता प्राप्त की शायद ही किसी की कलम ने की हो। किसी साहित्यकार के लिए मेहमानों का आना-जाना कोई बन्धन नहीं होता है। डॉ० साहब अपने भक्तों से मिलने पर आनन्दित होते और उनके साथ वार्तालाप के बीच, नए विचारों में डूब जाना उनकी बड़ी भारी विशेषता थी। वार्तालाप में कोई विघ्न भी नहीं पड़ता था और डॉ० साहब को उनकी कठिनाइयां दूर करने का विचार मिल जाता था। जब वे बातें प्रारम्भ करते तो शायद रुकना मुश्किल होता; लेकिन सुनने वाला कभी बुरा महसूस नहीं करता था। वह बड़ा प्रसन्न होता और चाहता कि बाबा साहब निरन्तर बोलते रहें। उनसे मिलने वालों ने बतलाया कि लोग बातें करते तब वे या तो पढ़ते रहते या फिर कुछ सोचने की मुद्रा में होते थे। वे अपने भक्तों की बातें भी सुनते रहते और उनका चिन्तन भी जारी रहता था। वे कभी भी अपने सामने बैठे लोगों को बोलने से टोकते नहीं थे। उनकी कठिनाइयों को वे आसानी से समझ जाते और फिर उनके साथ अनवरत वार्तालाप करते रहते थे।

जहां तक डॉ० अम्बेडकर की भाषा-शैली का प्रश्न है, उसके समझने में कोई कठिनाई नहीं है। साहित्य में कला-पक्ष का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि विचार-पक्ष। उनके साहित्य में कला-पक्ष और विचार-पक्ष दोनों का अनुपम संगम है। विचार-पक्ष जितना ही सुदृढ़ होगा, वाक्यों की रचना भी उतनी सरस होगी। साहित्य में केवल एक ही पक्ष का होना एक कमी है क्योंकि विचार और शैली दोनों की समन्वित एवं संतुलित संबद्धात्मकता ही किसी लेखक की सफलता की कसौटी है। डॉ० साहब के साहित्य में यह विशेषता मिलती है। लेखक के व्यक्तित्व पर निश्चय ही वर्तमान स्थितियों का प्रभाव पड़ता है और उसी के अनुरूप, वह अपना लिखने का एक ढंग विकसित कर लेता है। उसका अपना एक स्टाइल बन जाता है, जिसके माध्यम से वह वैचारिक क्षेत्र में दूर-दूर तक विचरण करता है। प्रत्येक लेखक की अपनी भाषा-शैली होती है। उसके अभाव में उसका साहित्य नीरस बन जाता है।

भाषा-शैली में सर्वप्रथम यह देखना पड़ता है कि लेखक ने कौन-सी भाषा का प्रयोग किया? उसने किस शैली को अपनाया? वैसे डॉ० साहब का संस्कृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, जर्मन भाषाओं पर अच्छा अधिकार था; पर उन्होंने दो ही भाषाओं को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। ये दो भाषाएं मराठी एवं अंग्रेजी थीं। डॉ० अम्बेडकर ने अपने साहित्य में सामान्य रूप से समझी जाने वाली मराठी भाषा के प्रचलित रूप को अपनाया। कड़े शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा, उन्होंने बोल-चाल की सरल, सहज भाषा का प्रयोग किया। डॉ० साहब का मुख्य उद्देश्य, सरल, सहज और स्वाभाविक शैली के साथ-साथ, दलितों के हृदय पर अपने विचारों का मनोवांछित प्रभाव भी तो डालना था। अपने विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए, पाठकों को अपनी तार्किक युक्तियों से प्रभावित करने के लिए, भाषा को सरल एवं स्पष्ट तो बनाया ही; अपितु उसे यथास्थान पर अलंकृत भी किया, सहज और सरस भी बनाया। अंग्रेजी भाषा पर तो उनका इतना अधिकार था जितना कि किसी का अपनी मातृ-भाषा पर होता है। जब डॉ० साहब अंग्रेजी में बोलते या लिखते, उनमें वही सरसता, सहजता तथा स्वाभाविकता मिलती जो उनके मराठी साहित्य में। एक ओर उनकी भाषा में अत्यधिक मिठास है, तो दूसरी ओर गम्भीर तीखापन, क्योंकि वे न केवल उद्धारक; अपितु एक विद्रोही भी थे।

डॉ० अम्बेडकर की मराठी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं की शैली बड़ी प्रभावपूर्ण है। उसमें सजीवता है। वह मात्र वर्णनात्मक नहीं है बल्कि विश्लेषणात्मक भी है और साथ ही साथ ऐतिहासिक भी। डॉ० साहब के संपूर्ण साहित्य को देखकर कहा जा सकता है कि उनकी भाषा-शैली चिन्तन प्रधान, आलोचनात्मक एवं तर्क-वितर्क प्रधान शैली है। उनकी शैली का साधना-पक्ष बड़ा ही प्रबल एवं प्रेरणात्मक रहा है।

डॉ० अम्बेडकर कोई उपन्यासकार तथा कहानीकार तो थे नहीं। उनके समक्ष सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याएं अधिक थीं। उनका मूल

उद्देश्य दलितोद्धार था। अतः उन्होंने जहां-जहां अपने साहित्य में राजनीति एवं समाज की समस्याओं तथा विषयों की सिद्धान्तवादी व्याख्या की है, वहां-वहां उनका स्तर गम्भीर हो गया। भाषा भी सामान्य स्तर से ऊपर उठकर बौद्धिक वर्ग की भाषा हो गई है। उनके वाक्य भी सुरचित और विचारगर्भित हैं। 'पाकिस्तान और द पार्टीशन ऑफ इण्डिया' और 'ह्वाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेबिल्स' में राजनीति एवं समाज की समस्याओं को लेकर चिन्तन-प्रधान शैली ने रूप धारण किया है। पाठक जब उनके विचारों की गम्भीरता का अवलोकन करता है तो आश्चर्यचकित हो जाता है कि उन्होंने कितने व्यापक ढंग से अपने मन्तव्य को प्रकट किया है। योग्य पाठक को उनके गम्भीर विचारों में अनावश्यक रूप से उलझना नहीं पड़ता। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए, डॉ० साहब ने संस्कृत भाषा में पंक्तियों को उद्धृत किया है जैसा कि 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में मिलता है। वे विभिन्न प्रकार के वादों से अपने पाठक को परिचित करवाते हैं और फिर चिन्तन करते-करते, वे अपने उद्देश्य पर आ पहुँचते हैं।

चिंतन-प्रधान शैली में जहाँ अन्य की बात को काटना और अपनी बात को सही सिद्ध करना पड़ता है, वहां आग्रह एवं जोश प्रबल हो जाता है। फलतः वहां शैली आलोचनात्मक हो जाती है। लेखक अपने विरोधियों की बात को बड़ी दृढ़ता से खण्डित करने का प्रयास करता है। जो लेखक विद्रोही हो, समाज-क्रान्तिकारी हो तो उसकी भाषा-शैली तो निश्चय ही आलोचनात्मक होगी। डॉ० साहब की इस शैली में कहीं उग्रता है तो कहीं सरसता एवं रोचकता भी है। डॉ० साहब प्रारम्भ से ही कांग्रेस, गांधी और हिन्दू प्रतिक्रियावादियों के कट्टर विरोधी थे। अतः अपने सम्पूर्ण साहित्य में, उन्होंने इनके साथ कहीं भी समझौता नहीं किया। कांग्रेस एवं गांधी को एक ही थैली के चट्टे-वट्टे बतलाया क्यों कि दोनों ने अपनी राजनीति में दलितों या अछूतों को सदैव साधन के रूप में प्रयुक्त किया। कांग्रेस-गांधी का मूल उद्देश्य यह कभी नहीं रहा कि वे स्वतंत्र होकर प्रगति करें। अपने साहित्य में, डॉ० अम्बेडकर ने कांग्रेस एवं गांधी की जितनी आलोचना की, शायद ही उतनी किसी समकालीन राजनीतिज्ञ ने की हो। उन्होंने जीवन भर कांग्रेस एवं गांधी की डटकर आलोचना की जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा-शैली कठोर एवं तीखी हो गई।

डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू समाज तथा धर्म की भी अपने साहित्य में बड़ी-कड़ी आलोचना की है। हिन्दू समाज व्यवस्था और रूढ़ियों की आलोचना करते समय, उनकी शैली बड़ी मर्मभेदी, रोचक एवं सहज है। उनकी आलोचनात्मक शैली मात्र आलोचना के लिए नहीं थी, अपितु उसको उन्होंने न्यायोचित ठहराने का प्रयास भी किया है। अपने साहित्य में, डॉ० साहब ने प्रत्येक व्यक्ति को आलोचना का विषय नहीं बनाया। उन्होंने एक स्थान पर स्पष्ट कहा कि वह केवल उन्हीं आलोचकों के साथ अपना संघर्ष करते हैं, जो प्रसिद्ध हैं अन्यथा सामान्य आलोचक के साथ उलझना उचित नहीं। उनकी आलोचनात्मक शैली बड़ी ठोस है। उसमें बौद्धिकता एवं ऐतिहासिकता दोनों का समावेश है। उनकी आलोचना में भी रोचक

व्याख्याओं एवं घटनाओं का सही-सही चित्रण होता है। उनके द्वारा किसी व्यक्ति तथा बात की आलोचना मात्र नकारात्मक नहीं होती, उसमें विधायक चिंतन भी सन्निहित होता है।

डॉ० साहब के साहित्य को पढ़ने के बाद, यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी शैली तार्किक या तर्क-वितर्क-प्रधान शैली है। वह एक बड़े वकील थे और व्यावहारिकता का उन्हें बड़ा अनुभव था अतः भावावेश में लिखना उनके लिए संभव नहीं था। जो कुछ भी उन्होंने लिखा, उसमें अपनी बात को उपयुक्त उद्धरणों से प्रमाणित किया और साथ ही, अनेक प्रकार से तर्कों को प्रस्तुत किया। यहां डॉ० साहब की शैली में आत्मीयता एवं बोधगम्यता अधिक है। जहां वे उद्धरण तथा तर्क देते चले जाते हैं, वहां कोई नीरसता नहीं आती। नीरसता केवल अयोग्य पाठक को ही महसूस हो सकती है। तर्क-वितर्क करना तो उनके व्यक्तित्व का एक अङ्ग था। यह विशेषता उन्होंने अपने वकालती जीवन से ही ग्रहण करली थी। वह अपने ग्रन्थों में बहुत से स्थलों पर प्रश्नवाचक वाक्य स्वयं गढ़ देते हैं और उसका उत्तर भी स्वयं देते हैं। अतः उनकी भाषा-शैली प्रश्नात्मक के साथ-साथ उत्तरात्मक भी है। 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में जो वर्णवाद के विरुद्ध तर्क दिए गये हैं और जो प्रश्न उठाए गए हैं, वे अकाट्य हैं। जब गांधी के साथ कुछ राजनीति के प्रश्नों को लेकर वार्त्तालाप हुआ तो वाद-विवाद में डॉ० साहब खरे उतरे। गांधी ने उनकी बौद्धिकता, तार्किक-शक्ति की प्रशंसा की। डॉ० साहब की तर्क-वितर्क शैली ठोस एवं ऐतिहासिक है। उन्हें कानून तथा न्याय के सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान था। अतः उनकी शैली में निरर्थकता का नितान्त अभाव मिलता है।

इसके अतिरिक्त, बाबा साहब की भाषा शैली व्यंग्यात्मक भी है। चिंतन-प्रधान शैली में यह गुण आवश्यक नहीं, पर चूंकि वह आलोचक भी थे, इसलिए उनकी भाषा में समयानुसार व्यंग्यों का आना स्वाभाविक ही था। उनके सीधे एवं स्पष्ट व्यंग्य अपनी बात को भी सरल एवं समझने योग्य बनाते हैं। उनके व्यंग्य ठोस, सशक्त एवं सारगर्भित होते हैं। वार्त्तालाप में भी वह व्यंग्यों का प्रयोग करते थे और जिस पर वह व्यंग्य कसते, उसकी ओर खूब हँसते भी थे। कभी-कभी तो उनके व्यंग्य इतने कटु एवं कर्कश हुआ करते कि सुनने वाला तिलमिला जाए। इनमें भी उनके विचारों की गम्भीरता टपकती थी। परम्पराओं, रूढ़ियों, आस्थाओं, विचारों, आदि पर अपनी कलम की नोक से प्रहार करना, डॉ० अम्बेडकर को विशेष प्रिय था। उनकी भाषा शैली में न केवल व्यंग्य होते हैं, बल्कि मुहावरों की भी कमी नहीं होती। उन्होंने जिन मुहावरों का प्रयोग किया वे बड़े ही ठोस एवं समयानुकूल होते थे। मुहावरों के साथ साथ, अपने साहित्य में उन्होंने उपमाएं भी अच्छी तरह दी हैं, जैसे वर्णव्यवस्था के नियमों पर चलना नाक की नोक पर चलने के समान है। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि डॉ० अम्बेडकर को, एक लेखक या साहित्यकार के रूप में सफलता मिली और उनकी रचनाओं को पढ़ना, विचारों के सागर में गोता लगाने के सदृश्य है।

डॉ० अम्बेडकर का शब्द-चयन बहुत विस्तृत और समृद्ध ज्ञान का परिचायक

है। उन्होंने व्यावहारिक भाषा के साथ-साथ, कुछ लेटिन एवं फ्रेंच भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी किया है। लेकिन भाषा वैसी ही सरल एवं सहज रही जैसी कि अपनी मातृ-भाषा होती है। डॉ० साहब के साहित्य में भाषा-शैली के विविध रूप उपलब्ध हैं। ग्राम जनता शैली की सरस अभिव्यक्ति से लेकर विचार-प्रधान गम्भीर शैली तक के समस्त रूप उनके साहित्य में वर्त्तमान हैं। यथार्थ जगत् से अपने उपमानों को ग्रहण करना लेखक की भाषा के प्रति कलात्मक रुचि और मानववादी मनोवृत्ति की ओर संकेत करता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि डॉ० साहब ने अपनी भाषा को अलंकृत करने का ही एकमात्र ध्यान रखा हो, पर भाषा अपनी अभिव्यक्ति के साथ-साथ सुन्दर एवं सरल हो, जन-सामान्य की भाषा हो, ऐसा उनका प्रयास अवश्य रहा। डॉ० साहब मूलतः मानववादी लेखक थे, इसलिए उनका ध्यान भाषा को सहज और सरस बनाने के साथ-साथ, यथार्थ और व्यावहारिक रूप देने की ओर भी अधिक रहा। कहीं-कहीं उनकी लेखनी में आदर्श स्थिति का चित्रण भी मिलता है; किन्तु उसमें लेखक की कपोल-कल्पित उड़ान नहीं है, उसमें चमत्कार नहीं है, केवल यथार्थक रूप में भावों की अभिव्यक्ति है। उसमें मानववादी एवं यथार्थवादी विचारों का सम्मिश्रण है।

रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत :

प्रत्येक लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है और उसका अपना मिशन भी भी होता है। साहित्य-रचना के लिए, लेखक को किसी न किसी रूप में प्रेरणा प्राप्त होती है और वही उसकी साहित्यिक रचना का आधार बन जाती है। मिशन के बिना, साहित्यिक रचना कुछ निरर्थक सी लगती है। किसी प्रेरणा या मिशन के अभाव में साहित्य रचना करना कठिन ही नहीं वरन् असभव भी है। यह आवश्यक नहीं है, वह प्रेरणा सदैव एकसी बनी रहे। वह परिवर्तित भी हो सकती है क्यों कि परिस्थितियां बदलती रहती हैं और साहित्यकार अपनी दृष्टि को भी बदल सकता है। चाहे जिस उद्देश्य से लिखा जाए, लिखने का लक्ष्य तो अवश्य होना चाहिए।

वैसे अधिकतर साहित्यकारों की प्रेरणाएं समयानुसार बदलती रहती हैं अथवा उनकी प्रेरणाएं समय समय पर बिल्कुल अलग ढंग की हो सकती हैं, पर डॉ० अम्बेडकर की प्रेरणा का स्रोत प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक ही रहा। लेखक अपने अन्तर्मन की अनुभूतियों को अच्छे रोचक ढंग से रखने का प्रयास करता है। डॉ० साहब ने ऐसा ही किया; परन्तु उसमें व्यक्ति की प्रधानता के स्थान पर समाज की स्थिति का चित्रण है। उनकी अन्तर्दृष्टि, अदम्य साहस के साथ, एक समस्या के समाधान की ओर केन्द्रित हो गई जिसने उनकी लेखनी को एक नवीन दिशा तथा नवीन प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने अपना मिशन विद्यार्थी जीवन से ही निश्चित कर लिया था। फलतः वह उसमें लीन हो गए और जो कुछ भी लिखा, कहीं भी प्रकाशित हुआ, वह उसी प्रेरणा के चारों ओर घूमता रहा। डॉ० साहब को जिन भौतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों, व्यवस्था, आचार-व्यवहार, तथा राजनीतिक हालातों ने घेरा, वह उन्हीं के अध्ययन के पश्चात्, दलितोद्धार

की प्रेरणा को लेकर, जीवन पर्यन्त लिखते रहे और तदनुसार कार्यरत भी रहे।

डॉ० अम्बेडकर ने वर्त्तमान समाज की परिस्थितियों का न केवल गहन अध्ययन किया बल्कि कटु अनुभवों का सामना भी किया। जाति एवं छुआ-छूत के अभिशापों के वह शिकार बने। उन्होंने एक बहुत बड़े मानवी हिस्से को अपमान, दमन एवं अन्याय से पीड़ित रहते हुए देखा। उनका हृदय हिल गया। अतः डॉ० साहब ने परिस्थितियों के अनुकूल जीने के बजाय, उन्हें परिवर्तित करने का निश्चय किया। यही प्रेरणा उन्हें दलितोद्धार की ओर खींच ले गई। उन्होंने अपने मिशन का कार्य अपनी लेखनी से ही प्रारम्भ किया। अतः उनकी प्रेरणा का स्रोत वे दलित मानव प्राणी थे जिन्हें समाज में सभी तरह से पीड़ित एवं अप-मानित रखा गया। उनकी प्रेरणा का मुख्य स्रोत समाज को बदलना, स्थापित व्यवस्था के प्रति विद्रोह रहा ताकि सभी मानव प्राणियों को समानता तथा स्वतन्त्रता का स्तर प्राप्त हो। दलितोद्धार की प्रेरणा से यह नहीं कहा जा सकता कि उनका प्रेरणा-क्षेत्र सीमित था। उपेक्षित मानवों को जाग्रत करना, उन्हें प्रगति के पथ पर लाना, और उन्हें आन्दोलित करना, एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति की ओर सम्पूर्ण समाज को ले जाने के बराबर है। सामाजिक क्रांति तथा विद्रोह ही तो उनकी साहित्य-रचना का मूल-स्रोत था, जिसका अर्थ है वर्तमान व्यवस्था को पूर्णतः बदलना।

विद्वान डॉक्टर ने यह ठीक ही समझा कि आदमी अपनी पुरानी परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों का दास बनने का यत्न न करे, बल्कि उन्हें बदलने के लिए संघर्ष करे। अतः डॉ० साहब ने मनुष्य की परिस्थितियों में परिवर्तन करने के लिए अपनी सशक्त लेखनी द्वारा ऐसे विषयों को चुना और उन पर इस प्रकार वाद-विवाद प्रारम्भ किया ताकि एक नवीन समाज की रचना में अच्छा योगदान हो। आधुनिक स्वतंत्र विचारों का कोई भी व्यक्ति, उनके साहित्य से अवश्य ही प्रभा-वित होगा। निश्चित रूप से सामाजिक प्रेरणा तो उनके साहित्य में प्रारम्भ से अन्त तक है ही, पर डॉ० साहब को साहित्य-सृजन के लिए प्रेरणा स्वयं अपने जीवन और विचारों से भी प्राप्त हुई। यदि वे महार जाति के अछूत परिवार में पैदा नहीं होते और उनको छुआछूत का कटु अनुभव नहीं हुआ होता, तो संभवतः उनकी लेखनी कुछ और ही होती। स्पष्टतः डॉ० साहब की रचनाओं के प्रेरणा स्रोत वे स्वयं और सामाजिक परिस्थितियां रहीं। वे अपनी बात को आकर्षक ढंग से तो कहते ही हैं, उसमें मिशन भाव का भी सन्निवेश होता है जिसे वे अभिव्यक्त करना चाहते थे। उन्होंने दलितों, दीन-हीनों की व्यापक समस्या को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। यही कारण है कि उन्होंने अनुकूल परिस्थितियों को ढूंढने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि हर स्थिति में वे लिखने में रत रहे।

यथार्थ जीवन से पृथक् होकर, विचारों की कल्पना करना या कपोल-कल्पित क्षेत्र में भ्रमण करके साहित्य रचना, डॉ० अम्बेडकर के लिए असंभव था। बाबा साहब में साहित्यकार जीवन की वास्तविकता, सामाजिक विषमता, आर्थिक अन्याय,

राजनीतिक दमन तथा धार्मिक भेदभाव से मुँह मोड़कर अनन्त पथ का पथिक बनना नहीं चाहता था। उन्हें अपनी बात को रोचक ढंग से कहने में ही सन्तोष नहीं होता था; वे संघर्ष तथा विद्रोह की तीव्र भावना व्यक्त करते और अपनी विचारधारा की कसौटी पर हर बात को परखते थे। यही कारण है कि विभिन्न वर्षों में लिखे गए, उनके साहित्य में एक तारतम्य मिलता है। एक निश्चित जीवन-पद्धति की ओर संकेत मिलता है; जो समस्त दलित वर्गों के उत्थान के लिए परम-आवश्यक थी। विकास एवं प्रगति की ओर उन्मुख दलितों को प्रेरित करना, उनके साहित्य की एक बड़ी विशेषता है। उनके साहित्य में, उस समस्त साहित्य के प्रति विरोध मिलता है जो अन्याय, दमन, असमानता, छुआछूत, जातिवाद, ब्राह्मण-वाद, आदि को किसी भी तरह का संरक्षण प्रदान करता है; भले ही वह साहित्य सामाजिक हो या धार्मिक। इस प्रकार आरम्भ से डॉ० अम्बेडकर की प्रेरणा का स्रोत एक ऐसी दलितों की विषम और विकट समस्या का समाधान रहा जो सदियों से चली आ रही थी और जिसकी ओर बहुत कम विद्वानों तथा सुधारकों ने ध्यान दिया था। अन्त तक डॉ० साहब की दृष्टि जीवन की कटु समस्याओं और दलितों के इर्द-गिर्द होने वाली विषम परिस्थितियों पर ही टिकी रही ताकि उनका न्यायोचित समाधान ढूँढा जा सके।

भारत की असहाय पददलित मानवता की अन्त: पुकार को मूर्तरूप देने वाले, उसके मूक करुण क्रन्दन को वाणी देकर मुखरित करने वाले और कुम्भकर्णी निद्रा में सदियों से अचेतन सामाजिक व्यवस्था को झकझोर कर जागृत करने वाले, डॉ० अम्बेडकर की साहित्यिक सृष्टि उपेक्षित तथा तिरस्कृत अछूत वर्ग की ही देन थी। उनकी रचनाओं का प्रेरणा-स्रोत अथवा प्रेरक तत्त्व कोई विधि का विधान नहीं था अपितु आत्म-रक्षात्मक एवं आत्म-विश्वास, सामाजिक संचेतना तथा मानवीयता की स्वत: प्रस्फुटित होने वाली नैसर्गिक प्रक्रिया थी। असहाय एवं निर्बल वर्ग के प्रति उनकी सतत करुणा एवं मैत्री, उनके समस्त साहित्य का अलंकार है। यही कारण है कि उनके ग्रन्थों को आज बड़ी पवित्र भावना से देखा-पढ़ा जाता है। डॉ० अम्बेडकर के साहित्य में, जो उनके ही अनवरत संघर्ष; तप और साधना से शक्ति संचारित हुई, घनीभूत निद्रा में सुषुप्त भारतीय जनमानस को झकझोर देने में पर्याप्त सशक्त सिद्ध हुई। एक स्थान पर उन्होंने लिखा : "हमें जीने के लिए स्थान दो। हमें भी प्रगति के अवसर प्रदान करो। हमारी आत्मा को आत्मा का सम्मान दो। हमें सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक दासता से मुक्त करो। अपने अस्तित्व एवं अपनी एकता के लिए, हमें सामाजिक स्वतन्त्रता का अधिकार दो। स्वयं जीओ और हमें भी जीने दो।" यह थी उनकी साहित्य-रचना की मधुर वाणी, उनके साहित्य की अभिव्यक्ति, जो आज भी सभी के लिए, शक्ति सिद्ध महामंत्र है जिसमें आत्म-विश्वास, दृढ़ता, साहस तथा सम्मान का समावेश है। संक्षेप में, डॉ० साहब के साहित्य में मानव-प्राणियों को जाग्रत एवं सक्रिय कर देने की क्षमता अन्तर्निहित है, और उसको पढ़ने के पश्चात् आदमी आन्दोलित हुए बिना नहीं रह पाता। यही उनके साहित्य-सृजन का चमत्कार है।

मूल ग्रन्थों के विषय :

डॉ० अम्बेडकर ने जिस साहित्य की रचना की उसकी मूल प्रेरणा तो एक ही है, पर विभिन्न रचनाओं के विषय अलग-अलग हैं। जिन ग्रन्थों का यहां विवरण प्रस्तुत है, वे हैं : कास्ट्स इन इण्डिया (1917), स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देअर रिमेडीज (1917); द प्रॉब्लम ऑफ द् रूपी (1923), इवॉल्यूशन ऑफ द प्राविंसियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया (1925), एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (1936), फेडरेशन वर्सेज फ्रीडम (1940), मि. गांधी एण्ड द् एमेन्सीपेशन ऑफ द अण्टचेबिल्स (1943), रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना (1943), थॉट्स ऑन पाकिस्तान (1945), व्हॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इनटू द अण्टचेबिल्स (1945), हू वर द् शूद्राज (1946), स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटीज (1947), द अण्टचेबिल्स (1948), थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स (1955) और बुद्ध एण्ड हिज धम्म (1957)।

1 'कास्ट्स इन इण्डिया' नामक लेख डॉ० अम्बेडकर ने कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में डॉ० गोल्डिनवीजर की आन्थ्रॉपॉलाजी सेमिनार के समक्ष मई 1916 में पढ़ा था जो सन् 1917 में, पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके अन्तर्गत भारत में जातियों की उत्पत्ति, गठन एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। डॉ० साहब ने यह बतलाया है कि जातियों का मूलाधार सगोत्र या सजातीय विवाह पद्धति है। उनकी दृष्टि में, जाति एक ऐसा परिबद्ध वर्ग है जो अपने तक सीमित रहता है। मनु के पूर्व भी जातियां विद्यमान थीं। मनु ने तो उस समय विद्यमान जातियों के सम्बन्धों को कानूनी रूप प्रदान किया। जातिगत नियमों को उसने कठोर बनाया। डॉ० साहब ने कहा कि एक वचन में जाति की सत्ता अवास्तविक है जातियां केवल बहुवचन में ही विद्यमान होती हैं। मनु ने जातियों को धार्मिक आधार प्रदान किया अर्थात् अपने समूह या वर्ण के बाहर विवाह करना ईश्वर-इच्छा का उल्लंघन है, महापाप है। जाति नियमों को तोड़ने वाले को कड़े दण्ड निर्धारित किए गए। यह इसलिए किया गया कि कोई सजातीय विवाह परम्परा का उल्लंघन न करे और अपने समूह के अन्तर्गत ही रहे।

डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से, यह बड़ा ही कठिन लगता है कि सजातीय विवाह प्रवृत्तियों को पूर्णतः नियन्त्रित कर लिया जाए। हिन्दू समाज व्यवस्था में जाति नियमों के उल्लंघनकर्ता को किसी प्रकार की छूट नहीं थी। यदि कोई उन शास्त्रों का विरोध करता है जिनमें जाति प्रथा का समर्थन है तो उसे दण्ड भोगना ही पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति के लिए निर्धारित दण्ड 'जाति बहिष्कार' होता है अर्थात् उसे मूल जाति बिरादरी से निष्कासित कर दिया जाता है। ऐसे ही व्यक्तियों ने मूल जाति के अन्तर्गत अपने अलग समूह बना लिए। वस्तुतः ऐसा हुआ और अब भी होता है; लेकिन ऐसे अलग समूह का मूल जाति के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखा जाता था। फलतः ये समूह स्थाई बन जाते थे जो विभिन्न जातियों के रूप में विकसित हो जाते थे। संक्षेप में, सजातीय विवाह के नियम का जितना ही उल्लंघन हुआ, उतने ही नए परिबद्ध समूहों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ। कालान्तर में, इन परिबद्ध समूहों में भी विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में जातियों में जातियों

का स्थाई विकास होने लगा। इस प्रकार अम्बेडकर के अनुसार, "जाति जन-संख्या में से एक ऐसा बनावटी पृथक्करण है जो निश्चित एवं सीमित इकाइयों में फैल जाती है, और प्रत्येक ईकाई एक दूसरी से, सजातीय विवाह के नियम के अन्तर्गत, पृथक् बने रहना ठीक समझती है" अर्थात् जातियों में पारस्परिक वैवाहिक सम्पर्क नहीं रह पाता।

2 डॉ० अम्बेडकर की सन् 1927 में एक और छोटी सी विचार-उत्तेजक पुस्तक: 'स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देअर रिमेडीज़' प्रकाशित हुई। उस समय इस विषय पर विशेषज्ञों द्वारा बड़ी चर्चा चल रही थी। उनका यह विचार था कि जब तक छोटी और बिखरी हुई जोतने योग्य भूमि का विस्तार एवं चकबन्दी नहीं होगी तब तक भारत के कृषि-सुधार में प्रगति नहीं होगी। लेकिन डॉ० साहब ने इन विशेषज्ञों की आलोचना करते हुए, अपनी पुस्तक में यह लिखा है कि "यह किसी चुनौती के भय के बिना कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण छोटी-छोटी जोतों के विस्तार को बढ़ावा देगा और उनके विस्तार को भी संभव बनायेगा, हालांकि यह हो सकता है कि उससे चकबन्दी न आ पाए। यह एक विवादहीन तथ्य है कि जब तक भूमि पर अधिशुल्क लगा रहेगा, तब तक चकबन्दी आसान नहीं हो पायेगी। अत: चकबंदी करने के पूर्व, समस्त भारत में औद्योगीकरण होना चाहिए।" इस प्रकार डॉ० साहब ने कृषि-सुधार को औद्योगीकरण के साथ जोड़ा ताकि ग्रामीण एवं शहरी प्रगति में एक प्रकार का सम्पर्क बना रहे और वास्तव में, दोनों ही, कृषि एवं उद्योग, एक दूसरे के पूरक क्षेत्र हैं। डॉ० साहब ने जो बात सन् 1917 में में कही, उसे भारत सरकार तथा देश-विदेश के विशेषज्ञों ने सन् 1950 के पश्चात् स्वीकार किया और यह महसूस किया कि भारत की आर्थिक प्रगति के लिए, न केवल कृषि-सुधार बल्कि साथ ही, समूचे भारत में औद्योगीकरण की भी परमावश्यकता है।

3 'द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी' डॉ० अम्बेडकर का वह शोध-प्रबन्ध है जिसे उन्होंने अक्टूबर, 1922 में यूनीवर्सिटी ऑफ लन्दन में डॉक्टर ऑफ साइन्स (डी० एस-सी० के लिए प्रस्तुत किया था। यही थीसिस दिसम्बर, 1923 में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। डॉ० साहब ने इस ग्रन्थ को अपने पूज्य माता पिता की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित किया। उनके ही शिक्षक प्रोफेसर एडविन कैनन ने उसकी भूमिका लिखी। हालांकि वह कई बातों से सहमत नहीं थे, पर डॉ० साहब के विचारों एवं दृष्टियों में सन्निहित ताजगी एवं उत्तेजना की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस पुस्तक में, डॉ० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट रूप से विश्लेषित किया कि मुद्रा समस्या के अन्तिम निर्णय में, किस प्रकार ब्रिटिश शासकों ने भारतीय रुपए की कीमत को पाउण्ड के साथ जोड़कर, अपने अधिकतम लाभ का मार्ग चुना। उनकी इस हेरा-फेरी ने ही सभी भारतीय लोगों को गम्भीर आर्थिक कठिनाइयों में ढकेल दिया क्योंकि भारतीय धन का ब्रिटिश खज़ाने की ओर निरन्तर बहाव हो गया। कई ढंगों से यहाँ का धन ब्रिटिश सरकार तथा जनता के लाभ में ही जाने

लगा। फलतः यहां के लोगों पर निर्धनता को लाद दिया गया। इस तथ्य के उद्-घाटन से आर्थिक जगत् में तहलका मच गया। लेकिन इस तथ्यात्मक विश्लेषण से डॉ० अम्बेडकर के ब्रिटिश परीक्षक बड़े नाराज़ हुए। फलतः उन्हें अपने शोध-प्रबन्ध में कुछ परिवर्तन करने के आदेश मिले जो उन्हें करने पड़े। तत्पश्चात् ही, उन्हें उस पर डी० एस-सी० की डिग्री प्रदान की गई। उनकी पुस्तक 'द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी' सन् 1956 में पुनः 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन करेन्सी एण्ड बैंकिंग' भाग 1, नाम से प्रकाशित हुई।

4 डॉ० अम्बेडकर ने कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में एक शोध-प्रबन्ध, 'नेशनल डिवीडेन्ड ऑफ इण्डिया : ए हिस्टोरिक एण्ड एनेलिटिकल स्टडी' प्रस्तुत किया, जिस पर उन्हें सन् 1916 में, पी-एच० डी० की डिग्री प्रदान की गई। यही शोध-प्रबंध सन् 1925 में एक नए शीर्षक : 'द इवॉल्यूशन ऑफ प्राविन्सियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया' के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ। डा० साहब ने इस पुस्तक को श्री सयाजीराव गायकवाड़, महाराजा बड़ौदा, को सादर समर्पित किया क्योंकि महाराजा ने उनकी शिक्षा-दीक्षा में सराहनीय योगदान किया था। इस ग्रन्थ की भूमिका, उनके शिक्षक प्रोफेसर एडविन आर० ए० सेलिगमन ने लिखी जिन्होंने अम्बेडकर द्वारा पब्लिक फाइनेन्स की उत्तम व्याख्या के लिए, उनकी बड़ी प्रशंसा की। पब्लिक फाइनेन्स में डॉ० अम्बेडकर बहुत बड़े विशेषज्ञ सिद्ध हुए।

अपनी इस पुस्तक में, अम्बेडकर ने साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सन् 1833 के एक्ट से आगे के वित्तीय प्रबन्धों के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया है। बजट पर कुछ अध्यायों में, प्रांतीयों वित्तीय स्थितियों के स्वरूप एवं विस्तार का विवरण प्रस्तुत है जो शिक्षात्मक एवं प्रदर्शनात्मक पहलुओं पर आधारित थे। दस, ग्यारह एवं बारहवें अध्यायों में, डॉ० साहब ने बुद्धिमत्तापूर्ण व्याख्या दी और अपने लेखक व्यक्तित्व को देशभक्ति के साथ जोड़ दिया। निर्भय होकर, उन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही का बुरी तरह भण्डाफोड़ किया, साम्राज्यवादी व्यवस्था के लक्ष्यों एवं इरादों की निन्दा की और अपने देश में सक्रिय प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की कड़ी आलोचना की। अपने इस ग्रन्थ में, अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि भारत में कुछ सीमा तक भौतिक प्रगति तो हुई, पर संसार में कोई भी राष्ट्र मात्र शान्ति एवं व्यवस्था के लाभों से अधिक दिनों तक सन्तुष्ट नहीं रह सकता क्योंकि वहाँ के स्त्री-पुरुष बहरे-गूंगे बुद्धिहीन पशु तो नहीं होते। वे अपने सम्मान को भी पहचानते हैं। डॉ० साहब ने लिखा कि यह सर्वविदित है कि भारत की सम्पूर्ण नीति ब्रिटिश उद्योगों और उत्पादकों के हितों की दृष्टि से ही निर्धारित एवं संचालित होती थी। फलतः यहां के लोगों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वर्षों तक आर्थिक अभाव से पीड़ित रहे। विद्वान् डॉक्टर ने यह स्वीकार किया कि प्रत्येक देश में, कुछ निर्धन समूह होते हैं जो सामाजिक दमन और सामाजिक अन्याय के शिकार बने रहते हैं, लेकिन उस कारण, उस देश को राजनीतिक शक्ति से वंचित रखना, कोई न्यायोचित स्थिति नहीं है। अपने समय की वस्तु-स्थिति का डा०

साहब ने ऐसा विश्लेषण किया जो बिलकुल सही था।

अपनी इस पुस्तक में, अम्बेडकर ने यह बतलाया कि सत्ता स्वतः अपनी आत्महत्या मुश्किल से ही करती है। अपने काल में ब्रिटिश सरकार ने बहुत से दमनकारी कदमों को उठाया। डा० साहब ने भारत में ब्रिटिश प्रशासन की इन शब्दों में आलोचना की : "केवल उस शक्ति से संतुष्ट न होते हुए जो कार्यपालिका में क्रिमिनल तथा पीनल कोड्स की धाराओं द्वारा निहित थी, सरकार ने इण्डियन स्टेटयूट बुक में उन दमनकारी कानूनों को संलग्न किया जिन्हें दुनियाँ के किसी देश में पाना कठिन था।" विद्वान् डॉक्टर ने उस समय की शासकीय नौकरशाही को, अनुदार, दमनकारी तथा गैर-उत्तरदायी, कहकर आलोचित किया और कहा कि उसने जितना अधिक धन सेवाओं पर खर्च किया है उतना शिक्षा एवं उद्योग पर नहीं किया। सन् 1910 के इण्डियन प्रेस एक्ट ने भारतीय लोगों की स्वतंत्रता का हनन किया। विचार एवं विवाद की स्वतंत्रता का दमन किया तथा अन्य अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए। उसकी भी, उन्होंने कड़ी आलोचना की।

मॉरले मिण्टो सुधारों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते हुए, डा० अम्बेडकर ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में भारत में, हुए संविधानवाद के विकास की विभिन्न अवस्थाओं जैसे 1853 का एक्ट, 1861 का एक्ट, 1862 का एक्ट और 1909 का एक्ट, का विश्लेषण किया, और यह बतलाया कि ब्रिटिश सरकार ने सदैव यह प्रदर्शित किया कि भारत में विधान पालिका को स्वतंत्र बनाया जाए, पर साथ ही उसका मुँह बन्द भी रखने का प्रयत्न किया। डा० साहब ने यह भी विश्लेषित किया कि भारतीय संसदीय व्यवस्था खोखली क्यों बनी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि वह संसदीय व्यवस्था थी, पर जनतंत्रीय कार्यपालिका का उसमें अभाव था। इसका अर्थ यह था कि विधानपालिका कार्यपालिका को न तो बना सकती थी और न ही उसे मिटा सकती थी। भारत में कार्यपालिका ने उन कुछेक कार्यों को नहीं किया जो प्रगति के लिए आवश्यक थे क्योंकि उसका चरित्र, हित तथा भावना ऐसी थी जिसकी भारतीय समाज में सक्रिय तत्त्वों के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। ब्रिटिश निर्मित कार्यपालिका ने यहाँ की आवश्यकताओं, दुःखों, अभिलाषाओं तथा भावनाओं को भलीभांति समझने का प्रयास नहीं किया। यहाँ के नागरिकों की महत्वाकांक्षाओं को सदैव नजरअन्दाज किया। शिक्षा का अच्छा प्रचार नहीं किया स्वदेश वस्तुओं को निन्दनीय दृष्टि से देखा और उस प्रत्येक बात का प्रतिरोध किया, जिसमें तनिक भी राष्ट्रवाद की गन्ध उसे प्रतीत हुई। ब्रिटिश कार्यपालिका ने यह सब इसलिए किया कि ये बातें उनके शासन के हित में नहीं थीं।

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने, अपनी पुस्तक : 'द इवाल्यूशन ऑफ प्राविसियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया' में भारत में ब्रिटिश नौकरशाही पर कड़ा प्रहार किया। यही पुस्तक ब्रिटिश शासनकाल में इण्डियन लेजिस्लेटिव काउंसिल्स तथा सेण्ट्रल असेम्बली के सदस्यों के लिए, बहुत ही लाभकर सिद्ध हुई क्योंकि उसमें वाद-विवाद के लिए बहुत अच्छी सामग्री मिल जाती है। इस पुस्तक के प्रकाशन

के थोड़े दिनों के पश्चात्, अम्बेडकर को भारतीय मुद्रा के सन्दर्भ में रॉयल कमीशन ऑन इण्डियन करेन्सी के समक्ष गवाही देने उपस्थित होना पड़ा। जब डॉ० साहब ने यह देखा कि उनकी उक्त पुस्तक की एक-एक प्रति हर एक सदस्य के हाथ में है तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। उन दिनों, इतना महत्त्वपूर्ण था उनका यह ग्रन्थ।

5 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' नामक पुस्तक एक विचित्र स्थिति की उपज है। लाहौर के जात-पांत-तोड़क मण्डल में डॉ० अम्बेडकर को जनवरी 1936 में वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षीय पद के लिए आमन्त्रित किया था। बड़ी मुश्किल से.डॉ० साहब ने यह आमन्त्रण स्वीकार किया; लेकिन जब मण्डल के सदस्यों ने उनके टाइप किए हुए अध्यक्षीय भाषण को पढ़ा तब उन्होंने यह सुझाया कि उसमें से उन कुछ अंशों को निकाल दिया जाए जिनमें हिन्दू शास्त्रों की कड़ी आलोचना की गई है। विद्वान् डॉक्टर ने यह स्वीकार नहीं किया। फलत: अम्बेडकर को उपेक्षित करने के लिए, मण्डल के अधिकारियों ने वार्षिक अधिवेशन को स्थगित कर दिया। उनका अध्यक्षीय भाषण ज्यों का त्यों बना रहा। यही भाषण 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हुआ जो संक्षिप्त; किन्तु बड़ा ही गम्भीर है।

इस पुस्तक में, डॉ० अम्बेडकर ने यह लिखा है कि हिन्दू-समाज मूलत: चार वर्गों में विभाजित है जिन्हें चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भी कहते हैं। यह चातुर्यवर्ण्य व्यवस्था ही जातिवाद का आधार है। यह वर्ण-व्यवस्था न केवल एक ही जाति (Race) के लोगों का सामाजिक विभाजन है, बल्कि वह श्रमिकों का भी एक कठोर विभाजन है और वह प्रत्येक मजदूर को उस काम को करने के लिए बाध्य करती है जो उन्हें अधिकतर पसन्द नहीं होते। वह पैतृक धंधों पर अधिक बल देती है। वर्ण-व्यवस्था आर्थिक अनुशासन को बनाए रखने की बजाय, आर्थिक अकुशलता उत्पन्न करती है। आज हजारों जातियां एवं उप-जातियां हैं। जिन्हें चार वर्णों में पुन: संगठित करना कठिन ही नहीं; वरन् असम्भव है। वर्ण-व्यवस्था में छोटी-छोटी जातियों में विभक्त होने की प्रवृत्ति है। इसलिए वर्णवाद तथा जातिवाद को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता।

वर्ण-व्यवस्था ने शूद्रों को शिक्षा-प्राप्ति से रोका, उन्हें ज्ञान से अलग रखा, अज्ञान तथा अशिक्षा की काल-कोठरियों में सदियों तक बन्द रखा। उनको आर्थिक स्वतन्त्रता से वंचित रखा और सामाजिक अधिकार उनसे छीन लिए गए। अत: यह व्यवस्था समाज के एक बहुत बड़े भाग को पंगु बना देती है। उसे मृत कर देती है। उसमें एक ही वर्ग की प्रभुसत्ता को स्थान दिया गया है जो अन्य सभी वर्गों को हीन मानता है। नैतिक दृष्टि से भी, इस व्यवस्था ने हिन्दुओं को स्वार्थी एवं पतित बनाया है। वह जन-सहयोग तथा जनमत का गला घोंटती है। नैतिकता या सद्गुण जातिगत बन गया है। एक जाति के लोग अन्य जाति के लोगों के गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकते। जाति ने हिन्दूधर्म की उदारता को नष्ट कर दिया है। वर्ण-व्यवस्था या जातिवाद हिन्दू-समाज को कमजोर बनाता है और संगठन के अभाव में, कोई भी समाज सुदृढ़ नहीं हो सकता। प्रत्येक जाति अपने तक सीमित

है। अपने ही हितों की रक्षा करती है। सहयोग एवं सङ्गठन, प्रेम एवं सद्भावना उसमें नहीं मिलती है। इसी जाति-व्यवस्था के कारण हिन्दुओं का जीवन निरन्तर अपमान तथा हार का इतिहास रहा है। वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू जाति को तबाह किया है; उसे निर्जीव और निरुत्साह बना दिया है। उसने हिन्दुओं को भारत का रोगग्रस्त जनसमुदाय बनाया है।

इसी वर्ण-व्यवस्था या जातिवाद के विनाश का मार्ग, अम्बेडकर ने 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में सुझाया है। वह मार्ग क्या है? अन्तरजातीय विवाह। अन्तरजातीय-भोज जातिवाद की भावना एवं प्रेरणा को नष्ट करने में सफल नहीं हुआ है। केवल रक्त सम्बंध ही सगे-सम्बंधी होने की वास्तविक भावना पैदा कर सकता है और जब तक सगे-सम्बंधी होने की भावना, अर्थात् रक्त-सम्बंध, सुदृढ़ नहीं बनता, तब तक अलगाव की भावना, एक दूसरे को गैर या विदेशी समझने की प्रवृत्ति, जो जाति-व्यवस्था से भिन्न होती है, समाप्त नहीं होंगी। जाति एवं वर्ण-व्यवस्था के पार्श्व में वे बातें निहित हैं जो अन्तरजातीय-विवाह को अव्यावहारिक बना देती हैं। अतएव प्रश्न यह है कि अंतरजातीय-विवाह को व्यावहारिक तथा कारगर किस प्रकार बनाया जाए?

जाति एक धारणा, एक मानसिक स्थिति है। इसके विनाश का अर्थ होगा एक विचारात्मक या मानसिक परिवर्तन। हिन्दू लोग जाति-व्यवस्था को इसलिए नहीं मानते कि वे अमानुषिक तथा पागल हैं। वे मुख्यतः अपने धार्मिक स्वभाव के कारण, जातिगत व्यवहार करते हैं। उनकी सामाजिक व्यवस्था में ही जातिगत व्यवहार के नियम निहित हैं। इसलिए जातियों को मानने में वे गलत नहीं हैं। तो फिर गलत क्या है? उनका धर्म दोषयुक्त है जो जाति-भावना पैदा करता है। हिन्दुओं के वास्तविक शत्रु उनके शास्त्र हैं जो उनके लिए जातियों के धर्म का प्रतिपादन करते हैं। इसीलिए डॉ० अम्बेडकर ने यह सुझाया कि शास्त्रों की पवित्रता की भावना को नष्ट करो; शास्त्रों तथा वेदों की सत्ता, दैविकता और पवित्रता का विनाश करो। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को शास्त्रों तथा वेदों की दासता से मुक्त करो और वे किसी के कहे बिना, निर्भय होकर, अंतरजातीय विवाह अवश्य करने लगेंगे।

डॉ० अम्बेडकर ने आगे लिखा कि ब्राह्मण वर्ग, जो हिन्दुओं का स्वाभाविक नेतृत्व करता है, इस आंदोलन के अगुआ नहीं बनेगा। ब्राह्मण लोग नहीं चाहेंगे कि उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति छिन्न-भिन्न हो। उनके हाथों में पैतृक पण्डा-पुजारी बनने के रूप में धार्मिक धरोहर आती है। वही लोग पुरोहित बनते हैं। इसलिए डॉ० साहब ने यह सुझाया कि पैतृक पुरोहिताई का विनाश किया जाए और पुरोहितों के पेशे का जनतंत्रीकरण भी किया जाए अर्थात् सभी वर्ग के लोगों को पुरोहित बनने का अवसर प्राप्त हो। इसके लिए निश्चित परीक्षा पास करने पर राज्य द्वारा योग्य पुरोहितों को सनदें बांटी जाए। इस प्रकार ब्राह्मणवाद का विनाश करके हिन्दूधर्म को बचाया जाए। डॉ० साहब ने यह भी सुझाया कि हिन्दुओं को केवल एक धार्मिक ग्रंथ का प्रतिपादन करना चाहिए और हिंदू-समाज

को नैतिक दृष्टि से, शुद्ध बनाया जाए।

इसका अर्थ है कि हिंदू-समाज को एक नया वैचारिक आधार प्रदान किया जाए। वह आधार, जो स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व, संक्षेप में, जनतंत्र के साथ मेल खाता हो। इस परिवर्तन की पुष्टि के लिए, जीवन के मूल विचारों को पूर्णतः बदलना होगा; जीवन के मूल्यों, दृष्टियों तथा प्रवृत्तियों में क्रांति लानी होगी। अतएव विद्वान् डॉक्टर ने लिखा कि हिंदू लोग भारत के रोगग्रस्त प्राणी हैं और जब तक हिंदू-समाज एक जातिविहीन समाज नहीं बनता, उसमें अपनी सुरक्षा करने की शक्ति नहीं आ सकती। ऐसी आंतरिक शक्ति के बिना, हिंदुओं के लिए स्वराज एक अन्य प्रकार की दासता की स्थिति सिद्ध हो सकती है।

महात्मा गांधी ने उपर्युक्त पुस्तक में निहित विचारों की कड़ी आलोचना की। गांधी द्वारा डॉ० अम्बेडकर पर अभ्यारोपण तथा डॉक्टर द्वारा प्रति-प्रत्युत्तर, पुस्तक के अन्त में दिए गए हैं जो बड़े ही रोचक हैं, जिन्हें पढ़कर गांधीवाद की सामाजिक भावना का पता लगता है।

6 सन् 1939-40 के दौरान, भारत में संघ राज्य की स्थापना का विचार जोर पकड़ रहा था। ब्रिटिश राजनेताओं ने भारतीय रियासतों (राज्यों) को, प्रादेशिक सरकारों का जनतंत्रीकरण किए बिना, संघ में आबद्ध करने का प्रस्ताव रखा था जिसका डॉ० अम्बेडकर ने कड़ा विरोध किया क्योंकि प्रस्तावित संघ में राज्यों की स्वतंत्रता का हनन होता था। इसी विषय का विश्लेषण अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'फेडरेशन वर्सेज फ्रीडम' में किया है। इसके माध्यम से, उन्होंने फेडरल स्कीम के प्रति विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की। इस विषय पर डॉ० साहब ने 'गोखले इन्स्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स', पूना, में भाषण दिया था जो बाद में इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

डॉ० अम्बेडकर की दृष्टि से, प्रथम, वह प्रस्तावित संघ देश को स्वतंत्र बनाने की बजाय, स्वतंत्रता के मार्ग को स्थाई रूप में अवरुद्ध कर देगा। कारण यह था कि एक ओर ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि स्वतंत्र होंगे, जबकि दूसरी ओर राज्य के प्रतिनिधि ब्रिटिश प्रशासकों के हाथों में कठपुतली बनकर रहेंगे, क्योंकि ब्रिटिश प्रशासक राज्यों के महराजाओं को उनके द्वारा चुने जाने वाले प्रतिनिधियों के चुनाव में, उन्हें अपनी इच्छानुसार निर्देशित करेंगे। दूसरे इस प्रस्तावित संघ में, सामान्य नागरिकता का कोई प्रावधान नहीं था। सभी स्त्री-पुरुषों को राज्यों का ही नागरिक रहना पड़ता और इस प्रकार, संघीय सरकार उनकी समस्याओं को सीधे नहीं सुलझा सकती थी। फेडरल स्कीम की अपेक्षा, अम्बेडकर ने, एकात्मक सरकार को अधिक पसन्द किया क्योंकि राष्ट्रवाद की भावना पैदा करना उस समय की मांग थी और इस भावना की जागृति संघीय सरकार की अपेक्षा, एकात्मक सरकार भली-भांति कर सकती थी। तीसरे, वह संघ भारत को संगठित भारत नहीं बना पाता क्योंकि राज्यों को यह छूट थी कि वे चाहें तो संघ में शामिल हों अथवा न हों। चौथे, वह संघ उत्तरदायी सरकार की स्थापना करने में सफल नहीं होता, क्योंकि संघ की शक्तियां रक्षा और विदेशी मामलों पर लागू नहीं थीं।

वे ब्रिटिश सरकार के हाथों में थीं ! अतः इस प्रकार का संघ भारत में जनतंत्र स्थापित नहीं कर पायेगा। उल्टे जो कुछ जनतांत्रिक स्वतंत्रता है, उसे भी वह प्रस्तावित संघीय व्यवस्था नष्ट कर देगी। डॉ० अम्बेडकर द्वारा इस प्रकार के विश्लेषण से उस समय की राजनीति में एक तहलका मच गया। फलतः भारतीय नेताओं एवं विद्वानों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि डॉ० साहब ने अपनी देश-भक्ति का ठोस प्रमाण दिया है।

7 जनवरी 1943 में, डॉ० अम्बेडकर ने पूना में एम. जी. रानाडे के जन्म समारोह के उपलक्ष में एक व्याख्यान दिया जो आगे चलकर 'रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना' के रूप में प्रकाशित हुआ। पुस्तक की भूमिका में, डॉ० साहब ने बतलाया कि कोई भी व्यक्ति अपने समय की स्थिति को तब तक प्रभावित नहीं कर पाता जब तक वह अपने उन सिद्धान्तों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और अन्याय के प्रति घृणा का भाव न रखता हो, जिन्हें वह मानता है। उन्होंने लिखा है कि "मैं अन्याय, दमन, आडम्बर तथा छल-कपट को घृणा करता हूँ, और वे सभी मेरी घृणा के पात्र हैं जो इन बुराइयों से ग्रस्त हैं। मैं अपने आलोचकों को यह बतला देना चाहता हूँ कि मेरी घृणा की भावनाएँ एक वास्तविक शक्ति हैं। वे उस प्रेम की अभिव्यक्तियां हैं, जो उन कार्यों के प्रति है, जिनमें मैं विश्वास करता हूँ।" डॉ० साहब ने आशा व्यक्त की कि उनके देशवासी किसी दिन यह अवश्य महसूस करेंगे कि देश व्यक्ति से कहीं बढ़कर होता है।

डॉ० अम्बेडकर ने महान् व्यक्ति की धारणा का विश्लेषण किया और इसी सन्दर्भ में तीन सिद्धान्तों का मूल्यांकन किया। ऑगस्टाइन सिद्धान्त यह मानता है कि इतिहास दैविक विधान है जिसमें मानवता, युद्ध एवं दुःख के मध्य चलते हुए, उस समय तक कार्यरत रहती है जब तक अन्तिम निर्णय का दिन नहीं आ जाता। डॉ साहब ने कहा कि यह मात्र एक विश्वास है जिसे केवल धर्मशास्त्री ही मानते हैं। बक्ले के सिद्धान्त में, जो यह मानता है कि इतिहास भूगोल तथा भौतिकशास्त्र से निर्मित है और मार्क्स के सिद्धान्त में कि इतिहास आर्थिक तत्वों का परिणाम है, पूर्ण सत्य नहीं मिलता। उनकी यह मान्यता कि अ-प्राण शक्तियां ही सब कुछ हैं और इतिहास के निर्माण में मनुष्यों की कोई भूमिका नहीं है, दोषयुक्त है। डॉ० साहब की धारणा है कि इतिहास के निर्माण में आदमी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि अग्नि पैदा करने के लिए दो पत्थरों के टुकड़ों को रगड़ने के लिए सर्वप्रथम आदमी ही आया होगा।

सैनिक नेताओं को भी महान् कहना कठिन है क्योंकि उन्होंने अपने राष्ट्रों को पहले से छोटा ही बनाया और समाज को मौलिक रूप से प्रभावित नहीं किया। कार्लाइल ने ईमानदारी तथा निष्कपटता को मनुष्य के महान् होने के गुण बतलाया। रोजबरी ने महान् आदमी उसे कहा जो दुनियां में एक महान् प्राकृतिक या चमत्कारिक शक्ति बनकर पैदा होता है, और शुद्धि का काम करता है। डॉ० अम्बेडकर ने इन सभी विचारों को पूर्णतः सत्य नहीं माना। वे आंशिक रूप से ही सही हो सकते हैं। उनकी दृष्टि में, महान् व्यक्ति वह होता है जो किसी महान्

सामाजिक लक्ष्य से प्रेरित होकर समाज के लिए, एक कोड़े तथा शुद्धिकर्ता के रूप में काम करता है। वह सामाजिक बुराइयों का अन्त करने के लिए कटिबद्ध होता है। न केवल इस मानदण्ड की दृष्टि से, वल्कि किसी भी दृष्टि से, डॉ. अम्वेडकर ने कहा, रानाडे एक महान् व्यक्ति थे। रानाडे का जीवन सामाजिक अन्याय, सामाजिक बुराइयों और सामाजिक सुधारों के प्रति एक निरन्तर संघर्ष का जीवन था। रानाडे ने मानव अधिकारों के लिए संघर्ष किया; हिन्दू समाज के अन्तःकरण को, जो दूषित एवं रोगग्रस्त हो गया था, पुनर्जीवित किया। रानाडे ने सामाजिक जनतंत्र के वातावरण को पैदा करने में अच्छी भूमिका अदा की।

डॉ० अम्वेडकर ने रानाडे की गांधी एवं जिन्ना से तुलना की और यह तर्क दिया कि दुनियां में ऐसे दो विरोधी व्यक्ति मुश्किल से ही मिल पायेंगे जो अपने घोर स्वार्थ या अहं में डूवे हुए हों। गांधी एव जिन्ना के लिए, वैयक्तिक प्रभुता प्रथम थी और संगठित देश का हित तो टैविल पर मात्र एक पटल के समान था। उनके लिए दोनों ही व्यक्ति अपने प्रशंसकों से घिरे रहते थे। उनका विचार था कि उनका चमत्कारिक व्यक्तित्व है और इसलिए, वे अपने को अकाट्य तथा निर्दोष मानते थे। इसी सन्दर्भ में, डॉ० अम्वेडकर ने नायक-पूजा (हीरो-वर्शिप) को निन्दनीय कहा क्योंकि वह समाज तथा देश के हितों के लिए हानिकारक होती है। यदि किसी नेता के प्रति प्रशंसा या कृतज्ञता प्रकट की जाये तो वह न्यायोचित हो सकती है; परन्तु किसी नेता का अन्धानुकरण किया जाये, उसे देवता माना जाये और उसे अकाट्य समझा जाये, वह उचित नहीं, क्योंकि उस नेता विशेष को वहुत सी गलतफहमियां हो जाती हैं जिनसे समाज तथा राष्ट्र दोनों का अहित होता है। इस प्रकार डॉ० साहव ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में महान् व्यक्तियों की तुलना करते हुए सामायिक राजनीति तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में व्याप्त गलत धारणाओं का अच्छा विश्लेषण किया है।

8 दिसम्वर 1942 में, अम्वेडकर को पेसिफिक रिलेशन्स कमेटी (यू एस.ए.) ने 'भारत में अछूतों की समस्या' विषय पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया। कमेटी का अधिवेशन क्यूवेक में सम्पन्न हुआ। डॉ० साहव उस अधिवेशन में, वीमारी के कारण नहीं जा पाए। उनके स्थान पर श्री एन. शिवराज गए जिन्होंने उनके लेख को अधिवेशन में पढ़ा। यही लेख सन् 1943 में, एक पुस्तक : 'मि० गांधी एण्ड द एमेन्सीपेशन आफ अण्टचेविल्स' के नाम से प्रकाशित हुआ।

इस पुस्तक में, डॉ० अम्वेडकर ने इस वात पर खेद प्रकट किया कि यद्यपि दुनियां के विभिन्न देशों में दासता, वेगार तथा दमन की स्थिति अधिकतर समाप्त हो चली है, परन्तु भारत में छुआछूत की स्थिति ज्यों की त्यों वनी है। अछूतों पर नीच से नीच जुल्म ढाये जाते हैं। उनके साथ अमानुषिक व्यवहार होता है। उनका साया भी तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों को दूषित करता है। उनके रहने के स्थान गन्दे-सन्दे होते हैं। उन्हें वहीं रखा जाता है जहां पर्याप्त रोशनी न हो और जहां का सारा वातावरण ही अस्वस्थ हो। ऐसी स्थिति में, अछूतों को मानव अधिकारों से वंचित रखा जाता है। यहां तक कि उनको शिक्षा पाने

का अधिकार भी नहीं है। सभी तरह से-उन्हें अर्द्ध-मानव की स्थिति में रखा जाता है और पशुओं से भी बदतर उनके साथ व्यवहार होता है।

एक ओर तो ऐसी स्थिति थी अछूतों की भारत में, दूसरी ओर कांग्रेस हिन्दू प्रोपेगेण्डा इतना किया जा रहा था कि भारत में मानों अछूतों की कोई समस्या ही नहीं थी। मानों उनकी दासता, दमन, परतंत्रता, अन्याय तथा शोषण, संक्षेप में, छुआछूत ही समाप्त हो गई हो। इसलिए, डॉ० अम्बेडकर ने अपने लेख के माध्यम से अमेरिकी लोगों को चेतावनी दी कि वे कांग्रेस हिन्दू प्रोपेगेण्डा से भ्रमित न हों और कहा कि उन्हें यह स्वीकार करना चाहिए कि हिन्दुओं द्वारा स्वतंत्रता संग्राम उन करोड़ों लोगों की स्वतंत्रता का दुश्मन नहीं बनेगा जिन्हें इस देश में अछूतों के रूप में गिना जाता है। अछूतों को वे सभी अधिकार प्राप्त हों तथा अन्य सुविधायें मिलें जो भारत में अन्य सभी नागरिकों को सुलभ हैं।

9 डॉ० अम्बेडकर द्वारा 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' उस समय प्रकाशित हुई जब भारत के विभाजन का प्रश्न विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों के मन में काफी हलचल मचाए हुए था। वाद-विवाद के उस वातावरण में पुस्तक ने एक बम्ब का काम किया। पुस्तक इस विचार पर आधारित थी कि हिन्दुओं की समृद्धि, शांति एवं मुक्ति भारत के विभाजन में ही निहित है। डॉ० साहब ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि किसी वितण्डा के बिना, मुसलमानों को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि उनका अपना धर्म, भाषा, संस्कृति तथा स्वतंत्र समाज व्यवस्था है जो हिन्दुओं के धर्म, भाषा, संस्कृति तथा समाज व्यवस्था से पृथक् हैं। डॉ० साहब ने हिन्दुओं को सलाह दी कि वे पाकिस्तान के जन्म से भयभीत न हों क्योंकि आधुनिक दुनियां में किसी देश के शक्तिशाली होने में (या दो राष्ट्रों की सीमाएं मिलने से) भौगोलिक स्थितियों का ही मात्र हाथ नहीं होता। चूंकि भारत के प्राकृतिक तथा अन्य स्रोत पाकिस्तान से कहीं बढ़कर होंगे, इसलिए पाकिस्तान के जन्म से भारत कमजोर स्थिति में नहीं रहेगा। हिन्दू सदैव मुसलमानों की देशभक्ति पर सन्देह करते हैं, इसलिए यह अच्छा होगा कि उन्हें पृथक् राष्ट्र मानकर पृथक् देश सौंप दिया जाये। लेकिन डॉ० साहब ने साथ ही यह भी सुझाया कि पाकिस्तान से हिन्दुओं को और हिन्दुस्तान से मुसलमानों को पूर्णतः अदल-बदल कर दिया जाये ताकि साम्प्रदायिक दंगों का भय भी सदैव के लिए समाप्त हो जाये। जनसंख्या की अदल-बदल उसी प्रकार संभव हो सकती है जिस प्रकार टर्की, ग्रीस तथा बलगेरिया में हुआ।

डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में यह लिखा कि मुस्लिम समाज का प्रधान तत्व जनतंत्र नहीं है, बल्कि उनका धर्म है। उनकी राजनीति भी धर्म के अधीन है। मुसलमान लोग सामाजिक सुधार का हृदय से स्वागत नहीं करते। दुनियां भर में, उनकी स्थिति अप्रगतिशील है। उनके लिए, इस्लाम ही सार्वभौमिक धर्म है। वह सभी लोगों के लिए और सभी स्थितियों में उपयुक्त है। लेकिन इस्लाम या भाईचारा सार्वभौमिक नहीं है। इस्लाम का भाईचारा केवल मुसलमानों तक सीमित है। गैर-मुसलमानों के लिए, दुश्मनी तथा घृणा के

अलावा और कुछ नहीं है। मुसलमान लोग केवल उसी राष्ट्र के प्रति वफादार होते हैं, जहाँ का शासक मुसलमान हो। उसी को वे अपनी मातृभूमि मानते हैं। जहाँ का शासक मुसलमान न हो, वे उसे शत्रु की भूमि मानते हैं। इसलिए अपनी पुस्तक में डॉ० अम्बेडकर यह सारांश निकालते हैं कि इस्लाम किसी भी सच्चे मुसलमान के लिए भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार करने की और हिन्दुओं को अपने सगे-सम्बन्धी मानने की कभी इजाजत नहीं देगा। अतिक्रमण की भावना मुसलमान का स्वभाव है। वह हिन्दुओं की कमजोरी का लाभ उठाने के लिए तत्पर रहता है और अपने को एक विशेष गुट मे संगठित कर लेता है।

'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' में यह भी माना गया है कि अब मुसलमान लोग एक नये जीवन के प्रति सजग हो गए हैं। उनमें एक राष्ट्र बनने का दृढ़ सङ्कल्प है। अभी तक भारत में, वे अपने को एक अल्पसंख्यक के रूप में समझते चले आए; परन्तु अब उन्होंने अपने नये भाग्य के उदय को खोज लिया है। वह मुस्लिम नासमझ होगा, जो इस नए भाग्य के सुनहले दिनों की ओर आकर्षित नहीं होता। इस प्रकार पाकिस्तान को डॉ० साहब ने मुसलमानों के नए भावी भाग्य के रूप में चित्रित किया। उन्होंने हिन्दुओं से भी पूछा कि बिगड़ती स्थिति में सङ्गठित भारत के लिए संघर्ष कहाँ तक न्यायोचित होगा। यदि हिन्दू लोग विभाजन को स्वीकार करते हैं तो यह हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को एक दूसरे के अतिक्रमण के भय से मुक्ति दिला देगा। साम्प्रदायिक दंगे या दमन कोई स्थाई उपाय नहीं है। हिन्दुओं को चाहिए कि वे टर्की, ग्रीस तथा अन्य देशों के गम्भीर अध्ययन से लाभ उठाएँ और भारत को हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में विभाजित करके हिन्दू तथा मुस्लिम जन-समुदायों को पारस्परिक दंगों की विभीषिका से बचाएँ।

किसी जहाज को सागर के बीचों-बीच डूबने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें भरे अनुपयुक्त सामान को फैंक दिया जाए। अतएव एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना के लिए, भारत का विभाजन परमावश्यक है। अन्यथा जबरन भारत संघ की स्थापना के भयङ्कर परिणाम हो सकते हैं। उससे समस्त प्रगति में बाधा उत्पन्न होगी। भारत की स्वतन्त्रता की आशाएँ बिलकुल धूमिल हो जाएँगी। यदि इस बात पर अधिक बल दिया कि भारत को अखण्ड रखना है तो यह उसका दुर्भाग्य सिद्ध होगा। अखण्ड भारत कभी भी सङ्गठित नहीं रह पाएगा क्योंकि साम्प्रदायिक दंगों का बीज अच्छी तरह जम चुका है। अखण्ड भारत से एक तीसरे पक्ष, ब्रिटिश शासन, का समाधान भी नहीं निकल पाएगा। हिन्दू एवं मुस्लिम द्वैतवाद की बीमरी दिनोदिन बढ़ती रहेगी। भारत एक रोगग्रस्त राज्य बना रहेगा। अतः बुद्धिमत्ता इसी में होगी कि भारत का हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में विभाजन कर दिया जाए। विभाजन एक नये मार्ग को प्रशस्त करेगा और प्रत्येक देश अपने अनुसार अपने भाग्य का निर्णय कर लेगा कि उसे स्वतन्त्र रहना है अथवा ब्रिटिश शासन का ही अङ्ग बने रहना है।

उपर्युक्त पुस्तक का प्रभाव बड़ा ही व्यापक हुआ। उसने कई हिन्दू राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क को छिन्न-भिन्न कर दिया। लगभग एक दशक तक, डॉ० साहब

की पुस्तक ने भारतीय राजनीति को उत्तेजित बनाए रखा। मुसलमानों ने उसका स्वागत किया; परन्तु हिन्दुओं ने उसे निन्दा की दृष्टि से देखा। शान्त मन से डॉ० साहब ने भारत के रोग का विश्लेषण किया। पुस्तक की सामग्री को इस ढंग से विवेचित किया गया है कि उसमें उनकी स्पष्टवादिता, सामर्थ्य, ज्ञान, साहस एवं पद्धति की छाप मिलती है। निश्चय ही, 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें ज्ञान एवं चिन्तन का समन्वित रूप मिलता है। उनकी पद्धति बड़ी ही आकर्षक है, वाक्य रचना बड़ी रोचक है, उसका स्टॉइल थोड़ा कठोर है और अपने स्वरूप में वह बड़ी उत्तेजनात्मक पुस्तक है। किसी प्रचार को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने की विधि उसमें निहित है। यह पुस्तक इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज की संज्ञा दी गई। थॉट्स ऑन पाकिस्तान पुन: सन् 1945 में 'पाकिस्तान और द पार्टीशन ऑफ इण्डिया' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुई। पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व अब भी बहुत है। एक और नया अध्याय उसमें जोड़ा गया था जिसे डॉ० अम्बेडकर ने बड़े अच्छे ढग से लिखा।

10 जून, 1945 में, डॉ० अम्बेडकर का एक और महत्त्वपूर्ण एवं ठोस ग्रन्थ 'व्हॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेब्रिल्स' प्रकाशित होकर आ गया। विषय सामग्री में विवादात्मक, स्टॉइल में उत्तेजनात्मक, अपील में बड़ी प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण सांख्यकी से परिपूर्ण और न्याय संगत युक्तियों से सुसज्जित, इस पुस्तक ने कांग्रेस पार्टी पर एक बम्ब की तरह फूटने का काम किया।

इस पुस्तक का प्रमुख विषय अछूतों की समस्याओं तथा अयोग्यताओं का विश्लेषण है। यह भी उसमें विवेचित है कि किस प्रकार कांग्रेस पार्टी ने अछूतोद्धार की समस्या को अपने अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन बनाया है। कांग्रेस पार्टी ने अछूतोद्धार को सन् 1917 में अपने कार्यक्रमों में शामिल किया; परन्तु जितना उसका प्रचार किया गया उतना काम नहीं हुआ। कांग्रेस पार्टी का लक्ष्य मूलत: यह नहीं था कि अछूतों की अयोग्यताओं तथा पीड़ाओं का वास्तविक अन्त किया जाए; बल्कि यह था कि उन्हें राष्ट्रीय जीवन में एक प्रभावशाली पृथक् तत्त्व विकसित होने से कैसे रोका जाए ताकि वे कांग्रेस पार्टी के लिए कोई खतरा न बन सकें। वैयक्तिक दृष्टि से स्वामी श्रद्धानन्द कहीं अधिक प्रशंसा के पात्र थे, क्योंकि उन्होंने अछूतोद्धार आन्दोलन में सराहनीय काम किया था।

इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण भाग वह है जिसमें दलित वर्गों से यह निवेदन किया गया है कि वे 'गांधी एवं गांधीवाद' से सावधान रहें। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार गांधीवाद में कोई नवीन चीज नहीं है। वह ग्रामीण जीवन, जंगली जीवन तथा पशु जीवन की ओर एक मोड़ है। गांधीवाद आधुनिक संस्कृति एवं मशीन युग का कट्टर विरोधी है। वह कहीं पूंजीवाद का समर्थन करता है तो कहीं आर्थिक खुशहाली का। गांधीवाद आर्थिक समानता का समर्थक कतई नहीं है। वह सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टिकोणों से प्रतिक्रियावादी दर्शन है। उसमें पुरातनवाद का नारा है। यदि दुनिया में ऐसा कोई वाद है जिसने लोगों को शान्त करने के लिए धर्म को अफीम के रूप में प्रयोग किया है, उन्हें गलत

धारणाओं तथा झूठे वायदों में फँसाया है, वह गांधीवाद है। गांधीवाद अछूतों के साथ छल-कपट है। अतः अम्बेडकर ने अछूतों को गांधीवाद से सावधान रहने की कड़ी चेतावनी दी।

डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थितियों का बड़ा ही रोचक वर्णन इस पुस्तक में किया है। अछूतों को सभी दृष्टि से पृथक् माना ही नहीं जाता, बल्कि उन्हें हिन्दू-समाज की मुख्य ज़ीवनधारा से अलग ही रखा जाता है। उच्च हिन्दुओं का अछूतों के साथ कोई खान-पान, शादी-विवाह नहीं है। उनके बीच धार्मिक भाई चारे की भावना का पूर्ण अभाव है। इसलिए अम्बेडकर ने युक्ति दी कि यदि सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टियों से अछूतों को पृथक् रखा जाता है तो क्यों न उन्हें राजनीतिक दृष्टि से भी पृथक् कर दिया जाए। क्यों न उन्हें राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक् तत्त्व माना जाए? क्यों न उन्हें पृथक्-निर्वाचन का अधिकार स्वीकृत किया जाए? इसी सन्दर्भ में, डॉ० साहब ने कहा कि उनके आवास स्थान भी सवर्ण हिन्दुओं से पृथक् कर दिए जाएँ ताकि वे अपनी एक नई दुनिया बसा लें। कांग्रेस एवं गांधी ने अछूतों की समस्या का कोई स्थाई समाधान नहीं ढूँढ़ा, बल्कि अछूतोद्धार का ढोंग रचा ताकि उन्हें उनका निरन्तर समर्थन प्राप्त होता रहे और कांग्रेस दल अपना उल्लू सीधा करता रहे। इसलिए अम्बेडकर ने अमेरिकी एवं ब्रिटिश प्रगतिवादियों से निवेदन किया कि वे भारतीय अनुदारवादियों के कथनों से भ्रमित न हों क्योंकि वे स्वतन्त्रता के नारे द्वारा न केवल अछूतों को बल्कि दुनिया को भी मूर्ख बना रहे हैं। कांग्रेस पार्टी या गांधी के लिए छुआछूत का उन्मूलन मात्र एक मञ्च है, कोई कार्यक्रम नहीं है। गांधी चाहते थे कि अछूत हिन्दू समाज तथा धर्म में ही बने रहें और वह भी चौथे वर्ण (शूद्र) में। अतएव गांधीवाद अछूतों के लिए एक धोखा है। डॉ० साहब की पुस्तक में, गांधी को अछूतों का उद्धारक स्वीकार नहीं किया गया क्यों कि गांधी के अछूतोद्धार अभियान में प्रोपेगेण्डा अधिक था। उसकी आड़ में, राजनीतिक स्वार्थों को पूरा करने का ध्येय था। जिसे डॉ० अम्बेडकर जैसे मनीषी ही भलीभांति समझ पाए थे।

11 सन् 1946 में प्रकाशित—'हू वर द शूद्राज ?', डॉ० अम्बेडकर की विद्वत्ता-पूर्ण तथा खोजपूर्ण पुस्तक है जिसे उन्होंने महात्मा ज्योतिबा फूले के प्रति सादर समर्पित किया है। महात्मा जी को वे एक महान् सुधारक मानते थे क्योंकि महाराष्ट्र में उन्होंने सर्वप्रथम अछूतों के लिए स्कूल स्थापित किए। यह ग्रंथ एक लम्बे परिश्रम तथा शोध का परिणाम है। इसमें तथ्यों को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

डॉ० अम्बेडकर ने, अपने इस ग्रंथ में, शूद्रों की उत्पत्ति के इतिहास का विश्लेषण किया है। शूद्रों का विशेष विवरण ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' में मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि ईश्वर ने समस्त मानव प्राणियों को चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र एवं वैश्य, में विभाजित किया। यह चातुर्वर्ण व्यवस्था है जिसे सभी हिंदू ग्रंथ पवित्र तथा अकाट्य मानते हैं। वह ईश्वर-कृत है। इस वर्ण-व्यवस्था

को सभी प्रकार की आलोचना तथा परिवर्तन से परे रखा गया ताकि उसका कोई विरोध न कर सके। डॉ० अम्बेडकर ने 'पुरुष-सूक्त' को क्षेपक माना और शूद्रों की उन्नति को इस प्रकार रखा—

1 शूद्रों का, सूर्यवंशी जाति के आर्य समुदायों में, स्थान था। वे सूर्यवंशी आर्य जाति के ही लोग थे और इण्डो-आर्यन समाज में, उन्हें क्षत्रिय माना जाता था।

2 एक ऐसा समय था जब आर्यसमाज में केवल तीन—ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण थे। शूद्रों का कोई पृथक् वर्ण नहीं था। वे क्षत्रिय वर्ण के ही अभिन्न अंग थे।

3 शूद्र नामक राजाओं तथा ब्राह्मण राजाओं के बीच निरन्तर संघर्ष बना रहता था जिसमें अधिकतर ये सूर्यवंशी क्षत्रिय ही विजयी होते थे। फलतः ब्राह्मणों का दमन कर दिया जाता था। उनको विभिन्न अयोग्यताओं तथा अपमानों का शिकार होना पड़ता था।

4 लेकिन कभी-कभी ब्राह्मणों के अनुकूल भी समय आता था, जब ये ब्राह्मण लोग अपने अपमानों का बदला लेने की इच्छा से, सूर्यवंशी क्षत्रियों का उपनयन संस्कार नहीं करते थे। उस समय उपनयन संस्कार इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसके बिना किसी भी आर्य समुदाय का जीवन पतित समझा जाता था। उपनयन संस्कार व्यक्ति का दूसरा जन्म समझा जाता था।

5 उपनयन संस्कार ही सूर्यवंशी क्षत्रियों के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। जब उनके लिए यह संस्कार नहीं किया गया तब उन्हें सामाजिक दृष्टि से पतित माना जाने लगा। फलतः उनका सामाजिक स्तर वैश्यों से नीचा हो गया और उन्हें शूद्र (अपवित्र) माना जाने लगा। इस प्रकार, चौथे वर्ण की उत्पत्ति हुई।

'शूद्र' शब्द की उत्पत्ति मात्र शाब्दिक नहीं है। उसका ऐतिहासिक सम्बंध है। प्राचीन युग में 'सूदास' नाम का राजा था जो आर्य सूर्यवंशी था। ये आर्य सूर्यवंशी क्षत्री बड़े ही बुद्धिमान्, चतुर तथा साहसी थे जिनसे ब्राह्मण, पुरोहित तथा राजा ईर्ष्या रखते थे। उनके लिए उपनयन संस्कार फिर भी होता था और उन्हें वैश्यों से उच्च सामाजिक स्तर पर रखा जाता था। उपनयन संस्कार उस समय समाज में सर्वोच्च संस्कार था जिसका न होना समुदाय विशेष के लिए अभिशाप था। सूदास राजा ने ब्राह्मणों को अन्याय तथा शोषण करने के लिए पनपने नहीं दिया था। इसलिए समस्त ब्राह्मण वर्ग उससे ईर्ष्या रखता था। कालांतर में, जब सूदास राजा भी कमजोर हो गया और उधर ब्राह्मणों को अवसर मिला, उन्होंने सूदास राजा की आने वाली संतानों का उपनयन संस्कार बंद कर दिया। उपनयन संस्कार के अभाव में, उन्हें अपवित्र कहा जाने लगा। अपवित्रता को 'शूद्र' शब्द के साथ जोड़ दिया गया। शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा और इस प्रकार सूदास राजा की सूर्यवंशी संतान चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के चौथे स्तर पर रख दी गई। संक्षेप में, आज जिन्हें शूद्र कहा जाता है, वे सूर्यवंशी आर्य क्षत्रिय लोग थे।

12 संविधान-सभा के समक्ष अपने संवैधानिक विचार प्रस्तुत करने के लिए, डॉ० अम्बेडकर ने मार्च 1947 में एक स्मरण-पत्र 'स्टेट्स एण्ड मॉयनोर्टीज' नाम से प्रकाशित करवाया जिसमें उन्होंने यह प्रस्तावित किया कि जिन चुनाव क्षेत्रों में सुरक्षित स्थान है वहां पृथक्-निर्वाचन प्रणाली हो और अन्य क्षेत्रों में सयुक्त प्रणाली का ही प्रयोग किया जाए। इस छोटी सी पुस्तक में भारतीय संघ के लिए, संवैधानिक प्रारूप प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक बड़ी ही रोचक एवं शिक्षात्मक है, जिसमें अम्बेडकर के राजनीतिक-दर्शन का परिचय मिलता है।

'स्टेट्स एण्ड मॉयनोर्टीज' में, अम्बेडकर ने मूलतः समाजवादी व्यवस्था का प्रारूप तैयार किया था। 'राज्य-समाजवाद' में उनकी आस्था थी। 'राज-समाजवाद भारत में शीघ्रतः औद्योगीकरण के लिए परमावश्यक है। निजी जोखिम ऐसा नहीं कर सकता और यदि उसने ऐसा किया भी, तो वह उन आर्थिक असमानताओं को पैदा करेगा जिन्हें निजी पूंजीवाद ने यूरोप में उत्पन्न किया है। भारतीयों को इससे सावधान रहना चाहिए। चकबन्दी तथा खेतिहर कानूनों का निर्माण भी लाभकर सिद्ध नहीं होगा। उनसे कृषि क्षेत्र में कोई खुशहाली नहीं आ सकती। भारत में रहने वाले करोड़ों अछूतों को न तो चकबन्दी से लाभ होगा और न ही कृषि-कानून उनको सहायता कर सकते हैं क्योंकि अधिकतर वे भूमिहीन मज़दूर हैं। केवल सामूहिक फार्म ही उन्हें लाभकर हो सकते है।

यह मानते हुए कि आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व राज्य के हाथ में हो; अम्बेडकर ने लिखा : 'इन्श्योरेन्स भी राज्य के हाथ में होनी चाहिए। कृषि को राज्य उद्योग बनाया जाए। सारी कृषि भूमि राज्य के हाथ में हो और उसे जाति या धर्म के भेदभाव के बिना गांव वालों को सौंपा जाए एक ऐसे ढङ्ग से कि न कोई जमींदार रहे, न किरायेदार और न ही कोई भूमिहीन मज़दूर।"

इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में समाज की समाजवादी रूप-रेखा प्रस्तुत की। साथ ही, उन्होंने यह आग्रह भी किया कि राज्य समाजवाद को सविधान की धाराओं द्वारा स्थापित किया जाए ताकि विधायिका तथा कार्यपालिका के सामान्य कार्य, उन्हें परिवर्तित न कर सकें। राज्य समाजवाद का व्यावहारिक रूप संसदीय जनतन्त्र द्वारा लाया जाना चाहिए क्योंकि संसदीय जनतन्त्र समाज के लिए सरकार की न्यायोचित व्यवस्था है। केवल इसी पद्धति द्वारा हम तीन महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकते हैं अर्थात् समाज की स्थापना, संसदीय जनतन्त्र को बनाए रखना और तानाशाही की उपेक्षा, सभव हो सकेंगे। "लेकिन यदि जनतन्त्र को 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' के सिद्धान्त तक जीवित रखना है तो संविधान के कानूनों द्वारा न केवल राजनीतिक ढांचे के स्वरूप एवं संरचना का निर्धारण होना चाहिए बल्कि समाज के आर्थिक ढांचे के स्वरूप एवं संरचना का भी निर्धारण हो।" अतएव संविधान द्वारा समाज के राजनीतिक एवं आर्थिक स्वरूप का निर्माण किया जाना चाहिए।

डॉ० साहब ने राज्य समाजवाद के साथ मौलिक अधिकारों, विशेषकर जनतन्त्र, समानता तथा स्वतन्त्रता को जोड़ने का प्रयास किया। उनकी आस्था समाज-

वाद में अवश्य थी, पर वैयक्तिक स्वतन्त्रता के विरोध में वह नहीं थे। इसलिए राज्य समाजवाद की उनकी धारणा, मानव समाज की तीन आर्थिक प्रक्रियाओं पर अधिक बल देती है :

1 समाज के निर्धन वर्गों की माङ्गों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए; आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाए और समस्त कृषि योग्य भूमि को राज्य के अधिकार में लाया जाए;

2 समस्त उत्पादक स्रोतों का स्वामित्व राज्य के हाथों में हो, और

3 जाति तथा धर्म के भेदभाव के बिना, उत्पादित वस्तुओं का वितरण सभी वर्गों के लोगों में न्यायोचित ढङ्ग से हो।

13 सन् 1948 में प्रकाशित—'द अण्टचेबिल्स', डॉ० अम्बेडकर की एक और खोजपूर्ण कृति है जिसमें उन्होंने छुआछूत के विकास का प्रारम्भ 400 ए० डी० से माना है। छुआछूत की उत्पत्ति को, उन्होंने बौद्धधर्म एवं ब्राह्मणवाद के बीच संघर्ष के साथ जोड़ा है। पुस्तक में, उनके विचार, भाषा तथा तर्क की शक्ति का प्रमाण मिलता है। विषय का विश्लेषण बड़ा ही सरल एवं स्पष्ट है। पुस्तक में इतिहास की खोई हुई कड़ियों का जोड़ा है जिनसे डॉ० साहब ने नवीन निष्कर्षों का अवतरण किया है।

पुस्तक में छुआछूत की उत्पत्ति के सिद्धान्तों का मूल्यांकन मिलता है। दो प्रमुख सिद्धान्त सामान्यत: पाए जाते हैं : (1) छुआछूत की उत्पत्ति का जातिगत सिद्धान्त (रेसियलथ्योरी) तथा (2) छुआछूत की उत्पत्ति का पेशेगत सिद्धान्त। प्रथम सिद्धान्त यह मानता है कि अछूत गैर-आर्य तथा गैर-द्रविड़ लोग थे। वे यहां के आदिवासी थे जिन्हें द्रविड़ लोगों ने पराजित करके दास बना लिया और कालान्तर में, वे अछूत बन गए। दूसरा सिद्धान्त यह मानता है कि जो लोग गन्दे पेशे या धन्धे करते थे, उन्हें अछूत बना दिया गया। अम्बेडकर ने इन दोनों सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि अछूत गैर-आर्य या गैर-द्रविड़ लोग थे, क्योंकि उनकी शारीरिक विशेषताएं अन्य भारतीयों से भिन्न नहीं है। यह कहना भी गलत है कि गन्दे पेशे करने वालों को अछूत बना दिया। जिन्हें गन्दे पेशों की संज्ञा दी जाती है, उन्हें दुनिया के सभी समाजों में किया जाता है। यदि वही छुआछूत का कारण होते तो निश्चय ही, अन्य समाजों में भी अछूत होते; लेकिन ऐसा नहीं मिलता। केवल भारत में ही और वह भी हिन्दू समाज में अछूत पाए जाते हैं।

डॉ० अम्बेडकर ने, अपनी पुस्तक में, अपने द्वारा प्रतिपादित दो विचारों को छुआछूत की उत्पत्ति का कारण बतलाया :

1 बौद्धधर्म के प्रति ब्राह्मणों द्वारा घृणा की भावना पैदा करना छुआछूत का कारण बना और

2 गोमांस-खाना छुआछूत की उत्पत्ति का कारण बना।

बौद्धधर्म के पूर्व, ब्राह्मण लोग गोमांस खाते थे। भगवान् बुद्ध के आगमन से, जीवों के प्रति दया की भावना पैदा हो गई और पशु-बलिदान को अनैतिक

कृत्य माना जाने लगा। बौद्धधर्म का जितना ही प्रचार एवं प्रसार हुआ, उतना ही ब्राह्मण-धर्म का महत्त्व घटा। फलतः ब्राह्मणों के मन में बौद्धों के प्रति वैर तथा ईर्ष्या हो गई और वे सदैव बदला लेने पर उतारू रहने लगे। ब्राह्मण समाज में जिन घुमक्कड़ लोगों के लिए कोई स्थान तथा प्रेम नहीं था, वे बौद्ध हो गए और अच्छी तरह जीवन-यापन करने लगे। ब्राह्मण लोग इनसे ईर्ष्या रखने लगे। उधर यह आश्चर्य की बात थी कि ब्राह्मणों ने गोमांस खाना त्याग दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने गाय को 'पवित्र पशु' घोषित कर दिया। ऐसा करने में, ब्राह्मणों का यही लक्ष्य था कि अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया जाए। उन्होंने भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का अनुकरण भी प्रारम्भ कर दिया। सभी बौद्ध-भिक्षुओं ने गोमांस त्याग दिया था, पर बौद्ध उपासक ऐसा नहीं कर पाए, क्योंकि वे निर्धन थे और न ही उनके पास कृषि योग्य भूमि थी। मजबूरन उन्हें गोमांस खाना पड़ा। ब्राह्मणों ने इस कमजोरी का लाभ उठाकर, उन्हें घृणित तथा पतित कहना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में, उन्हें अछूत कहा जाने लगा।

छुआछूत की उत्पत्ति से सम्बन्धित विचारों को, डॉ० अम्बेडकर ने निम्न ढङ्ग से प्रस्तुत किया है—

1 हिन्दुओं तथा अछूतों में कोई जातिगत भेद नहीं है;

2 छुआछूत की उत्पत्ति के पूर्व हिन्दुओं तथा अछूतों के बीच मूलतः भेद कबीला लोगों तथा 'बिखरे लोगों' के रूप में था। दोनों ही कबीलों के रूप में, एक दूसरे से भिन्न थे। कालान्तर में, ये बिखरे-लोग ही अछूतों में परिणत हो गए;

3 छुआछूत का कोई जातिगत आधार नहीं है और न ही उसका सम्बन्ध गन्दे पेशों से है;

4 केवल दो कारणों से छुआछूत की उत्पत्ति हुई :

(अ) बौद्धों के रूप में बिखरे लोगों के प्रति ब्राह्मणों द्वारा अपमान तथा घृणा, और

(ब) बौद्धों के रूप में बिखरे लोगों द्वारा गोमांस खाने की आदत को निरन्तर बनाए रखना।

14 'थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स' (1955) में, डॉ० अम्बेडकर ने इस प्रकार राज्यों के भाषाई गठन का चित्रण किया है जो भारतीय संघ में आवश्यक था। उन्होंने 'एक राज्य, एक भाषा' के सार्वभौमिक सिद्धान्त को स्वीकार किया। जहाँ-जहाँ इस सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया, वहाँ-वहाँ राज्य के लिए खतरा पैदा हो गया। बहुभाषी राज्य कमजोर होता है। अतः भारतीय राज्यों के गठन में 'एक भाषा, एक राज्य' के नियम का पालन करना, अत्यधिक लाभकर सिद्ध होगा।

कोई राज्य, डॉ० साहब के अनुसार, लोगों की पारस्परिक सद्भावना पर आधारित होता है। यह एकत्व की भावना है। जिन लोगों में यह भावना होती है, वे सङ्गठित हो जाते हैं और आर्थिक तथा सामाजिक भेदभावों को भुलाकर वे शान्तिपूर्वक रहने का प्रयत्न करते हैं। अतएव यह भावना, एक राज्य, एक भाषा,

एक जनतांत्रिक तथा सुदृढ़ राज्य की आधारशिला है। इसके अतिरिक्त, डॉ० अम्बेडकर ने दो और कारण प्रस्तुत किए, इस समर्थन में कि 'एक राज्य, एक भाषा' का नियम क्यों अच्छा है :

1 जनतन्त्र में, भाईचारे की भावना परमावश्यक है। जनतन्त्र में, भाईचारे की भावना के साथ-साथ विरोध भी आवश्यक होता है। विरोध के बिना कोई जनतन्त्र कार्य नहीं कर सकता। बहुभाषाई राज्य में, यही जनतांत्रिक विरोध, शत्रुता का रूप धारण कर सकता है। भाषाई दंगे भी हो सकते हैं। भाषाई राजनीति एवं नेतृत्व भी उभर सकता है और प्रशासन में भेद-भाव पैदा हो सकता है। अतएव इन बुराइयों से बचने के लिए, एक भाषाई राज्य की स्थापना कहीं अधिक उपयुक्त है।

2 एक भाषाई राज्य जातिगत एवं सांस्कृतिक झगड़ों का एकमात्र उपाय है। यदि एक ही राज्य में विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले हों, उनके सांस्कृतिक मूल्य भिन्न हों, तो यह स्वाभाविक है कि उनमें झगड़े-फसाद अवश्य होंगे। प्रशासन, राजनीति तथा शिक्षा में, पृथक्-पृथक् दिशाओं में जाने का प्रयास करेंगे। चूँकि उनके जातिगत एवं सांस्कृतिक हित अलग-अलग होंगे, उस राज्य में शान्ति-व्यवस्था की सम्भावनाएँ कम होंगी। इसलिए एक मिश्रित राज्य सदैव दोनों पक्षों के लिए, खतरा बना रहेगा। दोनों एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का यत्न करेंगे। इस खतरे को कम करने के लिए, 'एक राज्य, एक भाषा' के नियम को लागू करना अच्छा सिद्ध होगा।

उपर्युक्त पुस्तक में डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दी भाषा को सम्पूर्ण राष्ट्र की राजकीय भाषा बनाए जाने पर बल दिया, हालांकि वे क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के विपक्ष में नहीं थे। एक भाषा राष्ट्र को सङ्गठित रख सकती है और सम्पूर्ण राष्ट्र में शान्ति तथा विचार-संचार को आसान बना सकती है। वैसे डॉ० अम्बेडकर की मातृ-भाषा मराठी थी, पर हिन्दी को उन्होंने प्रमुख स्थान दिया और कहा; कोई भी भारतीय जो हिन्दी भाषा को भाषाई राज्यों की राजकीय भाषा मानने को तैयार नहीं है उसे भारतीय कहलाने का अधिकार नहीं है। वह असली अर्थ में भारतीय नहीं हो सकता, केवल भौगोलिक अर्थ में वह अपने को भारतीय कह सकता है। क्षेत्रीय भाषाओं को सरकारी भाषाएँ मानने से भारत को सङ्गठित राष्ट्र, और भारतीयों को भारतीय प्रथम तथा भारतीय अन्तिम, मनाने का आदर्श धूमिल हो जाएगा।"

भाषाई राज्यों के अतिरिक्त, डॉ० अम्बेडकर ने इस बात पर भी बल दिया कि छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण किया जाए ताकि अल्प-संख्यकों के हितों की सुरक्षा आसानी से की जा सके। यह आवश्यक नहीं कि एक भाषा बोलने वाले सभी लोगों तथा क्षेत्रों को एक ही राज्य में मिला दिया जाए। हिंदी बोलने वालों को कई छोटे छोटे प्रांतों में विभाजित किया जा सकता है। उसमें 'एक राज्य, एक भाषा' का नियम तो बना ही रहेगा और अल्प-संरक्षकों के हितों की सुरक्षा भी आसानी

से हो सकेगी। इसी दृष्टि से, डॉ० अम्बेडकर ने बॉम्बे, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बिहार, पंजाब, आदि प्रदेशों के विभाजन का विचार प्रस्तुत किया था। बॉम्बे राज्य तो गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रदेशों में बँट गया। उधर पंजाब भी हरियाणा तथा पंजाब में विभाजित हो गया। उत्तर-प्रदेश तथा मध्य-प्रदेश जैसे बड़े-बड़े प्रान्त अब भी विद्यमान हैं। उन्हें छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित करवाने की मांग निरन्तर बनी है, क्यों कि इतने बड़े प्रदेशों में क्षेत्रीय हितों की सुरक्षा नहीं हो पाती और प्रशासन भी कारगर सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

15 डॉ० अम्बेडकर द्वारा कुछ ऐसे लेख (प्रकाशित तथा टाइप्ड पेपर्स) हैं जो साहित्यिक एवं विषय की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे (1) लेबर एण्ड पार्लियामेण्ट्री डिमॉक्रेसी (1943), (2) कम्यूनल डैडलॉक एण्ड ए वे टू साल्व इट (1954), (3) बुद्ध एण्ड दि फ्यूचर ऑफ हिज रिलीजन (195), (4) फ्यूचर-ऑफ पार्लियामेण्ट्री डिमॉक्रेसी (1951), (5) एसेन्शियल कन्डीशन्स प्रीसीडेण्ट फॉर दि सक्सेसफुल वर्किङ्ग ऑफ डिमॉक्रेसी (1951), (6) लिंग्विस्टिक स्टेट्स नीड फॉर चेक्स एण्ड बेलेन्सेज (1953), (7) माइ पर्सनल फिलॉस्फी (1954), और (8) बुद्धिज्म एण्ड कम्यूनिज्म (1956), इन सभी लेखों तथा व्याख्यानों में राजनीति-दर्शन से सम्बन्धित रोचक सामग्री निहित है। डॉ० साहब के मूल दर्शन की झांकियाँ इनमें स्पष्ट रूप से विश्लेषित हैं।

संसदीय जनतंत्र में श्रम तथा श्रमिकों की क्या स्थिति हो, ऐसा विवेचन हमें, डॉ० अम्बेडकर के प्रथम लेख में मिलता है। दलितों के लिए कुछ सुरक्षित स्थानों को लेकर; स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन तथा राजनीति में एक बहुत बड़ा गतिरोध पैदा हो गया था जिसके समाधान हेतु उन्होंने अपनी द्वितीय छोटी सी पुस्तक में विचारों को प्रस्तुत किया। अपने तृतीय लेख में डा० अम्बेडकर ने सच्चे धर्म की चार कसौटियों का विश्लेषण किया। उनकी दृष्टि में अन्य धर्मों की तुलना में बौद्धधर्म ही सच्चा धर्म है जिसका सीधा सम्बन्ध समाज, मनुष्य, नैतिकता एवं बौद्धिकता से है। चौथे लेख में, भारत में संसदीय व्यवस्था के भविष्य की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया है और अपने पांचवें लेख में, डॉ० साहब ने जनतंत्र की सफलता के लिए, कुछ पूर्व-शर्तों को परमावश्यक बतलाया है जैसे सत्ता में परिवर्तन होता रहे अर्थात् एक ही दल के हाथों में सत्ता निरन्तर न बनी रहे, स्वस्थ विरोधी दल या विरोध हो, प्रशासनिक कानून के समक्ष समानता का व्यवहार हो, संवैधानिक नैतिकता का पालन किया जाए, निष्पक्ष चुनाव हो, और समाज में जन चेतना हो। छठे लेख में, डा० साहब ने भाषाई राज्यों की आवश्यकता पर बल दिया है। अपने वैयक्तिक दर्शन के अन्तर्गत, उन्होंने अपने समाज-दर्शन की मौलिक मान्यताओं का विवेचन किया और कहा कि उनके दर्शन के मूल तत्त्व स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व हैं। उनका समाज-दर्शन वर्णाश्रम धर्म का निषेध करता है। समाज में रहने वाले मानव प्राणियों के बीच सम्बन्धों का मूलाधार कानून की अपेक्षा नैतिकता कहीं अधिक व्यापक है। भ्रातृ-भाव ही सामाजिक जीवन का आधार है। बुद्धिज्म तथा कम्यूनिज्म में, डा० साहब ने भगवान् बुद्ध

व कार्ल मार्क्स के दर्शनों का एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो दार्शनिक दृष्टि से, बड़ा ही गूढ़ एवं गम्भीर है। मार्क्स की कई मान्यताएँ डा० साहब ने स्वीकार की, पर बुद्धवादी मार्ग व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों दृष्टि से, उन्हें सबसे अधिक पसन्द आया। वह भगवान् बुद्ध के सच्चे अनुयायी एवं भक्त हो गए और एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की जिसमें बुद्ध के दर्शन तथा धर्म को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

महान् ग्रन्थ की रचना :

डा० अम्बेडकर की पूर्व-उल्लिखित पुस्तकें निःसन्देह महत्वपूर्ण हैं, पर उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एवं चिरस्थाई ग्रन्थ; 'दि बुद्ध एण्ड हिज़ धम्म' है जो उनकी मृत्यूपरान्त सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। यह एक स्मारकीय एवं विशाल ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत डा० साहब ने बौद्धधर्म को, अपनी बौद्धिक विवेचना सहित, नए ढंग से विश्लेषित किया है। ग्रन्थ निष्पक्ष, स्पष्ट एवं सरल है। उसकी भाषा ओजस्वी एवं सारगर्भित है। ग्रन्थ में, विद्वान् डॉक्टर की प्रतिभा और व्यक्तित्व की छाप है। बौद्धिक युक्तियों से वह सुसज्जित है। प्रत्येक महान् ग्रन्थकार की भांति, 'भगवान् बुद्ध एवं उनका धम्म' में, डा० अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं दर्शन का समन्वित रूप निहित है। बौद्ध विद्वानों, देशों और संस्थाओं ने उनके इस ग्रन्थ का हार्दिक स्वागत किया है।

यह ग्रन्थ कई मौलिक प्रश्नों को प्रस्तुत करता है जिनका डा० अम्बेडकर ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ उत्तर दिया है। सर्वप्रथम, उन्होंने हीनयान तथा महायान में विभाजित बौद्धधर्म को कोई महत्त्व नहीं दिया। बौद्धधर्म, भगवान् बुद्ध का धम्म, एक ही है। दार्शनिक व्याख्याएँ भिन्न हो सकती हैं। धर्म के रूप में, बौद्ध-धर्म एक ही है। दो बौद्ध धर्म होना संभव नहीं है।

पहला प्रश्न डा० अम्बेडकर ने बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित उठाया है। बुद्ध ने प्रव्रज्या क्यों ग्रहण की ? परम्परागत कथन कि सिद्धार्थ गौतम ने एक वृद्ध पुरुष, एक रोगी व्यक्ति तथा एक मुर्दे की लाश को देखा, इसलिए घर को छोड़कर चले गए। डा० साहब ने इसे स्वीकार नहीं किया, बल्कि उन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को उत्तरदायी बतलाया जो उस समय उनके समक्ष उठ खड़ी हुई थीं। सिद्धार्थ चुपचाप घर से निकलकर नहीं गए, वरन् अपने परिवार वालों की आज्ञा लेकर, उन्होने घर-त्याग किया। उनके घर-त्याग की घटना को, डा० साहब ने बड़े ही आकर्षक एवं ऐतिहासिक ढग से प्रस्तुत किया है।

दूसरा प्रश्न यह है कि विद्वानों ने अधिकतर यही लिखा है कि 'जीवन स्वभावतः दुःख है।' इसे बौद्धधर्म की मूल मान्यता कहा गया है। यह कथन बौद्ध-धर्म की जड़ पर ही कुठाराघात करता है क्यों कि जब जीवन ही दुःख है, तो जीते जी दुःख का अन्त कैसे संभव होगा ? धर्म का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इस-लिए डा० साहब ने इस तरह पैदा की गई उलझन का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने कहा कि बुद्ध ने जीवन में दुःख की व्यापकता को स्वीकार कर उसका अन्त

करने का मार्ग प्रस्तुत किया। जीवन स्वभावतः दुःख है, ऐसा नहीं है, बल्कि जीवन में दु.ख है, ऐसा समझना चाहिए।

तीसरा प्रश्न डा० अम्बेडकर ने आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म को लेकर उठाया है क्योंकि न केवल बौद्ध विद्वानों वल्कि अन्य विद्वानों के मन में इन विषयों को लेकर बड़ी गम्भीर भ्रान्तियां विद्यमान हैं। कुछ विद्वान् मानते हैं कि बुद्ध ने 'आत्मा' को स्वीकार किया; परन्तु यह गलत है। उन्होंने किसी आत्मा को स्वीकार नहीं किया। आत्मा की प्रचलित धारणा का तो बुद्ध ने खण्डन किया था। पर 'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त को उन्होंने स्वीकार किया। प्रश्न पैदा होता है, 'आत्मा ही नहीं तो कर्म कैसा?' 'आत्मा ही नहीं तो पुनर्जन्म कैसा?' निःसन्देह, ये बड़े ही टेढ़े एवं गम्भीर प्रश्न हैं, पर अम्बेडकर ने, गहन अध्ययन के पश्चात्, इनका उत्तर पूर्ण सङ्गति के साथ दिया है। उन्होंने यह समझाया है कि किस प्रकार हिन्दू-धर्म में विद्यमान आत्मा, कर्म एवं आवागमन के विचारों को बौद्ध धर्म में उलझा दिया गया। बौद्ध धर्म के इन विचारों को, डा० साहब ने, हिन्दू धर्म के इनसे सम्बन्धित विचारों से स्पष्ट किया है ताकि लम्बे समय से चली आ रही भ्रान्तियां दूर हो सकें।

चौथा प्रश्न भिक्षु संघ से सम्बन्धित है। बुद्ध ने भिक्षु संघ की स्थापना क्यों की? क्या वह भिक्षु संघ को समाज से पृथक रखना चाहते थे? अथवा उनका उद्देश्य भिक्षुओं के रूप में आदर्श समाज सेवक पैदा करना था? भिक्षु सघ पर ही तो बौद्ध धर्म का अस्तित्व निर्भर है। अतएव अम्बेडकर ने भिक्षु संघ के कर्त्तव्यों तथा आदर्शों का विश्लेषण किया है ताकि बौद्ध भिक्षु सामान्य उपासकों के मार्ग-दर्शक तथा मित्र-दार्शनिक बनें। यदि भिक्षु अपने ही कल्याण में रत रहता है तो वह 'स्वार्थी व्यक्ति' है। भिक्षु का यह कर्त्तव्य नहीं है। वह तो मूलतः समाज-सेवी है। भिक्षु की यही धारणा बौद्ध धर्म के आदर्श से मेल खाती है। इन बातों का, डॉ० साहब ने बड़ा विद्वत्तापूर्ण, विवेचन किया है।

डॉ० अम्बेडकर ने सम्पूर्ण ग्रन्थ में, सिद्धार्थ गौतम-बोधिसत्त्व किस प्रकार बुद्ध बने; धर्म दीक्षाओं का आन्दोलन, बुद्ध ने क्या सिखाया, मजहब एवं धर्म में अन्तर, भिक्षु संघ की रूपरेखा एवं कर्त्तव्य, भगवान् बुद्ध और उनके समकालीन, महान् परिव्राजक की अन्तिम चारिका और महामानव सिद्धार्थ गौतम, विषयों का विशद विवेचन किया है। इन्हीं विषयों के अन्तर्गत डॉ० साहब ने, धर्म क्या है? अधर्म क्या है? सद्धर्म क्या है? धर्म तथा नैतिकता, पुनर्जन्म, कर्म; आत्मा, ईश्वर, अहिंसा, आदि धारणाओं का स्पष्ट एवं सरल विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हिन्दू विद्वानों द्वारा बौद्धधर्म में आरोपित विचारों का उन्होंने खण्डन किया है ताकि दोनों धर्मों को एक कहने की भ्रान्ति का अन्त हो सके। आधुनिक परिस्थितियों में, मूल बौद्धधर्म के विचारों तथा विश्वासों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण, डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

पांचवा प्रश्न, अम्बेडकर ने बौद्धधर्म में 'अहिंसा' के विचार को लेकर उठाया

है। इस धारणा को लेकर भी कई भ्रान्तियां फैली हुई है। उन्होंने अहिंसा के नाना अर्थों तथा व्यवहारों का विश्लेषण कर, बौद्धधर्म में अहिंसा की धारणा का स्पष्ट विवेचन किया है जो बुद्ध के मध्यम मार्ग से बिलकुल मेल खाता है। बौद्ध धर्म में अहिंसा सिद्धान्त को, उन्होंने हिन्दू तथा जैन धर्मों में तत्सम्बन्धित विचारों से बिलकुल भिन्न बतलाया है। बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का आदर्श मध्यममार्गी है, जबकि इनका अहिंसा का सिद्धान्त अतिवादी है। इस प्रकार अहिंसा की नई व्याख्या, डॉ० साहब के महान् ग्रन्थ में की गई है।

दलित साहित्य के प्रणेता :

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की तीव्रता के साथ-साथ, दलित चेतना का आविर्भाव भी हुआ जिसे साहित्यिक स्वरूप एक ऐसे व्यक्ति ने दिया जो स्वयं दलित समाज से ही शोषण एवं अन्याय के विरोध में उभर कर सामने आया। वह व्यक्ति डॉ० अम्बेडकर ही थे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से, दलित चेतना को साहित्य तथा राजनीति से जोड़ा। दलित समाज की मूक-वाणी, चीख-पुकार, यातनापूर्ण जीवन को मुखरित करने वाले डॉ० अम्बेडकर को दलित साहित्य का प्रणेता कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि उनकी विचार-धारा के अन्तर्गत दलित चेतना एवं साहित्य की सशक्त रूप में अभिव्यक्ति हुई।

प्राय: सभी युगों में, दलित चेतना तो थी और उसका स्वरूप अधिकतर नैतिक एवं आध्यात्मिक था; किन्तु सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से स्वयं दलित समाज सुषुप्त एवं दिशाविहीन रहा। दलितों के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए, अन्य लोगों ने उन्हें संभालने का प्रयत्न किया। लेकिन अधिक कुछ हुआ नहीं क्योंकि उन्हें स्वयं अपने अस्तित्व का सही-सही ज्ञान नहीं था। वे अस्तित्व में होते हुए भी अपने को अस्तित्वहीन ही मानते रहे। फलत डॉ० अम्बेडकर के पूर्व, उनकी जो सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति रही, वह बड़ी ही दयनीय तथा चिंतनीय थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान, जिस दलित चेतना का उदय हुआ, वह सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान के प्रति उत्कण्ठा में प्रस्फुटित हुई जो पहले कभी नहीं थी। दलित चेतना ने जो राजनीतिक आधार ग्रहण किया वह उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी क्योंकि उससे उसे व्यापक समर्थन मिला; और न केवल अन्यों ने उस चेतना की सत्ता एवं महत्ता को पहचाना, अपितु स्वयं दलित उठने, जागने तथा भिड़ने की प्रक्रिया में आ खड़े हुए। उनमें संघर्ष की तीव्र भावना पैदा हो गई। वे अपने अधिकारों की मांग और देश की धन सम्पत्ति में भी हिस्सा-बांट की बात करने लगे। डॉ० अम्बेडकर ने तो न केवल दलितों को उनके अस्तित्व का अहसास करवाया, बल्कि उन्हें राष्ट्रीय धारा में एक विशेष तत्त्व के रूप में सिद्ध कर दिया, और कहा कि दलित इसी देश के मूल निवासी हैं जिन्हें यहाँ की राज-नीतिक सत्ता में न्यायोचित स्थान मिलना चाहिए। ऐसी व्यापक एव सशक्त दलित चेतना का नेतृत्व डॉ० अम्बेडकर ने किया। दलितों को राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से जोड़ने का श्रेय डॉ० साहब को ही जाता है। दलितों के राजनीतिक अस्तित्व का महत्त्व एवं मूल्य यहीं से प्रारम्भ हुआ।

दलित अस्तित्व को निरन्तर राष्ट्रीय चेतना, संघर्ष तथा आन्दोलन के साथ जोड़े रखना, कोई मामूली बात नहीं थी। लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने यह संभव बना दिया। उन्होंने न केवल यह सिद्ध कर दिया कि दलित जाग उठे हैं, अपितु दलितों को अब अधिक उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यह उन्होंने मात्र अपने भाषणों से ही नहीं किया, बल्कि एक ऐसे साहित्य का सूत्रपात किया जिसने दलित चेतना को संघर्ष के मार्ग पर ला दिया। उसे बेचैन एवं आन्दोलित कर दिया ताकि वह पुनः सुषुप्त अवस्था में न चली जाए। डॉ० अम्बेडकर के विचार-तन्त्र के अन्तर्गत ही दलित साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने अपने साहित्य में दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित समाज पर होने वाले भीषण अन्याय, शोषण, विषमता तथा विपन्नता को प्रकाशित कर, अपने दलित साहित्य की रचना की। उनका दलित साहित्य दो रूपों में अभिव्यक्त हुआ : विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से और उनके ही मौलिक ग्रन्थों के द्वारा, जिनका पर्याप्त विवेचन अन्यत्र किया जा चुका है। उनका साहित्य मुख्यतः दो भाषाओं, मराठी एवं अंग्रेजी, में मूलतः प्रकाशित हुआ।

डॉ० अम्बेडकर के साहित्य को दलित-साहित्य क्यों माना जाए ? उनका साहित्य दलित चेतना का सतत् स्रोत है। वस्तुतः उनका साहित्य समाज एवं राष्ट्र की स्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, पर उसके प्राण दलितोद्धार में ही अन्तर्निहित हैं। उनकी सभी रचनाओं में भारत की असहाय पददलित मानवता को आर्त पुकार है। उन्होंने दलितों के मूक क्रन्दन को वाणी प्रदान की और कुम्भकरणी नींद से युगों-युगों से अचेतन सामाजिक व्यवस्था को झकझोर कर जागृत किया। उनके साहित्य में, भले ही वह अधिकतर अंग्रेजी में है, उपेक्षित, पीड़ित एवं प्रताड़ित अछूत वर्ग की आवाज गूंजती है। उनके साहित्य में, 'नायक-नायिका' वे नहीं हैं जो अति-प्राकृतिक शक्तियों में सम्पन्न हों; बल्कि वे नर-नारी हैं जो दीन-हीन, अनपढ़ एवं अस्पृश्य हैं; किन्तु वे व्यवस्था के प्रति विद्रोह की आग अपने मन में संजोये रहते हैं। उनके लिए, डॉ. अम्बेडकर ने अपने साहित्य में मुक्ति एवं समानता के जो मंत्र सिद्ध किये वे अत्यन्त प्रभावपूर्ण थे। उनका साहित्य शक्तिसिद्ध महामंत्र है जिसमें आत्म-विश्वास और दृढ़ता का समावेश है, तपस्या एवं पवित्रता का बल निहित है, और जिसमें दलितों को निरन्तर आन्दोलित करते रहने की क्षमता विद्यमान है। इसलिए, उनका साहित्य दलित साहित्य का मूल प्रेरक रूप है।

दलित साहित्य का स्वरूप कुछ ऐसा है जिसमें जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता की भीषणता, वर्णाधारित ग्रन्थ, अन्यायपूर्ण परम्परा, ब्राह्मणवाद, पूंजीवाद, सामन्तवाद, निकृष्ट हिन्दू मनोवृत्ति के प्रति निरन्तर विद्रोह भावना अन्तर्निहित है। उसमें टकराव तथा संघर्ष का चित्रण विशेष महत्त्व रखता है। दलितों की वाणी उसमें मुखरित होती है। दलित साहित्य, चाहे वह किसी भी भाषा में हो, डॉ० अम्बेडकर के साहित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वस्तुतः उनकी विचारधारा के साथ, आज का दलित साहित्य अपने अन्दर स्वयं-स्फूर्ति की अनुभूति

कर रहा है। दलित साहित्य के प्रणेता के रूप में, डॉ० अम्बेडकर दलित लेखक, कवि तथा कलाकार को निरन्तर प्रेरित एवं उत्साहित करते रहते हैं। दलित साहित्य, चाहे गद्य में हो या पद्य में, वह जीर्ण-शीर्ण भारतीय समाज का नव-निर्माण चाहता है जहाँ मानव-मानव में अनुचित भेद-भाव न हो, वर्ण तथा जाति का आतंक न हो, दलितों के प्रति घृणा और तिरस्कार न हो, और सम्पूर्ण समाज में पारस्परिक प्रेम, स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व-भाव हो। यह प्रेरणा केवल डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व, साहित्य एवं दर्शन की देन है।

आज दलित साहित्य की विभिन्न भाषाओं एवं रूपों में जो अभिव्यक्तियां हो रही है, उन सब में डॉ० अम्बेडकर की विचारधारा, शैली तथा सम्प्रेरणा, परिलक्षित हो रही है। व्यवस्था के प्रति विद्रोह; अन्याय एवं अनाचार के प्रति संघर्ष; पीड़ा तथा दुःख का साहसपूर्वक मुकाबला; अपने सम्मान एवं अधिकार की रक्षा करना, जाति-वर्ण, धर्म, परम्परा आदि के बन्धनों को तोड़ना, यथार्थ स्थिति का चरित्र-चित्रण करना और नये आदर्श, मूल्य एवं परम्परा में स्थापित करना, दलित साहित्य की कुछ मौलिक विशेषताएं हैं जो दलित लेखकों, कवियों तथा कलाकारों को डॉ० अम्बेडकर के साहित्य में धरोहर के रूप में सुलभ हैं। अतः सम्पूर्ण दलित साहित्य में, इन गुणों, दशाओं एवं दिशाओं की प्रतिध्वनि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। उसमें अम्बेडकर जैसी स्पष्टवादिता, साहस तथा संचेतना की स्फूर्ति निश्चित रूप से विद्यमान रहती है। दलित साहित्य, अन्य साहित्यिक धाराओं से, कुछ हटकर है क्योंकि वह प्रतिबद्धित, लक्ष्योन्मुख और दलितोद्धारक है; जबकि अन्य साहित्य, विशेषकर हिन्दी साहित्य, विकृत, परम्परावादी, आदर्शवादी और अवसरवादी है। दलित साहित्य एक मिशन है. साध्य है, मात्र साधन नहीं है, क्योंकि उसमें डॉ० अम्बेडकर की मूल-प्रेरणा अन्तर्निहित है जो स्वार्थी एवं अवसरवादी-भावनाओं से परे है।

इस प्रकार, डॉ० अम्बेडकर के आगमन से राष्ट्रीयधारा में दलितों के अधिकार अटल हो गये। उनके प्रखर साहित्य, गम्भीर विचार तथा व्यापक आन्दोलन ने दलितों का सत्ता, गति-प्रगति की ओर ध्यान आकर्षित किया। डॉ० साहब ने अपने साहित्य के माध्यम से दलितों को सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठापित किया, उन्हें राजनीतिक क्षितिज पर लाये और राष्ट्रीय धारा से जोड़ा। दलित साहित्य एक ऐसे प्रवाह के समान है जिसमें परिवर्तन एवं विद्रोह की दाहकता निरन्तर रूप से बहती रहती है। वह जड़वादी तथा ईश्वरवादी दृष्टिकोण से भिन्न, मानववादी दर्शन एवं चेतना से उद्भूत होता है। वह मनुष्य को प्रकृति या नियति के हाथों का खिलौना मानकर नहीं चलता। मनुष्य अपनी व्यवस्था के लिए स्वयं निर्णायक एवं उत्तरदायी है। अतः दलित साहित्य केवल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं है; अपितु नैतिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण को बदलने की एक साहसिक प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण मानव जीवन के मूल्यांकन की द्योतक है और जिसमें डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। संक्षेप में, दलित साहित्य की

सतत् धारा, मानव दृष्टिकोण की सजग-सशक्त अभिव्यक्ति है।

युग-प्रवर्तक : बोधिसत्व :

डॉ० अम्बेडकर के जीवन की कहानी मानवीय अधिकारों के विजेता के संघर्ष की कहानी है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, यह मानता है कि डॉ० साहब ने मानव सम्मान के लिए, अविरल संघर्ष किया। वे शोषित एवं पीड़ित लोगों के उद्धारक थे। चूंकि वे एक ऐसे परिवार में जन्मे जिसे जन्म से ही अयोग्यताओं का सामना करना पड़ा था, इसलिए इस देश में तो क्या, अन्य देशों में भी, मुश्किल से उनके समान धूल से आकाश में उठने वाला महान् पुरुष मिल पाएगा। उनका जीवन निश्चय ही विचार-उत्तेजक, विविध, रोचक एवं आश्चर्यजनक रहा। एक मामूली परिवार में जन्म लेना, एक अछूत के रूप में जीवन प्रारम्भ करना, स्कूली-जीवन में एक कोढ़ी के समान समझा जाना, युवा-जीवन में विभिन्न स्थानों पर अपमानित होना, होटल, मन्दिर, हेयर-सैलून आदि से निकाला जाना और दफ्तरों में भी अपमानित होना, कुछ ऐसे जीवन के कटु अनुभव थे जो हृदयविदारक हैं। फिर टिफिन-कैरियर बनना, पेट काटकर दुनिया के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में विद्यार्जन करना, प्रत्येक पग पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना, पैतृक धन-सम्पत्ति तथा सामाजिक सुविधाओं के अभाव में रहना, आदि बड़े ही साहसिक तथा प्रशंसनीय कार्य हैं। फिर भी अपने नाम को रोशन करना, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों में महान् ख्याति प्राप्त करना, बिना पार्टी तथा प्रेस के आगे बढ़ना, गोलमेज परिषदों में दलितों के हितों की रक्षा के लिए दहाड़ना, वाइसराय की कार्यकारिणी में श्रम-सदस्य बनना, स्वतंत्र भारत का कानून-मंत्री होना, कुछ अद्वितीय बातें हैं जिन्हें प्राप्त करना डॉ० साहब के लिए मामूली काम नहीं था।

एक समय वह भी था जब बचपन से ही समाज ने एक मामूली से परिवार में जन्मे बच्चे को रौंदना प्रारम्भ कर दिया था। उसका छूना तथा देखना भी पापमय समझा जाता था और एक समय ऐसा भी आया कि वही बच्चा, बड़ा शिक्षित होकर, देश के संविधान का मुख्य निर्माता बना। जो छुआछूत से दुःखी हुआ, उसने उस कलंक को मिटाया और जो स्वयं दास जैसी स्थिति में आगे बढ़ा, उसने ही अपने करोड़ों भाइयों को दासता, छुआछूत और शोषण से मुक्त किया। सदियों की चली आ रही सामाजिक गुलामी से, डॉ० साहब ने दलितों को छुटकारा दिलाया। मानव इतिहास में, यह आश्चर्यजनक उपलब्धि थी। इसलिए आज इस देश के सच्चे सपूत, एक अछूत जीवन से प्रारम्भ होने वाले महान् व्यक्ति, डॉ० अम्बेडकर को, भारत-भूमि के इतिहास में, शिक्षाविद्, अर्थशास्त्री, लेखक, प्रोफेसर, वकील, नेता, योद्धा, कानूनवेत्ता, समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ, राजनेता, दार्शनिक और उद्धारक के रूप में समझा तथा सम्मानित किया जाता है। प्रत्येक वर्ष सम्पूर्ण भारत में उनके जन्म-दिन—14 अप्रैल, पर उनकी जयन्तियां मनाई जाती हैं।

इतने विशेषण उनके नाम के आगे लगाना कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि डॉ० अम्बेडकर के विविध कार्यक्षेत्र थे। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास एवं राजनीति पर अनेक ग्रंथ लिखे। होस्टलों तथा वाचनालयों का संचालन किया। वे प्रवक्ता तथा लॉ कॉलेज के प्राचार्य रहे। उन्होंने सैकड़ों सामाजिक तथा राजनीतिक सम्मेलनों का उद्घाटन एवं सभापतित्व किया। जन-समूहों के नेता के रूप में, सामाजिक, राजनीतिक एवं श्रमिक आंदोलनों में वे अगुआ रहे। राजनीतिक दलों तथा महाविद्यालयों की स्थापना की। उन्होंने राजनेता की बुद्धि, नेता के गुणों, नायक के उत्साह, शहीद की सहनशीलता, चिंतक की गम्भीरता और महर्षि की महानता तथा साधुता का प्रदर्शन किया। उन्होंने बहुत से सार्वजनिक पदों को अपनी बुद्धि, जनतांत्रिक मन और मानव-सम्मान के सहित सुशोभित किया। शोषित जनता के हितों के लिए, वे देश-विदेश में घूमे और उनके मानवी अधिकारों को सुरक्षित कराया।

महान् लोग केवल महलों में ही पैदा नहीं होते, बल्कि झोंपड़ियों में भी जन्म लेते हैं। यह पाया जाता है कि महान् पुरुष मोची, दर्जी, कसाई, लुहार, मजदूर आदि के घरों में भी पैदा हुए हैं। डॉ० अम्बेडकर का जन्म तो और भी उपेक्षित परिवार में हुआ। उनके बाप-दादाओं को अछूत, कुत्ते-बिल्लियों से बदतर समझा जाता था। उनकी छाया, देखना और छूना तक सवर्ण हिन्दुओं को अपवित्र बना देता था। जिनको सभी प्रकार के मानवी अधिकारों तथा मूल्यों से वंचित कर रखा था, ऐसे परिवार में पैदा कोई बच्चा यदि अम्बेडकर जैसा महान् हो जाए तो एक विचित्र घटना है। इसलिए डॉ० अम्बेडकर का नाम भारत के इतिहास में सदैव के लिए स्वर्ण अक्षरों में अङ्कित हो गया। निस्सन्देह उनके विचार बड़े गम्भीर तथा मानववादी थे जिन्हें भारतीय संविधान में लगभग समुचित स्थान मिल चुका है। उन्होंने मनु-स्मृति के प्रति विद्रोह किया और उसे सिद्धांततः धराशायी कर दिया। इस भारत-भूमि में, यह एक अछूत की महान् विजय थी। डॉ० अम्बेडकर ने वह प्राप्त कर दिखाया जो दलित समाज की कल्पना से बिल्कुल परे था। उन्होंने करोड़ों दलित नर-नारियों के जीवन को संभाला। शोषितों तथा पीड़ितों को मुक्ति दिलाई। अतएव डॉ० साहब उन उद्धारकों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने शोषित तथा पीड़ित जन-समुदायों के हितों की सुरक्षा की। उनको उनका मसीहा कहना उचित ही होगा।

डॉ० अम्बेडकर का जीवन इस बात का प्रमाण है कि भारत में रहने वाली दलित जातियों में प्रगति एवं उत्थान की भावनाएं मृत नहीं हैं। वे समय पाने पर जागृत हो सकती हैं। उनका जीवन मनुष्यत्व, वीरता तथा सद्‌गुण का परिचायक है। उनका जीवन एक उदाहरण है, एक सतत प्रेरणा है, इस बात के लिए कि कोई भी आदमी, यदि वह अपने व्यक्तित्व को निरंतर श्रम, संलग्नता, उत्साह तथा असीम बलिदान के सहारे निर्मित करने के लिए दृढ़-सङ्कल्प है, तो उसकी प्रगति तथा उपलब्धि के मार्ग में वर्ग, जाति, सुविधा, धन-सम्पत्ति आदि की कठिनाइयां बाधाएं नहीं बन सकतीं। डॉ० अम्बेडकर के जीवन-संघर्ष ने कुछ लोगों के उस प्रभुत्व को छिन्न-भिन्न कर दिया जिसके आधार पर, उन्होंने शिक्षा आदि पर एकाधिकार स्थापित कर रखा था। समय पाने पर एक अछूत भी प्रगति के अन्तिम

चरण को प्राप्त कर सकता है। यह विश्वास कि शूद्र या अछूत तो जन्म से ही गँवार होता है, डॉ० अम्बेडकर के जीवन ने बिलकुल निरर्थक सिद्ध कर दिया।

दलित समाज में, डॉ० अम्बेडकर जैसा महान् पुरुष, कई शताब्दियों तक पैदा नहीं हो पाएगा, विशेषकर यह प्रतिज्ञा साकार करने वाला कि "यदि मैं उस वर्ग की घृणित दासता तथा अमानुषिक अन्याय को, जिनसे वह पीड़ित रहा है और जिसमें मैं पैदा हुआ हूँ, मिटाने में असफल रहा तो गोली मारकर मैं अपने जीवन का अंत कर लूंगा।" यह कोई मामूली प्रतिज्ञा नहीं थी। छुआछूत को स्वतंत्र भारत के संविधान में समाप्त कर दिया गया। उनकी प्रतिज्ञा साकार हुई। दासता का अंत हुआ। इस प्रकार भारत-भूषण अम्बेडकर का जीवन करोड़ों श्रद्धालु स्त्री-पुरुषों के लिए, प्रेरणा-स्रोत बन गया है। उनकी भक्ति-भावना में अम्बेडकर का नया रूप उद्भूत हुआ है और यह रूप 'बोधिसत्व' का है। आज उन्हें उनके अनुयायी बोधिसत्व के रूप में सम्बोधित और सम्मानित करते हैं। वे पूर्णतः बौद्ध हो गए थे।

डॉ० अम्बेडकर ने संसार की दुःखमयता, जीवन की क्षणभंगुरता और जगत् की अनिश्चितता को भलीभांति समझ लिया था और यही कारण है कि वे भगवान् बुद्ध की शरण में गए। बुद्ध-दर्शन एवं धर्म में, वे लीन हो गए। उन्होंने यह सत्य जान लिया कि दुनिया में दुःख है और उसका अंत करना ही, मानवी जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। बोधिसत्व अम्बेडकर ने आत्मा, परमात्मा, जगत्, लोक-परलोक, नरक-स्वर्ग आदि के स्वरूप एव उत्पत्ति के चक्कर में न पड़कर, जीवन में दुःख है और उसका अंत किस प्रकार किया जाए? इस सत्य को स्वीकार करके, दृढ़-सङ्कल्प किया कि वे शेष जीवन को मनुष्य-मात्र की सेवा में ही लगाएँगे। वे दार्शनिक गुत्थियों में नहीं उलझे और यह विचार व्यक्त किया कि मानव-समाज का कल्याण, मैत्री, समता, करुणा तथा बन्धुत्व से ही सम्भव हो पाएगा। अतएव जब से वे बौद्ध हुए, तब से सभी मानव प्राणियों के उद्धार का संकल्प उन्होंने किया। प्राणिमात्र के प्रति करुणा, श्रद्धा और प्रेम उनमें प्रगाढ़ हो गया। यही कारण है कि उन्हें बोधिसत्व कहा जाने लगा है। उनमें स्वार्थ-भाव किंचितमात्र नहीं था। वे तो अपने जीवन को बहुत पहले से ही दीन-दुःखियों की सेवा में अर्पित कर चुके थे। उनमें मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा नहीं थी। वे प्राणिमात्र की मुक्ति के लिए दृढ़-सङ्कल्प हो चुके थे।

इसलिए अब डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को किसी एक संकुचित दृष्टिकोण से मूल्यांकित करना उचित नहीं। जो व्यक्ति बोधिसत्व की पदवी तक पहुँच चुका हो, उसे एक राजनीतिज्ञ, दलित-नेता अथवा वकील की दृष्टि से देखना, अपर्याप्त होगा। यह हो सकता है कि उनके जीवन में कमियां रही हों, उनके व्यक्तित्व में मानवी कमजोरियाँ रही हों और उनके कृतित्व में, अनेक विचारों तथा व्यक्तियों से विरोध रहा हो; परन्तु आज उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व 'बोधिसत्व' की धारणा से अनुबंधित हो गया है। यह वह अवस्था है जिसमें

लोभ-लालच, माया-मोह, भोग-विलास, काम-क्रोध, ईर्ष्या-कलह, संशय-भ्रम आदि सभी का अन्त हो जाता है। बोधिसत्व के जीवन में चित्त की सारी वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। उसका जीवन न आनंद का है, न भौतिक सुख और न चिंता का। व्यक्ति दुःख से विमुक्त होकर, सम्बोधि हो जाता है। वह बुद्धत्व प्राप्त कर लेता है, बुद्ध नहीं बनता और वह प्राणिमात्र की सेवा में रत रहता है। डॉ० अम्बेडकर के जीवन का यही उद्देश्य बन गया। वे बुद्ध-आदर्शों में सभी नर-नारियों को दीक्षित करके, उनका मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। उन्हें वे एक ऐसे व्यवस्थित समाज में परिणत करना चाहते थे जहां मानव-मानव के प्रति मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में आलोकित रहे; पारस्परिक प्रेम, व्यावहारिक समानता और सामाजिक सम्मान के खुले वातावरण में निर्भय होकर अपने व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास कर सके।

□

उपसंहार

अम्बेडकर जैसे सम्बोधि दार्शनिक ने सामाजिक, राजनीतिक, एवं धार्मिक क्षेत्रों में पदार्पण करके, अपनी बहुमुखी प्रतिभा से न केवल भुला दिए गए समतावादी मार्ग को प्रशस्त किया, बल्कि उनका आगमन दलित समाज के लिए एक नवीन दिशा-ज्ञान का द्योतक है। प्रारम्भ से, जीवन का अस्तित्व पहचानते हुए, कटु अनुभवों का सामना करते हुए, इस व्यक्ति ने दलितों की दुसहय यातनाओं के दुर्भेद्य कवच को भेद कर, न केवल साहित्य रचना की साधना की; बल्कि सम्पूर्ण भारत के अंधकारमय सामाजिक जीवन को अपनी ज्ञान रश्मियों से आलोकित भी किया। कहा जाता है कि ऐसे व्यक्ति को देवी-देवताओं द्वारा वरदान मिलता है; पर उनके सम्बंध में ऐसा कुछ कहना सम्भव नहीं क्योंकि डॉ० अम्बेडकर की स्वयं इन वरदानों में आस्था नहीं थी और वे स्वयं अथक परिश्रमी थे। उनके कर्म-योग एवं ज्ञान-योग में पूर्ण समन्वय था। मार्ग में अनेक प्रतिकूल बाधाओं के बावजूद भी, उन्होंने जिस धैर्य एवं शांति से काम किया, ज्ञान-साधना की और साहित्य रचना की, वह अनुकरणीय है। जीवन के अनुभूत तथ्यों बाधाओं एवं यातनाओं ने, उनकी जीवन-दृष्टि को जिस रूप में ढाला, उसी का प्रतिफल रूप उनके व्यापक साहित्य में उपलब्ध है।

आधुनिक मनीषियों की जिस श्रेणी में डॉ० अम्बेडकर की गणना की जाती है, वह श्रेणी प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी व्यक्तियों की है। इस श्रेणी में यद्यपि भारत के बहुत से महान् व्यक्ति आते हैं; पर डॉ० साहब का उनमें एक विशेष स्थान है। उनके व्यक्तित्व की विशेषताएं, अन्य महान् व्यक्तियों से मिल सकती हैं; परन्तु उनका कार्य-क्षेत्र उनसे भिन्न था। डॉ० अम्बेडकर ने एक ऐसे कार्य को हाथ में लिया जो सदियों से उपेक्षित था। जिसमें बहुत कम विद्वानों की रुचि थी। दलितों को उपदेश तो बहुत से साधु-संतों, चिंतक-सुधारकों ने दिए; पर उन्हें सामाजिक स्तर पर ऊँचा उठाने का काम किसी ने नहीं किया। दलितों की समस्या की आड़ में बहुत से लोग अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति कर गए। डॉ० अम्बेडकर ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने दलितोद्धार ही अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाया। उसी मिशन के लिए, वे आगे बढ़े। उसकी पूर्ति के लिए, वे राजनीति में आए और व्यापक साहित्य रचना भी की। अपने वैयक्तिक स्वार्थ को कभी दलितोद्धार के मार्ग में नहीं आने दिया। डॉ० अम्बेडकर इन दलितों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ, उनकी मान्यताओं, विचारों एवं भावनाओं में भी क्रांतिकारी परिवर्तन

लाए। उन्होंने दलित नर-नारियों को गतिशील किया और इस सामाजिक गति ने उनके प्रगति के मार्ग को प्रशस्त किया।

समय की परिवर्तित गति के अनुसार, जीवन के मूल्य भी बदलते हैं, आदर्शों के मापदण्ड में अंतर आता है। दलितों के जीवन में, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन में ऐसा ही हुआ। एक बार डॉ० अम्बेडकर के दर्शन में आस्था प्रकट करने से, व्यक्ति विशेष के जीवन मूल्यों तथा आदर्शों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। जिस प्रकार दलितों के जीवन के ढग, उनके अनुभव और ज्ञान में परिवर्तन आया, वह डॉ० साहब के प्रयासों का ही प्रतिफल है। महान् व्यक्ति वही तो होता है जो समाज में भरे कचरे को अपने ज्ञान-रूपी झाड़ू से साफ करता है। एक नई दिशा प्रदान करता है। डॉ० अम्बेडकर के दर्शन : आदर्श एवं नैतिकता, का मूल प्रयोजन समाज को घिसी-पिटी बातों से छुटकारा दिलाकर, एक अच्छी तथा सुन्दर व्यवस्था के विकास में योगदान करना है। इसलिए एक महान् उद्धारक के रूप में, विद्वान डॉक्टर ने समाज की बदलती हुई स्थिति एवं आस्था के अनुकूल आदर्शों के लिए भूमिका तैयार की, और समाज में छुआछूत जातिवाद, ब्राह्मणवाद, विषमता, अन्याय, दमन, शोषण, आदि की ओर जन-समुदायों का ध्यान आकर्षित करके, व्यापक क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए, शोषित लोगों में चेतना जाग्रत की। इस प्रकार डॉ० साहब ने समाज में रहने वाले सभी नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों में एक नवीन दिशा की ओर योगदान किया। उनका मानववादी चिंतन सम्पूर्ण समाज को उन मूल्यों एवं आदर्शों के क्षेत्र में ले जाता है जो आधुनिक समाज की व्यवस्था तथा शान्ति के लिए, परमावश्यक हैं। उनका चिंतन सोद्देश्य है और यथार्थ-मूलक है।

डॉ० अम्बेडकर ने अपने जीवन में प्रारम्भिक अर्थाभाव के कटु अनुभव को आत्मसात किया। उस जीवन की कटुता और भावुकता को विद्वान् डॉक्टर ने अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम, ज्ञान और कर्म के मिश्रण से मिशन में परिवर्तित कर लिया। धनाभाव के कारण तो उनका अनेक दुर्दिनों तथा कष्टों का सामना करना पड़ा। उनके क्रान्तिकारी विचारों, ब्राह्मणवाद के प्रति उनके विद्रोह से भी उनको अनेक प्रकार की उलझनों तथा विकट परिस्थितियों में फँसना पड़ा। एक ओर अदम्य साहित्यिक प्रवृत्ति, दूसरी ओर प्रबल क्रान्तिकारिता तथा विद्रोहात्मकता, कटु अनुभव निरन्तर सामाजिक संघर्ष, दलितोद्धार आदि विलक्षण बातों के अद्भुत संयोग ने इस निर्धन अछूत को असाधारण व्यक्ति बना दिया। आज उनका असाधारण व्यक्तित्व ही करोड़ों लोगों के लिए साहस एवं प्रेरणा-स्रोत बना हुआ है। अपने जीवन की अनुभूतियों, स्मृतियों तथा मूल्यों का, उन्होंने सङ्कलन ही नहीं किया, बल्कि उनका मन्थन भी किया और जिनको अपने साहित्य में स्पष्ट एवं सरल भाषा में व्यक्त किया। डॉ० अम्बेडकर के कृतित्व पर उनके व्यक्तित्व एवं विचार की गहरी छाप थी। उनकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं था जैसा वह सोचते, अथवा जो उनके जीवन-आदर्श थे या जिन बातों को वह आधुनिक समाज की प्रगति के लिए आवश्यक समझते थे, उनको व्यावहारिकता में लाने का जीवन भर

प्रयोग किया। उन्हीं को साहित्यिक कृतियों में निरूपित किया।

अपने कृतित्व एवं साहित्य के माध्यम से डॉ० अम्बेडकर ने राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक समस्याओं का चित्रण करके सामाजिक वैषम्य तथा अन्याय पर प्रबल प्रहार किया। दुनिया के विद्वानों एवं राजनेताओं को भारत की वास्तविक स्थिति से अवगत कराकर, डॉ० साहब ने दलित समाज को इस प्रकार ढाला कि प्रत्येक दलित जघन्य वास्तविकता, कुत्सित यथार्थ और वर्ग-विषमता का समाधान ढूँढने का प्रयास करे। उनका हरेक कार्य और कृति समाज की वास्तविक स्थिति का स्पष्ट विश्लेषण है। उसके प्रति निरन्तर विद्रोह है। यही भावना शोषित वर्ग को प्रेरित करती है कि वह थोड़े से प्रलोभन में न आए, पथभ्रष्ट न हो और निरन्तर अन्याय, शोषण एवं दमन की स्थिति के प्रति विद्रोह करता रहे। इसी में जीवन की सार्थकता है। यही तो जीवन के अस्तित्व की सही अनुभूति है। जो इसे समझ गया वह उद्धारक अवश्य बन जाएगा। उसका लक्ष्य व्यक्ति न होकर, समाज होगा। सामाजिक उत्थान ही सदैव उसके जीवन का मिशन बना रहेगा। हमें ऐसी ही शिक्षा डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से मिलती है।

डॉ० अम्बेडकर का दृष्टिकोण मार्क्सवादी नहीं था। उनके सामाजिक संबंधों की धारणा निःसंदेह समतावादी है, पर कठोर समतावाद नहीं जिसमें जनतन्त्र तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ही लोप हो जाए। जब उनका ध्यान समाज की ओर जाता है तो वह जनतान्त्रिक-समाजवादी समाज की विचारधारा का अनुमोदन करते हैं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि सैद्धान्तिक रूप में मार्क्सवाद से अपना सम्बन्ध स्वीकार करते हुए भी, डॉ० अम्बेडकर मार्क्सवाद में पुनर्मूल्याङ्कन की सम्भावनाओं को आवश्यक समझते हैं क्योंकि कोई एक विचार निरपेक्षत: सत्य तो नहीं हो सकता। वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को एकमात्र सही विचारधारा न मानते हुए भी समाज में गतिशीलता को प्रमुख स्थान देते हैं। उनके दर्शन में गतिशीलता, प्रगतिवादिता तथा परिवर्तनशीलता का समन्वित रूप मिलता है। मूलत: देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उनकी आस्था जनतान्त्रिक सत्ता तथा व्यवस्था में थी जिसमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता, धर्म और आध्यात्मिकता सुरक्षित बने रहें। अत: मार्क्सवाद में आदमी की जिस तरह से व्याख्या होती है, कि मनुष्य आर्थिक व्यवस्था की उपज है, उससे डॉ० साहब के विचार अलग हैं। वे मानते थे कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अस्तित्व है और सही सामाजिक क्रान्ति का आधार उसे ही होना चाहिए।

डॉ० अम्बेडकर का इस जीवन और जगत् में ही विश्वास था। उनकी जीवन-दृष्टि में सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो देखने में आती है वह यह है कि वह आधुनिक जीवन और परम्परागत आचार, धारणाओं और सामाजिक संस्थाओं में अन्तर्विरोध पाते हैं, जिन्हें उन्होंने दृढ़तापूर्वक दूर करने का प्रयास किया। गहन अध्ययन करने से पता लगता है कि डॉ० साहब ने अन्य विचारधाराओं से जो कुछ ग्रहण किया वह तो है ही, इससे इतर भी जो कुछ वह देते हैं, वह उनकी आधुनिक दृष्टि का परिणाम है, उदाहरणत: डॉ० अम्बेडकर धर्म को बिल्कुल परम्परा में ढाल कर स्वीकार नहीं करते। वे धर्म को नये आयाम प्रदान करते हैं। उनकी दृष्टि में,

सच्चा धर्म मानव से प्रारम्भ होता है और मानव तक ही सीमित रहता है, मानवीय सीमाओं के परे धर्म का कोई महत्त्व नहीं है। अतएव धर्म मानव-मानव के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने एवं बनाए रखने का प्रबल साधन है। धर्म मनुष्य के लिए है, ईश्वर आदि के लिए नहीं है। उसमें देवी-देवताओं का कोई स्थान नहीं है। डॉ० साहब का चिंतन किसी भी क्षेत्र में हुआ हो, वह परिस्थिति सापेक्ष था। उनका चिंतन और मनन मनुष्य तथा समाज की सीमाओं से परे नहीं था। वर्णाधारित समाज और ब्राह्मणी संस्कृति के साथ, डॉ० साहब की जीवन-दृष्टि कभी भी समझौता नहीं कर पाई, यह निर्विवाद सत्य है; क्योंकि उसमें मानवीय न्याय की भावना का स्थान नहीं है। वर्णवाद एवं ब्राह्मणवाद में वैषम्य और विरोध अधिक है। यदि हिन्दू समाज में न्याय की भावना को स्थान मिलता तो सम्भवत: वह अन्यत्र कहीं नहीं जाते। यह उनका स्वयं का अनुभव है। वह किसी विदेशी विचारधारा से प्रभावित नहीं थे। भारतीय संस्कृति के अथाह सागर में उन्होंने गोता लगाकर, बुद्धधर्म रूपी रत्न ढूँढ निकाला और दलितों को सौंप दिया कि वे उसे सम्भाल कर रखें, जो उन्हें सदैव प्रकाशित करता रहेगा।

उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रतिकूल परिस्थितियों के वातावरण में रहते हुए भी उनका जीवन बहुत ही सफल रहा। उनकी कृतियों की सराहना की गई। उनके दर्शन का सुशिक्षित जनता ने स्वागत किया। उनके साहित्य में लोगों की व्यापक रुचि पैदा हुई। जिस छुआछूत के प्रति उन्होंने जो एक वृहद् युद्ध छेड़ा, उसका भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता की हैसियत से कानूनन खात्मा करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस समाज में उन्हें अपमानित किया गया, उसी समाज ने उन्हें 'स्मृतिकार' के रूप में स्वीकार किया। जिस व्यक्ति के लिए शिक्षा के द्वार बन्द थे, वही व्यक्ति शिक्षा जगत् में सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गया और यह सिद्ध कर दिया कि यदि उपेक्षित व्यक्तियों या वर्गों को प्रगति के अवसर प्रदान किए जाएँ तो उनमें छिपी हुई प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति हो सकती है। इस दृष्टि से डॉ० अम्बेडकर के जीवन की सफलताएँ असाधारण हैं, आश्चर्यजनक हैं। उन्होंने दलितों की आशा-आकांक्षा में जो प्रगति कर दिखाई, वह अद्भुत है। वह अपने मिशन पर अडिग रहे। प्रतिकूल परिस्थिति में, वह हर स्थिति का लाभ उठाते हुए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँच गए और साथ ही साथ दलितों को भी ले चलते गए। उनके व्यक्तित्व की यह महान् विशेषता थी कि समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने के बावजूद, वह अपने दीनहीन दलितों को भूले नहीं और उन्हीं के उद्धार हेतु उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को खपा दिया। हालांकि आज यदि कोई अछूत ऑफीसर बन जाता है; तो वह अपने को दलितों से अलग कर लेता है और उनके उद्धार में तनिक भी रुचि नहीं लेता। डॉ० साहब का महान् क्रांतिकारी जीवन सम्पूर्ण भारतीय समाज, विशेषकर दलित समुदाय को सामाजिक समता की प्रेरणा, स्वतंत्रता एवं जनतंत्र के प्रति उत्साह प्रदान कर रहा है और करता रहेगा।

डॉ० अम्बेडकर के साहित्य में, हमें न केवल विचार प्रतिपादन के गम्भीर

स्थल मिलते हैं, वल्कि उन्होंने मानवीय समस्याओं का भी निकट से अध्ययन किया था, इसलिए उनकी कृतियों में उनका समाधान भी मिलता है। उनकी रचनाओं से पाठकगण एक विशिष्ट सिद्धान्त और दर्शन से भलीभांति अवगत हो सकते है, भले ही वे उनसे सहमत न हों। वस्तुत: वह अन्धभक्त चाहते भी नहीं थे। डॉ० साहब का अनुभव क्षेत्र बड़ा था और वे विशाल तथा निर्बाध जीवन परिस्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते थे। उनकी लेखनी ने सामाजिक उत्थान की सम्भावना को एक विशेष दिशा में मूल्यांकित करने का प्रयास किया। व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का जनतांत्रिक-समाजवादी-मानववादी दृष्टि से विवेचन किया। उनका साहित्य परम्परावाद से आगे है। वह आधुनिकता तथा बौद्धिकता का प्रतीक है। उनका सम्पूर्ण साहित्य समस्या-प्रधान है। अतएव उसका मूल्यांकन भी उनके विचार एवं व्यक्तित्व की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

डॉ० अम्बेडकर के साहित्य का विशेष महत्त्व यह है कि उसमें सामाजिक रूढियों, परम्पराओं तथा प्राचीनता पर कड़ा प्रहार और आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता को स्वीकार का आग्रह सर्वत्र मिलता है। वर्तमान समाज की आर्थिक व्यवस्था की उन्होंने तीव्र आलोचना की और एक ऐसा मार्ग सुझाया जो शोषित वर्गों के हितों का संरक्षण करता है। भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं धर्म का उन्हें गम्भीर ज्ञान था। जो कुछ उन्हें उनमें अच्छा लगा, उसे उन्होंने सहृदय ग्रहण किया। अम्बेडकर का चिंतक-रूप तर्क तथा न्याय की भावनाओं से ओत-प्रोत है। अत: वह एक जनतांत्रिक-समाजवादी समाज की स्थापना का समर्थन करते हैं, तो उसमें एक विचारक की निर्भीकता एवं तटस्थता सदैव विद्यमान रहती है। उन्होंने गांधीवादी तथा ब्राह्मणवादी, साम्यवादी एवं अधिनायकवादी, समाज के स्वरूप को कतई पसन्द नहीं किया। डॉ० साहब ने अपने गहन अध्ययन, अनुभव और विश्लेषण के आधार पर इन वादों के खोखलेपन का उद्घाटन अपने साहित्य में किया है। उन्होंने गान्धी के समस्त विचारों एवं सिद्धान्तों को अपने मानदण्डों की कसौटी पर परख कर निराधार सिद्ध कर दिया है। गान्धीवाद अन्तर्विरोधों का एक भण्डार है, जिसमें दलितों की समस्या का कोई समाधान नहीं है और यदि कोई है तो वह खोखला तथा अन्यथार्थ है। इसलिए अपने साहित्य में अधिकांशत: डॉ० साहब ने दलितों को चेतावनी दी कि वे गांधीवाद के प्रति कतई आकर्षित न हों।

साथ ही, डॉ० अम्बेडकर ने, अपने साहित्य तथा व्याख्यानों के माध्यम से, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भी तीव्र विरोध किया। वैसे कुछ विद्वानों तथा लोगों की यह धारणा थी कि उन्होंने अंग्रेजी प्रशासकों की हाँ में हाँ मिलाई, पर यह आरोप नितान्त निराधार है। यदि उनके साहित्य पर कोई गहरी दृष्टि डाले और मनन करे तो यह मिलेगा कि अम्बेडकर ने अंग्रेजी राज्य को भारत में विद्यमान चालों तथा कुचक्रों को जितने स्पष्ट ढंग से उद्घाटित किया, संभवत: किसी अन्य विद्वान राजनीतिज्ञ ने ऐसा न किया होगा। उन्होंने अपनी पुस्तकों में यह लिखा कि किस प्रकार भारत का आर्थिक शोषण अंग्रेजों द्वारा हो रहा था और ब्रिटिश प्रशासन किस प्रकार स्वार्थपूर्ण हितों की पूर्ति कर रहा था। न केवल

भारत में, बल्कि लन्दन के गोलमेज सम्मेलनों में, उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन की कमजोरियों की ओर संकेत किया। अतः यह कहना कि वह अंग्रेजी शासन के समर्थक थे पूर्णतः निराधार होगा। अन्याय तथा दमन कहीं हो, उनके प्रति विद्रोह करना, अम्बेडकर के जीवन का स्वभाव बन गया था। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व, जीवन तथा साहित्य में एक ओर गम्भीरता और आलोचनात्मक वैचारिकता है, तो दूसरी ओर बौद्धिकता एवं विद्रोह का भी समावेश है। उन्होंने भारतीय समाज को गम्भीर-विचार प्रधान सामग्री से ही समृद्ध नहीं किया, बल्कि अत्यन्त रोचक एवं युक्तिसंगत ढंग से वर्त्तमान परिस्थितियों को शीघ्रातिशीघ्र बदलने पर भी बल दिया है। न केवल परिस्थिति वरन् मनःस्थिति के परिवर्तन का सन्देश भी हमें उनके साहित्य में मिलता है। उनका दर्शन आदर्शवादिता का प्रदर्शन नहीं, अपितु वास्तविकता का विश्लेषण है।

इसी सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने विद्रोही व्यक्तित्व को हिंसा तथा आतंकवाद के साथ कभी नहीं जोड़ा अर्थात् परिवर्तन के लिए, गैर-कानूनी हथकंडे अपनाने का समर्थन कतई नहीं किया। कानून की सीमाओं के अन्तर्गत ही, वह सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के समर्थक थे।

निस्सन्देह अम्बेडकर एक गम्भीर लेखक और विचारक थे। उन्होंने चाहे जितने भी शुष्क विषय का प्रतिपादन किया हो, उनका विवेचन कितना भी रुक्ष और कठोर हो गया हो, उनके हृदय की वेदना समाप्त नहीं हुई। वह वेदना जो उनमें दीन-हीनों के प्रति प्रारम्भ से ही विकसित हो गई थी। वही उन्हें लिखने-पढ़ने के लिए प्रेरित करती रही। वह निरन्तर उसी मिशन की वकालात करते रहे जिसे उन्होंने पूरा करने का संकल्प किया था। अतएव वह न केवल गम्भीर समीक्षक बल्कि तेजस्वी वक्ता भी थे। वह महान् चिंतक थे। उनके सभी ग्रन्थ गहन अध्ययन, विशद विद्वता और विद्रोह के परिचायक हैं। यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता तो संभवतः वह और भी गम्भीर ग्रन्थ दे सकते थे। वह स्वयं एक चलता-फिरता ग्रन्थालय थे। आत्म-विश्वास तथा निर्भीकता, ये दोनों गुण उनकी असाधारण ज्ञान-साधना के स्वाभाविक परिणाम थे। डॉ० साहब का व्यक्तित्व, कृतित्व, जीवन तथा दर्शन, सभी असाधारण थे। वह कोई व्यक्ति नहीं थे, बल्कि स्वयं एक संस्था थे जिसमें भिन्नताओं के बावजूद, एकत्व की ध्वनि निहित है। एकीकृत जीवन-दृष्टि का उसमें समावेश है।

डॉ. अम्बेडकर जैसे सशक्त, निर्भीक एवं साहसी व्यक्ति का जीवन एक अनोखा उदाहरण है, जिसमें कई प्रकार के पक्षों का समन्वित रूप मिलता है। उनका जीवन एक ओर क्रान्तिकारी तथा विद्रोही था, तो दूसरी ओर वैचारिक और साहित्यिक। उन्होंने न केवल शिक्षा एवं साहित्य जगत् की सेवा की, अपितु अनेक राजनीतिक एवं साहसिक कार्यकलापों द्वारा अपने सबल विद्रोही व्यक्तित्व का भी परिचय दिया। डॉ० साहब के विद्रोही जीवन की उग्रता और निर्भीकता, उनके साहित्यिक कृतित्व में फूट-फूट कर भरी है। उनके साहित्यिक जीवन को उनके विद्रोही व्यक्तित्व से पृथक् नहीं कर सकते। उनके साहित्य तथा कृतित्व में

जो साम्य विद्यमान है, संभवतः वह अन्यत्र नहीं मिलेगा ।

महान् पुरुष महलों तथा कुटियों दोनों में जन्म लेते हैं। वे न केवल राजा-महाराजाओं के घर से उभरते हैं, वलिक मोची, टेलर, कसाई आदि के परिवारों से भी आते हैं। कुछ लोग महान् पैदा होते हैं, कुछ पर महानता थोपी जाती है; और कुछ लोग महानता को अपने कड़े परिश्रम द्वारा प्राप्त करते हैं। डॉ० अम्बेडकर न केवल एक साधारण कुटिया में जन्मे बल्कि अपने अथक परिश्रम द्वारा उन्होंने महानता को प्राप्त किया। इसलिए उनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित होगा। अधिकांशतः उनके विचार तथा आदर्श, भारतीय संविधान में समावेश कर लिए गये हैं। उन्होंने मनु के प्रति विद्रोह किया और संवैधानिक धाराओं में उसे बहा दिया, हालांकि कट्टर हिन्दुओं पर उसका प्रभाव अब भी है। सर्वोच्च स्थान से मनु को नीचे ला पटकना, उन्हीं का कार्य था। इस प्रकार अम्बेडकर ने वह उपलब्धि प्राप्त की जिसका दलित समाज ने कभी विचार भी न किया होगा। अम्बेडकर का नाम उन मसीहाओं की श्रेणी में आता है जिन्होंने पीड़ित एवं शोषित जन-समुदायों को मुक्त किया। उन्होंने दस करोड़ दलितों के भाग्य का निर्माण किया। उन्होंने अपने समय पर गहरी छाप छोड़ी। अतः उन्होंने स्वयं देश के भविष्य में अपना स्थान बना लिया और मानवीय स्वतन्त्रता के संग्राम में भारी बलिदान किया। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि भारत के दलितों में वह शक्ति एवं क्षमता है कि वे बड़ी से बड़ी क्रांति ला सकते हैं।

इस प्रकार यही कहा जाएगा कि डॉ० अम्बेडकर की विचारधारा के विस्तार तथा उसकी गहराई और प्रभावशीलता ने भारतीय समाज को एक नई दिशा दी है। दलित समाज के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को परिपुष्ट किया है। उनका साहित्यिक जीवन सारगर्भित एवं विचार-प्रधान है। उनके सम्पूर्ण साहित्य ने अपनी विकास गति द्वारा दूसरों के लिए दिशा-निर्देश का कार्य किया है। वह सामाजिक रूढ़ियों और अत्याचारों का उद्घाटन करते हुए, एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वह व्यक्ति को सामाजिक संकीर्णता और धार्मिक भेदभाव की स्थिति से बाहर निकालता है। उसे आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान के स्तर पर लाकर, ऐसी विकासोन्मुखी गति की ओर अग्रसर करता है, जहां उसे अन्धविश्वासों, निकृष्ट परम्पराओं, अनुपयुक्त रीति-रिवाजों और संकुचित विचारों के थपेड़े सता नहीं सकें। डॉ० अम्बेडकर का जीवन न केवल वर्तमान पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करता है, बलिक भविष्य में भी उनका व्यक्तित्व ऐसे प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता रहेगा जिसके समीप आकर भटके, शोषित एवं पीड़ित मानव प्राणियों को भी दिशा मिल सके। भावी पीढ़ी उससे आलोकित होती रहेगी और एक निश्चित राह पर वह अपनी सफल यात्रा कर सकेगी।

इस महान् व्यक्ति को किसी संकुचित दृष्टि से आंकना उचित नहीं होगा क्योंकि आज उनके करोड़ों अनुयायी उन्हें 'बोधिसत्व' की संज्ञा देकर सम्मानित करते हैं। उन्हें मानव-देवता की दृष्टि से पूजते हैं। भटके नर-नारियों का जो मार्ग-दर्शन करे और उन्हें विभिन्न दुःखों तथा विपत्तियों से मुक्त करे, वही तो बोधिसत्व

होता है। उसका स्वार्थ नष्ट हो जाता है और वह समस्त मानव प्राणियों को सम्यक् विचार में दीक्षित करके, सम्यक् मार्ग पर ले जाता है। बौद्ध-धर्म में दीक्षित होने के पश्चात्, बाबा साहब ने यही प्रतिज्ञा की कि वह अब 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' के महान् आदर्श, अष्टांगिक-मार्ग, करुणा एवं मैत्री का अनुसरण करते हुए, कुमार्ग में फँसे मानव प्राणियों को सुमार्ग पर लाने का सम्यक् प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार बाबा साहब का बोधिसत्व रूप, एक ओर विद्यार्थी को प्रेरित करता है कि वह विद्यार्जन में लीन रहे तो दूसरी ओर गृहस्थ को, कि वह अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व को निभाए। एक ओर उनका जीवन राजनीतिज्ञ को उत्साहित करता है कि वह जनतांत्रिक प्रणाली को सुदृढ़ बनाए, तो दूसरी ओर किसी समाज-सुधारक को, कि वह समतावादी समाज की स्थापना में योगदान दे। साथ ही, बाबा साहब का सम्बोधि व्यक्तित्व मानव-प्राणियों को न केवल भौतिक प्रगति की दिशा में; अपितु आध्यात्मिक उत्थान के मार्ग में भी अनुप्रेरित करता है और इस दृष्टि से, उनका जीवन एवं दर्शन विविध प्रकार से, किसी न किसी स्थल पर, सभी व्यक्तियों के लिए, नव-निर्माण तथा परमार्थ की सजग प्रक्रिया में युगों-युगों तक प्रेरणा-स्रोत बना रहेगा।

□

ग्रन्थावली

डॉ० अम्बेडकर द्वारा लिखित मौलिक ग्रन्थ, आलेख तथा भाषण

मौलिक ग्रन्थ :

1 एनिहिलेशन ऑफ कॉस्ट; थैकर एण्ड कम्पनी (बम्बई), 1937
2 रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना, थैकर (बम्बई), 1943
3 मि० गांधी एण्ड द इमेन्सीपेशन ऑफ द अण्टचेबिल्स, थैकर (बम्बई), 1943
4 पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इण्डिया, थैकर (बम्बई), 1946
5 ह्वॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अण्टचेबिल्स, थैकर (बम्बई), 1946
6 स्टेट्स एण्ड मायनॉर्टीज, थैकर (बम्बई), 1947
7 हू वर द शूद्राज ? थैकर (बम्बई), 1946
8 द अण्टचेबिल्स, अमृत बुक डिपो (नई दिल्ली), 1948
9 हिस्ट्री ऑफ इण्डियन करैंसी एण्ड बैंकिंग. थैकर (बम्बई), 1946
10 द इव्योल्यूशन ऑफ प्रॉविन्सियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया, पी० एस० किंग (लन्दन), 1923
11 थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट, कृष्णा प्रेस (बम्बई) 1955
12 महाराष्ट्र एज ए लिंग्विस्टिक स्टेट, थैकर (बम्बई), 1948
13 द बुद्धा एण्ड हिज धम्म, सिद्धार्थ पब्लिकेशन (बम्बई), 1957
14 फेडरेशन वर्सेज फ्रीडम, भीम पत्रिका प्रकाशन (जालन्धर), 1970
15 कम्यूनल डैडलॉक एण्ड ए वे टू सॉल्व इट, एफ एण्ड ओ प्रिंटिंग प्रेस (देहली), 1945

आलेख तथा भाषण :

1 कण्डीशन्स प्रीसीडेण्ट टू द सक्सेज ऑफ पार्लियामेण्ट्री डिमॉक्रेसी इन इण्डिया, (बी० बी० गॉगेट, पूना, 1953)
2 प्रेसीडेन्सियल एड्रेस टू द ऑल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लासिज कांग्रेस, नागपुर, 8/9 अगस्त 1930, (भारत भूषण प्रेस, बम्बई, 1930)
3 प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ पार्लियामेण्ट्री डिमॉक्रेसी इन इण्डिया, (बी० बी० सी० लन्दन के लिए वार्ता, 20 मई 1956)
4 कॉस्ट्स इन इण्डिया : देअर मेकेनिज्म, जीनिसिस एण्ड डिव्लेपमेण्ट, (इण्डियन एण्टीक्यूरी, वोल. : XLI, मई 1917)
5 स्टेटमेण्ट सब्मिटेड ऑन बिहॉफ ऑफ द बहिष्कृत हितकारिनी सभा टू द इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन, (25 मई 1928)
6 मेमोरेण्डम ऑन बिहॉफ ऑफ द ऑल इण्डिया शै. कास्ट फेडरेशन सब्मिटेड टू

द केबिनेट मिशन, (5 अप्रैल 1946)

7 रेसपॉन्सिबिलिटीज ऑफ प्रांविसियल गवर्नमेण्ट इन इण्डिया, (कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, 1916)

8 ह्वाट एल्स द वर्ल्ड टूडे (लेख), द इण्डियन रीडर्स डायजेस्ट, जुलाई 1943

9 सप्लीमेण्ट्री मेमोरेण्डम सब्मिटेड टू द सेकिण्ड सेसन ऑफ द राउण्ड टेबिल कान्फ्रेन्स ऑन बिहॉफ ऑफ द अण्टचेबिल्स, 1931

10 द टेक्स्ट ऑफ द पूना-पैक्ट, 25 सितम्बर 1932

11 इण्डिपेन्डेण्ट लेबर पार्टी—संविधान तथा नियम, (डायरेक्ट्री ऑफ बॉम्बे लेजिस्लेचर 36—39, के० श्रीनिवासन, दलाल स्ट्रीट, बम्बई, 1939)

12 रिपोर्ट्स ऑफ द इण्डियन राउण्ड टेबिल कान्फ्रेन्सेज, 1930—32

13 डिबेट्स ऑफ द इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन असेम्बली, 1945—48

14 डिबेट्स ऑफ द बॉम्बे लेजिस्लेटिव असेम्बली, वॉल. I, 1937 एण्ड वॉल. II—III, 1938.

15 न्यूज पेपर्स (मेनली)—द टाइम्स ऑफ इण्डिया; 1927—1947; द हिन्दू (मद्रास), 1930—1940; और द बॉम्बे क्रॉनिकल, 1926—1956

16 नीड फॉर चेक्स एण्ड बेलेन्सेज, टाइम्स ऑफ इण्डिया, 23 अप्रैल, 1953

17 एविडेन्स बिफोर द साउथबॉरो कमेटी ऑन फ्रेन्चाइज, रिपोर्ट ऑफ द रिफार्म्स कमेटी (फ्रेन्चाइज) वोल. : II, 1919

18 स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देअर रिमेडीज, जर्नल ऑफ द इण्डियन इक्नॉमिक सोसाइटी, वोल. : I, 1918

19 मि० रसैल एण्ड द रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ इण्डियन सोसाइटी, (रिव्यू ऑन रसैल्स बुक : प्रिन्सिपिल्स ऑफ सोशल रिकन्स्ट्रक्शन), जर्नल ऑफ द इण्डियन इक्नॉमिक सोसाइटी, वोल. : I, 1918 ।

□